

भारतवर्षीय दि० जैन संघ चौरासी मथुरा द्वारा प्रकाशित

# क सा य पा हु डं

( जयधवल, महाधवल )

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

भाग ब्राह्मण

सम्पादकौ

विद्वतग्ल

स्व० श्री पं० फूलचन्द्र

विद्वतग्ल

स्व० श्री पं० कैलाशचन्द्र

प्रकाशक

भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी मथुरा ( उत्तर प्रदेश )

भारतवर्षीय दि० जैन संघ चौरासी मथुरा द्वारा प्रकाशित

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्  
श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीतम्

# क सा य पा हु डं

(जयधवल, महाधवल)

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

[ सप्तमोऽधिकारः उपयोगानुयोगद्वारम्, अष्टमोऽधिकारः चतुःस्थानानुयोगद्वारम्  
नवमोऽधिकारः व्यञ्जनानुयोगद्वारम्, दशमोऽधिकारः दर्शनमोहोपशामनानुयोगद्वारम् ]

भाग-12 ( द्वादशो दलः )

सम्पादकौ

विद्वतरत्न

स्व० श्री पं० फूलचन्द्र

सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्य

सम्पादक जय महाबन्ध

सहसम्पादक, जयधवल

विद्वतरत्न

स्व० श्री पं० कैलाशचन्द्र

सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ

प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय

काशी

प्रकाशक

भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी-मथुरा ( उत्तर प्रदेश )

प्रकाशक  
भारतवर्षीय दि० जैन संघ  
चौरासी, मथुरा

कार्यालय दूरभाष :  
0565 - 420711

प्रथम संस्करण 1971  
(वीर निर्वाण 2497)  
द्वितीय संस्करण 2000  
(वीर निर्वाण 2526)

मूल **संशोधित मूल्य 250/- रुपये**

मुद्रकः  
नरूला ऑफसेट प्रिन्टर्स  
शाहदरा, दिल्ली

## प्रथम संस्करण के प्रकाशन पर सम्पादक द्वारा अग्रलेख

कसायपाहुड के छठे भाग प्रदेशविभक्ति को पाठकों के हाथों में देते हुए हमें हर्ष होता है। इस भाग में प्रदेशविभक्ति का स्वामित्व अनुयोगद्वारपर्यन्त भाग है। शेष भाग, स्थितिक तथा झीणाझीण अधिकार सातवें भाग में मुद्रित होगा। इस तरह प्रदेशविभक्ति अधिकार दो भागों में समाप्त होगा। सातवां भाग भी छप रहा है और उसके भी शीघ्र ही छपकर तैयार हो जाने की पूर्ण आशा है।

इस प्रगति का श्रेय मूलतः दो महानुभावों को है। कसायपाहुड के सम्पादन प्रकाशन आदि का पूरा व्यवहार डोंगरगढ़ के दानवीर सेठ भागचन्द्र जी ने उठाया हुआ है। पिछली बार संघ के कुण्डलपुर अधिवेशन के अवसर पर आपने इस सत्कार्य के लिये ग्यारह हजार रुपये प्रदान किये थे और इस वर्ष बामोरा अधिवेशन के अवसर पर पाँच हजार रुपये पुनः प्रदान किये हैं। आपकी दानशीला धर्मपत्नि श्रीमती नर्वदा बाई जी भी सेठ साहब की तरह ही उदार हैं और इस तरह इस दम्पती की उदारता के कारण इस महान् ग्रन्थराज के प्रकाशन का कार्य निर्वाध गति से चल रहा है।

सम्पादन और मुद्रण का एक तरह से पूरा दायित्व पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री ने वहन किया है। इस तरह उक्त दोनों महानुभावों के कारण कसायपाहुड का प्रकाशन कार्य प्रशस्त रूप में चालू है। इसके लिये मैं सेठ साहब, उनकी धर्मपत्नि तथा पण्डित जी का हृदय से आभारी हूँ।

काशी में गङ्गा तट पर स्थित स्व. बाबू छेदीलाल जी के जिन मन्दिर के नीचे के भाग में जयधवला कार्यालय अपने जन्म काल से ही स्थित है और यह सब स्व० बाबू छेदीलाल जी के पुत्र स्व० बाबू गणेशदास जी तथा पौत्र बा० सालिंगगम जी और बा० स्व० ऋषभदास जी के सौजन्य तथा धर्मप्रेम का परिचायक है। अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

ऐसे महान् ग्रन्थराज का प्रकाशन पुनः होना संभव नहीं है। अतः जिनवाणी के भक्तों का यह कर्तव्य है कि इसकी एक-एक प्रति खरीद कर जिन मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों में विराजमान करें। जिनबिम्ब और जिनवाणी दोनों के विराजमान करने में समान पुण्य होता है। अतः जिन बिम्ब की तरह जिनवाणी को भी विराजमान करना चाहिये।

जयधवला कार्यालय

भदैंनी, काशी

वीर निर्वाण सं.- 2493

कैलाशचन्द्र शास्त्री

मंत्रा साहित्य विभाग

भा. दि. जैन संघ



## भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ संक्षिप्त इतिहास

सन् 1933 में महामनीषी विद्वान् स्व० पं० राजेन्द्र कुमार जी न्यायतीर्थ के अदम्य उत्साह और विलक्षण सूझबूझ ने एक नयी संस्था को जन्म दिया। नाम था शास्त्रार्थ संघ। इस संघ में स्व० लाला सिद्धामल जैन का सहयोग था। 1933 में अम्बाला में स्थापित इस संस्था के द्वारा देश के अनेक नगरों में धर्म-संरक्षण की भावना से जैन धर्म के आलोचकों से सार्वजनिक शास्त्रार्थ किये गये। उसका परिणाम यह हुआ कि आलोचकों ने जैन धर्म की आलोचना बन्द कर दी।

शास्त्रार्थ संघ को सबसे बड़ी विजय तब मिली, जब आलोचकों के प्रमुख सन्यासी स्वामी कर्मानन्द जी ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया और जैन धर्म की प्रामाणिकता में "ईश्वर मीमांसा" नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसका प्रकाशन संघ ने किया है।

सन् 1940 के लगभग, संघ का स्थान अम्बाला की जगह मथुरा में हो गया। चौरासी स्थित भगवान् जम्बू स्वामी की निर्वाण स्थली के समीप पं० राजेन्द्र कुमार जी और उनके सहयोगियों के द्वारा भव्य-भवन का निर्माण किया गया और संघ का नाम "शास्त्रार्थ-संघ" के स्थान पर "भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ" रखा गया। अब संघ का कार्य धर्म प्रचार था।

उस समय संघ भवन में हर समय 10-12 विद्वान् रहा करते थे और पूरे देश में होने वाले सामाजिक, धार्मिक उत्सवों में उन विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था। उन्हीं दिनों संघ में एक प्रकाशन विभाग की स्थापना हुई, जिसके द्वारा अनेक समाजोपयोगी एवं धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ, जिनमें कैलाशचन्द्र जी शास्त्री द्वारा लिखी गयी "जैन धर्म" नाम का ग्रन्थ अब सातवें संस्करण के रूप में छप गया है। इन्हीं के द्वारा "तत्त्वार्थ सूत्र" की गौरवपूर्ण हिन्दी टीका लिखी है, जिसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो चुका है।

सन् 1950 के आस-पास संघ ने स्व० पंडित हीरालाल जी शास्त्री, अमरावती (महाराष्ट्र) ए. एन. उपाध्ये की प्रेरणा से "कसायपाहुड" (जयधवल, महाधवल) ग्रंथराज के प्रकाशन की योजना बनायी। आर्थिक अभावों के होते हुए भी स्वर्गीय पं० फूलचन्द्र जी और पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री के श्रम और सूझ-बूझ से मूल ग्रन्थ का हिन्दी में सरलीकरण किया गया। जिसे संघ ने 16 भागों में प्रकाशित कराया है।

उपरोक्त महाग्रन्थ के दो संस्करण हम कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित करा चुके हैं, और अब 10 भागों का पुनर्संस्करण प्रकाशित करा रहे हैं। हमारे वर्तमान अध्यक्ष श्री स्वरूप चन्द जी मारसंस, आगरा का इन प्रकाशनों में हमें भरपूर सहयोग मिला है। हमारे अन्य दातारों का भी हमें आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। आज संघ संस्थापक पं० राजेन्द्र कुमार जी तथा उनके सहयोगी पं० फूलचन्द्र जी, पं० कैलाशचन्द्र जी, पं० जगमोहन लाल जी नहीं हैं और अब संस्थाओं के संचालन में वो उत्साह भी नहीं रहा, फिर भी हमारी भावना है कि संघ-भवन और उसके प्रकाशन विभाग को किसी न किसी प्रकार संचालित रखा जाये। संघ का मुख पत्र "जैन सन्देश" पिछले 6 दशक से निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। हमारी भावना है कि समाज के उत्साहीजनों का निरन्तर सहयोग मिलता रहे और संघ भवन से यह आलोक निरन्तर प्रकाशमान होता रहे।

प्रधानमंत्री

ताराचन्द्र जैन 'प्रेमी'

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

चौरासी, मथुरा

## —: आभार :—

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा को प्रमुख आर्ष ग्रन्थ “कसायपाहुंडं” जयधवल महाधवल को सोलह भागों में प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त हुआ है। इसके प्रकाशन का शुभारंभ 6 दशक पूर्व हो गया था, जिसके अन्तिम दो भाग 15 और 16 को प्रकाशित करवाने में अर्थाभाव की कमी महसूस की गई। बाद में सोलहवां भाग का प्रकाशन ब्र० श्री हीरालाल खुशालचन्द दोशी, मांडवे (सोलापुर) के आर्थिक सहयोग से किया गया। 16 भागों का वितरण क्रमशः न होने के कारण प्रथम दो और चार भाग को मथुरा में ही पुनर्प्रकाशन कराना पड़ा। अब जयधवला के 10 भागों का प्रकाशन अनिवार्य समझ कर श्री रतनलाल जी जैन, वन्दना पब्लिशिंग हाउस, अलवर (राज.) के सहयोग और परामर्श से इनका पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है। इनके प्रकाशन में आर्थिक योगदान के लिये हमारे निम्न दानदाताओं ने उदारतापूर्वक दान देकर इस कार्य में अपना अमूल्य सहयोग दिया है इसके लिए संघ इन सभी सधर्मी बन्धुओं का आभार प्रकट करता है।

1. श्री बलवंत राय जैन, भिलाई (म. प्र.)
2. श्री स्वरूप चन्द जैन (मारसंस), आगरा (उ. प्र.)
3. श्री रतन लाल जैन, अलवर (राज.)
4. श्री ताराचन्द जैन, अलवर (राज.)
5. श्री ओम प्रकाश जैन, कोसीकलाँ (उ. प्र.)
6. श्री भोलानाथ जैन, आगरा (उ. प्र.)
7. श्री निर्मल कुमार जैन, आगरा (उ. प्र.)
8. श्री प्रदीप कुमार जैन, आगरा (उ. प्र.)
9. श्री ज्ञानचन्द जी खिन्दूका, जयपुर (राज.)
10. कान्ता बहन मनुभाई शाह, सोजीत्रा (गुजरात)
11. श्री मनुभाई छगन लाल शाह, सोजीत्रा (गुजरात)

प्रधानमंत्री  
ताराचन्द जैन 'प्रेमी'



## विषय-परिचय

### ७ उपयोग अर्थाधिकार

जयध्वलाका यह बारहवाँ भाग है। इसमें १ उपयोग, २ चतुःस्थान, ३ व्यञ्जन और ४ सम्यक्त्व ( दर्शन मोहोपशामना ) ये चार अर्थाधिकार संगृहीत हैं। इनमें कसायप्राभृतके १५ अर्थाधिकारोंमेंसे उपयोग यह सातवाँ अर्थाधिकार है। इसमें क्रोधादि कषायोंके उपयोगस्वरूपका विस्तारसे विवेचन किया गया है। इस अर्थाधिकारमें कुल ७ सूत्रगाथाएँ आई हैं। उनमेंसे पहली सूत्रगाथा 'केवचिरं उवजोगो' इत्यादि है। इसमें तीन अर्थ संगृहीत हैं। यथा—

१. क्रोधादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायमें एक जीवका कितने काल तक उपयोग होता है ?

२. क्रोधादि कषायोंमेंसे किस कषायका उपयोग काल किस कषायके उपयोग कालसे अधिक होता है ?

३. नरकादि गतियोंमेंसे किस गतिका जीव किस कषायमें पुनः पुनः उपयोगसे उपयुक्त होता है ?

अर्थात् नारकी जीव अपनी पर्यायमें क्या क्रोधोपयोगसे बहुत बार परिणमता है या मानोपयोग, मायोपयोग या लोभोपयोगसे बहुत बार परिणमता है ? इसी प्रकार शेष तीन गतियोंमें भी पूछना चाहिए।

इस प्रकार इस प्रथम गाथासूत्रमें उक्त तीन अर्थ पूछारूपसे निबद्ध हैं। उनका निर्णय चूणिसूत्रोंके अनुसार क्रमसे करते हुए बतलाया है—

१. क्रोधादि चारों कषायोंका जघन्य और उत्कृष्ट उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि कषाय परिवर्तनके बिना इससे अधिक काल तक एक कषायका अवस्थान नहीं पाया जाता।

यद्यपि जीवस्थान आदिमें क्रोधका मरणकी अपेक्षा और मान, माया तथा लोभका मरण और व्याघात इन दोनोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय बतलाया है, पर कषायप्राभृतके चूणिसूत्रोंमें इस प्रकार चारों कषायोंके जघन्य कालका उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। इतना अवश्य है कि यहाँ गतियोंमें निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय अवश्य स्वीकार किया गया है। जैसे कोई नारकी नरकमें मरणके समय क्रोध कषायसे एक समय तक उपयुक्त रहा और मरकर दूसरे समयमें क्रोधकषायके साथ तिर्यञ्च या मनुष्य हो गया। इस प्रकार नरक गतिमें क्रोधकषायका निष्क्रमणकी अपेक्षा एक समय काल उपलब्ध हुआ। इसी प्रकार प्रवेशकी अपेक्षा भी क्रोध कषायका एक समय काल घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई तिर्यञ्च या मनुष्य मरणसे अन्तर्मुहूर्त पूर्व क्रोधकषायरूपसे परिणत हुआ और जब क्रोधकषायके कालमें एक समय शेष रहा तब मरकर नारकी हो गया। इस प्रकार प्रवेशकी अपेक्षा भी नरकगतिमें क्रोधकषायका एक समय काल उपलब्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष कषायोंका प्रवेश और निष्क्रमणकी अपेक्षा एक-एक समय काल घटित कर लेना चाहिए।

२. दूसरे अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए चूणिसूत्रोंमें क्रोधादि चारों कषायोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालके अल्पबहुत्वका निर्देश करते हुए बतलाया है कि मानकषायका जघन्य काल सबसे स्तोक है। उससे क्रोध, माया और लोभकषायका जघन्य काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक है। पुनः लोभकषायके जघन्य कालसे मानकषायका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तथा इसके उत्कृष्ट कालसे क्रोध, माया और लोभकषायका उत्कृष्ट काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक है। यहाँ प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है जो कि आवलिके असंख्यातवै भागप्रमाण है। आगे चारों गतियों और चौदह जीवसमासोंमें इसी अल्पबहुत्वको घटित करके बतलाते हुए जयध्वलाकारने चूणिसूत्र ( पृ० २३ ) के 'तेसि चैव उवदेसेण' पदको ध्यानमें रखकर भगवान् आर्यमधु और नागहस्ति इन दोनोंके एतद्विषयक उपदेशको प्रवाह्यमान बतलाया है।

३. तीसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए चूणिमूत्रोंमें ओषधे और चारों गतियोंमें चारों कषायोंके पुनः पुनः होनेका क्या क्रम है इसका विस्तारसे खुलासा किया है। पुनः इसके बाद किस गतिमें किस कषायके परिवर्तनवार थोड़े या अधिक किस क्रमसे होते हैं इसका अल्पबहुत्व प्रकरणद्वारा स्पष्टीकरण किया गया है।

दूसरी सूत्रगाथा 'एवकम्हि भवग्गहणे' इत्यादि है। इसमें दो अर्थ संगृहीत हैं। यथा—

१. एक भवके आश्रयसे एक कषायमें कितने उपयोग होते हैं ?
२. एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें कितने भव होते हैं ?
३. इनमेंसे प्रथम अर्थको स्पष्ट करते हुए तरकगतिकी अपेक्षा बतलाया है कि एक नरकभवमें क्रोधादि चारोंमेंसे प्रत्येक कषायके उपयोग संख्यात होती है अथवा असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी जानना चाहिए।

आगे गाथाके उत्तरार्धमें निबद्ध दूसरे अर्थके अनुसार भवोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये उनके निर्णयका उपाय बतलाते हुए चूणिमूत्रमें स्पष्ट किया है कि एक वर्षमें जितने क्रोध कषायके उपयोग काल हों उनसे जघन्य असंख्यात कालको भाजित कर जो लब्ध आवे उतने वर्षके एक भवमें असंख्यात क्रोधोपयोगकाल होंगे। इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायकी अपेक्षा भी जानना चाहिए। तदनुसार आगे इन कषायों-सम्बन्धी असंख्यात और संख्यात उपयोगवाले भवोंके अल्पबहुत्वका प्ररूपण किया गया है।

२. गाथाके उत्तरार्धमें निबद्ध दूसरे अर्थका दूसरे प्रकारसे स्पष्टीकरण इसप्रकार है कि एक कषाय-सम्बन्धी एक उपयोगमें कमसे कम एक और अधिकसे अधिक दो भव होते हैं। जिन जीवोंकी एक भवसे निष्क्रमणके साथ कषाय बदल जाती है उनके एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें एक भव होता है। तथा जिन जीवोंकी एक भवसे निष्क्रमणके साथ कषाय नहीं बदलती है। किन्तु मरणके पूर्व पिछले भवमें जो कषाय थी वही उत्तर भवमें जन्मके समय अविच्छिन्नरूपसे पाई जाती है उनके एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें दो भव होते हैं।

तीसरी गाथा 'उवजोगवर्गणाओ कम्मि' इत्यादि है। इसमें क्रोधादि कषाय विषयक उपयोगवर्गणाओंके प्रमाणका ओषध और आदेशसे विचार किया गया है।

उपयोगवर्गणाएँ दो प्रकारकी हैं—कालोपयोगवर्गणा और भावोपयोगवर्गणा। प्रकृतमें क्रोधादि कषायोंके साथ जीवके संप्रयोग होनेकी उपयोग कहते हैं तथा उसके भेदोंका नाम वर्गणा है। जघन्य उपयोगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगस्थान तक निरन्तररूपसे अवस्थित उनके भेदोंको उपयोगवर्गणा कहते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वे उपयोगोंके भेद काल और भाव दो प्रकारसे सम्भव हैं। उनमेंसे जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक निरन्तर रूपसे अवस्थित उनके कालकी अपेक्षा जितने भेद होते हैं उन्हें कालोपयोग-वर्गणा कहते हैं। तथा तीव्र-मन्दादि भावरूपसे परिणत और जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेद तक छह वृद्धि क्रमसे वृद्धिगत जितने कषाय-उदयस्थान हैं उन्हें भावोपयोगवर्गणा कहते हैं। कालोपयोगवर्गणाओंमें कषायोंके सब भेदोंका कालकी अपेक्षा विचार किया गया है और भावोपयोगवर्गणाओंमें तीव्र-मन्दादि भेदोंसे युक्त कषाय-उदयस्थानोंका विचार किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

यहाँ कालकी अपेक्षा भेद प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक कषायके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालके घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक मिलाना चाहिए। ऐसा करनेसे कालोपयोगवर्गणाओंका सब प्रमाण प्राप्त हो जाता है। तथा भावकी अपेक्षा प्रमाण प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक कषायके असंख्यात लोकप्रमाण जो उदयस्थान हैं उन्हें ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टिसे मानकषायमें सबसे स्तोक उदयस्थान है। क्रोधकषायमें उनसे विशेष अधिक उदयस्थान है। मायाकषायमें उनसे विशेष अधिक उदयस्थान है और लोभकषायमें उनसे विशेष अधिक उदयस्थान है। इस प्रकार इस गाथामूत्रमें उक्त दो प्रकारकी वर्गणाओंका तथा उनके स्वस्थान और परस्थान सम्बन्धी अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

चौथी गाथा 'एककम्हि य अणुभागे' इत्यादि है। चूणिसूत्रकारके समक्ष इस गाथाका दो प्रकारका उपदेश उपलब्ध था—प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान। सर्व आचार्य सम्मत और चिरकालसे अविच्छिन्न परम्परासे आये हुए उपदेशको प्रवाह्यमान उपदेश कहते हैं तथा जो सर्व आचार्य सम्मत अविच्छिन्न परम्परासे आया हुआ उपदेश नहीं है उसे अप्रवाह्यमान उपदेश कहते हैं। यहाँ 'अथवा' कहकर भगवान् नागहस्तिके उपदेशको प्रवाह्यमान उपदेश बतलाया है और भगवान् आर्यमंशुके उपदेशको अप्रवाह्यमान उपदेश बतलाया है।

उनमेंसे अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार अनुभाग कारण है और कषायपरिणाम उसका कार्य है ऐसा भेद न कर जो कषाय है वही अनुभाग है इसप्रकार दोनोंमें एकत्व स्थापित कर गाथासूत्रका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि नरकादि गतियोंमेंसे नरकगति और देवगति एक कालमें कदाचित् एक कषाय-उपयुक्त, कदाचित् दो कषायउपयुक्त, कदाचित् तीन-कषाय-उपयुक्त और कदाचित् चार-कषाय-उपयुक्त होती हैं। कारण कि नरकगतिमें क्रोधकषायका काल सब से अधिक है, इसलिए कदाचित् सब नारकी जीव यदि एक कषायसे परिणत हों तो वे सब क्रोधकषायरूपसे ही परिणत होंगे। और यदि दो कषायरूपसे परिणत हों तो क्रोधकषायके साथ अन्यतर कोई कषाय होगी। इसी प्रकार तीन और चार कषायोंकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए। तथा देवगतिमें लोभकषायका काल सबसे अधिक है। अतः सब देवोंमें यदि एक कषाय होगी तो लोभकषाय ही होगी। और दो कषाय होंगी तो लोभके साथ अन्यतर कोई कषाय होगी। इसी प्रकार तीन और चार कषायोंके विषयमें भी जानना चाहिए। अब रही तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति सो इनमें सदा ही चारों कषायोंसे परिणत जीव पाये जाते हैं। प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कषायपरिणाम ही अनुभाग नहीं है, किन्तु जो कषाय-उदयस्थान है वही अनुभाग है। इसप्रकार इन दोनोंमें कारण और कार्यकी अपेक्षा भेद है। कषाय-उदयस्थानस्वरूप अनुभाग कारण है और कषायपरिणाम कार्य है।

इसप्रकार प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कषाय और अनुभागमें भेदका निर्देश कर तथा उक्त गाथा-सूत्रमें आये हुए 'एककालेण' पदका अर्थ कषायोपयोगाद्वास्थान करके बतलाया है कि इस गाथासूत्रमें एक कषाय-उदयस्थानमें तथा एक कषायोपयोगाद्वास्थानमें कौन गति होती है अथवा अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें और अनेक कषाय-उपयोगाद्वास्थानोंमें कौन गति होती है यह पृच्छा की गई है।

आगे इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि एक-एक कषाय-उदयस्थानमें अधिकसे अधिक आवलि-के असंख्यातवें भागप्रमाण त्रस जीव रहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि त्रसजीव नियमसे अनेक कषाय-उदय-स्थानोंमें रहते हैं, क्योंकि सब त्रसराशि जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः उनका एक कालमें अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें रहना युक्तिसे सिद्ध होता है।

तथा एक-एक कषायोपयोगाद्वास्थानमें अधिक से अधिक असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण त्रस जीव रहते हैं, क्योंकि सब कषायोपयोगाद्वास्थान अन्तर्मुहूर्तके समयप्रमाण है, और त्रसराशि जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए एक-एक कषाय-उपयोगाद्वास्थानमें असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण जीवोंका रहना बन जाता है।

यद्यपि न तो सब कषाय-उदयस्थानोंमें त्रसजीव सदृशरूपसे पाये जाते हैं और न ही सब कषायोपयोगाद्वास्थानोंमें भी त्रसोंका समान विभाग होकर पाया जाना सम्भव है तो भी समीकरण विधानके अनुसार दोनों स्थलों पर यह निर्देश किया है।

उक्त दोनों तथ्योंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नरकादि प्रत्येक गतिमें भी यह प्ररूपणा अविकल-रूपसे घटित हो जाती है। इसका विशेष खुलासा अल्पबहुत्वके निर्देशद्वारा मूलमें किया ही है।

'कैवडिया उवजुता' यह पाँचवीं सूत्र गाथा है। यह गाथासूत्र कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका आठ अनुयोग द्वारोंके आलम्बनसे विवेचन करनेकी सूचना देती है। वे आठ अनुयोगद्वार हैं—सत्प्ररूपणा, द्रव्य (संख्या) प्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व। गति आदि जो चौदह मार्गणास्थान हैं उनमेंसे कषायके सिवाय तेरह मार्गणास्थानोंमें उक्त आठ अनुयोगद्वारोंका अवलम्बन लेकर कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका सर्वांगीण विचार करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। विशेष स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए।



‘जे जे जम्हि कसाए’ यह छठवीं सूत्रगाथा है । वर्तमान समयमें जो अनन्त जीव क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हैं, अतीत और अनागतकालमें भी वे सब उतने ही जीव उसी प्रकार क्रोधादि कषायोंमें क्या उपयुक्त रहे हैं या उपयुक्त रहेंगे इन सब तथ्योंकी सम्भावना और असम्भावनाका विचार करनेके लिए यह सूत्रगाथा निबद्ध हुई है । अर्थात् इस सूत्रगाथा द्वारा इस बातकी सूचना की गई है कि जो वर्तमान समयमें क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त जीव हैं उनका अतीत और अनागत कालमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल आदिके भेदोंसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रमाण कितना है ? आगे चूर्णिसूत्रोंमें इसीका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हैं उनका अतीत समयमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल इसप्रकार तीन प्रकारका काल पाया जाता है और इसी प्रकार क्रोधकी अपेक्षा भी तीन प्रकारका काल पाया जाता है—क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल । इतना ही नहीं, किन्तु माया और लोभकी अपेक्षा भी इसी प्रकार तीन-तीन प्रकारका काल जान लेना चाहिए । यह कुल काल १२ प्रकारका होता है । यह अतीतकी अपेक्षा विचार है तथा इसी प्रकार भविष्यत् कालकी अपेक्षा भी उक्त काल बारह प्रकारका घटित कर लेना चाहिए ।

जो वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हैं वे यदि अतीत कालमें भी मानमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका मानकाल कहलाता है । जो वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हैं वे यदि अतीत कालमें मानकषायमें उपयुक्त न होकर अन्य कषायोंमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका नोमान काल कहा जावेगा और जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त रहे हैं, अतीतकालमें उनमेंसे कुछ मानकषायमें और कुछ अन्य कषायोंमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका मिश्रकाल कहा जायगा । यह अतीतकालीन मानकषायकी अपेक्षा विचार है । अतीतकालीन क्रोधादिकषायोंकी अपेक्षा भी इसी प्रकार विचार कर लेना चाहिए । वर्तमानमें जो मानकषायमें उपयुक्त हैं वे यदि अतीतकालमें क्रोधकषायमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका क्रोधकाल कहा जायगा । यदि अतीतकालमें मान और क्रोधको छोड़कर अन्य दो कषायोंमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका नोक्रोधकाल कहा जायगा और यदि अतीतकालमें वे मानके सिवाय कुछ क्रोधकषायमें उपयुक्त रहे हैं और कुछ माया और लोभ कषायमें उपयुक्त रहे हैं तो वह उनका मिश्रकाल कहा जायगा । इसप्रकार वर्तमानमें मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका अतीतकालमें क्रोधकषायकी अपेक्षा भी तीन प्रकारका काल होता है । इसी प्रकार वर्तमानमें जो मानकषायमें उपयुक्त हैं उनका अतीतकालमें माया और लोभकषायकी अपेक्षा भी मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल तथा लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकालके भेदसे तीन-तीन प्रकारका काल जानना चाहिए । यह वर्तमानमें जो मानकषायमें उपयुक्त हैं उनका अतीतकालमें चारों कषायोंकी अपेक्षा १२ प्रकारका काल है ।

इसी प्रकार वर्तमान समयमें क्रोध, माया और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके अतीत कालमें सब कालोंका योग क्रमसे ११, १० और ९ प्रकारका होता है । विशेष खुलासा मूलसे जान लेना चाहिए । इसीप्रकार भविष्य कालकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए । इतना सब विचार करनेके बाद इन कालोंका अल्पबहुत्व बतलाकर इस गाथाका व्याख्यान समाप्त किया गया है ।

सातवीं गाथा ‘उबजोगवग्गणाहि य’ है । इसके पूर्वार्धद्वारा कषायउदयस्थान और कषाय-उपयोगाद्वा-स्थान इनमेंसे कितने स्थान जानेके बाद कौन स्थान जीवोंसे रहित होते हैं और किस गतिमें किन जीवोंसे कौन स्थान सहित होते हैं इसका विशेष विचार किया गया है । यहाँ इस बातका विचार त्रंसजीवोंकी अपेक्षा किया गया है, क्योंकि स्थावर जीव अनन्त हैं, इसलिये स्थावरोंके योग्य असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उनका सदा निरन्तररूपसे सद्भाव बन जाता है । त्रसोंकी अपेक्षा भी विचार करते हुए इन दोनों प्रकारके स्थानोंमें जीवोंकी अपेक्षा यवमध्यकी रचना कैसे बनती है इत्यादि विशेष विचार मूलसे जान लेना चाहिए ।

उक्त गाथाके उत्तरार्धद्वारा तीन श्रेणियोंका निर्देश किया गया है । वे तीन श्रेणियाँ हैं—द्वितीयादिका, प्रथमादिका और चरमादिका । यहाँ श्रेणिका अर्थ पंक्ति अर्थात् अल्पबहुत्वपरिपाटी है । जिस परिपाटीमें मान कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंसे लेकर अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह द्वितीयादिका परिपाटी कहलाती है ।

वह तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें होती है, क्योंकि उनमें मानमें उपयुक्त हुए जीव सबसे कम होते हैं। जिस अल्प-बहुत्व परिपाटीमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंसे लेकर अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह प्रथमादिका परिपाटी कहलाती है। वह देवगतिमें होती है, क्योंकि वहाँ क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े होते हैं। तथा जिस अल्पबहुत्व परिपाटीमें लोभकषायसंज्ञक अन्तिम कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंसे लेकर अल्प-बहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह चरमादिका परिपाटी कहलाती है। वह नारकियोंमें होती है, क्योंकि वहाँ लोभमें उपयुक्त जीव सबसे थोड़े होते हैं।

इस प्रकार इस गाथा सूत्रकी व्याख्यामें उक्त तीन परिपाटियोंका निर्देश करनेके बाद अल्पबहुत्व-विधिका निर्देश करते हुए मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके प्रवेशकालसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक है यह बतलाकर प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेषका प्रमाण कितना है यह निर्देश करके इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण जयध्वला टीकामें करके इस अर्थाधिकारको समाप्त किया गया है।

### ८ चतुःस्थान अर्थाधिकार

कषायप्राभूतका आठवाँ अर्थाधिकार चतुःस्थान है। इसमें सब गाथामूत्र १६ है। उनमेंसे प्रथम गाथा-सूत्रमें क्रोधादि चारों कषायोंमेंसे प्रत्येकको चार-चार प्रकारका बतलाया गया है। यहाँ प्रत्येक कषायके इन चार भेदोंमें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानान्तरण आदिरूप भेद विवक्षित नहीं हैं, क्योंकि उनका निर्देश प्रकृति-विभक्ति आदि अर्थाधिकारोंमें पहले ही कर आये हैं। क्रोध दो प्रकारका है—सामान्य क्रोध और विशेष क्रोध। अपने सब विशेषोंमें व्याप्त होकर रहनेवाला क्रोध सामान्य क्रोध कहलाता है और अनन्तानुबन्धी क्रोध आदिरूपसे विवक्षित क्रोध विशेष क्रोध कहलाता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभको भी दो-दो प्रकारका जानना चाहिए। इनमेंसे यहाँ सामान्य क्रोध, सामान्य मान, सामान्य माया और सामान्य लोभकी अपेक्षा प्रत्येकको अन्य प्रकारसे चार-चार प्रकारका कहा है। यहाँ अनन्तानुबन्धी आदि क्रोध, मान, माया और लोभ विवक्षित नहीं हैं। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभमें द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको छोड़कर एकस्थानीय अनुभाग नहीं पाया जाता है, अतः जिसमें समस्त विशेष लक्षण संगृहीत हैं ऐसे क्रोध, मान, माया और लोभ सामान्यका आलम्बन लेकर यहाँ प्रत्येकको चार-चार प्रकारका बतलाया गया है।

दूसरी सूत्रगाथामें क्रोध और मानकषायके उदाहरणों द्वारा चार-चार भेदोंका निर्देश किया गया है। यथा—क्रोध चार प्रकारका है—पत्थरकी रेखाके समान, पृथिवीकी रेखाके समान, बालूकी रेखाके समान और जलकी रेखाके समान। मान भी चार प्रकारका है—शिलाके स्तम्भके समान, हड्डीके समान, लकड़ीके समान और लताके समान।

इनका अर्थ स्पष्ट है। विशेष खुलासा मूलमें किया ही है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि क्रोध-कषायके उक्त चार भेदोंके स्वरूपपर प्रकाश डालनेके लिए जो उदाहरण दिये गए हैं वे संस्काररूपसे उनके अवस्थित रहनेके कालको स्पष्ट करनेके लिये ही दिये गये हैं। तथा मानकषायके उक्त चार भेदोंके स्वरूप पर प्रकाश डालनेके लिये जो उदाहरण दिये गये हैं वे मानकषाय सम्बन्धी परिणामोंके तारतम्यको दिखलानेके लिये दिये गये हैं। इसीप्रकार आगे माया और लोभ कषायके भेदोंके स्वरूपका बोध करानेके लिये भी जो उदाहरण दिये गये हैं वे भी माया और लोभ कषायके परिणामोंके तारतम्यको ध्यानमें रख कर ही दिये गये हैं।

तीसरी सूत्रगाथामें उदाहरणों द्वारा मायाके चार भेदोंका निर्देश किया गया है। यथा—माया चार प्रकारकी है—बाँसकी अत्यन्त टेढ़ी गाँठोंवाली जड़के समान, मेढ़के सींगोंके समान, गायके मूत्रके समान और दलौनके समान।

चौथी सूत्रगाथामें उदाहरणों द्वारा लोभके चार भेदोंको स्पष्ट किया गया है। यथा—कृमिरागके रंगके समान, अक्षमल ( आंगन ) के समान, धूलिके लेपके समान और हलदीसे रंगे हुए वस्त्रके समान।

उदाहरणों सहित इन सोलह भेदोंका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है, इसलिये वहाँसे जान लेना चाहिए।

पाँचवीं सूत्रगाथा द्वारा चारों कषायोंके उक्त सोलह स्थानोंमें स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा कौन स्थान किस स्थानसे कम होता है और कौन स्थान किस स्थानसे अधिक होता है इसका पृच्छारूपमें निर्देश किया गया है।

जयधवला टीकामें इस सूत्रगाथा की व्याख्या करते हुए स्थितिके विषयमें बतलाया है कि सब स्थितियोंमें एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय सब प्रकारके कर्मपरमाणु पाये जाते हैं। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जैसे किसी जीवने मिथ्यात्वकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण स्थितिका बन्ध किया तो जैसे उक्त कर्मकी अन्तिम स्थितिमें एक स्थानीय आदि चारों भेदोंको लिये हुए देशघाति और सर्वघाति कर्मपरमाणु पाये जाते हैं उसीप्रकार आबाधासे ऊपर जघन्य स्थितिमें भी वे सब प्रकारके कर्मपरमाणु पाये जाते हैं।

छठी सूत्रगाथा द्वारा इन स्थानोंमें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इसे स्पष्ट करनेके लिये लताके समान मानकषायको विवक्षित कर बतलाया है कि अनुभागकी अपेक्षा जो जघन्य वर्गणा है अर्थात् प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा है उससे अन्तिम ( उत्कृष्ट ) स्पर्धककी जो अन्तिम वर्गणा है वह प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है और अनुभागकी अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक होती है। यह लताके समान मानकषायमें प्रदेशों और अनुभागकी व्यवस्था है। इसी प्रकार मानकषायके शेष तीन प्रकारके अनुभागमें तथा क्रोध, माया और लोभकषायसम्बन्धी प्रत्येकके चार-चार प्रकारके अनुभागमें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा उक्त प्रकारसे स्वस्थान अल्पवहुत्व घटित कर लेना चाहिए।

सातवीं सूत्रगाथाद्वारा एक स्थानसे दूसरेमें प्रदेशोंकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इस बातको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि लताके समान मानकषायके प्रदेशोंसे दारुके समान मानकषायके प्रदेश नियमसे अनन्तगुणे हीन होते हैं। इसी प्रकार आगे अस्थिके समान और शैलके समान मानकषायमें भी जान लेना चाहिए। अर्थात् दारुके समान मानकषायके प्रदेशोंसे अस्थिके समान मानकषायके प्रदेश अनन्तगुणे हीन होते हैं। तथा अस्थिके समान मानकषायके प्रदेशोंसे शैलके समान मानकषायके प्रदेश अनन्तगुणे हीन होते हैं।

आठवीं गाथा द्वारा इन स्थानोंमें अनुभागकी व्यवस्था की गई है। वहाँ बतलाया है कि लताके समान मानकषायमें जो अनुभाग है उससे दारु, अस्थि और शैलके समान मानकषायमें अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्त-गुणा होता है विशेष व्याख्यान मूलसे जानना चाहिए। यहाँ अनुभागाग्रसे फलदान शक्तिके अनुभाग प्रतिच्छेद लिये गये हैं इतना विशेष जानना चाहिए।

नौवीं गाथा द्वारा लतासमान आदि भेदोंकी अन्तिम वर्गणासे दारुसमान आदि भेदोंकी प्रथम वर्गणामें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इसका विचार करते हुए बतलाया है कि पिछले भेदकी अन्तिम वर्गणासे अगले भेदकी प्रथम वर्गणा प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन और अनुभागकी अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ अन्तिम वर्गणा और प्रथम वर्गणाकी 'सन्धि' यह संज्ञा रखकर विचार किया गया है।

दसवीं सूत्रगाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि लताके समान समस्त मान और दारुके समान मानका प्रारम्भका अनन्तर्वा भाग देशघाति अनुभागरूप है तथा शेष दारुके समान मान और अस्थि तथा शैलरूप मान यह सब सर्वघाति है।

यहाँ छठी गाथासे लेकर दसवीं गाथा तक मानकषायके आलम्बनसे जो प्ररूपणा की गई है वह सब प्ररूपणा क्रोधकषाय, मायाकषाय और लोभकषायके आलम्बनसे भी करनी चाहिए, क्योंकि मानकषायके

अवान्तर भेदोंमें जो विशेषता बतलाई है वह सब क्रोध, माया और लोभकषायके अवान्तर भेदोंमें अविकल घटित हो जाती है इस बातका निर्देश ग्यारहवीं सूत्रगाथामें किया गया है ।

बारहवीं सूत्र गाथा द्वारा अनन्तर पूर्व कहे गये सोलह स्थानोंमेंसे किस मार्गणामें कौन स्थान बध्यमान है कौन स्थान उपशान्त है, कौन स्थान उदयरूप है और कौन स्थान सत्तारूप है इस विषयकी पृच्छा की गई है ।

आगे तेरहवीं और चौदहवीं गाथा द्वारा संज्ञी मार्गणा, पर्याप्त और अपर्याप्त पदके निर्देश द्वारा काय और योगमार्गणा, सम्यक्त्वमार्गणा, संयममार्गणा, दर्शनमार्गणा, ज्ञानमार्गणा, योगमार्गणा और लेश्यामार्गणाके उल्लेख पूर्वक गाथामें आये हुए 'च' शब्द द्वारा शेष सब मार्गणाओंको ग्रहण कर उनमें यथासम्भव स्थित जीव उक्त सोलह स्थानोंमेंसे किस स्थानको वेदन करता हुआ किस स्थानका बन्धक होता है और किस स्थानका वेदन नहीं करता हुआ किस स्थानका अबन्धक होता है इस विषयकी पृच्छा पन्द्रहवीं गाथा द्वारा की गई है ।

सोलहवीं गाथा द्वारा संज्ञी मार्गणाको विवक्षित कर यह बतलाया गया है कि असंज्ञी जीव मानकषायके लतासमान और दाहसमान इन दो स्थानोंका ही बन्ध करता है । वह शेष दो स्थानोंका बन्ध नहीं करता, क्योंकि उसमें शेष दो स्थानोंको बांधनेके हेतुरूप संक्लेश परिणाम नहीं पाये जाते । अर्थात् असंज्ञी जीवोंके स्वभावसे ही अस्थिसमान और शैलसमान मानकषायके बन्धके हेतुरूप परिणाम नहीं होते ।

किन्तु संज्ञी जीव एकस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते हैं, द्विस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते हैं, त्रिस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते हैं और चतुःस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते हैं, क्योंकि इनके इन स्थानोंके बन्धके योग्य संक्लेश और विशुद्धिका पाया जाना सम्भव है ।

यह संज्ञीमार्गणामें बन्धकी अपेक्षा विचार है । इसी प्रकार उदय, उपशम और सत्त्वकी अपेक्षा समझ लेना चाहिए । यथा—असंज्ञी जीवोंमें उदय द्विस्थानीय ही होता है, क्योंकि इनमें शेष उदयरूप परिणामोंका होना अत्यन्त निषिद्ध है । हाँ इनमें उपशम और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय चारों प्रकारका होता है । इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंमें शुद्ध एकस्थानीय उपशम और सत्त्व सम्भव नहीं है । हाँ संज्ञियोंमें उदय, उपशम और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय चारों प्रकारके पाये जाते हैं ।

अब किस स्थानका वेदन करता हुआ यह जीव किस स्थानका बन्ध करता है इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि असंज्ञी जीव द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है । किन्तु संज्ञी जीव एकस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ एकस्थानीय अनुभागका ही बन्ध करता है । द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है । त्रिस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है तथा चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ चतुःस्थानीय अनुभागका ही बन्ध करता है ।

इस प्रकार जयधवला टीकामें संज्ञी मार्गणाकी अपेक्षा उक्त विशेषताओंका निरूपण करनेके बाद बतलाया है कि इसीके अनुसार शेष तेरह मार्गणाओंमें आगमानुसार उक्त विषयका विशेष विचार कर लेना चाहिए । यहाँ इतना विशेष जान लेना चाहिए कि एकस्थानीय बन्ध और एकस्थानीय उदय मनुष्यगतिमें ही प्राप्त होता है, क्योंकि यह एकस्थानीय बन्ध और उदय श्रेणिमें ही पाया जाता है ।

इस अर्थाधिकारमें आई हुई सोलह सूत्रगाथाओंका यह स्वरूप निर्देश है । आचार्य यतिवृषभने इन सोलह सूत्र गाथाओंका अपने चूणिसूत्रोंमें 'चउट्टाणे त्ति अणिओगहारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं' इस चूणिसूत्रद्वारा इनको जाननेका उल्लेखकर इन सूत्रगाथाओंके अन्तमें 'एदं सुत्तं' यह चूणिसूत्र रचकर उनकी समाप्ति की सूचना की है । पुनः आगे इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण करनेके लिए चतुःस्थान इस पदका अर्थविषयक निर्णय करनेके अभिप्रायसे निक्षेप योजना करते हुए उसके एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप ये दो प्रकार बतलाये हैं । उनमेंसे एकैकनिक्षेप पदसे क्रोधादि प्रत्येक कषायका ग्रहण किया गया है, अतः उसे पूर्वनिक्षेप

और पूर्वप्ररूपित बतलाकर स्थानपदका कितने अर्थोंमें निक्षेप होता है इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए उसका नामस्थान, स्थापनास्थान, द्रव्यस्थान, क्षेत्रस्थान, अद्वास्थान, पलिवीचिस्थान, उच्चस्थान, संयमस्थान प्रयोगस्थान और भावस्थान इन दस प्रकारके स्थानोंमें निक्षेप किया है। इन सब स्थानोंका स्वरूपनिर्देश मूलसे जान लेना चाहिए।

आगे इन स्थानोंमें नथयोजना करते हुए बतलाया है कि नैगमनय इन सब स्थानोंको स्वीकार करता है। संग्रहनय और व्यवहारनय पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानको स्वीकार नहीं करते। शेष सबको स्वीकार करते हैं। पलिवीचिस्थानके दो अर्थ हैं—स्थितिवन्धवीचारस्थान और सोपानस्थान। सो इनका क्रमसे अद्वास्थान और क्षेत्रस्थानमें अन्तर्भाव हो जानेसे इसे ये दोनों नय पृथक् स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार उच्चस्थानका भी क्षेत्रस्थानमें अन्तर्भाव हो जाता है। अतः उसे भी ये दोनों नय पृथक् स्वीकार नहीं करते। ऋजुसूत्र नय उक्त दो, स्थापनास्थान और अद्वास्थानको स्वीकार नहीं करते। कारण कि इस नयका विषय वर्तमान समयमात्र है, और वर्तमान समयकी विवक्षामें स्थापनास्थान और अद्वास्थान सम्भव नहीं हैं, क्योंकि समय, आवलि आदि कालभेदके बिना उनका निर्देश नहीं किया जा सकता। पलिवीचिस्थान और उच्चस्थान को भी इसी कारण यह नय स्वीकार नहीं करता।

शब्दनय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थानको स्वीकार करता है। अन्य बाह्य अर्थकी अपेक्षा किये बिना नाम संज्ञामात्र शब्दनयका विषय होनेसे यह नय इसे स्वीकार करता है, संयमस्थान भावस्वरूप होनेसे इसे भी यह नय स्वीकार करता है। क्षेत्रस्थान वर्तमान अवगाहना स्वरूप है और भावस्थान वर्तमान पर्यायकी संज्ञा है अतः यह नय इन्हें भी स्वीकार करता है। शेष स्थानोंको यह नय स्वीकार नहीं करता।

इनमेंसे इस अर्थाधिकारमें नोआगम भावनिक्षेपस्वरूप चतुःस्थानकी अपेक्षा क्रोधादि कषायोंके सोलह उत्तर भेदोंकी प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार स्थान पदके आलम्बनसे निक्षेप व्यवस्थाका निर्देश करनेके बाद सोलह सूत्रगाथाओंके आशयको चूणिश्रुतोंद्वारा स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि प्रारम्भकी चार सूत्रगाथाएँ उक्त सोलह स्थानोंके उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमें आई हैं। यथा—चारों ही क्रोधसम्बन्धी स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरण देकर अर्थसाधन किया गया है, क्योंकि कोई क्रोध आशय (संस्कार) रूपसे चिरकाल तक अवस्थित रहता है और कोई क्रोध संस्काररूपसे अचिरकाल तक अवस्थित रहता है। अचिरकाल तक अवस्थित रहनेवाले क्रोधमें भी कोई तारतम्यकी लिए हुए कुछ अधिक समय तक अवस्थित रहता है और कोई क्रोध अति स्वल्प समय तक ही अवस्थित रहता है। इस प्रकार कालकी अपेक्षा क्रोधकषायके अवान्तर भेदोंको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ पत्थरकी रेखाके समान क्रोध आदि चार उदाहरण दिये गये हैं। शेष मानादि कषायोंके जो स्थान लताके समान आदिकी अपेक्षा बारह प्रकारके बतलाये हैं वे किस मान, माया और लोभकषायका कैसा भाव है इस बातको स्पष्ट करनेके लिये दिये गये हैं। जैसे मानकषायका भाव स्तब्धतारूप है। अतः प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे इसी भावको स्पष्ट करनेके लिये पत्थरके स्तम्भके समान आदि चार उदाहरण दिये गये हैं। मायाका भाव वक्रता है। अतः प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे उसमें तारतम्य दिखलानेके लिये वांसकी गठीली टेढ़ी-मेढ़ी जड़के समान आदि चार उदाहरण देकर मायाके अवान्तर भेदोंको स्पष्ट किया गया है। तथा लोभका भाव असन्तोषजनित संकलेशपना है। अतः प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे उसमें तारतम्य दिखलानेके लिये कुमिरागके रंगके समान आदि चार उदाहरणोंद्वारा उसे स्पष्ट किया गया है।

आगे उदाहरणों द्वारा क्रोधकषायके जिन चार भेदोंको स्पष्ट किया है उनमेंसे कौन क्रोधभाव संस्काररूपसे कितने काल तक रहता है इसे स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि जो क्रोध अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहता है वह जलरेखाके समान क्रोध है। जो क्रोध शल्यरूपसे अर्धमास तक अनुभवमें आता है वह बालुकी रेखाके समान क्रोध है। यहाँ तथा आगे क्रोधभावका जो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल कहा है वह उस जातिके संस्कारको ध्यान-

में रखकर ही कहा है। जो क्रोधभाव अर्धमाससे भी अधिक छह माह तक संस्काररूपसे रहता है वह पृथिवीकी रेखाके समान क्रोध है। और जो क्रोध संस्काररूपसे सब भवोंके द्वारा भी उपसमको नहीं प्राप्त होता है। अर्थात् जिस जीवके आलम्बनसे इसप्रकारका क्रोध हुआ है उसे देखकर जो क्रोध संख्यात, असंख्यात और अनन्त भवोंके बाद भी प्रगट हो जाता है वह पर्वतकी रेखाके समान क्रोध है। इसप्रकार यह क्रोधकषायकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार शेष कषायोंकी अपेक्षा भी घटित कर लेना चाहिए।

गोम्मटसार जीवकाण्डमें चारों कषायोंको कुछे फरकके साथ उक्त सोलह उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है। जिन उदाहरणोंको भिन्नरूपसे लिया है उनमें प्रथम उदाहरण मानकषायसम्बन्धी है। कषायप्राभृतमें जिस मानभावको स्पष्ट करनेके लिये 'लताके समान' यह उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमें उसके स्थानमें 'वैतके समान' यह उदाहरण दिया है। कषायप्राभृतमें जिस मायाभावको स्पष्ट करनेके लिये 'दतीनके समान' उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमें उसके स्थानमें 'खुरपाके समान' उदाहरण दिया है। तथा कषायप्राभृतमें जिस लोभभावको स्पष्ट करनेके लिये 'धूलिके लोपके समान' उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमें उसके स्थानमें 'शरीरके मैलके समान' यह उदाहरण दिया है। इस प्रकार कषायप्राभृतसे जीवकाण्डमें कतिपय उदाहरणोंमें फरक होते हुए भी आशय भेद नहीं है। कषायप्राभृतके कथनसे गोम्मटसार जीवकाण्डमें यह विशेषता अवश्य दृष्टिगोचर होती है कि जहाँ कषायप्राभृतमें इन क्रोधादि चारों कषायोंमेंसे प्रत्येकका कौन अवान्तर भाव किस गतिमें उत्पन्न करनेवाला है इस बातका उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता वहाँ गोम्मटसार जीवकाण्डमें यह निर्देश स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होता है कि शिलाकी रेखाके समान क्रोध नरकगतिमें उत्पन्न करनेवाला है, पृथिवीकी रेखाके समान क्रोध तिर्यञ्जगतिमें उत्पन्न करनेवाला है, धूलिकी रेखाके समान क्रोध मनुष्यगतिमें उत्पन्न करनेवाला है और जलकी रेखाके समान क्रोध देवगतिमें उत्पन्न करनेवाला है। इसप्रकार जहाँ क्रोधकी अपेक्षा उक्त प्रकारका निर्देश किया है इसी प्रकार मान, माया और लोभकी अपेक्षा समझ लेना चाहिए।

इसप्रकार उक्त सब विषयका व्याख्यान करनेके बाद चतुःस्थान अधीधिकार समाप्त होता है।

## ९ व्यञ्जन अर्थाधिकार

कषाय प्राभृतका नौवाँ व्यञ्जन अर्थाधिकार है। प्रकृतमें व्यञ्जन यह पद 'शब्द' इस अर्थका सूचक है। तदनुसार इस अर्थाधिकारमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंके शब्दरूपसे पाँच सूत्रगाथाओंमें पर्यायवाची नाम दिये हैं। यथा—क्रोधकषायके दस पर्यायवाची नाम—क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, ज्ञंज्ञा, द्वेष और विवाद। इन पर्यायनामोंके अर्थको स्पष्ट करते हुए अक्षमाका पर्यायवाची नाम अमर्ष दिया है तथा विवादके पर्यायवाची नाम स्पर्द्ध और संघर्ष दिये हैं। पाप, अयस, कलह और वैरकी वृद्धिका हेतु होनेसे क्रोधका पर्यायवाची नाम वृद्धि है। तथा स्पर्द्धा और संघर्षकी मनोवृत्तिसे दूसरोंसे उल्लङ्घना विवादरूप क्रोधकी भूमिका ही बनाता है, इसलिये क्रोधका पर्यायवाची नाम विवाद है। शेष कथन सुप्रतीत ही है।

मानकषायके पर्यायवाची नाम हैं—मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सवत। परमागममें ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठके आलम्बनसे यह संसारी जीव स्वयंको दूसरोंसे अधिक मानता है, इसलिये ऐसे भावको मान कहा है। इनके कारण सराव पिये हुए मनुष्यके समान यह जीव उन्मत्त हो जाता है, इसलिये मद भी मानका पर्यायवाची नाम है। इसी प्रकार शेष पर्यायवाची नामोंके विषयमें जान लेना चाहिए। अन्य कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उनका पृथक्से स्पष्टीकरण नहीं किया है।

पहले क्रोधकषायके पर्यायवाची नामोंमें 'विवाद' पदका उल्लेख कर आये हैं। उसका कारण यह है



कि जाति आदिको निमित्तकर स्वयंमें बड़प्पनका परिणाम होना यह मानकषायकी विशेषता है और परके प्रति तिरस्कार या अनादरके भावपूर्वक उसके प्रति संघर्षका भाव होना यह क्रोधकषायकी विशेषता है ।

मायाकषायके पर्यायनाम हैं—माया, सातिप्रयोग, निकृति, बञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोजमार्गण, कल्क, कुहक, निगूहन और छत्र । मायामें मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिमें सरलता नहीं रहती है । अभिप्राय कुछ रखता है, कहता कुछ है और करता कुछ अन्य ही है । इसलिए मायाकषायमें कपटाचारकी मुख्यता है । कुटिल व्यवहार करना, बञ्चना-ठगाईका परिणाम रखना, दूसरेके ठीक अभिप्रायको जानकर उसका अपलाप करना, झूठे मन्त्र-तन्त्र आदि द्वारा अपनी आजीविका करना आदि सब मायाकषायरूप परिणाम है । इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर यहाँ मायाके ये पर्यायवाची नाम दिये गये हैं । उक्त पर्यायवाची नामोंकी टीका करते हुए ऐसे और भी नाम आये हैं जिनका प्रयोग मायाके अर्थमें होता है । जैसे कपट प्रयोग, कूटव्यवहार, विप्रलम्भन, योगवक्रता, निह्वन, दम्भ, अतिसन्धान, विश्रम्भघात । वैसे लोकमें दम्भ मानकषायका पर्यायवाची माना जाता है, किन्तु यहाँ उसका मायाकषायमें अन्तर्भाव किया है । मानकषायपूर्वक जो ठगनेका परिणाम होता है उसका नाम दम्भ है इस अभिप्रायसे दम्भको मायारूप स्वीकार कर लिया गया है । टीकामें इसे कल्कका पर्यायवाची नाम बतलाया है । मायामें कुटिल व्यवहारकी मुख्यता है । यही कारण है कि मायाको तीन शक्तियोंमें परिगणित किया गया है ।

लोभकषायके पर्यायवाची नाम हैं—काम, राग, निदान, छन्द सुत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गूढि, साशता या शाश्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा । काममें इष्ट स्त्री, पुत्र और परिग्रह आदिकी अभिलाषा मुख्य है, इसलिए कामको लोभका पर्यायवाची कहा है । राग माया और लोभ आदिरूप होते हुए भी यहाँ मनोज विषयमें अतिष्वंगविशेषको ध्यानमें रखकर रागको लोभका पर्यायवाची कहा है । जो मैं पुण्य कृत्य करता हूँ उसके फलस्वरूप मुझे इष्ट भोगोपभोगकी प्राप्ति हो ऐसे भावका नाम निदान है । इसमें इष्ट विषयकी प्राप्तिकी अभिलाषा बनी रहनेके कारण निदानको लोभका पर्यायवाची बतलाया है । जिसके चित्तमें मिथ्यात्व और मायापरिणामके समान निदानरूप लोभपरिणाम बना रहता है वह श्रुती नहीं हो सकता । इसलिए आगममें निदानको भी एक शक्य कहा है । मूल सूत्रगाथाओंमें लोभके पर्यायवाची नामोंमें एक नाम 'सुद' है । उसका अनुवाद जयध्वला टीकामें 'सुत' और 'स्वत' किया है । 'सूयतेऽभिषिच्यते' इस व्युत्पत्तिके अनुसार विविध प्रकारकी अभिलाषाओंसे स्वयंको परिसिंचित करना अर्थात् पुष्ट करना सुत है इस भावको ध्यानमें रखकर सुतको लोभका पर्यायवाची कहा है तथा मूल सूत्रगाथामें आये हुए 'सुद' पदका 'स्वत' अर्थ करनेपर 'स्वस्य भावः स्वता ममता' ऐसा करके जो लोभपरिणाम ऐसी ममतारूप हो उसे लोभका पर्यायवाची 'स्वत' कहा है । प्रियका अर्थ प्रेय है । प्रेरूप जो दोष, उसका नाम प्रेयदोष है । इस प्रकार प्रेयदोषको लोभका पर्यायवाची कहा है । यद्यपि मूल सूत्रगाथामें लोभके पर्यायवाची नाम दोस हैं ऐसा स्पष्ट कहा है, परन्तु जयध्वला टीकामें इन दोनोंको समसितरूपसे प्रेय और दोषको लोभका पर्यायवाची कहा गया है । टीकामें प्रेयको दोषरूप क्यों कहा इस प्रश्नका जो समाधान किया है वह हृदयंगम करने लायक है । समाधान करते हुए वहाँ बतलाया है कि यद्यपि परिग्रह आदिकी अभिलाषा आह्लादका हेतु है, परन्तु वह संसारको बढ़ानेवाली है, इसलिये यहाँ प्रेयको दोषरूप कहा है । स्पष्ट है कि राग या अभिलाषा किसी भी प्रकारकी क्यों न हो वह एकमात्र संसारका ही हेतु होता है । आशाके दो अर्थ हैं—एक तो अविद्यमान अर्थकी इच्छा करना और दूसरे 'आशयतीति आशा' व्युत्पत्तिके अनुसार स्वयंको कृश करना । ये दोनों लोभरूप होनेसे यहाँ आशाको लोभका पर्यायवाची कहा है ।

मूल सूत्रगाथामें लोभका पर्यायवाची नाम 'सासद' भी आया है । इसके टीकाकारने दो अर्थ किये हैं—एक साशता और दूसरा शाश्वत । आशा, स्पृहा और तृष्णा इन तीनों पदोंका अर्थ एक है । जो आशा सहित परिणाम है उसका नाम साशता है । यतः यह परिणाम लोभकी अवस्थाविशेषरूप है, अतः इसे लोभका

पर्यायवाची कहा है। दूसरे परिग्रहके ग्रहण करनेका परिणाम संसारी जीवके आगे-पीछे सदा बना रहता है, इसलिए 'सासद' पदका दूसरा अर्थ शाश्वत करके उसे लोभका पर्यायवाची कहा है। बाह्य संयोगके आंशिक त्याग या पूर्ण त्यागका परिणाम लोभविशेषके कारण नहीं होता। जिनकी बुद्धि तत्त्वस्पर्शिनी है, जिनके उपदेश आदिसे जीवादि प्रयोजनभूत पदार्थोंके भेदविज्ञानकी झलक मिलती है ऐसे पुरुष भी आन्तरिक इस लोभपरिणामके कारण आंशिक या पूर्ण विरति करनेमें असमर्थ रहते हैं, इसलिये यहाँ अविरतिको लोभका पर्यायवाची कहा है। 'विद्' धातुसे 'विद्या' शब्द बना है, प्रकृतमें उसका अर्थ वेदन करना है। लोभका जन्म वेदनके अधीन है, इसलिए विद्याको लोभका पर्यायवाची कहा है। अथवा विद्या जिस प्रकार दुराराध्य होती है इसी प्रकार लोभके पीछे लगनेवाले जीवकी स्थिति होती है। इसलिये विद्याको लोभका पर्यायवाची कहा है। इष्ट अन्न-पान आदि जितने भी उपभोगके साधन हैं उनके बार-बार भोगने पर भी जीवनमें असन्तोष बना रहता है और असन्तोष लोभका पर्यायवाची नाम है। यतः इसे जिह्वेन्द्रियकी अतृप्ति मानी जाती है। इसीलिए इस साधर्म्यको देखकर जिह्वाको लोभका पर्यायवाची माना गया है। इसीप्रकार लोभके अन्य जितने पर्यायवाची नाम यहाँ दिये हैं उनका स्पष्टीकरण समझ लेना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ उनका अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है।

जैसा कि पहले संकेत कर आये हैं इस अर्थाधिकारमें पाँच सूत्रगाथायें हैं। सूत्रगाथाओंके ठीक अनुरूप पाँच आर्याछन्द जयध्वला टीकाकारके सामने रहे हैं जो सूत्रगाथाओंके व्याख्याके अन्तमें दिये गये हैं।

## १० सम्यक्त्व-अर्थाधिकार

यह सम्यक्त्व नामका महा अर्थाधिकार है। इस महाधिकारमें औपशमिक आदि तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंमें से प्रथमोपशम और क्षायिक दोनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंकी उत्पत्तिका विचार किया गया है, इसलिए यह महाधिकार दर्शनमोहोपशमना और दर्शनमोहक्षपणा इन दो उप-अर्थाधिकारों में विभक्त हो जाता है। उनमेंसे सर्वप्रथम दर्शनमोहोपशमना अर्थाधिकारका निरूपण किया गया है। जो सूत्रगाथाएँ मात्र दर्शनमोहोपशमना नामक अर्थाधिकारसे सम्बन्ध रखती हैं वे कुल १५ हैं। उनका विवेचन चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ आचार्यने अधःप्रवृत्तकरण आदि तीन करणोंका विशद विवेचन करनेके बाद सबके अन्तमें किया है।

इस अधिकारका प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम चार प्रकारके अवतारका संक्षेपमें उल्लेख किया है। वे चार अवतार हैं—उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम। उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और यत्र-तत्रानुपूर्वी। पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा यह दसवाँ अर्थाधिकार है। पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा छटा और यत्र-तत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा अनिर्धारित संख्यावाला यह अर्थाधिकार है। कषायप्रभूत यह गौण्य नामपद है। अक्षरोंकी अपेक्षा इसका प्रमाण संख्यात और अर्थकी अपेक्षा असंख्यात और अनन्त है। वक्तव्यता-स्वसमय और तदुभय वक्तव्यता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी प्ररूपणाके अविनाभावस्वरूप है। अर्थाधिकार दो प्रकारका है—दर्शनमोह-उपशमना और दर्शनमोह-क्षपणा। सम्यक्त्व पदका नाम, स्थापना आदि जितने अर्थोंमें निक्षेप होता है उसे करके और उन निक्षेपोंमें कौन निक्षेप किस नयका विषय है यह बतलाकर प्रकृतमें नोआगम भावनिक्षेपसे प्रयोयन है ऐसा समझना चाहिए।

इसके बाद अनुगमका निर्देश करते हुए अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपण करने योग्य 'दंसण-मोह-उवसामगस्स' इत्यादि चार गाथाओंका उल्लेख किया है। इन चार गाथाओंमें जिस विषयकी पृच्छा की गई है उसका निर्देश करनेके पूर्व 'दर्शनमोह-उपशमना' अर्थाधिकारमें प्ररूपित अर्थका सर्वप्रथम उल्लेख कर देना प्रयोजनीय है। यथा—यह तो स्पष्ट है कि प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मति-श्रुत उपयोगद्वारा ज्ञायक-स्वभाव निज आत्मामें उपयुक्त होनेपर ही होती है, अतः ऐसे जीवको नियमसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होना चाहिए। यही कारण है कि आगममें एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक सभी जीव इसके ग्रहणके आयोग्य बतलाये गये हैं। असंज्ञियोंमें तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंमें से किसी भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं

होती यह भी इससे स्पष्ट है। संज्ञियोंमें भी यदि वे नारकी और देव हैं तो पर्याप्त होनेके अन्तर्भूत बाद ही वे इसे उत्पन्न करनेके लिए योग्य होते हैं। नारकियोंमें तो सातों नरकोंके नारकी पर्याप्त होनेपर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके योग्य हैं और देवोंमें चाहे वे अभियोग्य देव हों, चाहे अनभियोग्य देव हों, भवनवासी, वान-व्यन्तर, ज्योतिषी और नीचे प्रबेयक तकके विमानवासी देव तद्योग्य सामाग्रीके सद्भावमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके लिए अधिकारी हैं।

मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें जो सम्मूर्च्छन जीव हैं वे तो प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके पात्र ही नहीं। गर्भजोंमें भी जो मनुष्य और तिर्यञ्च पर्याप्त हैं वे ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके अधिकारी हैं। उसमें भी कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्षके होने चाहिए तथा भोगभूमिज मनुष्य उनचास दिनके होने चाहिए, तिर्यञ्चोंमें भी वे दिवसपृथक्त्वके होने चाहिए। यहाँ दिवसपृथक्त्व शब्द सात-आठ दिनका वाची न होकर बहुत दिवसपृथक्त्वोंका वाची है।

चारों गतियोंके जीवोंमें प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य कौन जीव है इसका यह सामान्य विचार है। उसमें भी जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे सम्पन्न होने चाहिए। जो सादि मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनका वेदक काल व्यतीत होने पर वे भी चार लब्धियोंसे सम्पन्न होने चाहिए। इस प्रकार इतनी योग्यतावाले भव्य जीव ही काललब्धि आनेपर स्वात्मोन्मुख स्वपुरुषार्थद्वारा प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होते हैं। वे चार लब्धियाँ हैं—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्य लब्धि। विशुद्धिके बलसे पूर्वमें, संचित हुए कर्मोंके अनुभाग स्पर्धकोंका प्रतिसमय अनन्तगुणा हीन होकर उदीरित होना क्षयोपशमलब्धि है। प्रतिसमय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरित होनेवाले अनुभागस्पर्धकोंके निमित्तसे असाता आदि अशुभ प्रकृतियोंके बन्धके विरुद्ध सातादि शुभ प्रकृतियोंके बन्धके योग्य जीवोंके परिणामोंकी प्राप्ति होना विशुद्धिलब्धि है। छह द्रव्य और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे युक्त आचार्य आदिका मिलना तथा उनके द्वारा उपदिष्ट अर्थके ग्रहण करने, धारण करने और विचार करनेकी शक्तिका प्राप्त होना देशनालब्धि है। तथा सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागका घात होकर उनका क्रमसे अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिमें और द्विस्थानीय अनुभागमें अवस्थान होना प्रायोग्य लब्धि है। यहाँ अनुभागकी अपेक्षा सब कर्मोंमें पुण्यकर्म विवक्षित न होकर शेष सब कर्म लिये गये हैं इतना विशेष जानना चाहिए, क्योंकि उक्त विशुद्धिको निमित्तकर पुण्य कर्मोंका अनुभाग क्षीण न होकर वृद्धिको प्राप्त होता है।

यहाँ देशना लब्धिके प्रसंगसे जो आचार्य आदि पदका ग्रहण किया है सो उससे मोक्षमार्गके अनुरूप उपदेश-देते हुए सम्यग्दृष्टियोंका ग्रहण किया है ऐसा यहाँ समझना चाहिए, क्योंकि जीवस्थानकी नौवीं चूलिकामें प्रथमादि तीन नरकोंमें ऋषियोंका गमन न होनेसे वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन धर्मश्रवण नहीं बन सकता ? किसी शिष्य द्वारा ऐसी आशंका करनेपर आचार्यदेव वीरसेनस्वामी उक्त शंकाका समाधान करते हुए लिखते हैं कि वहाँ पूर्वभवके सम्बन्धी, धर्मके ग्रहण करानेमें लगे हुए तथा सब प्रकारकी बाधाओंसे रहित ऐसे सम्यग्दृष्टि देवोंका वहाँ गमन देखा जाता है, अतः प्रारम्भके तीन नरकोंमें धर्मश्रवणरूप बाह्य साधन बन जाता है। उल्लेख इस प्रकार है—

कथं तसिं धम्मसुणणं सभवेदि, तत्थ रिसीणं गमणभावा ? ण, सम्माइद्धिदेवाणं पुव्वभवसंबंधीणं धम्म-पटुप्पायणे वावदार्णं सयलबाधाविरहियाणं तत्थ गमणदंसणादो । पृ. ६, ४३३ ।

इससे स्पष्ट है कि सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा मिला हुआ मोक्षमार्गके अनुरूप उपदेश ही अन्य जीवोंमें प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निमित्त होता है, अन्य मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा दिया गया उपदेश प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें बाह्य साधन नहीं होता।

ये चार लब्धियाँ हैं। इन चार लब्धियोंसे सम्पन्न उक्त योग्यतावाले जीव जब काललब्धिके योगमें वस्पुरुषार्थद्वारा करणलब्धिके सम्मुख होते हैं तब वे जीव सर्वप्रथम अघःप्रवृत्तकरणरूप विशुद्धिको प्राप्त होते

है। ऐसे जीवोंके प्रथम समयसे परिणाम कैसे होते हैं, योग व उपयोग आदि कौन-कौन होते हैं इत्यादि बातोंकी पृच्छा उन चार गाथाओंमें की गई है जो सामान्यरूपसे अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपणायोग्य हैं। वे चार हैं—'दंसणमोह-उवसामगस्स' इत्यादि ९१, ९२, ९३ और ९४ क्रमांकवाली सूत्रगाथाएँ। उनमें प्रथम सूत्रगाथाका विशेष स्पष्टीकरण चूर्णिसूत्रोंमें और उनकी जयघवला टीकामें करते हुए बतलाया है कि इन जीवोंका परिणाम विशुद्धतर ही होता है, अविशुद्ध नहीं होता। केवल अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर ही विशुद्धतर परिणाम नहीं होता। किन्तु अधःप्रवृत्तकरणको प्रारम्भ करनेके अन्तर्मुहूर्त पहलेसे ही ऐसे जीवोंका परिणाम आत्मसन्मुख उपयोग होनेसे प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए विशुद्धसे विशुद्धतर होता जाता है, क्योंकि जो मिथ्यात्वरूपी महागर्तसे निकलकर अलम्बपूर्व सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको प्राप्त करनेके सम्मुख हैं, जिन्होंने क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंकी सम्पन्नताके कारण अपनी सामर्थ्यको बढ़ाया है और जो संवेग और निर्वेदभावसे युक्त हैं ऐसे जीवोंके परिणामोंमें प्रति समय सहज ही अनन्तगुणी विशुद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं।

कर्मोंके ग्रहणमें निमित्त रूप जीव प्रदेशोंकी परिस्पन्दरूप पर्यायिको योग कहते हैं। ये जीव नियमसे पर्याप्त होते हैं, इसलिए इनके ग्यारह पर्याप्त योगोंमेंसे आहारक काययोगको छोड़कर दस पर्याप्त योगोंमेंसे कोई एक पर्याप्त योग होता है। यथा—मनोयोगके चार भेदोंमेंसे कोई एक मनोयोग होता है या वचन योगके चार भेदोंमेंसे कोई एक वचनयोग होता है या औदारिक काययोग या वैक्रियिक काययोग होता है।

क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे कषाय चार प्रकारकी है। उनमेंसे कोई एक कषाय परिणाम होता है। इतनी विशेषता है कि एक तो ऐसे जीवोंका उपयोग परलक्षी न होकर, नियमसे आत्मलक्षी होता है, इसलिए वह कषाय परिणाम उत्तरोत्तर वर्धमान न होकर हीयमान होता है। दूसरे पूर्व संचित पापकर्मोंका अनुभाग द्विस्थानीय तो पहले ही हो गया है। साथही उसमें प्रति समय अनन्तगुणी हानि होती जाती है, इसलिए भी वहाँ होनेवाला कषाय परिणाम उत्तरोत्तर हीयमान ही होता है।

जीवोंका जो अर्थको ग्रहण करने रूप परिणाम होता है उसे उपयोग कहते हैं। वह दो प्रकारका है—साकार और अनाकार। अनाकार उपयोगका नाम दर्शनोपयोग है और साकार उपयोगका नाम ज्ञानोपयोग है। यतः अनाकार उपयोग अविसर्शक होनेसे सामान्यरूपसे पदार्थको ग्रहण करता है, अतः ऐसे उपयोगके कालमें विमर्शक स्वरूप जीवादि तत्त्वार्थोंकी प्रतिपत्ति नहीं हो सकती, अतः यहाँ साकार उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग ही स्वीकार किया गया है। उसमें भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीन कुञ्जान ही सम्भव है, अतः उनमें से कोई एक उपयोग यहाँ होता है यह उक्त स्थलपर जयघवला टीकामें स्वीकार किया गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिये पृ० २०४ के विशेषार्थ पर दृष्टिपात करना चाहिए।

इन जीवोंके उत्तरोत्तर वर्धमान पीत, पद्म और शुक्ल इन तीनों लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या होती है। यह कथन तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी मुख्यतासे किया है, क्योंकि देवों और नारकियोंमें जहाँ जो लेश्या है वहाँ वह जन्मसे लेकर मरणतक नियमसे बनी रहती है, इसलिए यहाँ नारकियों और देवोंके सम्यग्दर्शनके सन्मुख होने पर कौन लेश्या होती है इसका निर्देश न कर जहाँ एक लेश्या अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं होती ऐसे मनुष्यों और तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा ही यहाँ ऐसे जीवोंके कौन लेश्या होती है इसका निर्देश किया है। ऐसे मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके अशुभ तीन लेश्याएँ तो होती ही नहीं। शुभ तीन लेश्याओंमें कोई एक लेश्या नियमसे वर्धमान ही होती है। यदि अतिमंद विशुद्धिके साथ उक्त जीव सम्यग्दर्शनके सन्मुख हों तो भी उनके जघन्य पीतलेश्यारूप परिणाम देखा जाता है। नारकियोंमें कृष्ण, नील और कापोतमेंसे जिस नरकमें जो अवस्थित लेश्या हो वह नियमसे हीयमान ही होती है और देवोंमें पीत, पद्म और शुक्लमेंसे जहाँ जो अवस्थित लेश्या हो वह नियमसे वर्धमान ही होती है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए।

तीनों वेदोंमेंसे अन्यतम वेद होता है। करणानुयोगमें चौदह मार्गणाओंका कथन नोआगम भावपर्यायिको ध्यानमें रखकर ही किया गया है। इसलिए वेद कौन होता है ऐसी पृच्छाके होने पर जो यह उत्तर दिया

गया है कि तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद होता है सो इस उत्तर द्वारा भाववेदका ही ग्रहण करना चाहिए । चूंकि प्रारम्भके पाँचवें गुणस्थानतककी प्राप्ति द्रव्यसे पुरुष, स्त्री और मनुष्यसक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंको भी हो सकती है, अतः जयध्वलाकारने वेदके द्रव्य और भाव ऐसे भेद करके दोनों प्रकारके तीनों वेदवाले जीव प्रथमोपशम सम्बन्धनको उत्पन्न करते हैं उसमें कोई विरोध नहीं है यह निर्देश किया है । परमागम चार अनुयोगोंमें विभक्त है । उनमेंसे चरणानुयोगमें बाह्य आचारकी अपेक्षा विचार किया गया है, इसलिए उसमें द्रव्यवेद विवक्षित है और करणानुयोगमें नीआगम भावरूप जीवोंकी अर्थ-व्यंजन पर्याप्त ली गई है, इसलिए उसमें भाववेद विवक्षित है इतना यहाँ विशेष समझना चाहिए ।

दूसरी सूत्रगाथा 'कणि वा पुञ्चबद्धाणि' इत्यादि है । इसमें आठों कर्मोंके प्रकृति आदिके भेदसे चारों प्रकारके सत्त्व, बन्ध, उदय और उदीरणा विषयक पृच्छाका चूणिमूत्रों और जयध्वला टीका द्वारा विचार किया गया है । इनमेंसे प्रकृति सत्त्वका विचार करते हुए जो निर्देश किया है उसके अनुसार मोहनीय कर्मकी २६-२७ या २८ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है । अनादि मिथ्यादृष्टिके २६ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है, सादि मिथ्यादृष्टिके यथासम्भव २६, २७ या २८ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है । कारण स्पष्ट है । आयु कर्मकी एक भूज्यमान आयुकी अपेक्षा एककी और यदि परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध किया हो तो दोकी सत्ता होती है । नामकर्मकी अपेक्षा आहारकचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़कर ८८ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है । ज्ञानावरणादि षोडश पाँच कर्मोंके जितने अन्तर् भेद हैं उन सबकी सत्ता होती है ।

यहाँ यह प्रश्न किया गया है कि सादि मिथ्यादृष्टिके आहारक चतुष्कका सत्त्व सम्भव है, इसलिए अन्य प्रकृतियोंके साथ उनकी सत्ता भी कहनी चाहिए । इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि वेदक सम्बन्धके कालसे आहारक शरीरकी उद्वेक्षनाका काल अल्प है, इसलिए प्रथमोपशम सम्बन्धके सम्मुख हुए सादि मिथ्यादृष्टिके आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं पाया जाता ।

ऐसे जीवोंके आयुकर्मका स्थितिसत्त्व तत्प्रायोग्य होता है । तथा षोडश कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तः-कोड़ाकोड़ीके भीतर होता है ।

ऐसे जीवोंके अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग द्विस्थानीय होता है और प्रशस्त कर्मोंका चतुःस्थानीय होता है । वर्णादिचतुष्क अपने उत्तर भेदोंके साथ प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं । तथा प्रदेशसत्कर्म अजघन्य-अनुत्कृष्ट होता है ।

उसी दूसरी गाथाका दूसरा चरण है—'के वा असे णिबंधदि' तदनुसार उक्त जीव किन प्रकृतियोंके बन्धक होते हैं इसका विचार तीन दण्डकोंके द्वारा किया गया है । उन तीनों दण्डकोंमें समानरूपसे पाई जाने-वाली प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पुरुष-वेद, हास्य, गति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय, जाति, तैजस शरीर, कामणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णादि चतुष्क, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और पाँच अन्तराय ।

अब यदि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें स्थित जीव मनुष्य और तिर्यञ्च है तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोंके साथ देवगति वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इन पाँच प्रकृतियोंका भी बन्ध करते हैं ।

यदि देव और छह पृथिवियोंके नारकी जीव हैं तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोंके साथ मनुष्यगति, औदारिक शरीर, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिक शरीर आंगोपांग, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इन छह प्रकृतियोंका भी बन्ध करते हैं ।

यदि सातवीं पृथिवीके नारकी हैं तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोंके साथ तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, कदाचित् उद्योत और नीचगोत्र इन ७ या ६ प्रकृतियोंका भी बन्ध करते हैं ।

स्थितिवन्ध तीनों दण्डकोंमें कही गई इन सब प्रकृतियोंका अन्तःकोड़कोड़ी प्रमाण होता है । जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका द्विस्थानीय और जो प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका चतुःस्थानीय अनुभागबन्ध होता है ।

पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कपाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कामगण शरीर, औदारिक शरीर आंगोपांग, वर्णादि चार, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, उद्योत, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन ५४ प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है तथा निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानमृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्र इन १९ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है ।

उसी दूसरी गाथाका तीसरा पाद है—‘कदि आवलियं पविसति । तदनुसार उदय-अनुदयरूपसे कितनी प्रकृतियाँ उदयावलिमें प्रवेश करती हैं इस पृच्छाका समाधान करते हुए बतलाया है कि पहले जितनी प्रकृतियोंकी सत्ताका निर्देश कर आये हैं वे सब उदयावलिमें प्रवेश करती हैं । इतनी विशेषता है कि जिन जीवोंने परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध किया है उनकी उस आयुकी आवाधा भुज्यमान आयु-प्रमाण होनेसे वह उदयावलिमें प्रवेश नहीं करती है । यहाँ इतना और विशेष जान लेना चाहिए कि परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध होते समय जितनी भुज्यमान आयु शेष रहती है उसका कदलीघात हुए बिना निपेक क्रमसे भोग द्वारा ही उसकी निर्जरा होती है ।

उसी गाथाका चौथा चरण है—‘कदिण्हं वा पवेसगो ।’—तदनुसार अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें स्थित जीवोंके कितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है इस पृच्छाका समाधान करते हुए बतलाया है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कामगणशरीर, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय इन ३५ प्रकृतियोंकी तो नियमसे उदीरणा होती है, क्योंकि यहाँपर ये ध्रुवोदयस्वरूप प्रकृतियाँ हैं । इसलिए इनकी समानरूपसे चारों गतियोंमें उदय-उदीरणा पाई जाती है । इनके सिवाय साता और असाता इनमेंसे किसी एक प्रकृतिको चारों गतियोंमें उदय-उदीरणा पाई जाती है । इसी प्रकार चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा ४ क्रोध, ४ मान, ४ माया और ४ लोभमेंसे कोई चार, हास्यादि दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय, जुगुप्सा या दोनों या दोनों नहीं इस प्रकृतियोंकी भी उदय-उदीरणा होती है ।

अब यदि नारकी है तो उक्त प्रकृतियोंके साथ नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, वैक्रियिक शरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र इन ग्यारह प्रकृतियोंकी भी उदय-उदीरणा पायी जाती है ।

यदि तिर्यञ्च है तो ३ वेदोंमेंसे कोई एक वेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, कदाचित् उद्योत, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, सुभग-दुर्भगमेंसे कोई एक, सुस्वर-दुःस्वरमेंसे कोई एक, आदेय-अनादेयमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमेंसे कोई एक तथा नीचगोत्रकी नियमसे उदय-उदीरणा होती है ।

यदि मनुष्य है तो तिर्यञ्चोंके समान उदय-उदीरणा जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और तिर्यञ्चगतिके स्थानमें मनुष्यायु और मनुष्यगति कहनी चाहिए । तथा मनुष्योंमें उद्योतकी उदय-उदीरणा नहीं होती और गोत्रकी दोनों प्रकृतियोंमेंसे किसी एककी उदय-उदीरणा पाई जाती है ।

यदि देव है तो उक्त प्रकृतियोंके साथ पुरुष या स्त्रीवेद, देवायु, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतु-



रससंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्च-गोत्र इनकी नियमसे उदय-उदीरणा होती है ।

यहाँ जिस गतिमें जितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा बतलाई है, आयुको छोड़कर उन प्रकृतियोंकी तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितियाँ अपकर्षित कर उदयमें दी जाती हैं और आयुओंमेंसे जिसके उदय प्राप्त जिस आयुकी ओ स्थिति हो उसकी उदीरणा होती है । इसी प्रकार जिसके जिन प्रकृतियोंकी उदय-उदीरणा होती है उनमेंसे प्रशस्त प्रकृतियोंकी बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन षटुःस्थानीय उदीरणा होती है और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी सत्त्वस्थानसे अनन्तगुणी हीन द्विस्थानीय उदीरणा होती है । तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा अजघम्य-अनुच्छेद उदीरणा होती है । यह उदीरणाका विचार है । इसी प्रकार उदयके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए ।

‘के अंसे क्षीयदे पुत्रं’ यह तीसरी सूत्रगाथा है । इसके पूर्वार्धद्वारा दर्शनमोहकी उपशमना करनेके सम्मुख होनेके पूर्व ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूपसे किन कर्मोंकी बन्धव्युच्छिति हो जाती है और किन कर्मोंकी उदयव्युच्छिति हो जाती है इसकी पुच्छा की गई है और उत्तरार्ध द्वारा किस स्थानपर अन्तर करणक्रिया होती है और किस स्थानपर किन कर्मोंका यह जीव उपशामक होता है यह पुच्छा की गई है ।

आगे इन पुच्छाओंका चूर्णसूत्रों और जयध्वला टीकाद्वारा विस्तारसे समाधान करते हुए चौथीस बन्धापसरणोंका निर्देश करनेके बाद दर्शनमोहनीयके उपशामकके पृथक्-पृथक् गतिके अनुसार किन प्रकृतियोंका उदय होता है और कौन प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं इसका विचार करते हुए बतलाया है कि निद्रादि पाँच दर्शनावरण, एकेन्द्रियादि चार जातिनामकर्म, चार आनुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण नामकर्म ये प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं । दर्शनमोहनीयके उपशामका प्रारम्भ करने वाला जीव न तो एकेन्द्रिय होता है, न विकलत्रय और अर्सनी ही होता है और न ही अपर्याप्तक होता है । साथ ही वह साकार उपयोगवाला और जागृत होता है, अतः उसके ये प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं । यह ओष निर्देश है । आदेशसे किस गतिमें किन प्रकृतियोंका किस रूपसे उदय रहता है यह मूलसे जान लेना चाहिए । विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ उसका निर्देश नहीं किया है । अन्तरकरण क्रिया भी अधः-प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें नहीं होती और न ही यह जीव यहाँपर उपशामक संज्ञाको प्राप्त होता है । आगे जहाँ अन्तरकरण क्रिया होगी और जहाँ जाकर यह जीव उपशामक कहलायेगा वहाँ इनका निर्देश करेंगे ।

चौथी सूत्रगाथा है—‘किंदिदियाणि कम्पाणि’ आदि । इस द्वारा दर्शनमोहनीयका उपशामक जीव कितनी स्थितिका और कितने अनुभागका घात कर स्थितिसम्बन्धी और अनुभागसम्बन्धी किस स्थानको प्राप्त होता है यह पुच्छा की गई है । तदनुसार इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ प्रमाण है उसमेंसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके बलसे संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका घात कर पूर्वकी विवक्षित स्थितिके संख्यातवै भागप्रमाण स्थितिको यह जीव प्राप्त होता है । तथा अप्रशस्त कर्मोंका अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो अनुभाग प्राप्त होता है उसके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागका उक्त दोनों प्रकारके परिणामोंके बलसे घात कर उसके अनन्तवै भागप्रमाण अनुभागको प्राप्त होता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अधःवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात न होकर वे गुणश्रेणिनिक्षेपके साथ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे प्रारम्भ होते हैं ।

इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपण करने योग्य चार गाथाओंके विषयका निर्देश करनेके बाद जिन तीन प्रकारके करण परिणामोंके द्वारा दर्शनमोहनीयके उपशम होनेका निर्देश किया है उनका यहाँ विचार करते हैं ।

जिन परिणामोंके द्वारा दर्शनमोह और चारित्रमोहका उपशम आदि होता है उन परिणामोंकी करण संज्ञा है । वे परिणाम तीन प्रकारके हैं—अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण । जिसमें विद्यमान

जीवोंके परिणाम नीचे प्रवृत्त होते हैं उसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इस करणमें उपरिम ( आगेके ) समयमें स्थित जीवोंके परिणाम नीचेके ( पूर्वके ) समयमें स्थित जीवोंके भी पाये जाते हैं इसलिए इनकी अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस करणमें प्रत्येक समयमें अपूर्व-असमान नियमसे अनन्तगुणरूपसे वृद्धिगत करण-परिणाम होते हैं अर्थात् जिसस करणमें प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होकर अन्य समयमें स्थित जीवोंके परिणामोंके सदृश नहीं होते हैं, उनकी अपूर्व-करण संज्ञा है। जिस करणमें एक समयमें स्थित जीवोंके परिणाममें भेद नहीं है और भिन्न समयमें स्थित जीवोंका परिणाम भिन्न ही होता है वह अनिवृत्तकरण कहलाता है। इस प्रकार ये तीन प्रकारके करण हैं। इनके सिवायसे चौथी उपशामनाया है। जिस कालविशेषमें दर्शनमोहनीय उपशाम्त होकर अवस्थित रहता है उसे उपशामनाया कहते हैं। उपशामनाया कहो या उपशाम सम्यग्दृष्टिका काल कहो दोनोंका एक ही अर्थ है।

आगे इन तीन करणोंका विशेष विचार करते हुए अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें दो अनुयोगद्वारोंका निर्देश किया है। वे दो अनुयोगद्वार हैं—अनुकृष्टिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व। उसमें सर्वप्रथम सूत्रनिबद्ध अल्प-बहुत्वके साधनरूपसे अनुकृष्टिका निर्देश किया है। अधःप्रवृत्तकरणका कुल काल अन्तर्मुहूर्त है और परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उसमें प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समयतक पृथक्-पृथक् एक-एक समयमें स्थिति-बन्धापसरण आदिके कारणभूत और उत्तरोत्तर छह वृद्धिक्रमसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं। परिपाटी क्रमसे विरचित इन परिणामोंके पुनरुक्त और अपुनरुक्त भावका अनुसन्धान करना अनुकृष्टि कहलाती है। यद्यपि यह अनुकृष्टि संसारके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंमें पत्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण स्थान ऊपर जाकर व्युच्छिन्न होती है, क्योंकि जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणामोंकी ऊपर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविशेषोंमें अनुवृत्ति देखी जाती है। किन्तु यहाँ ऐसा न होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित स्थान व्यतीत होनेपर अनुकृष्टिका विच्छेद हो जाता है। यह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित स्थान अधः-प्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है। यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं। पुनः दूसरे समयमें प्रारम्भके कुछ परिणामोंको छोड़कर वे ही परिणाम अन्य अपूर्व परिणामोंके साथ कुछ अधिक होते हैं। यहाँ अधिकका प्रमाण, असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम-स्थानोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे, उतना है। इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयतक प्रत्येक समयके परिणाम पिछले समयके परिणामोंसे साधिक होते जाते हैं। आगे इन परिणामोंकी किस प्रकार अनुकृष्टि रचना बनती है आदि सब बातोंका विशेष खुलासा मूलमें विस्तारसे किया ही है। इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। इसीप्रकार इन परिणामोंमें विशुद्धिकी अपेक्षा स्वस्थान और परस्थानका अवलम्बन लेकर अल्पबहुत्व भी जान लेना चाहिए। विशुद्धिकी अपेक्षा परस्थान अल्पबहुत्वका संदृष्टिद्वारा पु० २५१ में स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है, इसलिए इसे उसके आधारसे जान लेना चाहिए। यहाँ इतना संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त संदृष्टिमें विवक्षित किस स्थानसे दूसरे किस स्थानकी विशुद्धि अधिक है यह बतलानेके लिए जो वाणके चिह्न दिये हैं वे भूलसे उलटे लग गये हैं, अतः उन्हें वहीं अपने अपने स्थानपर उलट देना चाहिए। ताकि परस्थान विशुद्धिके अल्पबहुत्वका ज्ञान करनेमें भ्रम न होने पावे।

दूसरा अपूर्वकरण है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरणके कालसे संख्यातवें भागप्रमाण है। इसके प्रत्येक समयमें नानाजीवोंकी अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो प्रत्येक समयमें विसदृश ही होते हैं। अर्थात् प्रत्येक समयके परिणाम दूसरे समयके परिणामोंसे भिन्न ही होते हैं। यहाँ प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक होती है। उससे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। प्रथम समयकी इस उत्कृष्ट विशुद्धिसे दूसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। उससे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। इसप्रकार विशुद्धिका यह अल्पबहुत्व इस करणके अन्तिम समयतक जानना चाहिए। यहाँ अधःप्रवृत्तकरणके समान परिणामोंकी अनुकृष्टि रचना न होनेसे निर्वर्गणाकाण्डक भी

नहीं बनता, अतः यहाँ प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा होती है। अर्थात् यहाँ एक समयके परिणामोंमें ही नाना जीवोंकी अपेक्षा सदृशता-विसदृशता बनती है। विवक्षित किसी भी समयके परिणामोंकी उससे भिन्न अन्य किसी भी समयके परिणामोंके साथ सदृशता नहीं बनती। दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे कतिपय विशेषताएँ प्रारम्भ हो जाती हैं—(१) स्थितिकाण्डकघात। प्रत्येक स्थितिकाण्डकके घातका काल अन्तर्मुहूर्त है। इतने कालके भीतर सत्तामें स्थित आयुकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंकी स्थितिमेंसे एक काण्डकप्रमाण स्थितिका फालिक्रमसे घातकर उस अन्तर्मुहूर्तके अन्तमें उन कर्मोंकी स्थितिको उतना कम कर देता है। इसप्रकार अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकघात होकर अन्तमें विवक्षित सब कर्मोंकी वह स्थिति अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण शेष रहती है। यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें एक जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट काण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है। इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण मूलसे समझ लेना चाहिए। स्थितिकाण्डकघात अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं होता।

( २ ) स्थितिबन्ध जो अधःप्रवृत्तकरणमें होता था उससे यहाँ अपूर्व होता है। तात्पर्य यह है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही उससे पहले बँधनेवाले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागकम स्थितिका यह जीव बन्ध करता है और इतना स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकालतक करता रहता है। पुनः इस अन्तर्मुहूर्तके समाप्त होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागकम दूसरे स्थितिबन्धका प्रारम्भकर उसका भी अन्तर्मुहूर्तकालतक बन्ध करता रहता है। इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यात हजार खण्डप्रमाण स्थितिबन्धापसरण अधःप्रवृत्तकरणके कालके भीतर होते हैं। तथा अपूर्वकरणके प्रथम समयमें पिछले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण कम स्थितिका बन्ध प्रारम्भ होकर एक अन्तर्मुहूर्तकालतक वह होता रहता है। पुनः अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। इसप्रकार इस करणके कालके भीतर भी संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार इन स्थितिबन्धापसरणोंका कथन अनिवृत्तकरणमें भी करना चाहिए। एक स्थितिकाण्डकघातका जितना काल होता है उतना ही एक स्थितिबन्धापसरणका काल होता है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए।

( ३ ) यहाँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर ही तीनों करणोंके कालके भीतर जो अप्रशस्त कर्म बँधते हैं उनका प्रत्येक समयमें द्विस्थानीय अनुभागबन्ध होकर भी वह अनन्तगुणा हीन होता रहता है और जो प्रशस्त कर्म बँधते हैं उनका प्रत्येक समयमें त्रिस्थानीय अनुभागबन्ध होकर भी वह अनन्तगुणा अधिक होता रहता है। दर्शनमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जीव आयुकर्मका बन्ध नहीं करता, इसलिए उसकी अपेक्षा यह तथा स्थितिकाण्डकघात आदि कोई कथन नहीं जानना चाहिए।

४. अपूर्वकरणके प्रथम समयसे सत्तामें स्थित अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग काण्डकघात होने लगता है। यहाँ एक-एक अनुभागकाण्डकघातका काल अन्तर्मुहूर्त होकर भी वह स्थितिकाण्डकघातके संख्यात हजारवें भागप्रमाण है। अर्थात् एक स्थितिकाण्डकघातके कालके भीतर संख्यात हजार अनुभागकाण्डकघात हो जाते हैं। इसी प्रकार अनिवृत्तकरणमें भी जानना चाहिए। यह अनुभागकाण्डकघातविधि अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं होती।

५. इसी प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयसे आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप प्रारम्भ हो जाता है। आयुकर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप क्यों नहीं होता इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि ऐसा स्वभावसे ही नहीं होता। गुणश्रेणिनिक्षेपका प्रमाण अपूर्वकरण और अनिवृत्तकरणके कालसे कुछ अधिक है। इन दोनों करणोंके कालसे कुछ अधिकका प्रमाण कितना है इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि अनिवृत्तकरणका जितना काल है उसका संख्यातवें भाग कुछ अधिकका प्रमाण है। यहाँ गुणश्रेणिनिक्षेपकी विधि मूल ( ५० २६५ ) से जान लेनी चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप होता है। गुणश्रेणिनिक्षेपके प्रथम समयसे लेकर जैसे-जैसे एक-एक समय व्यतीत होता जाता है वैसे ही वैसे गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम भी उसरीत्तर कम होता जाता है। इसीका नाम गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप है।

इस प्रकार उक्त विशेषताओंके साथ अपूर्वकरणके कालको समाप्त कर यह जीव अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करता है। इसका भी काल अन्तर्मुहूर्त है। परन्तु यह काल अपूर्वकरणके कालके संख्यातर्वे भाग प्रमाण है। यहाँ प्रत्येक समयमें एक ही परिणाम होता है। अन्य वे सब विशेषताएँ यहाँ भी पाई जाती हैं जो अपूर्वकरणमें होती हैं। विशेष स्पष्टीकरण मूलसे जान लेना चाहिए। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणके संख्यात बहुभागप्रमाण कालके जाने पर यह जीव अन्तरकरण क्रियाके करनेके लिए उद्यत होता है। यदि अनादि मिथ्यादृष्टि है तो एकमात्र मिथ्यात्वकी अन्तरकरणक्रिया करता है और सादि मिथ्यादृष्टि होकर भी मिथ्यात्वके साथ सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला है तो मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तरकरणक्रिया करता है और यदि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन तीनोंकी सत्तावाला है तो तीनोंकी अन्तरकरण क्रिया करता है। जिस समय अन्तरकरण क्रियाका प्रारम्भ करता है उस समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणके कालके बराबर स्थिति निषेकोंको छोड़कर उससे ऊपरके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण निषेकोंका अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है। यहाँ जिन निषेकोंका अभाव कर अन्तर किया जाता है उनसे नीचे अर्थात् पूर्वके सब निषेकोंकी प्रथम स्थिति संज्ञा है और उनसे ऊपरके सब निषेकोंकी द्वितीय स्थिति संज्ञा है। अन्तरके लिए ग्रहण किये गये निषेकोंका इन्हीं दोनों स्थितियोंमें निक्षेप होता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालमें अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न हो जाती है। यह अन्तरकरण क्रियाका काल एक स्थिति काण्डकघातके कालके बराबर है। इस प्रकार जब यह अन्तरकरण क्रिया कर लेता है तब वहाँसे लेकर उपशामक कहा जाने लगता है। यद्यपि यह अधःप्रवृत्त-करणके प्रथम समयसे ही उपशामक है तो भी यहाँसे उसकी यह संज्ञा विशेषरूपसे हो जाती है। इसके बाद जब तक मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहती है तब तक आगाल-प्रत्यागाल होते रहते हैं। द्वितीय स्थितिके कर्म परमाणुओंका अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त होना आगाल कहलाता है और प्रथम स्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त होना प्रत्यागाल कहलाता है। जब मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहती है तबसे मिथ्यात्वका गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता। ( यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता होने पर उनका भी ग्रहण कर लेना चाहिए। ) आयुर्कर्मके सिवाय शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है। यद्यपि मिथ्यात्वका गुण-श्रेणिनिक्षेप तो नहीं होता, परन्तु उसकी प्रत्यावलिमेंसे एक आवलिकाल तक उदीरणा होती रहती है। जब एक आवलिकाल शेष रहता है तब वहाँसे मिथ्यात्वका उदीरणरूपसे घात नहीं होता। परन्तु जब तक मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति शेष रहती है तब तक उसका स्थिति-अनुभाग काण्डकघात होता रहता है। हाँ प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वके बन्धके साथ उनकी भी परिसमाप्ति हो जाती है। यह अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव है। इसके अगले समयमें यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यहाँ दर्शनमोहनीयका उदयके बिना अवस्थित रहना ही उपशम कहलाता है। यहाँ दर्शनमोहनीयका सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि यहाँ उसका संक्रम और अपकर्षण पाया जाता है। इसलिए स्वरूप सन्मुख हो यह जीव अन्तरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लेकर ही प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। और जिस समय यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होता है तभी मिथ्यात्वके तीन भाग करता है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। इनमेंसे प्रथम दो भाग सर्वघाति हैं और अन्तिम भाग देशघाति है। विशेष विचार मूलसे जान लेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिए कि उक्त सम्यग्दृष्टि जीवके गुणसंक्रमके काल तक मिथ्यात्वके सिवाय शेष कर्मोंका स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है।

आगे पन्चीस पदवाला अल्पबहुत्व बतलाकर इस अर्थाधिकारसे सम्बन्ध रखनेवाली १५ सूत्रगाथाएँ दो गई हैं। प्रथम गाथामें बतलाया है कि चारों गतियोंका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर सकता है। दूसरी गाथामें चारों गतियोंके उक्त जीवोंका विशेष स्पष्टीकरण किया गया है। तीसरी गाथामें बतलाया है कि दर्शन-मोहका उपशम करनेवाले जीव व्याघातसे रहित होते हैं। इस क्रियाके चालू रहते हुए उपसर्गादि कितने भी व्याघातके कारण उपस्थित हों, यह जीव इस क्रियाको बिना रुकावटके

सम्पन्न करता है। बीचमें यह जीव सासादन गुणस्थानको भी नहीं प्राप्त होता। किन्तु दर्शनमोहनीयके उपशान्त होने पर उपशम सम्यक्त्वके कालमें अधिक से अधिक छह आवलि और कम से कम एक समय शेष रहने पर यह जीव अनन्तानुबन्धीमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदयसे सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु दर्शनमोहनीयके क्षीण होने पर सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति नहीं होती। चौथी गाथामें बतलाया है कि दर्शनमोहनीयके उपशमका प्रस्थापक साकार उपयोगवाला ही होता है। किन्तु निष्ठापक और मध्यम अवस्थावालेके लिए यह नियम नहीं है। इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण इस सूत्रगाथाकी टीकाके अन्तमें किया ही है, अतः इसे बहुसि जान लेना चाहिए। चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक काययोग और वैक्रियिककाययोग इन दस योगोंमेंसे किसी भी योगमें तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा कम से कम तेजो लक्ष्याको प्राप्त यह जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है। पाँचवीं गाथामें बतलाया है कि उक्त मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शनमोहका उपशम करते समय नियमसे मिथ्यात्वकर्मका उदय होता है। किन्तु दर्शनमोहकी उपशांत अवस्थामें मिथ्यात्व कर्मका उदय नहीं होता। तदनन्तर उसका उदय भजनीय है—होता भी है और नहीं भी होता। छठी गाथामें बतलाया है कि उपशम सम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीयके तीनों कर्म सभी स्थितिविशेषोंकी अपेक्षा उपशान्त अर्थात् उदयके अयोग्य रहते हैं। इस कालमें किसी भी प्रकृतिका उदय नहीं होता तथा वे सब स्थितिविशेष नियमसे एक अनुभागमें अवस्थित रहते हैं। जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग होता है वही सब स्थितिविशेषोंमें पाया जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सातवीं गाथामें बतलाया है कि जब तक यह जीव दर्शनमोहनीयका उपशम करता है तब तक मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध होता है। किन्तु उसकी उपशान्त अवस्थामें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता। बादमें जब उपशान्त अवस्थाके समाप्त हो जानेके बाद यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें वह जीव आता है तो मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है अन्यथा मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं भी होता। आठवीं गाथामें दर्शनमोहनीयका अबन्धक कौन जीव है इसका नियम किया गया है। नौवीं गाथामें सर्वोपशमसे उपशान्त अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर बादमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होता है यह बतलाया गया है। यहाँ सर्वोपशमका तात्पर्य दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंके उदयाभावरूप उपशमसे है। दसवीं गाथामें बतलाया है कि यदि अनादि मिथ्यादृष्टि प्रथमबार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो वह सर्वोपशमसे ही उसे प्राप्त करता है। यदि एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके बाद बहुत काल व्यतीत हो गया है तो वह भी सर्वोपशमसे ही उसे प्राप्त करता है। और यदि जल्दी ही पुनः पुनः उसे प्राप्त करता है तो वह उसे देशोपशमसे भी प्राप्त करता है और सर्वोपशमसे भी प्राप्त करता है। यदि वेदक कालके भीतर प्राप्त करता है तो देशोपशमसे उसे प्राप्त करता है और वेदक कालके निकल जानेके बाद प्राप्त करता है तो वह उसे सर्वोपशमसे प्राप्त करता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रसंगसे सर्वोपशमका अर्थ दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे किसी भी प्रकृतिका उदय न होकर अनुदयरूप रहना अर्थ लिया गया है। साथ ही अनन्तानुबन्धीका भी अनुदय होना चाहिये। ग्यारहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि सम्यक्त्वके प्रथम लाभके अनन्तर पूर्व नियमसे मिथ्यात्व होता है किन्तु द्वितीयादि बार लाभके अनन्तर पूर्व मिथ्यात्व भजनीय है। बारहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि जिसके दर्शन मोहनीयकी तीन या दो प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उसके यथासंभव दर्शनमोहनीयका संक्रम होता भी है और नहीं भी होता। किन्तु जिसके एक ही प्रकृतिकी सत्ता होती है उसके उस प्रकृतिका संक्रम नहीं होता। तेरहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान करता है और कदाचित् नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भावका भी श्रद्धान करता है। चौदहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि मिथ्यादृष्टि जीव गुरुके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान नहीं करता। किन्तु असद्भावका उपदेश मिले चाहे न भी मिले तो भी श्रद्धान करता है। पन्द्रहवीं सूत्रगाथामें बतलाया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके साकार और अनाकार दोनों प्रकारका उपयोग पाया जाता है। किन्तु विचार पूर्वक अर्थको ग्रहण करते समय उसके साकार उपयोग ही होता है।

यह दर्शनमोहोपशमनासे सम्बन्ध रखनेवाली १५ सूत्रगाथाओंका संक्षिप्त तात्पर्य है। विशेष स्पष्टी-

करणके लिए मूल पर दृष्टिपात करना चाहिए। यहाँ सूत्रगाथा ९८ और १०९ में कहाँ किस प्रकार कौन-कौन उपयोग सम्भव है इस विषयका निर्देश किया है सो इसे समझनेके लिए अद्धापरिभाषणका निर्देश करने वाली ( १५ से २० तक ) सूत्रगाथाओं पर दृष्टिपात करके प्रकृत विषयको समझ लेना चाहिए। विशेष खुलासा उक्त सूत्रगाथाओंके व्याख्यानके समय कर ही आये है।

यहाँ इस अर्थाधिकारकी १५ सूत्र गाथाओंमें से कषायप्राभृतकी १०४, १०७, १०८ और १०९ क्रमांकवाली गाथाएँ कर्मप्रकृति ( श्वे. ) में २३, २४, २५ और २६ क्रमांकसे पाई जाती हैं। उनमेंसे १०४ क्रमांकवाली गाथाका पूर्वार्ध ही मिलता-जुलता है। उसमें भी द्वितीय चरणमें अन्तर है। जहाँ कषाय-प्राभृतमें 'वियट्टेण' पाठ है वहाँ कर्मप्रकृतिमें 'विगिट्ठो य' पाठ है। इससे दोनोंके अर्थमें भी अन्तर ही गया है। कषायप्राभृतके उक्त पाठसे जहाँ यह ज्ञात होता है कि सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो वह बहुत दीर्घ कालके बाद ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेका अधिकारी होता है। वहाँ कर्मप्रकृतिके उक्त पाठका उसके चूर्णिकार और दूसरे टीकाकारोंने जो अर्थ किया है उससे मात्र यह ज्ञात होता है कि यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व बड़े अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है। यहाँ यह अन्तर्मुहूर्त किसकी अपेक्षा बड़ा लिया गया है इसका खुलासा मलयगिरिने इन शब्दोंमें किया है— 'प्रथमस्थित्यपेक्षया विप्रकर्षश्च' अर्थात् प्रथम स्थितिकी अपेक्षा प्रथमोपशम सम्यक्त्वका यह काल बड़ा है। इस प्रकार उक्त गाथाके पूर्वार्धमें पाठ भेद होनेसे उसका उत्तरार्ध भी बदल गया है।

कर्मप्रकृतिकी २४ क्रमांककी 'सम्महिट्ठी नियमा' और २५ क्रमांककी 'मिच्छहिट्ठी नियमा' गाथाएँ रचना और अर्थ दोनों दृष्टियोंसे कषायप्राभृतकी १०७ और १०८ क्रमांककी गाथाओंका पूरा अनुसरण करती हैं। मात्र कर्मप्रकृतिकी २६ क्रमांककी गाथा कषायप्राभृतकी १०९ क्रमांककी गाथाका लगभग शब्दशः अनुसरण करती हुई भी अर्थकी अपेक्षा कुछ अन्तर है।

जयधवला टीकाकारने इस गाथाके तीसरे चरणमें आये हुए 'वंजणोग्गहम्मि' 'पदका 'विचार-पूर्वकार्यग्रहणावस्थायाम्'—'विचार पूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें' अर्थ किया है। जब कि कर्मप्रकृतिके चूर्णिकारने इस पदका अर्थ 'व्यञ्जनावग्रह' किया है। चूर्णिका समग्र पाठ इस प्रकार है—

'अह वंजणोग्गहम्मि उ' त्ति—जति सागारे होति वंजणोग्गहो होइ ण अत्थोग्गहो होइ। जम्हा संसयनाणी अव्वत्तनाणी वुच्चति।

चूर्णिकारके इस कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे सम्यग्मिध्यादृष्टि गुणस्थानमें ईहा, अवाय और धारणा ज्ञानकी बात तो छोड़िये अर्थावग्रह भी स्वीकार नहीं करते रहे। यहाँ अव्यक्त स्वरूप संशयज्ञानके अर्थमें व्यञ्जनावग्रह शब्दका प्रयोग हुआ है ऐसा उसके उक्त चूर्णिके किये गये विशेष व्याख्यानसे प्रतीत होता है। इस बातको मलयगिरिने अपनी टीकामें इन शब्दोंमें स्वीकार किया है—संशयज्ञानप्रस्यता च व्यञ्जनावग्रह एवेति।

## कषायप्राभृत दिगम्बर आचार्योंकी ही कृति है

( १ )

श्वेताम्बर मुनि श्रीगुणरत्न विजयजीने कर्म साहित्य तथा अन्य कतिपय विषयोंके अनेक ग्रंथोंकी रचना की है। उनमेंसे एक खडगसेढी ग्रंथ है। इसकी रचनानमें अन्य ग्रन्थोंके समान कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिका भरपूर उपयोग हुआ है। वस्तुतः श्वेताम्बर परम्परामें ऐसा कोई एक ग्रन्थ नहीं है जिसमें क्षपकश्रेणीका सांगोपाङ्ग विवेचन उपलब्ध होता हो। श्री मुनि गुणरत्नविजयजीने अपने सम्पादकीयमें इस तथ्यको स्वयं इन शब्दोंमें स्वीकार किया है—समाप्त थया वाद क्षपकश्रेणीने विषय संस्कृतमा गद्यरूपे लखवो शरू कर्यो. ४थी ५ हजार श्लोक प्रमाण लखान थयाबाद मने विचार आब्यो के जुदा ग्रन्थोंमा छूटी छपाई वर्णवायेली क्षपक श्रेणी व्यवस्थित कोई एक ग्रन्थमा जोवामा आवती नथी. जैनशासनमा महत्त्वनी गणती 'क्षपक श्रेणी' ना जुदा जुदा ग्रन्थोंमा संगृहीत विषयनो प्राकृतभाषामां स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार थाय, तो ते मोक्षाभिलाषी भव्या-त्माओंने घणो लाभदायी बने" उनके इस वक्तव्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस ग्रंथके प्रणयनमें जहाँ उन्हें कषाय



प्राभृत और उसकी चूर्णिका भरपूर सहारा लेना पड़ा वहाँ उनके सहयोगी तथा प्रस्तावना लेखक श्री श्वे. मुनि हेमचन्द्र विजयजी कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको अपने मनगड़न्त तर्कों द्वारा श्वेताम्बर परम्पराका सिद्ध करनेका संशरण न कर सके। आगे हम उनके उन कल्पित तर्कोंपर संक्षेपमें क्रमसे विचार करेंगे जिनके आधारसे उन्होंने इन दोनोंको श्वेताम्बर परम्पराका सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है। उसमें भी सर्वप्रथम हम मूल कषायप्राभृतके ग्रन्थ परिमाणपर विचार करेंगे, क्योंकि श्वे. मुनि हेमचन्द्र विजयजीने अपनी प्रस्तावना ८ पृ. २९ में कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थिकारोंमें विभक्त १८० गाथाओंके अतिरिक्त शेष ५३ गाथाओंके प्रक्षिप्त होनेकी सम्भावना व्यक्त की है। किन्तु उसके चूर्ण सूत्रोंपर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि आचार्य श्री यतिवृषभके समझ पन्द्रह अर्थिकारोंमें विभक्त १८० सूत्र गाथाओंके समान कषायप्राभृतके अंगरूपसे उक्त ५३ सूत्रगाथायें भी रही हैं। इनपर कहीं उन्होंने चूर्णसूत्रोंकी रचना की है और कहीं उन्हें प्रकारणके अनुसार सूत्ररूपमें स्वीकार किया है। जिनके विषयमें श्वे. मुनि हेमचन्द्र विजयजीने प्रक्षिप्त होनेकी सम्भावना व्यक्त की है उनमेंसे 'पुव्वम्मि पंचम्मि दु' यह प्रथम सूत्र गाथा है जो ग्रंथके नाम निर्देशके साथ उसकी प्रामाणिकता को सूचित करती है। इसपर चूर्णसूत्र है—'णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स' इत्यादि। अब यदि इसे कषायप्राभृतकी मूल गाथा नहीं स्वीकार किया जाता है तो ( १ ) एक तो ग्रंथका नामनिर्देश आदि किये बिना ग्रंथके १५ अर्थिकारोंमेंसे कुछका निर्देश करनेवाली नं० १३ की 'पेज्ज-दोस-विहत्ती' इत्यादि सूत्रगाथासे हमें ग्रंथका प्रारम्भ माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है जो सङ्गत प्रतीत नहीं होता। ( २ ) दूसरे उक्त प्रथम गाथाके अभावमें नं० १३ की उक्त सूत्रगाथाके पूर्व चूर्णसूत्रों द्वारा पाँच प्रकारके उपक्रमके साथ 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो' इस प्रकारका निर्देश भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रकारसे चूर्ण सूत्रोंकी रचना तभी संगत प्रतीत होती है जब उनके रचे जानेवाले ग्रंथका मूल या चूर्णमें नामोल्लेख किया गया हो।

इस प्रकार सूक्ष्मतासे विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'पुव्वम्मि पंचम्मि दु' इत्यादि गाथा प्रक्षिप्त न होकर अन्य १८० गाथाओंके समान ग्रंथकी मूल गाथा ही है।

दूसरी सूत्रगाथा है—'गाहासदे असीदे' इत्यादि। इसके पूर्व पाँच प्रकारके उपक्रमके भेदोंका निर्देश करते हुए अन्तिम चूर्णसूत्र है—'अत्थाहियारो पण्णारसविहो।' यह वही गाथा है जिसके आधारसे यह कहा जाता है कि कषायप्राभृतकी कुल १८० सूत्र गाथाएँ हैं। अब यदि इसे प्रक्षिप्त माना जाता है तो ऐसे कई प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका सम्यक् समाधान इसे मूल गाथा माननेपर ही होता है। यथा—

( १ ) प्रथम तो गुणधर आचार्यको कषायप्राभृतके १५ ही अर्थिकार इष्ट रहे हैं इसे जाननेका एकमात्र उक्त सूत्रगाथा ही साधन है, अन्य नहीं। क्रमांक १३ और १४ सूत्र गाथाएँ मात्र अर्थिकारोंका नामनिर्देश करती हैं। वे १५ ही हैं इसका ज्ञान मात्र इसी सूत्र गाथासे होता है और तभी क्रमांक १३ और १४ सूत्रगाथाओंके बाद 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो अण्णेण पयारेण' इस प्रकार चूर्णसूत्रकी रचना उचित प्रतीत होती है।

( २ ) दूसरे उक्त गाथासे ही हम यह जान पाते हैं कि कषायप्राभृतकी सब गाथाएँ उसके १५ अर्थिकारोंके विवेचनमें विभक्त नहीं हैं। किन्तु उनमेंसे कुल १८० गाथाएँ ही उनके विवेचनमें विभक्त हैं। उक्त गाथा प्रकृतका विधान तो करती है, अन्यका निषेध नहीं करती। यहाँ प्रकृत १५ अर्थिकार हैं। उनमें १८० सूत्रगाथाएँ विभक्त हैं इतना मात्र निर्देश करनेके लिए आचार्य गुणधरने इस सूत्रगाथाकी रचना की है। १५ अर्थिकारोंसे सम्बद्ध गाथाओंका निषेध करनेके लिए नहीं।

इस प्रकार इस दूसरी सूत्रगाथाके भी ग्रंथका मूल अंग सिद्ध हो जानेपर इससे आगेकी क्रमांक ३ से लेकर १२ तककी १० सूत्रगाथाएँ भी कषायप्राभृतका मूल अंग सिद्ध हो जाती हैं, क्योंकि उनमें १५ अर्थिकारों सम्बन्धी १८० गाथाओंमेंसे किस अर्थिकारमें कितनी सूत्रगाथाएँ आई हैं एकमात्र इसीका विवेचन किया गया है जो उक्त दूसरी सूत्रगाथाके उत्तरार्धके अनुसार ही है। उसमें उन्हें सूत्रगाथा कहा भी गया है। यथा—'दोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि।

इसी प्रकार संक्रम अर्थाधिकारकी जो 'अट्ठावीस' इत्यादि ३५ सूत्रगाथाएँ आई हैं वे भी मूल कषायप्राभूत ही हैं और इसीलिए आचार्य यतिवृषभने उनके प्रारम्भमें 'एत्तो पयडिट्ठाणसंक्रमो । तस्स पुव्वं गमणिज्जा सुत्तसमुक्कित्तणा' इस चूर्णिसूत्रकी रचनाकर और उनके अन्तमें 'सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए' इस चूर्णिसूत्रकी रचनाकर उन्हें सूत्ररूपमें स्वीकार किया है ।

इस प्रकार सब मिलाकर उक्त ४७ सूत्रगाथाओंके मूल कषायप्राभूत सिद्ध हो जानेपर क्रमांक १५ से लेकर 'आवलिय अणायारे' इत्यादि ६ सूत्रगाथाएँ भी मूल कषायप्राभूत ही सिद्ध होती हैं, क्योंकि यद्यपि आचार्य यतिवृषभने इनके प्रारम्भमें या अन्तमें इनकी स्वीकृति सूचक किसी चूर्णिसूत्रकी रचना नहीं की है । फिर भी समग्र कषायप्राभूतपर दृष्टि डालनेसे और खासकर उपशमना-क्षणणा प्रकरणपर दृष्टि डालनेसे यही प्रतीत होता है कि समग्र भावसे अल्पवहुत्वकी सूचक इन सूत्रगाथाओंकी रचना स्वयं गुणधर आचार्यने ही की होगी । इसके लिए प्रथमोपशम सम्यक्त्वं अर्थाधिकारकी क्रमांक ९८ गाथापर दृष्टिपात कीजिए ।

इतने विवेचनसे स्पष्ट है कि आचार्य यतिवृषभको ये मूल कषायप्राभूत रूपसे ही इष्ट रही हैं । अतः सूत्रगाथाओंके संख्याविषयक उत्तरकालीन मतभेदोंको प्रामाणिक मानना और इस विषयपर टीक-टिप्पणी करना उचित प्रतीत नहीं होता । आचार्य वीरसेनने गाथाओंके संख्याविषयक मतभेदको दूर करनेके लिये जो उत्तर दिया है उसे इसी संदर्भमें देखना चाहिए ।

इस प्रकार श्वे० मुनि हेमचन्द्र विजयजीने कषायप्राभूतका परिमाण कितना है इस पर खवगसेडि ग्रन्थकी अपनी प्रस्तावनामें जो आशंका व्यक्त की है उसका निरसन कर अब आगे हम उनके उन कल्पित तर्कोंपर सांगोपांग विचार करेंगे जिनके आधारसे उन्होंने कषायप्राभूतको श्वेताम्बर आम्नायका सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है ।

( १ ) इस विषयमें उनका प्रथम तर्क है कि दिगम्बर ज्ञान भण्डार मूडविद्रीमें कषायप्राभूत मूल और उसकी चूर्ण उपलब्ध हुई है, इसलिए वह दिगम्बर आचार्यकी कृति है यह निश्चय नहीं किया जा सकता । ( प्र० पृ० ३० )

किन्तु कषायप्राभूत मूल और उसकी चूर्ण ये दोनों मूडविद्रीसे दिगम्बर ज्ञानभण्डारमें उपलब्ध हुए हैं, मात्र इसीलिए तो किसीने उन दोनोंको दिगम्बर आचार्योंकी कृति लिखा नहीं है और न ऐसा है ही । वे दिगम्बर आचार्योंकी कृति हैं इसके अनेक कारण हैं । उनमेंसे एक कारण एतद्विषयक ग्रन्थोंमें श्वेताम्बर आचार्योंकी शब्दयोजना परिपाटीसे भिन्न उसमें निबद्ध शब्दयोजना परिपाटी है । यथा—

( अ ) श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये सप्ततिकाचूर्ण कर्मप्रकृति और पंचसंग्रह आदिमें सबत्र जिस अर्थमें 'दलिय' शब्दका प्रयोग हुआ है उसी अर्थमें दिगम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कषायप्राभूत आदिमें 'पदेसग' शब्दका प्रयोग हुआ है । यथा—

'तं वेयंतो बितियकिट्टीओ ततियकिट्टीओ य दलियं वेत्तुणं सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेइ ।'

सप्ततिका चूर्ण पृ० ६६ अ० । ( देखो उक्त प्रस्तावना पृ० ३२ । )

'इच्छियठित्ठाणाओ आवलियं लंघऊण तदूलियं ।

सव्वेसु वि निक्खिवइ ठित्ठाणेसु उवरिमेसु ॥ २ ॥'

—पंचसंग्रह उद्वर्तनापवर्तनाकरण

'उवसंतद्धा अंते विहिणा ओकड्डियस्स दलियस्स ।

अज्झवसाणणुक्खस्सुदओ तिसु एक्कयरयस्स ॥ २२ ॥'

—कर्मप्रकृति उपशमनाकरण पत्र १७

अब दिगम्बर परम्पराके ग्रंथों पर दृष्टि डालिए—

'विदियादी पुण पढमा संखेज्जगुणा भवे पदसग्गे ।

विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसाहिया ॥ १७० ॥' क० प्रा० मूल

‘ताधे चैव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च पदेसग्गमोक्खियूण सुहुमसांपराइय-  
किट्टीओ णाम करेदि ।—कषाय प्राभूत चूर्ण मूल पृ० ८६२ ।

लोभस्स जहण्णिथाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि ।

षट्स्रष्टागम घवला पृ० ६, पृ० ३७९

( आ ) श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पञ्चसंग्रहमें ‘अवरित’ के लिए ‘अजय’ या ‘अजत’ शब्दका प्रयोग हुआ है, किन्तु दिग्म्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कषायप्राभूत और षट्स्रष्टा-  
गममें यह शब्द इस अर्थमें दृष्टिगोचर नहीं होता । इसके लिये कर्मप्रकृति ( श्वे० ) पर दृष्टिपात कीजिए—

वेयगसम्मद्विट्ठी चरित्तमोहुवसमाइ चिट्ठंतो ।

अजउ देशजई वा विरतो व विसोह्विअद्धाए ।—उपश० करण ॥ २७ ॥

इसी प्रकार पञ्चसंग्रहमें भी इस शब्दका इसी अर्थमें प्रयोग हुआ है ।

इनके अतिरिक्त, ‘वरिसद्वर’ ‘उव्वलण’ आदि शब्द हैं जो श्वेताम्बर परम्पराके कार्मिक ग्रन्थोंमें ही दृष्टिगोचर होते हैं, दिग्म्बर परम्पराके ग्रंथोंमें नहीं । ये कतिपय उदाहरण हैं । इनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कषायप्राभूत और उसकी चूर्ण ये दोनों श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति न होकर दिग्म्बर आचार्योंकी ही अमर कृति हैं ।

( २ ) कषायप्राभूत और उसकी चूर्णको श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति सिद्ध करनेके लिये उनका दूसरा तर्क है कि दिग्म्बर आचार्यकृत ग्रन्थोंपर श्वेताम्बर आचार्योंकी टीकाएँ और श्वेताम्बर आचार्यकृत ग्रंथोंपर दिग्म्बर आचार्योंकी टीकाएँ हैं आदि । उसी प्रकार कषायप्राभूत मूल तथा उसकी चूर्ण पर दि० आचार्योंकी टीका होनेमात्रसे उन्हें दिग्म्बर आचार्योंकी कृतिरूपसे निश्चित नहीं किया जा सकता । ( प्रस्तावना पृ० ३० )

यह उनका तर्क है । किन्तु श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा रचित कर्मग्रन्थोंसे कषायप्राभूत और उसकी चूर्णमें वर्णित पदार्थ भेदको स्पष्ट रूपसे जानते हुए भी वे ऐसा असत् विधान कैसे करते हैं इसका किसीको भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा । ‘मुद्रित कषायप्राभूत चूर्णनी प्रस्तावनामां रज्जु थरेली मान्यतानी समीक्षा’ इस उपशीर्षकके अन्तर्गत उन्होंने पदार्थ भेदके कतिपय उदाहरण स्वयं उपस्थित किये हैं । इन उदाहरणोंको उपस्थित करते हुए उन्होंने कषायप्राभूतके साथ कषायप्राभूत चूर्ण कर्मप्रकृतिचूर्ण इन ग्रन्थोंके उद्धरण दिये हैं । किन्तु श्वेताम्बर पञ्चसंग्रहको दृष्टि पथमें लेने पर विदित होता है कि उक्त ग्रन्थ भी कषायप्राभूत चूर्णका अनुसरण न कर कर्मप्रकृति चूर्णका ही अनुसरण करता है । यथा—

( १ ) मिश्रगुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृति भजनीय है इस मतका प्रतिपादन करनेवाली पञ्चसंग्रहके सत्कर्मस्वामित्वकी गाथा इस प्रकार है—

सासयणमि नियमा सम्मं भज्जं दससु संतं ॥ १३५ ॥

कर्मप्रकृति चूर्णसे भी इसी अभिप्रायकी पुष्टि होती है । ( चूर्ण सत्ताधिकार पृ० ३५ ) [प्रदेशसंक्रम प. ९४]

( २ ) संज्वलन क्रोधादिका जघन्य प्रदेशसंक्रम अन्तिम समयप्रबद्धका अन्यत्र संक्रम करते हुए क्षपक-  
के अन्तिम समयमें सर्वसंक्रमसे होता है । यह कर्मप्रकृति चूर्णकारका मत है और यही मत श्वेताम्बर पंच-  
संग्रहका भी है । यथा—

पुंसंजलणतिगाणं जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए ।

सगचरिमसमयबद्धं जं छुभइ सर्गतिमे समए ॥ ११९ ॥

( ३ ) प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टिके, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय मिथ्यात्वके तीन पुंज होनेपर एक आवलि काल तक सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वमें संक्रम नहीं होता यह कर्मप्रकृति चूर्णकारका मत है । पंचसंग्रह-  
प्रकृति संक्रम गाथा ११ की मलयगिरि टीकासे भी इसी मतकी पुष्टि होती है । यथा—

तस्यैव चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मणः आवलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न संक्रामति । —प्रकृति सं. पत्र १०

( ४ ) पुरुषवेदकी पतद्ग्रहता कब नष्ट हो जाती है इस विषयमें कर्मप्रकृति चूर्णकारका जो मत है उसी मतका निर्देश पंचसंग्रहणकी मलयगिरि टीकामें दृष्टिगोचर होता है । यथा—

पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां प्रागुक्तस्वरूपं आगालो व्यवच्छिद्यते, उदीरणा तु भवति, तस्मादेव समयादरभ्य षण्णां नोकषायाणां सत्कं दलिकं पुरुषवेदे न संक्रमयति ।

—पंच० चा० मो० ड० पत्र १९१

स्वे० पंचसंग्रहके ये कतिपय उद्धरण हैं जो मात्र कर्मप्रकृतिचूर्णिका पूरी तरह अनुसरण करते हैं, किन्तु कषायप्राभूत और उसकी चूर्णिका अनुसरण नहीं करते । इससे स्पष्ट है कि कषायप्राभूत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर आचार्योंने कभी भी अपनी परम्पराकी रचनारूपमें स्वीकार नहीं किया । यहाँ हमारे इस बातके निर्देश करनेका एक खास कारण यह भी है कि मलयगिरिके मतानुसार जिन पाँच ग्रन्थोंका पंचसंग्रहमें समावेश किया गया है उनमें एक कषायप्राभूत भी है । यदि चन्द्रधिमहत्तरको पञ्चसंग्रह श्वेताम्बर आचार्यकी कृतिरूपमें स्वीकार होता तो उन्होंने जैसे कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिको अपनी रचनामें प्रमाणरूपसे स्वीकार किया है वैसे ही वे कषायप्राभूत और उसकी चूर्णिको भी प्रमाणरूपमें स्वीकार करते । और ऐसी अवस्थामें जिन-जिन स्थलोंपर उन्हें कषायप्राभूत और कर्मप्रकृतिमें पदार्थभेद दृष्टिगोचर होता उसका उल्लेख वे अवश्य करते । किन्तु उन्होंने ऐसा न कर मात्र कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिका अनुसरण किया है । इससे स्पष्ट विदित होता है कि चन्द्रधि महत्तर कषायप्राभूत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर परम्पराका नहीं स्वीकार करते रहे ।

यहाँ हमने मात्र उन्हीं पाठोंको ध्यानमें रखकर चर्चा की है जिनका निर्देश उक्त प्रस्तावनाकारने किया है । इनके सिवाय और भी ऐसे पाठ हैं जो कर्मप्रकृति और पंचग्रहमें एक ही प्रकारकी प्ररूपणा करते हैं । परन्तु कषायप्राभूत चूर्णिके उनसे भिन्न प्रकारकी प्ररूपणा दृष्टिगोचर होती है । इसके लिए हम एक उदाहरण उद्धरेना प्रकृतियोंका देना इष्ट मानेंगे । यथा—

कषायप्राभूतचूर्णिके मोहनीयकी मात्र दो प्रकृतियाँ उद्धरेना प्रकृतियाँ स्वीकार की गई हैं—सम्यक्-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति । किन्तु पंचसंग्रह और कर्मप्रकृतिमें मोहनीयकी उद्धरेना प्रकृतियोंकी संख्या २७ है । यथा दर्शनमोहनीय की ३, लोभसंज्वलनको छोड़कर १५ कषाय और ९ नोकषाय । कषायप्राभूत-चूर्णिका पाठ—

५८ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिविहत्ती कस्स ? चरिमसमयउव्वेल्लमाणस्स । ( ५० १०१ )  
३६ एवं चेव सम्मत्तस्स वि । ( ५० १९० )

पंचसंग्रह-प्रदेशसंक्रमका पाठ—

एवं उव्वलणासंक्रमेण नासेइ अविरओहारं ।

सम्मोऽणमिच्छमीसे सच्छत्तीसऽनियट्टि जा माया ॥ ७४ ॥

इसके सिवाय पञ्चसंग्रहके प्रदेशसंक्रमप्रकरणमें एक यह गाथा भी आई है जिससे भी उक्त विषयकी पुष्टि होती है—

सम्म-मीसाइ मिच्छो सुरदुगवेउव्विच्छकमेगिदी ।

सुहुमतमुच्चमणुदुगं अंतमुहुत्तेण अणियट्टी ॥ ७५ ॥

इसमें बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी मिथ्यादृष्टि जीव उद्धरेना करता है, पंचानवे प्रकृतियोंकी सत्तावाला एकेन्द्रिय जीव देवद्विककी उद्धरेना करता है, उसके बाद वही जीव वैकियषट्ककी उद्धरेना करता है, सूक्ष्म त्रस अग्निकायिक और वायुकायिक जीव क्रमसे उच्चगोत्र और मनुष्यद्विककी उद्धरेना करता है तथा अनिवृत्तिबादर जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्वोक्त ३६ प्रकृतियोंकी उद्धरेना करता है ।

यहाँ पञ्चसंग्रहमें निरूपित पाठका उल्लेख किया है। कर्मप्रकृतिकी प्ररूपणा इससे भिन्न नहीं है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार पञ्चसंग्रहमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी परिगणना उद्वेलना प्रकृतियोंमें की गई है उसी प्रकार कर्मप्रकृतिसमें भी उन्हें उद्वेलना प्रकृतियाँ स्वीकार किया गया है। कर्मप्रकृति चूर्णमें प्रदेशसत्कर्मकी साहि-असादि प्ररूपणा करते हुए लिखा है—

अणंताणुर्वधीणं खवियकम्मसिगरस उव्वलंतस्स एगठित्तिसेसजहन्नंगं पदेससंतं एगसमयं होति ।

यह एक उदाहरण है। अन्य प्रकृतियोंके विषयमें मूल और चूर्णिका आशय इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। किन्तु जैसा कि पूर्वमें निर्देश कर आये हैं कषायप्राभृत और उसकी चूर्णमें सम्यक्त्व और सम्यग्मि-ध्यात्व इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर मोहनीयकी अन्य किसी प्रकृतिकी उद्वेलना प्रकृतिरूपसे परिगणना नहीं की गई है।

मतभेदसम्बन्धी दूसरा उदाहरण मिथ्यात्वके तीन भाग कौन जीव करता है इससे सम्बन्ध रखता है। श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पंचसंग्रहमें यह स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है कि दर्शनमोहकी उपशमना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व कर्मको तीन भागोंमें विभक्त करता है। पंचसंग्रह उपशमना प्रकरणमें कहा भी है—

उवरिमठिइअणुभागं तं च तिहा कुणइ चरिममिच्छुदए ।

देसघाईणं सम्मं इयरेणं मिच्छन्मीसाई ॥ २३ ॥

कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णमें लिखा है—

तं कालं वीयठिई तिहाणुभागेण देसघाइ त्थ ।

सम्मत्तं सम्मिस्सं मिच्छत्तं सव्वघाईओ ॥ १९ ॥

**चूर्ण**—चरिमसमयमिच्छद्विती से काले उवसमसम्मदिट्ठि होहि त्ति ताहे वित्तीयट्ठितीते तिहा अणुभागं करेति ।

अब इन दोनों प्रमाणोंके प्रकाशमें कषायप्राभृत चूर्णपर दृष्टिपात कीजिए। इसमें प्रथम समयवर्त्ती प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीवको मिथ्यात्वको तीन भागोंमें विभाजित करनेवाला कहा गया है। यथा—

१०२. चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसमसम्मत्तमोहणीओ १०३. ताघे च्वे तिणिण कम्मंसा उप्पादिदा । १०४. पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसगं देदि ( पृ० ६२८ )

यहाँ कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिके विषयमें इतना संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गाथामें जो ' तं कालं वीयठिई' पाठ है उसका चूर्णिकारने जो अनुवाद किया है वह मूलानुगामी नहीं है। मालूम पड़ता है कि चूर्णिका प्रारम्भका भाग कषायप्राभृत चूर्णिका अनुकरणमात्र है। इतना अवश्य है कि कषाय-प्राभृत चूर्णिकी वाक्यरचना पीछेके विषयविवेचनके अनुसन्धानपूर्वक की गई है और कर्मप्रकृति चूर्णिकी उक्त वाक्य रचना इससे पूर्वकी गाथा और उसकी चूर्णिके विषयविवेचनको ध्यानमें न रखकर की गई है। जहाँ तक कर्म प्रकृतिकी उक्त मूल गाथाओंपर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि उन दोनों गाथाओं द्वारा दिगम्बर आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मतका ही अनुसरण किया गया है, किन्तु उक्त चूर्ण और उसकी टीका मूलका अनुसरण न करती हुई श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मतका ही अनुसरण करती हैं। फिर भी यहाँ विसंगतिकी सूचक उल्लेखनीय बात इतनी है कि श्वेताम्बर आचार्योंने उक्त टीकाओंमें व अन्यत्र मिथ्यात्वके तीन हिस्से मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें स्वीकार करके भी उनमें मिथ्यात्वके द्रव्यका विभाग उसी समय न बतलाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें स्वीकार किया है। यहाँ विसंगति यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें तो तीन भाग होनेकी व्यवस्था स्वीकार की गई और उन तीनों भागोंमें कर्मपुंजका क्लृप्तवारा प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयसे स्वीकार किया गया।

इस प्रकार इन दोनों परम्पराओंके प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिपर दिगम्बर आचार्योंने टीका लिखी, केवल इसलिए हम उन्हें दिगम्बर आचार्योंकी कृति नहीं कहते । किन्तु उनकी शब्द-योजना, रचना शैली, और विषय विवेचन दिगम्बर परम्पराके अन्य कार्मिक साहित्यके अनुरूप है, श्वेताम्बर परम्पराके कार्मिक साहित्यके अनुरूप नहीं, इसलिए उन्हें हम दिगम्बर आचार्योंकी अमर कृति स्वीकार करते हैं ।

अब आगे जिन चार उपशीर्षकोंके अन्तर्गत उन्होंने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है उनपर क्रमसे विचार करते हैं—

( १ )

उन्होंने सर्वप्रथम 'दिगम्बर परम्पराने अमान्य तेवा कषायप्राभृत चूर्णि अन्तर्गत पदार्थों' इस उप-शीर्षकके अन्तर्गत क. प्रा. चूर्णिके ऐसे दो उल्लेख उपस्थित किये हैं जिन्हें वे स्वमतिसे दिगम्बर परम्पराके विरुद्ध समझते हैं । प्रथम उल्लेख है—“सर्वलिगोसु भङ्गजाणि ।” इस सूत्रका अर्थ है कि अतीतमें सर्व लिगोंमें बाँधा हुआ कर्म क्षपकके सत्तामें विकल्पसे होता है । इस पर उक्त प्रस्तावना लेखकका कहना है कि 'क्षपक चारित्र्यवेषमां होय पण खरो अने न पण होय चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमां रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे, एटले प्रस्तुत सूत्र दिगम्बर मान्यता थी विरुद्ध छे ।' आदि ।

अब सवाल यह है कि उक्त प्र. लेखकने उक्त सूत्र परसे यह निष्कर्ष कैसे फलित कर लिया कि 'क्षपक चारित्र्यवेषमां होय पण खरो अने न पण होय, चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमां रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे ।' कारण कि वर्तमानमें जो क्षपक है उसके अतीत कालमें कर्मबन्धके समय कौन-सा लिग था, उस लिगमें बाँधा गया कर्म क्षपकके वर्तमानमें सत्तामें नियमसे होता है या विकल्पसे होता है ? इसी अन्तर्गत शंकाको ध्यानमें रख कर यह समाधान किया गया है कि 'विकल्पसे होता है ।' इस परसे यह कहाँ फलित होता है कि वर्तमानमें वह क्षपक किसी भी वेशमें हो सकता है । भालूम पड़ता है कि अपने सम्प्रदायके व्यामोह और अपने कल्पित वेशसे कारण ही उन्होंने उक्त सूत्र परसे ऐसा गलत अभिप्राय फलित करनेकी चेष्टा की है ।

थोड़ी देरके लिये उक्त ( श्वे. ) मुनिजीने जो अभिप्राय फलित किया है यदि उसीको विचारके लिए ठीक मान लिया जाता है तो जिस गति आदिमें पूर्वमें जिन भावोंके द्वारा बाँधे गये कर्म वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे बतलाये हैं वे भाव भी वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे मानने पड़ेंगे । उदाहरणार्थ पहले सम्यग्मिथ्यात्वमें बाँधे गये कर्म वर्तमानमें जिस क्षपकके विकल्पसे बतलाये हैं तो क्या उस क्षपकके वर्तमानमें विकल्पसे सम्यग्मिथ्यात्व भी मानना पड़ेगा । यदि कहो कि नहीं, तो सम्यग्मिथ्यात्वमें बाँधे हुए जो कर्म सत्ता-रूपसे वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे होते हुए भी अतीत कालमें उन कर्मोंके बन्धके समय सम्यग्मिथ्यात्व भाव था इतना ही आशय जैसे सम्यग्मिथ्यात्व भावके विषयमें लिया जाता है उसी प्रकार सर्वलिगोंके विषयमें भी यही आशय यहाँ लेना चाहिए ।

हम यह तो स्वीकार करते हैं कि जैसे अतीत कालमें अन्य लिगोंमें बाँधे गये कर्म वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे बन जाते हैं वैसे ही अतीत कालमें जिनलिगमें बाँधे गये कर्मोंके वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे स्वीकार करनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं दिखाई देता । कारण कि संयमभावका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण और जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बतलाया है । यथा—

संजमाणुवादेण संजद-सामाइय-च्छेदोवट्ठावणमुद्धिसंजद-परिहारमुद्धिसंजद-संजदासंजदाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ॥ १०८ ॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥ उवकस्सेण अद्धपोगल-परियट्ठं देसूणं ॥ ११० ॥ —खुदाबन्ध पृ० ३२१-३२२ ।

यहाँ जयध्वला टीकाकारने उक्त सूत्रकी व्याख्या करते हुए 'णिगंथवदिरित्तसेसाणं' यह लिखकर 'सर्वलिग' पदसे निर्ग्रन्थ लिगके अतिरिक्त जो शेष सविकार सब लिगोंका ग्रहण किया है वह उन्होंने क्षपक-

श्रेणिपर आरोहण करनेवाला जीव अन्य लिंगवाला न होकर वर्तमानमें निर्ग्रन्थ ही होता है और इस अपेक्षासे उसके निर्ग्रन्थ अवस्थामें बाँधे गये कर्म भजनीय न होकर नियमसे पाये जाते हैं यह दिखलानेके लिए ही किया है, क्योंकि जो जीव अन्तरंगमें निर्ग्रन्थ होता है वह बाह्यमें नियमसे निर्ग्रन्थ होता है। किन्तु इन दोनोंके परस्पर अविनाभावको न स्वीकार कर जो श्वेताम्बर सम्प्रदायवाले इच्छानुसार वस्त्र-पात्रादि सहित अन्य वेशमें रहते हुए भी वर्तमानमें क्षपकश्रेणि आदिपर आरोहण करना या रत्नत्रयस्वरूप मुनि लिंगकी प्राप्ति मानते हैं उनके उस मतका निषेध करनेके लिए जयधवला टीकाकारने 'णिगन्धवदिरित्तसेसाणं' पदकी योजना की है। विचार कर देखा जाय तो उनके इस निर्देशमें किसी भी प्रकारकी साम्प्रदायिकताकी गन्ध न होकर वस्तुस्वरूपका उद्घाटनमात्र है, क्योंकि भीतरसे जीवनमें निर्ग्रन्थ वही हो सकता है जो वस्त्र-पात्रादिका बुद्धिपूर्वक त्यागकर बाह्यमें जिनमुद्राको पहले ही धारण कर लेता है। कोई बुद्धिपूर्वक वस्त्र-पात्र आदिको स्वीकार करे, उन्हें रखे, उनकी सम्हाल भी करे फिर भी स्वयंको वस्त्र-पात्र आदि सर्व परिग्रहका त्यागी बतलावे, इसे मात्र जीवनकी विडम्बना करनेवाला ही कहना चाहिए। अतः वर्तमानमें जिसने वस्त्र-पात्रादि सर्व परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रन्थ लिंग स्वीकार किया है वही क्षपक हो सकता है और ऐसे क्षपकके निर्ग्रन्थ लिंग ग्रहण करनेके समयसे लेकर बाँधे गये कर्म सत्तामें अवश्य पाये जाते हैं यह दिखलानेके लिये ही श्री जयधवला टीकाकारने अपनी टीकामें 'सर्वं लिंगं' पदका अर्थ 'निर्ग्रन्थ लिंग व्यतिरिक्त अन्य सब लिंग' किया है जो 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः।' इस नीतिवचनको अनुसरण करनेवाला होनेसे वर्तमानमें उपयुक्त ही है।

दूसरा उल्लेख है—२४. 'णोगम-संगह-ववहारा सव्वे इच्छंति । २५. उजुसुदो ठवणवज्जे । (क. प्रा. चूर्णि पृ. १७) इसका व्याख्यान करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन द्रव्याधिक नय हैं और ऋजुसूत्र आदि चार पर्यायार्थिक नय हैं। इस विषयमें दिगम्बर परम्परामें कहीं किसी प्रकारका मतभेद नहीं दिखलाई देता। कषायप्राभृतचूर्णिकार भी अपने चूर्णिसूत्रोंमें सर्वत्र ऋजुसूत्रनयका पर्यायार्थिकनयमें ही समावेश करते हैं। फिर भी उक्त (श्वे.) मुनिजीने अपनी प्रस्तावनामें यह उल्लेख किस आधारसे किया है कि 'कषायप्राभृतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनयको द्रव्यार्थिकनय स्वीकार करते हैं।' यह समझके बाहर है। उक्त कथनकी पुष्टि करनेवाला उनका वह वचन इस प्रकार है—'अहीं कषायप्राभृत चूर्णिकार ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिकनयमां समावेश करवा द्वारा श्वेताम्बराचार्योंनी सैद्धान्तिक परंपराने अनुसरे छे कारणके श्वेताम्बरोमें सैद्धान्तिक परम्परा ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिक नयमां समावेश करे छे.'

कषायप्राभृत चूर्णमें ऐसे चार स्थल हैं जहाँ निक्षेपोंमें नययोजना की गई है। प्रथम पेज्ज निक्षेपके भेदों की नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

२४. णोगम-संगह-ववहारा सव्वे इच्छंति । २५. उजुसुदो ठवणवज्जे । २६. सद्दणयस्स णामं भावो च । पृ. १७ ।

दूसरा 'दोस' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

३२. णोगम-संगह-ववहारा सव्वे णिक्खेवे इच्छंति । ३३. उजुसुदो ठवणवज्जे । ३४. सद्दणयस्स णामं भावो च । पृ. १७ ।

तीसरा 'संकम' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

५. णोगमो सव्वे संकमे इच्छइ । ६. संगह-ववहारा कालसंकममवणेति । ७. उजुसुदो एदं च ठवणं च अवणेइ । ८. सद्दस्स णामं भावो य । पृ. २५१ ।

चौथा 'ट्ठाण' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

१०. णोगमो सव्वाणि ठाणाणि इच्छइ । ११. संगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणेति । १२. उजुसुदो एदाणि च ठवणं च अट्ठाणं च अवणेइ । १३. सद्दणयो णामट्ठाणं संजमट्ठाणं खेतट्ठाणं भावट्ठाणं च इच्छदि । पृ. ६०७-६०८

ये चार स्थल हैं, जिनमें कौन निक्षेप किस नयका विषय है यह स्पष्ट किया गया है। स्थापना निक्षेप ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है इसे इन सब स्थलोंमें स्वीकार किया गया है। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभूत चूर्णिकारने द्रव्याधिकनयरूपसे ऋजुसूत्रनयको नहीं स्वीकार किया है, क्योंकि सादृश्य सामान्यकी विवक्षामें ही किसी अन्य वस्तुमें अन्य वस्तुकी स्थापना की जा सकती है और सादृश्य-सामान्य द्रव्याधिकनय-का विषय है, जिसे पर्यायाधिकनयका भेद ऋजुसूत्रनय नहीं स्वीकार करता। अतः यह स्पष्ट है कि कषाय-प्राभूतचूर्णिकारने ऋजुसूत्रनयको पर्यायाधिकनयरूपसे ही स्वीकार किया है, द्रव्याधिकनयरूपसे नहीं। फिर नहीं मालूम उक्त प्रस्तावनामें किस आधारसे यह विधान करनेका साहस किया है कि 'कषायप्राभूतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनयको द्रव्याधिकनयमें समावेश करनेके लिए श्वेताम्बर आचार्योंकी परम्पराका अनुसरण करते हैं।'

शायद उन्होंने अर्थनयको द्रव्याधिकनय समझकर यह विधान किया है। किन्तु यदि यही बात है तो हमें लिखना पड़ता है कि या तो यह उनकी नयविषयक अनभिज्ञताका परिणाम है या फिर इसे सम्प्रदायका व्यामोह कहना होगा। कारण कि जब कि आगममें द्रव्याधिकनयके नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीनों भेद अर्थनयस्वरूप ही स्वीकार किये गये हैं और पर्यायाधिकनयके दो भेद करके उनमेंसे ऋजुसूत्रनयको अर्थनय-स्वरूप स्वीकार किया गया है ऐसी अवस्थामें बिना आधारके उसे द्रव्याधिकनय स्वरूप बतलाना और अपने इस अभिप्रायसे कषायप्राभूतचूर्णिकारको जोड़ना इसे सम्प्रदायका व्यामोह नहीं कहा जायगा तो और क्या कहा जायगा।

यों तो सातों ही नयोंका विषय अर्थ-वस्तु है। फिर भी उनमेंसे नैगमादि तीन नय पर्यायिको गौण कर सामान्यकी मुख्यतासे वस्तुका बोध कराते हैं, इसलिए वे द्रव्याधिकरूपसे अर्थनय कहे गये हैं। ऋजुसूत्रनय सामान्यको गौणकर वर्तमान पर्यायिकी मुख्यतासे वस्तुका बोध कराता है इसलिए वह पर्यायाधिकरूपसे अर्थनय कहा गया है। और शब्दादि तीन नय यद्यपि सामान्यको गौणकर वर्तमान पर्यायिकी मुख्यतासे ही वस्तुका बोध कराते हैं। फिर भी ऋजुसूत्रसे इन शब्दादि तीन नयोंमें इतना अन्तर है कि ऋजुसूत्रनय अर्थप्रधाननय है और शब्दादि तीन नय शब्दप्रधान नय हैं। इसलिए नैगमादि सातों नय अर्थनय और शब्दनय इन दो भेदोंमें विभक्त होकर अर्थनयके चार और शब्दनयके तीन भेद हो जाते हैं। यहाँ अर्थनयके चार भेदोंमें ऋजुसूत्रनय सम्मिलित है, मात्र इसीलिए वह द्रव्याधिकनय नहीं हो जायगा। रहेगा वह पर्यायाधिक ही। षट्खण्डागम और कषायप्राभूतचूर्ण प्रभृति जितना भी दिग्म्बर आचार्यों द्वारा लिखा गया साहित्य है वह सब एक स्वरसे एकमात्र इसी अभिप्रायकी पुष्टि करता है। मालूम पड़ता है कि उक्त प्रस्तावना लेखकने दिग्म्बरसाहित्यका और स्वयं कषायप्राभूतचूर्णिका सम्यक् प्रकारसे परिशीलन किये बिना ही यह अनर्गल विधान किया है। यहाँ प्रसंगसे हम यह सूचित कर देना चाहते हैं कि श्रुतकेवली भद्रबाहुके कालमें ही वस्त्र-पात्रधारी श्वेताम्बर मतकी स्थापनाकी नींव पड़ गई थी। यह इसीसे स्पष्ट है कि श्वेताम्बर परम्परा जिनलिंगधारी भद्रबाहुको श्रुतकेवली स्वीकार करके भी उनके प्रति अनास्था दिखलाती है और इन्हें गौण कर अपनी परम्पराको स्थूलभद्र आदिसे स्वीकार करती है।

( २ )

प्रस्तावना लेखकने 'श्वेताम्बराचार्योंना ग्रन्थोंमां कषायप्राभूतना आधार साक्षी तथा अतिदेशी' इस दूसरे उपशीर्षकके अन्तर्गत श्वेताम्बर कार्मिक साहित्यमें जहाँ-जहाँ कषायप्राभूतके उल्लेखपूर्वक कषायप्राभूत और उसकी चूर्णिको विषयकी पुष्टिके रूपसे निर्दिष्ट किया गया है या विषयके स्पष्टीकरणके लिए उनको साधार उपस्थित किया गया है उनका संकलन किया है। ( १ ) उनमेंसे प्रथम उल्लेख पंचसंग्रह ( श्वे. ) का है। इसकी दूसरी गाथामें 'शतक' आदि पाँच ग्रन्थोंको संक्षिप्त कर इस पंचसंग्रह ग्रन्थकी रचना की गई है, अथवा पाँच द्वारोंके आश्रयसे इस पंचसंग्रह ग्रन्थकी रचना की गई है यह बतलाया गया है। किन्तु स्वयं चन्द्रशि महत्तरने उक्त ग्रन्थकी तीसरी गाथामें वे पाँच द्वार कौनसे, इनका जिस प्रकार नामोल्लेख कर दिया है उस प्रकार गाथारूप या वृत्तिरूप अपनी किसी भी रचनामें एक 'शतक' ग्रन्थके नामोल्लेखको छोड़कर अन्य जिन चार ग्रन्थोंके आधारसे इस पंचसंग्रह ग्रन्थकी रचना की गई है उनका नामोल्लेख नहीं किया है। अतएव



एक शतकके सिवाय अन्य जिन चार ग्रन्थोंका अपने पंचसंग्रह ग्रंथमें उन्होंने संक्षेपीकरण किया है वे चार ग्रंथ कौनसे इसका तो उसकी उक्त दोनों रचनाओंसे पता चलता नहीं। हाँ उक्त ग्रंथकी 'नमिऊण जिणं वीरं' इस मंगल गाथाकी टीकामें मलयगिरिने अवश्य ही उन पाँच ग्रंथोंका नामोल्लेख किया है। स्वयं चन्द्रवि महत्तर अपनी रचनामें पाँच द्वारोंका नामोल्लेख तो करते हैं, परन्तु उन ग्रंथोंका नामोल्लेख नहीं करते इसमें क्या रहस्य है यह अवश्य ही विचारणीय है। बहुत सम्भव तो यही दिखलाई देता है कि श्वेताम्बर परम्परामें क्षपणा आदि विधिका आनुपूर्वीसे सविस्तर कथन उपलब्ध न होनेके कारण उन्होंने कषायप्राभृत ( कषायप्राभृतमें उसकी चूर्ण भी परिगणित है ) का सहारा तो अवश्य लिया होगा, परन्तु यतः कषाय-प्राभृत श्वेताम्बर परम्पराका ग्रंथ नहीं है, अतः पञ्चसंग्रहमें किन पाँच ग्रंथोंका संग्रह है इसका पूरा स्पष्टी-कारण करना उन्होंने उचित नहीं समझा होगा।

( २ ) दूसरा उल्लेख शतकचूर्णिके टिप्पणका है। यह टिप्पण अभी तक मुद्रित नहीं हुए हैं। प्रस्तावना लेखकने अवश्य ही यह संकेत किया है कि उक्त टिप्पणमें किस कषायमें कितनी कृष्टियाँ होती हैं इस विषयकी प्ररूपणा करनेवाली कषायप्राभृतकी १६३ क्रमांक गाथा उद्धृत पाई जाती है। सो इससे यही तो समझा जा सकता है कि श्वेताम्बर परम्परामें क्षपणाविधिकी सांगोपांग प्ररूपणा न होनेसे शतकचूर्णिके कर्तने किस कषायकी कितनी कृष्टियाँ होती हैं इस विषयका विशेष विवेचन प्रायः कषायप्राभृतके आधारसे किया है यह समझकर ही उक्त टिप्पणकारने प्रमाणस्वरूप उक्त गाथा उद्धृत की होगी।

( ३ ) तीसरा उल्लेख सप्ततिका चूर्णिका है। इसमें सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी कृष्टियोंकी रचनाका निर्देशकर उनके लक्षणको कषायप्राभृतके अनुसार जाननेकी सूचना सप्ततिका चूर्णिकारने इसीलिए की जान पड़ती है कि श्वेताम्बर परम्परामें इसप्रकारका सांगोपांग विवेचन नहीं पाया जाता। सप्ततिका चूर्णिका उक्त उल्लेख इस प्रकार है—'सं वेयंतो बितियकिट्टीओ तइयकिट्टीओ य दलियं घेतूणं सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेइ । तेसि लक्खणं जहा कसायपाहुडे ।'

( ४ ) चौथा उल्लेख भी सप्ततिका चूर्णिका है। इसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें जो अनेक वक्तव्य हैं उन्हें कषायप्राभृत और कर्मप्रकृतिसंग्रहणीके अनुसार जाननेकी सूचना की गई है। सप्ततिका चूर्णिका वह उल्लेख इस प्रकार है—'एत्थ अपुव्वकरण-प्रणियट्टिअद्धासु अणेगाइ वत्तव्वगाइं जहा कसायपाहुडे कम्पगाडिसंगहणीए वा तह वत्तव्वं । सो इस विषयमें इतना ही कहना है कि कर्मप्रकृतिसंग्रहणी स्वयं एक संग्रह रचना है। अतः उसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालों में होनेवाले कार्य-विशेषोंका जो भी निर्देश उपलब्ध होता है वह सब अन्य ग्रन्थके आधारसे ही लिया गया होना चाहिए। इस विषयमें जहाँ तक हम समझ सके हैं, कषायप्राभृतचूर्ण और कर्मप्रकृति चूर्णिकी तुलना करने पर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्मप्रकृतिचूर्णिकारके समक्ष कषायप्राभृत अवश्य रही है। यथा—

१०२ चरियसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ । १०३. ताघे चव तिण्णि कम्मसा उप्पादिदा ।—कषायप्राभृतचूर्ण

अब इसके प्रकाशमें कर्मप्रकृति उपशमनाकरण गाथा १९ की चूर्णपर दृष्टिपात कीजिए—

चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसमसम्महिट्ठि होहिति ताहे बित्तीयाट्ठतीते तिइा अणुभागं करेति ।

यहाँ कर्मप्रकृति चूर्णिकारने अपने सम्प्रदायके अनुसार मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वके द्रव्यके तीन भाग हो जाते हैं, इस मतकी पुष्टि करनेके लिए उक्त वाक्य रचनाके मध्यमें 'होहिति' इतना पाठ अधिक जोड़ दिया है। बाकीकी पूरी वाक्य रचना कषायप्राभृतचूर्णसे ली गई है यह कर्मप्रकृतिकी १८ और १९वीं गाथाओं तथा उनकी चूर्णियों पर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

यह एक उदाहरण है। पूरे प्रकरण पर दृष्टिपात करनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिका उपशमना प्रकरण तथा क्षपणाविधि कषायप्राभृतचूर्णिके आधारसे लिपिबद्ध करते हुए

भी कषायप्राभृतचूर्णसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार मतभेदके स्थलोंको यथावत् कायम रखा गया है । आवश्यकता होनेपर हम इस विषयपर विस्तृत प्रकाश डालेंगे ।

( ५ ) पाँचवाँ उल्लेख भी सप्ततिकाचूर्णिका है । इसमें मोहनीयके चारके बन्धकके एकका उदय होता है इस मतका सप्ततिकाचूर्णिकारने स्वीकार कर उसकी पुष्टि कषायप्राभृत आदिसे की है । तथा साथ ही दूसरे मतका भी उल्लेख कर दिया है । सो उक्त चूर्णिकारके उक्त कथनसे इतना ही ज्ञात होता है कि उनके समक्ष कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि थी ।

इस प्रकार श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थोंके पाँच उल्लेख हैं जिनमें कषायप्राभृतके आधारसे उसके नामोल्लेखपूर्वक प्रकृत विषयकी पुष्टि ठी की गई है, परन्तु इन उल्लेखोंपरसे एक मात्र यही प्रमाणित होता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दर्शन-चरित्रमोहनीयके उपशमना-क्षणविधिकी प्ररूपणा करनेवाला सर्वांग साहित्य लिपिबद्ध न होनेसे इसकी पूति दिगम्बर आचार्योंद्वारा रचित कषायप्राभृत और उसकी चूर्णसे की गई है । परन्तु ऐसा करते हुए भी उक्त शास्त्रकारोंने उन दोनोंको श्वेताम्बर परम्पराका स्वीकार करनेका साहस भूलकर नहीं किया है । यह तो केवल उक्त प्रस्तावना लेखक श्वे. मुनि हेमचन्द्रविजयजीका ही साहस है जो बिना प्रमाणके ऐसा विधान करनेके लिए उद्यत हुए हैं । वस्तुतः देखा जाय तो एक तो कुछ अपवादोंको छोड़कर कर्मसिद्धान्तकी प्ररूपणा दोनों सम्प्रदायोंमें लगभग एक सी पाई जाती है, दूसरे जिन विषयोंकी पुष्टिमें श्वेताम्बर आचार्योंने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिका प्रमाणरूपमें उल्लेख किया है उन विषयोंका सांगोपांग विवेचन श्वेताम्बर परम्परामें उपलब्ध न होनेसे ही उन आचार्योंको ऐसा करनेके लिए बाध्य होना पड़ा है, इसलिए श्वेताम्बर आचार्योंने अपने साहित्यमें कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिकाप्रकृत विषयोंकी पुष्टिमें उल्लेख किया मात्र इसलिए उन्हें श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति घोषित करना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता ।

( ३ )

आगे खवगसेदिकी प्रस्तावनामें 'कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णिनी रचनानो काल' उपशीर्षकके अन्तर्गत प्रस्तावना लेखकने जो विचार व्यक्त किये हैं वे कथों ठीक नहीं हैं इसकी यहाँ भीमांसा की जाती है—

१. जिस प्रकार जयधवलाके प्रारम्भमें दिगम्बर परम्पराके मान्य आचार्य वीरसेनने तथा श्रुतावतारमें इन्द्रनन्दिने कषायप्राभृतके कर्तारूपमें आचार्य गुणधरका और चूर्णिसूत्रोंके कर्तारूपमें आचार्य यतिवृषभका स्मरण किया है इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परामें किसी भी पट्टावली या कार्मिक या इतर साहित्यमें इन आचार्योंका किसी भी रूपमें नामोल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता । अतः इस विषयमें उक्त प्रस्तावना लेखकका यह लिखना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि 'पट्टावलीमें पाटपरम्परामें आनेवाले प्रधानपुरुषोंके नामोंका उल्लेख होता है आदि, । क्योंकि पट्टावलिमें पाटपरम्पराके प्रधान पुरुषोंके रूपमें यदि उनका नाम नहीं भी आया था तो भी यदि वे श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य होते तो अवश्य ही किसी न किसी रूपमें कहीं न कहीं उनके नामोंका उल्लेख अवश्य ही पाया जाता । श्वेताम्बर परम्परामें इनके नामोंका उल्लेख न पाया जाना ही यह सिद्ध करता है कि इन्हें श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य मानना युक्तियुक्त नहीं है ।

२. एक बात यह भी कही गई है कि जयधवलामें एक स्थल पर गुणधरका वाचकरूपसे उल्लेख दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वे वाचकवंशके सिद्ध होनेसे श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य होने चाहिए, सो इसका समाधान यह है कि यह कोई ऐसा तर्क नहीं है कि जिससे उन्हें श्वेताम्बर परम्पराका स्वीकार करना आवश्यक समझा जाय । वाचक शब्दका अर्थ वाचना देनेवाला होता है जो श्वेताम्बर मतकी उत्पत्तिके पहलेसे ही श्रमण परम्परामें प्राचीनकालसे रुढ़ चला आ रहा है । अतः जयधवलामें गुणधरको यदि वाचक कहा भी गया है तो इससे भी उन्हें श्वेताम्बर परम्पराका आचार्य मानना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता ।

३. यह ठीक है कि श्वेताम्बर परम्परामें नन्दिसूत्रकी पट्टावलिमें तथा अन्यत्र आर्यमंक्षु और नागहस्तिका नामोल्लेख पाया जाता है और जयधवलाके प्रथम मंगलाचरणमें चूर्णिसूत्रोंके कर्ता आचार्य यतिवृषभको आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तिका अन्तेवासी कहा गया है । परन्तु मात्र यह कारण भी आचार्य

यतिवृषभको श्वेताम्बर परम्पराका माननेके लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा उक्त दोनों आचार्योंको अपनी परम्पराका स्वीकार करती है उसी प्रकार दिगम्बर परम्पराने भी उन्हें अपनी परम्पराका स्वीकार किया है, जैसा कि जयध्वला आदिके उक्त उल्लेखोंसे ज्ञात होता है ।

एक बात और है वह यह कि नन्दिसूत्रकी पट्टावलि विश्वसनीय भी नहीं मानी जा सकती, क्योंकि उसमें जिस रूपमें आर्यमंक्षु और नागहस्तिका उल्लेख पाया जाता है उसके अनुसार वे दोनों एक कालीन नहीं सिद्ध होते । श्रीमुनि जिन विजयजीका तो यहाँ तक कहना है कि यह पट्टावलि अधूरी है, क्योंकि इस पट्टावलिके आर्यमंक्षु और आर्यनागहस्तीके मध्य केवल आर्यनन्दिके स्वीकार किया गया है, किन्तु आर्यमंक्षु और आर्यनन्दिके मध्य पट्टावलि चार आचार्य और हो गये हैं जिनका उल्लेख इस पट्टावलिके छूटा हुआ है । ( श्री. नि. सं. और जैनका. ग. पृ. १२४ । )

दूसरे नन्दिसूत्रकी पट्टावलिके अलगसे ऐसा कोई उल्लेख भी दृष्टिगोचर नहीं होता, जिससे आर्यमंक्षुको स्वतन्त्ररूपसे कर्मशास्त्रका ज्ञाता स्वीकार किया जाय । उसमें आर्य नागहस्तिके अवश्य ही कर्मप्रकृतिके प्रधान स्वीकार किया गया है । इससे इस बातका सहज ही पता लगता है कि जिसने नन्दिसूत्रकी पट्टावलिका संकलन किया है उसे इस बातका पता नहीं था कि गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाएँ साक्षात् या आचार्य परम्परासे आर्यमंक्षुको प्राप्त हुई थीं, जब कि दिगम्बर परम्परामें यह प्रसिद्धि आनुपूर्वीसे चली आ रही है । यही बात आर्य नागहस्तिके विषयमें भी समझनी चाहिए, क्योंकि उस ( नन्दिसूत्र पट्टावलि ) में आर्य नागहस्तीको कर्मप्रकृतिके प्रधान स्वीकार करके भी इन्होंने तो कषाय प्राभूतका ज्ञाता स्वीकार किया गया है और न ही उन्हें गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाएँ आचार्य परम्परासे या साक्षात् प्राप्त हुई यह भी स्वीकार किया गया है । यह एक ऐसा तर्क है जो प्रत्येक विचारकको यह माननेके लिये बाध्य करता है कि कषायप्राभूत श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति न होकर दिगम्बर आचार्योंकी ही रचना है ।

तीसरे दिगम्बर परम्परामें कषायप्राभूत और चूर्णिका जो प्रारम्भ कालसे पठन-पाठन होता आ रहा है इससे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है । इन्द्रनन्दिने अपने द्वारा रचित श्रुतावतारमें आचार्य यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंके अतिरिक्त दूसरी ऐसी कई पद्धति पंजिकाओंका उल्लेख किया है जो कषायप्राभूत पर रची गई थीं ( जयध. भाग. १ प्रस्तावना पृ. ९ तथा १२ से ) । स्वयं वीरसेनने अपनी जयध्वला टीकामें ऐसी कई उच्चारणाओं, स्वलिखित उच्चारणा और वृषभदेवलिखित उच्चारणाका उल्लेख किया है जो जयध्वला टीकाके पूर्व रची गई थीं । बहुत सम्भव है कि इनमें इन्द्रनन्दि द्वारा उल्लिखित पद्धति-पंजिकाएँ भी सम्मिलित हों ( जयध. भाग १ पृ. ९ से लेकर ) ।

उक्त तथ्योंके सिवाय प्रकृतमें यह भी उल्लेखनीय है कि आचार्य यतिवृषभने अपने चूर्णिसूत्रोंमें प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान इन दो प्रकारके उपदेशोंका उल्लेख पद-पद पर किया है तथा इन दोनों प्रकारके उपदेशोंमेंसे किसका उपदेश प्रवाह्यमान है और किसका उपदेश अप्रवाह्यमान है इस विषयका स्पष्ट निर्देश स्वयं जयध्वलाकारने अपनी टीकामें किया है ( देखो प्रस्तुत भाग पृ. १८, २३-६६, ७१, ११६ और १४५ ) । सो इससे भी इस बातका पता लगता है कि कर्मविषयक किस विषयमें इन दोनों ( आर्यमंक्षु और नागहस्ति ) का क्या अभिप्राय था और उनमेंसे कौन उपदेश प्रवाह्यमान अर्थात् आचार्य परम्परासे आया हुआ था और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान अर्थात् आचार्य परम्परासे प्राप्त नहीं था, इसकी पूरी जानकारी जयध्वला टीकाकारको निःशंकासे थी ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि कषाय प्राभूत और उसके चूर्णिसूत्रोंके रचनाकालमें तथा जयध्वला टीकाके रचना कालमें शताब्दियोंका अन्तर रहते हुए भी जयध्वलाके टीकाकारने उक्त जानकारी कहाँसे प्राप्त की होगी । समाधान यह है कि यह तो जयध्वला टीकाके अवलोकनसे ही ज्ञात होता है कि उसकी रचना केवल कषायप्राभूत और उसके चूर्णिसूत्रोंके आधारपर ही न होकर उसकी रचनाके समय इन दोनों

रचनाओंसे सम्बन्ध रखनेवाला बहुत-सा उच्चारणा वृत्ति आदि रूप साहित्य जयध्वलाकारके सामने रहा है। और इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उच्चारणा वृत्ति आदि नामसे अभिहित किये गये उक्त साहित्यसे वे इस बातका निर्णय करते होंगे कि इनमेंसे कौन उपदेश अप्रवाह्यमान होकर आर्यमंक्षु द्वारा प्रतिपादित है, कौन उपदेश प्रवाह्यमान होकर आर्य नागहस्ति या दोनों द्वारा प्रतिपादित है और कौन उपदेश ऐसा है जिसके विषयमें उक्त प्रकारसे निर्णय करना, सम्भव न होनेसे केवल चूणिसूत्रोंके आधारसे प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान रूपसे उनका उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत ( १२ वें ) भागमें पद-पद पर इस विषयके ऐसे अनेक उल्लेख आये हैं जिनसे प्रत्येक पाठकको उक्त कथनकी पूरी जानकारी मिल जाती है यथा—

१. आर्यमंक्षुका उपदेश अप्रवाह्यमान है और नागहस्तिका उपदेश प्रवाह्यमान है। यथा—

अथवा अञ्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइञ्जमाणो णाम । णागहस्तिखवणाणमुवएसो पवाइञ्जंतश्रोति घेतव्वो । ( पृ. ७१ )

यहाँ उपयोग अर्थाधिकारकी ४ थी गाथाके व्याख्यानका प्रसंग है। उसमें कषाय और अनुभागकी चर्चाके प्रसंगसे आचार्य यतिवृषभने उक्त दोनों आचार्योंके दो उपदेशोंका उल्लेख किया है। उनमेंसे कषाय और अनुभाग एक हैं यह बतलानेवाले भगवान् आर्यमंक्षुके उपदेशको जयध्वलाकारके टीकाकारसे अप्रवाह्यमान कहा है और कषाय और अनुभागमें भेद बतलानेवाले नागहस्ति श्रवणके उपदेशको प्रवाह्यमान बतलाया है। ( पृ. ६६ और ७१-७२ )

२. उक्त दोनों आचार्योंका उपदेश प्रवाह्यमान होनेका प्रतिपादक वचन—तेसि चैव भयवंताणम-अमंखु-णागहस्तिथणं पसहञ्जंतेणुवएसेण ..... । ( पृ. २३ )

यहाँ क्रोधादि चारों कषायोंके कालके अल्पबहुत्वको गतिमार्गणा और चौदह जीव समासोंमें बतलानेके प्रसंगसे उक्त वचन आया है। सो यहाँ चूणिसूत्रकारने गतिमार्गणा और चौदह जीव समासोंमें मात्र प्रवाह्यमान उपदेशका निर्देश किया है अप्रवाह्यमान उपदेशका नहीं। जयध्वलाकारने भी चूणिसूत्रोंका अनुसरण कर दोनों स्थानोंमें मात्र प्रवाह्यमान उपदेशका खुलासा करते हुए 'तेसि चैव उपदेशेण चोद्स-जीवसमासेहि दंडगो भणिहिदि । ( पृ. २३ ) इस चूणिसूत्रके व्याख्यानके प्रसंगसे उसमें आये हुए 'तेसि चैव' इस पदका व्याख्यान करते हुए उक्त पदसे उक्त दोनों भगवन्तोंका ग्रहण किया है।

३. इस प्रकार उक्त दो प्रकारके उल्लेख तो ऐसे हैं जिनसे हमें उनमेंसे कौन उपदेश प्रवाह्यमान है और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान है इस बातका पता लगनेके साथ जयध्वला टीकासे उनके उपदेशका आचार्योंका भी पता लग जाता है। किन्तु चूणिसूत्रोंमें प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमानके भेदरूप कुछ ऐसे भी उपदेश संकलित हैं जिनके विषयमें जयध्वलाकारको विशेष जानकारी नहीं थी। अतः जयध्वलाकारने इनका स्पष्टीकरण तो किया है, परन्तु आचार्योंके नामोल्लेख पूर्वक उनका निर्देश नहीं किया। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस विषयमें जयध्वलाकारके समक्ष उपस्थित साहित्यमें उक्त प्रकारका विशेष निर्देश नहीं होगा, अतः उन्होंने दोनों उपदेशोंका स्पष्टीकरण मात्र करना उचित समझा। जयध्वलाके आगे दिये जानेवाले इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो जाता है—

जो एसो अणंतरपरुविदो उवएसो सो पवाइञ्जदे ..... । अपवाइञ्जंतेण पुण उवदेशेण केरिसी पयदपरुवणा होदित्ति एवविहासंकाए णिणयकरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं । ( पृ. ११६ )

इस उल्लेखमें दो प्रकारके उपदेशोंका निर्देश होते हुए भी चूणिकारकी दृष्टिमें उनके प्रवक्तारूपमें कौन प्रमुख आचार्य विवक्षित थे इसको आनुपूर्वसे लिखित या मौखिक रूपमें सम्यक् अनुश्रुति प्राप्त न होनेके कारण जयध्वलाकारने मात्र उनकी व्याख्या कर दी है।

यह है जयध्वलाकी व्याख्यानशैली। इसके टीकाकारको जिस विषयका किसी न किसी रूपमें आधार मिलता गया उसको वे उसके साथ व्याख्या करते हैं और जिस विषयका आनुपूर्वसे किसी प्रकारका आधार उपलब्ध नहीं हुआ उसको वे अनुश्रुतिके अनुसार ही व्याख्या करते हैं। टीकामें वे प्रामाणिकताको बराबर बनाये

रखते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस उपदेशको उन्होंने आर्यमंशुका बतलाया है वह भी साधार ही बतलाया है और जिसे उन्होंने नागहस्तिका बतलाया है वह भी साधार ही बतलाया है। अतः इससे सिद्ध है कि दिगम्बर परम्परामें इन दोनों आचार्योंके उपदेशोंकी आनुपूर्वी पठन-पाठन तथा टीका-टिप्पणी आदि रूपसे यथावत् कायम रही। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें ऐसा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उस परम्परामें जितना भी कार्मिक साहित्य उपलब्ध है उसमें कहीं भी अन्य गगं प्रभृति आचार्योंके मत-मतान्तरोंकी तरह इन आचार्योंका नामोल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। उक्त प्रस्तावना लेखकको चाहिए कि वे इस विषयमें एक नन्दिसूत्र पट्टाबलिको निर्णायक न मानें। किन्तु अपने कार्मिक साहित्यपर भी दृष्टिपात करें। यदि वे तुलनात्मक दृष्टिसे दोनों परम्पराओंके कार्मिक साहित्यपर सम्यक् रूपसे दृष्टिपात करेंगे तो उन्हें न केवल वास्तविकताका पता लग जायगा, किन्तु वे नन्दिसूत्रकी पट्टाबलिमें आर्यमंशु और नागहस्तिका उल्लेख होने मात्रसे उसके आधारपर कषायप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रोंको श्वेताम्बर मतका होनेका आग्रह करना भी छोड़ देंगे। ( उस परम्परामें एतद्विषयक अन्य उल्लेख नन्दिसूत्र पट्टाबलिका अनुसरण करते हैं, अतः उनपर विचार नहीं किया। )

इस प्रकार इतने विवेचनसे यह सिद्ध हो जानेपर कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्ण दिगम्बर आचार्योंकी अमर कृतियाँ हैं, चूर्णिसूत्रोंके रचनाकालका कोई विशेष मूल्य नहीं रह जाता। फिर भी इस विषयको जयध्वला प्रथम भागमें कालगणनाके प्रसंगसे अत्यन्त स्पष्टरूपमें स्वीकार कर लिया गया है कि वर्तमान त्रिलोक प्रज्ञप्तिको आचार्य यतिवृषभकी कृति स्वीकार करनेपर चूर्णिसूत्रोंकी रचनाकी यह कालगणना की जा रही है। प्रस्तावना ( पृ. ४६ ) के शब्द हैं—

‘हमने ऊपर जो समय बतलाया है वह त्रिलोकप्रज्ञप्ति और चूर्णिसूत्रोंके रचयिता यतिवृषभको एक मानकर उनकी त्रिलोकप्रज्ञप्तिके आधारपर लिखा है।’

अब यदि वर्तमान त्रिलोकप्रज्ञप्ति संग्रह ग्रन्थ होनेसे या अन्य किसी कारणसे उन्हीं आचार्य यतिवृषभकी कृति सिद्ध नहीं होती है जिनकी रचना कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्र हैं तो इसमें दिगम्बर परम्पराको या जयध्वलाके प्रस्तावना लेखकोंको कोई आपत्ति भी नहीं दिखलाई देती। यह एक स्वतन्त्र ऊहापोहका विषय है और इस विषयपर स्वतन्त्ररूपसे ऊहापोह होना चाहिए। किन्तु इस आधारपर कषायप्राभृत या उसके चूर्णिसूत्रोंको श्वेताम्बर परम्पराका सिद्ध करनेका अनुचित प्रयास करना शोभास्पद प्रतीत नहीं होता।

अपनी प्रस्तावनाके इसी प्रकरणमें उक्त प्रस्तावना लेखकने अपने साम्प्रदायिक मान्यताके आग्रहवश दिगम्बर परम्पराको एक मत बतलाकर उसकी उत्पत्ति ‘दिगम्बर मतोत्पत्तिनो काल वीर सम्वत् ६०० पछी छे।’ इन शब्दों द्वारा वीर सं० ६०० के बाद बतलाई है। सो इसे पढ़कर ऐसा लगता है कि उक्त प्रस्तावना लेखकको प्रकृत विषयके इतिहासका सम्यक् अनुसन्धान करनेकी अपेक्षा बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थस्वरूप प्राचीन श्रमण परम्परा, उसके प्राचीन साहित्य और इतिहासको श्वेताम्बरीकरण करनेकी अधिक चिन्ता दिखलाई देती है। अन्यथा वे दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परामें कौन अर्वाचीन है और कौन प्राचीन है इसका उल्लेख किये बिना उक्त साहित्यविषयक अन्य प्रमाणोंके आधारसे मात्र गुणधर और यतिवृषभ इन दोनों आचार्यों और उनकी रचनाओंके कालका ऊहापोह करते हुए अपना फलितार्थ प्रस्तुत करते।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि प्रकृतमें पहले हमने ( उक्त प्रस्तावना लेखकने ) उक्त दोनों आचार्योंको प्राचीन ( वीर नि० सं० ४६७ लगभगका ) सिद्ध किया है और उसके बाद दिगम्बरमतकी उत्पत्तिको वीर नि० ६०० वर्षके बादकी बतलाकर उन्हें श्वेताम्बर सिद्ध किया है। पर विचारकर देखा जाय तो किसी भी वस्तुको इस पद्धतिसे अपने सम्प्रदायकी सिद्ध करनेका यह उचित मार्ग नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम पूर्वमें बतला आये हैं, ऐसे अन्य अनेक प्रमाण हैं जिनसे उक्त दोनों आचार्य तथा उनकी रचनाएँ कालकी अपेक्षा प्राचीन होनेपर भी न तो वे आचार्य श्वेताम्बर सिद्ध होते हैं और न उनकी रचनाएँ ही श्वेताम्बर सिद्ध होती हैं।

अतः कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णिके रचनाकालको आधार मानकर इस प्रकरणमें इनको श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति सिद्ध करनेका जो प्रयत्न किया गया है वह किस प्रकार तर्क और प्रमाण हीन है इसका सांगोपांग विचार किया ।

( ४ )

आगे खवगसेडिकी प्रस्तावनामें 'कषायप्राभृत चूर्णिनी रचनाना काल अंगे वर्तमान सम्पादकोनी मान्यता' आदि कतिपय शीर्षकोंके अन्तर्गत प्रस्तावना लेखकने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनकी विस्तृत मीमांसाकी तत्काल आवश्यकता न होनेसे विधिरूपसे उनमेंसे कुछ मुद्दों पर संक्षेपमें प्रकाश डाल देना आवश्यक प्रतीत होता है ।

( १ ) त्रिलोक प्रज्ञप्तिके अंतमें ये दो गाथाएँ पाई जाती हैं—

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणवसहं ।  
दट्टूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए वसहं ॥  
चुण्णिस्सरूवत्थकरणसरूवपमाण होइ किं जं तं ।  
अट्टसहस्सपमाणं तिलोयपणत्तिणामाए ॥

इनमेंसे प्रथम गाथा जयधवला सम्यक्त्व अधिकारके मंगलाचरणके रूपमें पाई जाती है । उसका पाठ इस प्रकार है—

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं ।  
दुसहपरीसहविसहं जइवसहं धम्मसुत्तपाढरवसहं ॥

इसका अर्थ है कि जिनवरवृषभ, गणधरवृषभ, गुणधरवृषभ तथा दुःसह परीषहोंको जीतनेवाले और धर्मसूत्रके पाठकोंमें श्रेष्ठ यतिवृषभको तुम सब प्रणाम करो ।

त्रिलोकप्रज्ञप्तिके अन्तमें आई हुई इस गाथाका पाठभेदके होते हुए भी लगभग यही अर्थ है । पाठभेद लिपिकारोंके प्रमादसे हुआ जान पड़ता है ।

अब विचार यह करना है कि यह गाथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे उठाकर जयधवलामें निक्षिप्त की गई है या जयधवलासे उठाकर त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें निक्षिप्त की गई है । सम्यक्त्व अधिकारके प्रारम्भमें आई हुई उक्त मंगल गाथाके बाद वहाँ एक दूसरी गाथा भी पाई जाती है जिसपर दृष्टिपात करनेसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त मंगलगाथा जयधवलाके सम्यक्त्व अधिकारकी ही होनी चाहिए, क्योंकि इस गाथाके पूर्वार्ध द्वारा उक्त गाथाके मंगलार्थका समर्थनकर उत्तरार्ध द्वारा विषयका निर्देश किया गया है । वह गाथा इस प्रकार है—

इय पणमिय जिणणाहे गणणाहे तह य चेव मुणिणाहे ।  
सम्मत्तसुद्धिहेउं वोच्छं सम्मत्तमहियारं ॥

वैसे वर्तमानमें त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ जिस रूपमें पाया जाता है वह संग्रहग्रन्थ न होकर एक कर्तृक होगा यह मानना बुद्धिप्राप्त नहीं प्रतीत होता और इसीलिए जयधवलाकी प्रस्तावना ( पृ० ६५ टिप्पणी ) में यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया गया है कि 'वर्तमानमें त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ जिस रूपमें पाया जाता है उसी रूपमें आचार्य यतिवृषभने उसकी रचनाकी थी, इस बातमें हमें सन्देह है ।'

फिर भी जयधवला सम्यक्त्व अधिकारकी उक्त मंगलगाथाका 'चुण्णिस्सरूव' इत्यादि गाथाके साथ त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थके अन्तमें पाया जाना इस तथ्यको अवश्य ही सूचित करता है कि इस ग्रन्थके साथ आचार्य यतिवृषभका किसी न किसी प्रकारका सम्बन्ध अवश्य ही होना चाहिए । बहुत सम्भव है धवलामें जिस त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थका उल्लेख पाया जाता है उसकी रचना स्वयं यतिवृषभ आचार्यने की हो और उसको मिलाकर वर्तमान त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थका संग्रह किया गया हो । अन्यथा उक्त मंगलगाथाको वहाँ

लाकर रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उक्त गथाके साथ वहाँ जो 'चुण्णिस्सरूव' इत्यादि गथा पाई जाती है उसमें आये हुए 'चुण्णिस्स' पदसे भी इस तथ्यका समर्थन होता है।

आचार्य वीरसेनने अपनी जयधवला टीकामें और इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें इसकी चर्चा नहीं की इसका कारण है। बात यह है कि कषायप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रोंकी टीकाका नाम जयधवला है, अतः उसमें सम्बन्धित तथ्योंका ही खुलासा किया गया है। यही स्थिति श्रुतावतारमें इन्द्रनन्दिकी भी रही है। अतः इन दोनों आचार्योंने यदि अपनी-अपनी रचनाओंमें आचार्य यतिवृषभकी रचनारूपसे त्रिलोकप्रशस्ति ग्रन्थका उल्लेख नहीं किया तो इससे उक्त तथ्यको फलित करनेमें कोई बाधा नहीं दिखाई देती।

( २ ) इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें आचार्य गुणधर और आचार्य धरसेनको लक्ष्यकर लिखा है—

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।

न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥

गुणधर और धरसेनके अन्वयस्वरूप गुरुओंके पूर्वापर क्रमको हम नहीं जानते, क्योंकि उनके अन्वय अर्थात् गुरुजनोंका कथन करनेवाले आगम ( लिखित ) और मुनिजनोंका अभाव है।

आचार्य वीरसेनने भी श्रीधवलामें धरसेन आचार्यका और श्रीजयधवलामें गुणधर आचार्यका बहुमानके साथ उल्लेख किया है। किन्तु उन्होंने उनकी गणना पट्टधर आचार्योंमें न होनेसे उनके गुरुओंका उल्लेख नहीं किया गया है। यह सम्भव है कि इसी कारणसे इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें उक्त वचन लिखा है।

किन्तु इन दोनों स्थलोंको छोड़कर अन्यत्र इन दोनों आचार्योंका तथा पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यका नामोल्लेख न मिलनेका कारण यह है कि एक तो दिगम्बर परम्परामें इस तरहके इतिहासके संकलित करनेकी पद्धति प्रायः इन आचार्योंके बहुत काल बाद प्रारम्भ हुई। कारण वनवासी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु होनेके कारण वे सब प्रकारकी लौकिक प्रवृत्तियोंसे मुक्त होकर अपना शेष जीवन स्वाध्याय, ध्यान, अध्ययनमें ही व्यतीत करते रहते थे। कदाचित् ग्रन्थादिके निर्माणका विकल्प होने पर उनकी रचना करते भी वे तो उसमें नामादिके व्यापनकी प्रवृत्तिका प्रायः अभाव ही रहता था। यही कारण है कि पूर्व आचार्योंकी सभी कृतियाँ प्रायः प्रशस्तियोंसे रहित पाई जाती हैं। एक तो इस कारणसे उक्त आचार्योंके नामोंका उल्लेख अन्यत्र कम दृष्टिगोचर होता है।

दूसरे वे कर्मसिद्धान्त जैसे सूक्ष्म और गहन दुरूह अर्थवाले विषयका प्रतिपादन करनेवाले पौर्व ग्रन्थ हैं। इनका अवधारण करना भन्दबुद्धिजनोंको सुगम न होनेसे अन्य साहित्यके समान इनका सर्वसुलभ प्रचार कभी भी नहीं रहा। गृहस्थोंकी बात तो छोड़िये, मुनिजनोंमें भी ऐसे मेधावी विरले ही मुनि होते आये जो इनका सम्यक् प्रकारसे अवधारण करनेमें समर्थ होते रहे। इसलिए भी इनके रचयिता आचार्योंका नामोल्लेख अन्यत्र कम दृष्टिगोचर होता है। यह तो गनीमत है कि दिगम्बर परम्परामें इनका इतना इतिहास मिलता भी है। श्वेताम्बर परम्परा तो आचार्य गुणधर और यतिवृषभके नाम भी नहीं जानती। इतना ही क्यों, उस परम्परामें कर्मप्रकृति चूर्ण, सप्ततिका, शतक तथा उनकी चूर्ण आदि कतिपय जो भी कर्म विषयक मौलिक साहित्य उपलब्ध होता है उसका तो इतना भी इतिहास नहीं मिलता। प्रामाणिक ऐतिहासिक दृष्टिसे कल्पित अनेक उल्लेख न मिलनेकी अपेक्षा प्रामाणिक एक-दो उल्लेखोंका मिलना उससे कहीं अधिक हितावह है।

( ३ ) श्रीजयधवलामें आचार्य गुणधरको पूर्वोक्त एकदेशके ज्ञाता होने पर भी उन्हें वाचक कहनेमें विसंवादकी कोई बात नहीं है। नन्दिसूत्र पट्टावलिमें आर्य नागहस्तिको पूर्वधर न लिखकर मात्र विवक्षित पूर्वोक्त एकदेशरूप कर्मप्रकृतिमें प्रधान कहा गया है। फिर भी उसमें उनके यशःशील वाचकवंशकी अभिवृद्धि-की कामना की गई है।

## उपसंहार

कषायप्राभृत और उसकी चूर्ण ये दोनों दिगम्बर आचार्योंकी अमर कृतियाँ हैं इस विषयमें पूर्वमें हम सप्रमाण ऊहापोहपूर्वक संक्षेप जो कुछ भी लिख आये हैं उन सबका यह उपसंहार है—

१. कषायप्राभृत और उसकी चूर्णके रचनाकालसे लेकर उनकी महती टीका जयध्वलाके रचनाकाल तक और उसके बाद भी दिगम्बर परम्परामें उक्त ग्रन्थ-रत्नोंका बराबर पठन-पाठन होता आ रहा है। यह इसीसे स्पष्ट है कि उनपर दिगम्बर आचार्यों द्वारा अनेक उच्चारणाएँ और पद्धति प्रभृति टीकाएँ लिखी गई हैं। तथा उन्हींके आधारसे सबके अन्तमें जयध्वला टीका भी लिखी गई है तथा वर्तमान समयमें उनका हिन्दीमें रूपान्तर भी हो रहा है।

२. जयध्वलामें उल्लिखित अंग-पूर्वधारियोंकी परम्परासे ज्ञात होता है कि दिगम्बर परम्परामें तीर्थंकर भगवान् महावीरसे लेकर जो परम्परा पाई जाती है उसी परम्परामें किसी समय ये आचार्य हुए हैं। अपने श्रुतावतारमें इन्द्रनन्दिने भी इसे स्वीकार किया है।

३. इन ग्रन्थरत्नोंकी भाषा, रचनाशैली और शब्दविन्यास आदिका क्रम दिगम्बर परम्पराके एतद्विषयक अन्य साहित्यके ही अनुरूप है, श्वेताम्बर परम्पराके साहित्यके अनुरूप नहीं।

४. दि० आचार्योंकी मालिकामें गुणधर और यतिवृषभ दो आचार्य भी हुए हैं। तथा उन्हींने कषाय-प्राभृत और उसकी चूर्णकी रचना की थी, आनुपूर्वीसे इसकी अनुभूति दिगम्बर परम्परामें रही आई, श्वेताम्बर परम्परा इस विषयमें बिल्कुल अनभिज्ञ रही। यह निष्कारण नहीं होना चाहिए। स्पष्ट है, श्वेताम्बर परम्पराने इन दोनों अनुपम कृतियोंको श्वेताम्बर परम्पराके रूपमें कभी भी मान्यता नहीं दी।

५. घातक और शप्ततिका आदिमें २-४ उल्लेखों द्वारा जो कषायप्राभृतका नामनिर्देश पाया जाता है वह केवल विषयकी पुष्टिके प्रयोजनसे ही पाया जाता है। उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्ण दिगम्बर आचार्योंकी अमर रचना है।







# विषय-सूची

## उपयोग अर्थाधिकार

	पृ. सं.		पृ. सं.
मंगलाचरण	१	उक्त ओष प्ररूपणाके समान तिर्यञ्च और	
उपयोग अर्थाधिकार कहनेकी सूचना	१	मनुष्यगतिमें जाननेकी सूचना	३४
प्रथम सूत्रगाथा और उसकी व्याख्या	२	नरकगतिमें उक्त प्ररूपणा	३४
दूसरी " "	३	देवगतिमें उक्त प्ररूपणा	३७
तीसरी " "	६	उक्त प्ररूपणाके अनुसार नरकगतिमें कषायोंके	
इसके अन्तर्गत दो प्रकारकी उपयोग वर्गणाओंका		परिवर्तनवारोंके अल्पबहुत्वका निर्देश	३८
नामनिर्देश	६	देवगतिमें उक्त अल्पबहुत्व	४०
चौथी सूत्रगाथा और उसकी व्याख्या	७	तिर्यञ्च-मनुष्यगतिमें उक्त अल्पबहुत्व	४१
इसके अन्तर्गत दो प्रकारके उपदेशोंका निर्देश	७	द्वितीय गाथाका विस्तृत विवेचन	४३-६०
पाँचवीं सूत्रगाथा और उसकी व्याख्या	९	एक भवमें एक कषायके उपयोगोंकी संख्याके	
छठी " "	१०	विचारका निर्देश	४३
सातवीं " "	११	नरकगतिमें उक्त प्ररूपणा	४३
चूणिसूत्रोंद्वारा उक्त सूत्र गाथाओंके व्याख्यानकी		शेष गतियोंमें उक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना	४५
सूचना	१४	नरकगतिमें किस कषायके कितने उपयोग	
प्रथम गाथाका विस्तृत विवेचन	१४-४२	होनेपर दूसरी कषायोंके कितने उपयोग	
अद्वापरिमाण पदका अर्थ	१४	होते हैं इसका स्पष्टीकरण	४५
चारों कषायोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	१५	नरकगतिके समान देवगतिमें जाननेकी सूचना	४९
उक्त कालके विषयमें जीवस्थानसे चूणिसूत्रोंका		नरकगतिमें उक्त उपयोगविषयक अल्पबहुत्व-	
उल्लेखके आशयमें अन्तरका उल्लेख	१५	का सकारण निर्देश	५०
गतियोंमें निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा		नरकगतिके समान देवगतिमें जाननेकी सूचना	
जघन्य काल एक समयका खुलासा	१६	के साथ विशेषताका निर्देश	५९
ओषसे चारों कषायोंके कालके अल्पबहुत्वका		तृतीय गाथाका विस्तृत विवेचन	६०-६५
निर्देश	१७	उक्त समग्र गाथाके पुच्छासूत्र होनेका निर्देश	
प्रवाह्यमान उपदेशको अपेक्षा विशेष अधिक		तथा स्पष्टीकरण	६०
पदसे कितना काल लेना इसका खुलासा	१८	उपयोगवर्गणाओंके दो भेदोंका निर्देश	६१
उक्त अल्पबहुत्वविषयक आदेशप्ररूपणा	१९	उपयोग वर्गणाका स्वरूप निर्देश	६१
प्रवाह्यमान उपदेशकी अपेक्षा चारों गतियोंमें		कालोपयोगवर्गणाका स्वरूप निर्देश	६२
समुच्चयरूपसे कालविषयक अल्पबहुत्व	१९	भावोपयोगवर्गणाका स्वरूप निर्देश	६२
चौदह जीवसमासोंमें उक्त अल्पबहुत्व	२३	कालोपयोगवर्गणा और कषायोपयोगाद्वा	
प्रत्येक कषायके उपयोगवारोंके क्रमका निर्देश	२९	स्थान दोनों एक है	६२
उपयोगवार परिपाटियोंका संदृष्टि सहित विशेष		भावोपयोगवर्गणा और कषायोद्दयस्थान दोनों	
खुलासा	३०	एक है	६२

	पृ. सं.		पृ. सं.
कषायोदयस्थानोंका अल्पबहुत्व	६२	पांचवीं गाथाका विस्तृत विवेचन	८५-९१
उक्त दोनों वर्गणाओंके साथ तीन अनुयोग		उक्त गाथाके सूचनासूत्र होनाका निर्देश	८५
द्वारोंके अनुगमको सूचना	६३	उस द्वारा आठ अनुयोगद्वारोंकी सूचनाका	८५
कालापयोग वर्गणाको अपेक्षा प्ररूपणानुगम	६३	निर्देश	
प्रमाणानुगम	६३	आठ अनुयोगद्वारोंके नामोंकी गाथाके पदोंके	
अल्पबहुत्वानुगमके दो भेदोंका निर्देशपूर्वक	६३	द्वारा सूचनाका निर्देश	८६
खुलासा	६३	कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका आठ अनुयोग	
भावोपयोगवर्गणाओंकी अपेक्षा प्ररूपणानुगम	६४	द्वारोंके अलवम्बन द्वारा १३ मार्गणाओं-	
प्रमाणानुगम	६४	में अनुसन्धान करनेकी सूचना व खुलासा	८८
दोनों प्रकारका अल्पबहुत्व	६४	प्रकृतमें महादण्डक करनेकी सूचना	९०
चौथी गाथाका विस्तृत विवेचन	६५-८४	छठी गाथाका विस्तृत वि०	९१-१०८
इस गाथाके व्याख्यानमें दो प्रकारके उप-		जो-जो जीव जिस कषायमें उपयुक्त हैं वे	
देशोंके पाये जानेका निर्देश	६५	पहले क्या उसी कषायमें उपयुक्त थे	
अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कषाय और		इस पृच्छाके अनुसार विचार	९१
अनुभाग एक ही हैं इसका खुलासा	६५	वर्तमानमें मानमें उपयुक्त हुए जीवोंके मान-	
कीन गति एक कालमें एक, दो, तीन या		की अपेक्षा अतीत कालके तीन भेद	
चार कषायोंमें उपयुक्त होती है इन		करके विचार	९३
पृच्छाओंके अनुसार विचार	६८	उन्हींके क्रोधकी अपेक्षा अतीत कालके तीन	
नरक गतिमें उक्त पृच्छाके अनुसार विचार	६९	भेद करके विचार	९४
नरकगतिके समान देवगतिमें जाननेकी सूचना	७१	उन्हींके माया व लोभकी अपेक्षा अतीत काल	
प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार उक्त गाथाका	७१	के तीन भेद करके विचार	९५
विचार	७१	वर्तमानमें मानोपयुक्त जीवोंका उक्त काल	
प्रवाह्यमान उपदेशका स्वरूप	७१	बारह प्रकार हैं इसको सूचना	९५
प्रकृतमें आर्यभट्टका उपदेश अप्रवाह्यमान		वर्तमानमें क्रोधमें उपयुक्त हुए जीवोंका उक्त	
और नागहस्तिका उपदेश प्रवाह्यमान		काल ग्यारह प्रकारका होता है इसका	
इसका निर्देश	७२	खुलासा	९६
कषाय और अनुभागमें भेदका निर्देश	७२	वर्तमानमें मायामें उपयुक्त हुए जीवोंका उक्त	
तदनुसार कालशब्दके अर्थकी सूचना	७३	काल दस प्रकारका होता है इसका	
अतः एक कालका अर्थ एक कषायोपयोगाद्वा		खुलासा	९८
स्थान है यह सूचना	७३	वर्तमानमें लोभमें उपयुक्त हुए जीवोंका उक्त	
इसके अनुसार पृच्छाओंका निर्देश	७३	काल नौ प्रकारका होता है इसका	
एक-एक कषायोदय स्थानमें त्रसोंका प्रमाण		खुलासा	९९
निर्देश	७४	उक्त सब कालोंके योगकी सूचना	९९
एक-एक कषायोपयोगाद्वास्थानमें त्रसोंके		प्रकृतमें १२ स्वस्थान पद और उनकी अपेक्षा	
प्रमाणका निर्देश	७५	अल्पबहुत्वका निर्देश	१००
उक्त कथनके उपसंहारका निर्देश	७६	आगे ४२ पद अल्पबहुत्वकी सूचना	१०७
उक्त कथनके बाद नौ पदों द्वारा स्वस्थान		सातवीं गाथाका विस्तृत वि.	१०८-१४८
अल्पबहुत्वका निर्देश	७६	उक्त गाथाके अनुसार दो अर्थोंकी सूचना	१०८
छत्तीस पदों द्वारा परस्थान अल्प बहुत्वका		प्रथम अर्थकी प्ररूपणा	१०९
निर्देश	८२		

	पृ. सं.		पृ. सं.
उपयोगवर्गणाओंके दो भेदोंका निर्देश	१०९	उक्त दोनों उपदेशोंके अनुसार त्रसोंमें कथा-	
कथायोदयस्थानोंका लक्षण	१०९	योदयस्थानोंका निर्देश	११९
उपयोगाद्वास्थानोंका लक्षण	१०९	कथायोदयस्थानोंमें यवमध्यकी अपेक्षा जीवों	
उक्त दोनों स्थान उपयोगवर्गणा कहलाते हैं		का विचार	१२१
इसका निर्देश	११०	उक्त गाथाके दूसरे अर्थकी प्ररूपणा	१४०
उपयोगाद्वास्थानोंसे रहित और सहित स्थानों		का विचार	११०
का विचार	११०	उक्त विषयमें तीन श्रेणियोंकी अपेक्षा	
प्रकृतमें प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान उप-		विचार	१४१
देशका निर्देश	११६	प्रकृतमें विशेषाधिकको जाननेके लिए दो	
उक्त अर्थपदके अनुसार यवमध्यके विषयमें	११७	उपदेशोंकी सूचना	१४५
६ अनुयोगद्वारोंका निरूपण			

### चतुः स्थान अर्थाधिकार

मंगलचरण	१४९	उत्तरोत्तर अन्तिम सन्धिसे अग्रिम सन्धिमें	
चतुःस्थान अर्थाधिकारमें सर्व प्रथम गाथा		अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्प-	
सूत्रोंके जाननेकी सूचना	१५०	बहुत्वका विचार	१६३
क्रोधादि प्रत्येक कथायके चार-चार भेदोंकी		दास समान मानमें देशावरण और सर्वा-	
सूचना	१५१	वरणका विचार	१६४
यहाँ अनन्तानुबन्धी आदिकी अपेक्षा वे चार-		उक्त सब क्रम चारों कथायोंके चारों स्थानों-	
चार भेद नहीं लिये गये हैं इस विषय-		में जाननेकी सूचना	१६५
का खुलासा	१५१	उक्त स्थानोंमें से किस गतिमें कौन स्थान	
क्रोध और मान कथायके शक्तिकी अपेक्षा		बद्ध, बध्यमान, उपशान्त और उदीर्ण	
चार-चार भेदोंका स्पष्टीकरण	१५२	है इसका विचार	१६६
मायाके शक्तिकी अपेक्षा चार भेदोंका		संज्ञी आदि मार्गणाओंमें उक्त विषयका	
स्पष्टीकरण	१५५	विचार	१६७
लोभके शक्तिकी अपेक्षा चार भेदोंका		किस स्थानका वेदन करनेवाला किस स्थान	
स्पष्टीकरण	१५५	को बाधता है आदिका विचार	१६८
उक्त १६ स्थानोंमें स्थिति, अनुभाग और		असंज्ञी किन स्थानोंका व संज्ञी जीव किन	
प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका		स्थानोंका बन्ध करता है इत्यादिका	
विचार	१५७	विचार	१६९
लताके समान मानमें वर्गणाओंके अल्प-		चतुःस्थान पदकी निक्षेपयोजना	१७२
बहुत्वका निर्देश	१५८	एकैक निक्षेप पहले कह और कर आये हैं	
लताके समान मानसे प्रदेशोंकी अपेक्षा दाह		इसकी सूचना	१७३
आदिके समान मान उत्तरोत्तर अनन्त-		स्थाननिक्षेपकी विशेष प्ररूपणा	१७३
गुण हीन होनेका विधान	१६०	नैगमनयके सब निक्षेपोंकी स्वीकार करनेकी	
लताके समान अनुभाग समूह और वर्गणा-		सूचना	१७५
समूहकी अपेक्षा दाह आदिके समान		संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षा विचार	१७५
मान अधिक होनेका निर्देश	१६१		

	पृ. सं.		पृ. सं.
ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा विचार	१७५	चारों ही क्रोधस्थानोंका कालकी अपेक्षा	
घब्दनयकी अपेक्षा विचार	१७६	उदाहरणों द्वारा अर्थ साधन	१७९
प्रकृतमें भावस्थानसे प्रयोजन है इसका खुलासा	१७७	शेषका भावकी अपेक्षा उदाहरणों द्वारा अर्थसाधन	१७९
आगे सूत्रगाथाओंकी अपेक्षा स्पष्टीकरणकी सूचना	१७८	उदकराजि आदिके समान किस क्रोधका संस्कार कितने काल तक रहता है	१८०
प्रारम्भकी ४ गाथाएँ १६ स्थानोंके उदा- हरणपूर्वक अर्थ साधनोंमें आई हैं इस तथ्यका निर्देश	१७८	शेषको अनुमानसे इसी प्रकार जाननेकी सूचना	१८३

### त्यज्जन-अर्थाधिकार

मङ्गलाचरण	१८५	मायाकषायके पर्यायवाची नाम	१८८
क्रोधकषायके पर्यायवाची नाम	१८६	लोभकषायके " "	१८९
मानकषायके " "	१८७		

### सम्यक्त्व-अर्थाधिकार

मंगलाचरण	१९३	दूसरी सूत्रगाथाकी अर्थविभाषा	२०७-२२०
अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें चार सूत्र- गाथाएँ कथन योग्य	१९४	उक्त जीवके प्रकृति आदिके भेदसे चारों प्रकारके सत्कर्मका विचार	२०७
अवतार चार प्रकारका	१९४	उक्त जीवके प्रकृति आदि भेदरूप चार प्रकारके बन्धका निर्देश	२११
उपक्रमके पाँच प्रकार	१९४	उक्त जीवके उदयानुदयरूपसे उदयावलिमें प्रविष्ट होनेवाले कर्मोंका निर्देश	२१३
आनुपूर्वीके तीन भेद	१९४	यह जीव किन कर्मोंकी उदीरणा करता है इसका निर्देश	२१५
वक्तव्यताके तीन भेद	१९४	उक्त उदय-उदीरणाविषयक आदेश- प्ररूपणाका निर्देश	२१८
अनुगमका लक्षण	१९४	स्थिति-अनुभाग-प्रदेश उदीरणाका निर्देश	२२०
उनमेंसे प्रथम सूत्रगाथा और उसकी व्याख्या	१९५	तीसरी सूत्रगाथाकी अर्थविभाषा	२२१-२३०
दूसरी " "	१९६	दर्शनमोहका उपशम करनेके पूर्व ही किन कर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है इस विषयका निर्देश	२२१
तीसरी " "	१९७	प्रकृत ३४ बन्धापसरणोंका निर्देश	२२१
चौथी " "	१९८	आदेशकी अपेक्षा प्रकृतिबन्धव्युच्छित्तिका निर्देश	२२५
प्रथम सूत्रकी गाथाकी अर्थविभाषा	१९९-२०६	उक्त जीवके उदयव्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका निर्देश	२२६
दर्शनमोहका उपशम करनेवालेका परिणाम कैसा होता है इसका निर्देश	२००		
योग कौन होता है " "	२०१		
कषाय कौन और कैसी होती है इसका निर्देश	२०२		
उपयोग कौन होता है इसका निर्देश	२०३		
लेश्या कौन होती है " "	२०४		
वेद कौन होता है " "	२०५		

	पृ. सं.		पृ. सं.
उक्तविषयक आदेशप्ररूपणा	२२७	अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुणश्रेणि निक्षेप का प्रमाण	२६४
स्थिति आदिकी अपेक्षा उक्त विषयका विचार	२२९	गुणश्रेणि विन्यासक्रमका निर्देश	२६५
उक्तजीव अन्तर कहीं करता है और उपशामक कहीं होता है इसका निर्देश	२३०	स्थितिकाण्डक उत्कीर्ण काल और स्थिति-बन्धगद्दाकी तुल्यताका निर्देश	२६६
चौथी गाथाकी अर्थविभाषा	२३०-२३३	एक स्थितिकाण्डक कालमें अनुभाग काण्डकोंके-प्रमाणका निर्देश	२६७
अपूर्व-अनिवृत्तिकरण जीवके स्थितिघात-अनुभागघातका निर्देश	२३१	स्थितिकाण्डकके समाप्त होने पर अनुभाग-काण्डक और स्थितिबन्धगद्दा समाप्त होते हैं इसका निर्देश	२६८
अधःप्रवृत्तकरणके समयमें स्थिति-अनुभाग काण्डक घात नहीं होते इसका निर्देश	२३३	अपूर्व करणके प्रथम और अन्तिम समयमें स्थितिसत्कर्मका विचार	२६९
दर्शनमोहका उपशाम करनेवालेके तीन करणोंका नाम निर्देश और उनके लक्षण	२३३	उक्त सब विषयोंका अनिवृत्तिकरणमें विचार	२७१
चौथी उपशामनाडाका लक्षण सहित निर्देश	२३४	अन्तर करणविधि आदिका निर्देश	२७२
अधःप्रवृत्तकरणके लक्षणका विस्तारसे निरूपण	२३४	दर्शनमोहनीयकी जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उनका अन्तर करता है	२७५
उसी प्रसंगसे अनुकृष्टिका लक्षण व प्ररूपणा निर्बर्णनाकाण्डकका स्पष्टीकरण	२३५	अन्तर करने पर जीव उपशामक कहलाता है इसका निर्देश	२७६
प्रकारान्तरसे अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम स्थानोंके खण्डोंका निर्देश	२३६	आगाल-प्रत्यागाल विषयक सूचना	२७६
उक्त परिणामोंका विशुद्धिविषयक स्व-स्थान अल्पबहुत्व	२३८	मिथ्यात्वकी गुणश्रेणिका विशेष निर्देश	२७७
विशुद्धिविषयक परस्थान अल्पबहुत्व	२४४	शेष कर्मोंकी गुणश्रेणिका विचार	२७९
अपूर्वकरणमें परिणाम पंक्ति और विशुद्धि विषयक अल्पबहुत्व	२४५	एक आवलि काल शेष रहने पर मिथ्यात्व-का घात नहीं होता	२८०
अनिवृत्तिकरणमें परिणामस्थानोंका विचार अनादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणाके कथन करनेका निर्देश	२४२	प्रथमोपशाम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके तोम खण्ड करनेकी विधि-का निर्देश	२८१
अधःप्रवृत्तकरणमें होनेवाले और न-होने वाले कार्योंका निर्देश	२४६	मिथ्यात्वके अतिरिक्त शेष कर्मोंके विषयमें विशेष कथन	२८५
वहीं अप्रशस्त और प्रशस्त कर्मोंके अनु-भाग बन्धका निर्देश	२४७	२५ पदवाला अल्पबहुत्व दण्डक	२८६
वहीं स्थितिबन्धविषयक निर्देश	२४८	दर्शनमोहके उपशाम करनेका अधिकारी कौन जीव है इसका प्रथम व द्वितीय सूत्र गाथामें निर्देश	२९६
अपूर्वकरणमें स्थितिकाण्डकोंके प्रमाणका निर्देश	२४९	दर्शनमोहका उपशाम करते समय न होनेवाले और उसके बादमें होनेवाले कार्योंका तीसरी गाथा द्वारा निर्देश	३०२
वहीं स्थितिबन्धका विचार	२६०	दर्शनमोहका उपशाम करनेवालेके उपयोग आदिका विचार करनेका चौथी सूत्र गाथा द्वारा निर्देश	३०४
अनुभाग काण्ड तथा तद्विषयक अल्पबहुत्व-का विचार	२६१		

पृ. सं.		पृ. सं.
	उपशम करते समय मिथ्यात्वके उदयका व उपशम भावका अन्त होनेपर उसके उदयके भ्रजनीयपनेका पाँचवीं गाथा द्वारा निर्देश	
३०७	उपशम सम्म्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व आदि तीनों कर्मोंको स्थिति व अनुभाग किस प्रकार का होता है इसका छठीं गाथा द्वारा निर्देश	३१६
३०९	प्रकृतमें बन्ध प्रत्ययोंका सातवीं गाथा द्वारा निर्देश	३१७
३११	दर्शनमोहका अबन्धक कौन-कौन जोव है इसका आठवीं गाथा द्वारा विचार	३१८
३१३	दर्शन मोहका उपशम कितने काल तक होता है इसका तथा उसके बाद क्या होता है इसका नौवीं गाथा द्वारा निर्देश	३१९
३१४	प्रथमोपशम सम्म्यक्त्वकी प्राप्ति आदि दर्शन मोहके सर्वोपशमसे होती है आदिका दसवीं गाथा द्वारा निर्देश	३२१
	सम्म्यक्त्वकी प्रथम बार प्राप्तिके पूर्व तथा अप्रथम लाभके पूर्व यह जीव किस-किस भाववाला होता है इसका ग्यारहवीं गाथा द्वारा निर्देश	३२२
	मिथ्यात्व आदिके संक्रमका बारहवीं गाथा द्वारा निर्देश	३२४
	सम्म्यग्दृष्टिकी श्रद्धाका तेरहवीं गाथा द्वारा निर्देश	३२६
	मिथ्यादृष्टिकी अन्यथा श्रद्धाका चौदहवीं गाथा द्वारा निर्देश	
	सम्म्यग्मिथ्यादृष्टिके उपयोगोंका पन्द्रहवीं गाथा द्वारा निर्देश	
	उपशम सम्म्यग्दृष्टि आदिका आठ अनुयोग द्वारोके आठ ग्यसे जाननेकी सूचना	

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-नुणिसुत्तसमण्ड  
सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं  
**क सा य पा हु डं**

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका  
**जयधवला**

तत्थ

उवजोगो णाम सत्तमो अत्थाहियारो

—:❀:—

णमो अरहंताणं०

जे ते केवलदंसण-णाणुवजोगेहि जुगवदुवजुत्ता ।  
ते केवलिणो पणमिय वोच्छं उवजोगमणिओगं ॥ १ ॥

\* उवजोगे त्ति अणियोगदारस्स सुत्तं ।

---

जो केवलदर्शन और केवलज्ञान इन दोनों उपयोगोंसे युगपत् उपयुक्त हैं उन केवली जिनको नमस्कार करके उपयोग अनुयोगद्वारका कथन करता हूँ ॥ १ ॥

\* अब उपयोग अनुयोगद्वारके गाथा सूत्रोंका अणुसरण करते हैं ।

---

१. ता० प्रती 'उवजोगेत्ति अणियोगदारस्स सुत्तं' इत्येतस्य चूणिसूत्ररूपेण निर्देशो न कृतः ।



§ १. उवजोगे त्ति जमणिओगहारं कषायपाहुडस्स पण्हारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे सत्तमं कोहादिकसायाणमुवजोगसरूवणिरूवयं तस्सेदाणिमत्थविहासणे कीरमाणे तदवलंबणीभूदं<sup>१</sup> गाहासुत्तमणुसरामो त्ति भणिदं होदि । संपहि किं तं सुत्तमिदि सिस्सा-हिप्पायमासंकिय तण्णिहेसविसयं पुच्छावक्कमाह—

\* तं जहा ।

§ २. सुगमं ।

( १० ) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि को व केणहिओ ।

को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥६३॥

§ ३. एसा<sup>२</sup> ताव उवजोगाणियोगहारे पडिबद्धाणं सत्तण्णं सुत्तगाहाणं मज्झे पठमा सुत्तगाहा । संपहि एदिस्से गाहाए अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—एसा गाहा तिण्णि अत्थे परूवेइ—‘केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि’ त्ति भणिदे कोहा-दीणं कसायाणमेकेकम्मि कसायम्मि एगस्स जीवस्स केत्तियमेत्तकालमुवजोगो होदि ? किं सागरोवमं पलिदोवमं पलिदोवमासंखेज्जभागमावलियमावलि० असंखे०भागं संखेज्जसमए एगसमयं वा त्ति पुच्छा कदा होदि । एवं पुच्छिदे सव्वेसिं कसायाण-

§ १. कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंके मध्य क्रोधादि कषायोंके उपयोग स्वरूपका निरूपण करनेवाला उपयोग नामक जो सातवां अनुयोगद्वार है, इस समय उसके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए उसके आलम्बनभूत गाथासूत्रका अनुसरण करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब वह सूत्र कौन है इसप्रकार शिष्यके अभिप्रायको शंकारूपसे ग्रहणकर उसका निर्देश करनेवाले पृच्छावाक्यको कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ २. यह सूत्र सुगम है ।

\* एक जीवका एक कषायमें कितने काल तक उपयोग होता है ? किस कषायका उपयोग अन्य किस कषायके उपयोगसे अधिक है और कौन जीव किस कषायमें पुनः पुनः एक उपयोगसे उपयुक्त रहता है ॥ ६३ ॥

§ ३. उपयोग अनुयोगद्वारसे सम्बन्ध रखनेवाली सात सूत्र गाथाओंमें यह पहली सूत्र गाथा है । अब इस गाथाके अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । यथा—यह गाथा तीन अर्थोंका प्ररूपण करती है—‘केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि’ ऐसा कहने पर क्रोधादि कषायोंमें से एक एक कषायमें एक जीवका कितने काल तक उपयोग रहता है ? क्या सागरोपम, पल्योपम, पल्योपमके असंख्यातवें भाग, एक आवलि, एक आवलिके असंख्यातवें भाग, संख्यात समय

१. ता० प्रतौ -सूत इति पाठः ।

२. आ० प्रतौ एसो इति पाठः ।

मुवजोगकालो णिव्वाधादेण जहण्णक० अंतोमुहुत्तमिदि पुरदो भणिहिदि । एसो एगो अत्थो ।

§ ४. 'को व केणधिगो' एवं भणिदे कोहादिकसायाणमुवजोगकाला किमण्णोणं सरिसा विसरिसा वा त्ति अप्पाबहुअविधी पुच्छिदो होइ । एवमेसो विदियो अत्थो ।

§ ५. 'को वा कम्मि कसाए' एवं भणिदे को वा जीवो णिरयादिमग्गणाविसेस-पडिबद्धो कोहादीणं मज्झे कदमम्मि कसाए 'अभिव्वमुवजोगमुवजुत्तो' मुहुर्मुहुरूपयोगेन परिणत इत्यर्थः । णेरइयो अप्पणो भवड्ढिदीए अब्भंतरे किं कोहोवजोगेण बहुवारं परिणमइ, आहो माणोवजोगेण मायोवजोगेण लोभोवजोगेण वा ? एवं सेसासु वि गदीसु पुच्छा कायव्वा त्ति एसो एदस्स भावत्थो । एदिस्से पुच्छाए णिण्णयमुवरि चुण्णिसुत्तावलंबणेण कस्सामो । एवमेसो तदियो अत्थो । तदो एसा गाहा एवंविहेसु तिसु अत्थेसु पडिबद्धा त्ति सिद्धं । संपहि जहावसरपत्ताए विदियगाहाए अवयारं कस्सामो । तं जहा—

(११) एकम्मि भवग्गहणे एककसायम्मि कदि च उवजोगा ।

एकम्मि य उवजोगे एककसाए कदि भवा च ॥६४॥

§ ६. संपहि एदिस्से विदियगाहाए अत्थे भण्णमाणे पुव्वद्धे ताव एगं भवग्गहण-माधारं कादूण पुणो तम्मि एगकसाओवजोगा केत्तिया होंति त्ति उवजोगे आवेयभूदे

या एक समयप्रमाण काल तक उक्त उपयोग रहता है ऐसी पृच्छा की गई है । ऐसा पूछनेपर सब कषायोंका निर्व्याघातरूपसे जघन्य और उत्कृष्ट उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है यह आगे कहेंगे । यह एक अर्थ है ।

§ ४. 'को व केणधिगो' ऐसा कहने पर क्रोधादि कषायोंके उपयोगकाल परस्पर क्या सदृश हैं या विसदृश ? यह अल्पबहुत्वविधि पूछी गई है । यह दूसरा अर्थ है ।

§ ५. 'को वा कम्मि कसाए' ऐसा कहने पर नरकादि मार्गणाविशेषसे सम्बन्ध रखने वाला कौन जीव क्रोधादि कषायोंमें से किस कषायमें 'अभिव्वमुवजोगमुवजुत्तो' पुनः पुनः उपयोगरूपसे परिणत होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । नारकी जीव अपनी भव-स्थितिके भीतर क्या क्रोधके उपयोगसे बहुत बार परिणमता है अथवा मानोपयोगसे, मायोप-योगसे या लोभोपयोगसे बहुत बार परिणमता है ? इसी प्रकार श्रेय गतियोंमें भी पृच्छा करनी चाहिए यह इस कथनका भावार्थ है । इस पृच्छाका निर्णय आगे चूणिसूत्रका अवल-म्बन लेकर करेंगे । इस प्रकार यह तीसरा अर्थ है । इस प्रकार यह गाथा इस प्रकारके तीन अर्थोंमें प्रतिबद्ध है यह सिद्ध हुआ । अब अवसर प्राप्त दूसरी गाथाका अवतार करेंगे । यथा—

एक भवको आश्रय कर एक कषायमें कितने उपयोग होते हैं, उसी प्रकार एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें कितने भव होते हैं ॥६४॥

§ ६. अब इस दूसरी गाथाके अर्थका कथन करते हुए पूर्वार्धमें उपयोगको आवेय

कादूण पृच्छा कदा होदि । तं कथं ? 'एकम्हि भवग्गहणे' एवं भणिदे गिरयादीण-  
मण्णदरभवग्गहणे त्ति वुत्तं होइ । 'एक्ककसायम्हि' एवं भणिदे कोहादीणमण्णदर-  
कसायम्हि त्ति भणिदं होदि । 'कदि च उवजोगा' त्ति वुत्ते केत्तिया उवजोगा होति ?  
किं संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति पुच्छिदो होइ । गिरयादिगदीसु संखेज्जवस्सियं असंखेज्ज-  
वस्सियं वा भवग्गहणमाधारभूदं ठवेदूण तत्थ कोहादिकसायाणमुवजोगपरिणमणवारा  
केत्तिया होति ? किं संखेज्जा असंखेज्जा वा ? जम्हि वा गिरयादिभवग्गहणे अण्णदर-  
कसायोवजोगा संखेज्जा असंखेज्जा वा जादा तम्हि सेसकसायोवजोगा केत्तिया होति ?  
किं तप्पमाणा चेव होति, आहो विसरिसपरिमाणा' त्ति जो विचारो सो वि एदिस्से  
गाहाए पुच्चद्वम्मि पडिबद्धो त्ति एसो एत्थ भावत्थो ।

§ ७. 'एकम्हि य उवजोगे०' एदम्मि गाहापच्छिमद्वम्मि कोहादिकसायाणं  
संखेज्जासंखेज्जोवजोगे आधारभूदे कादूण पुणो तेसु अदीदभवा केत्तिया होति त्ति भवाण-  
भाधेयभूदाणमप्पावहुअपुच्छा कदा होइ । तत्कथमिति चेदुच्यते 'एकम्हि य उवजोगे'  
एकस्मिन्नुपयोग इत्यर्थः । 'एक्ककसाए' क्रोधादीनामन्यतमकषायप्रतिबद्ध इति यावत् ।

धनाकर यह पृच्छाकी गई है कि एक भवग्रहणको आधार करके उसमें एक कषायसम्बन्धी  
उपयोग कितने होते हैं ?

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'एकम्हि भवग्गहणे' ऐसा कहने पर नरकादि गतियोंमें से अन्यतर भवमें  
यह कहा गया है । 'एक्ककसायम्हि' ऐसा कहनेपर क्रोधादि कषायोंमें से अन्यतर कषायमें  
यह कहा गया है । 'कदि च उवजोगा' ऐसा कहनेपर कितने उपयोग होते हैं ? क्या संख्यात  
उपयोग होते हैं या असंख्यात उपयोग होते हैं यह पूछा गया है । नरकादि गतियोंमें से  
संख्यात वर्षवाले या असंख्यात वर्षवाले भवको आधाररूपसे स्थापितकर वहाँ क्रोधादि  
कषायोंके उपयोग परिणमनके बार कितने होते हैं ? क्या संख्यात होते हैं या असंख्यात होते  
हैं ? अथवा जिस नरकादि भवमें अन्यतर कषायसम्बन्धी उपयोग संख्यात या असंख्यात  
हुए हैं वहाँ शेष कषायसम्बन्धी उपयोग कितने होते हैं ? क्या तत्प्रमाण ही होते हैं या विसदृश  
प्रमाणको लिये हुए होते हैं इस प्रकार जो विचार है वह भी इस गाथाके पूर्वार्धमें प्रतिबद्ध  
है यह यहाँ भावार्थ है ।

§ ७. 'एकम्हि य उवजोगे०' गाथाके इस उत्तरार्धमें क्रोधादि कषायसम्बन्धी  
संख्यात और असंख्यात उपयोगोंको आधार करके पुनः उनमें अतीत भव कितने होते हैं इस  
प्रकार आधेयभूत भवोंके अल्पबहुत्वकी पृच्छा की गई है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'एकम्हि य उवजोगे' 'एक उपयोगमें' यह इसका अर्थ है । 'एक्ककसाए'  
क्रोधादि कषायोंमें से अन्यतम कषायसे प्रतिबद्ध एक उपयोगमें, यह उक्त कथनका तात्पर्य

‘कदि भवा च’ कियन्तो भवा सम्भवन्तीत्यतीते काले’ इति प्रश्नः कृतो भवति । अयं पुनरत्र वाक्यार्थः—णिरयादिगदीसु एयस्स जीवस्स बहुआ भवपरिवत्तणवारा अदीदकालसंबंधिणो वदिकंता । ते च दुविधा—कोहादिकसायाणं संखेज्जोवजोगिगा असंखेज्जोवजोगिगा चेदि । तत्थेगकसायस्स किं संखेज्जोवजोगिगा भवा बहुगा, आहो असंखेज्जोवजोगिगा ति सत्थाणेण पुणो परत्थाणेण च जमप्पावहुअविहाणं तमेदम्मि गाहापच्छिमद्दम्मि पडिबद्धमिदि । कथमेवंविहो अत्थो एत्थ समुवल्लभइ ति चे वुच्चदे—‘एक्कम्मि य उवजोगे’ ति एत्थतणएगसदो एगकसायविसयाणमणेगोवजोगाणं णाणाकालपडिबद्धाणं जाइदुवारेण पत्तेयत्ताणं जेण वाचओ, तेण एकस्स कसायस्स अणेगेसु उवजोगेसु अदीदकालविसएसु एगभवप्पणाए संखेज्जासंखेज्जमेयमिण्णेसु केत्तिया भवा होति ? के थोवा, के वा बहुगा ति सुत्तथावलंबणादो पयदत्थोवलद्धी ण विरुज्झदे । एवमेदे दुवे अत्था एत्थ गाहासुत्ते पडिबद्धा ।

§ ८. एदस्स गाहापच्छिमद्दस्स वक्खाणमेवं करेता वि अत्थि—जहा, एक्कम्मि य उवजोगे ति वुत्ते एगकसायविसयाणमणेगोवजोगाणं णाणाकालसंबंधीणं गहणं ण कायव्वं, किं तु एक्कस्सेव उवजोगस्स अंतोमुहुत्तकालावच्छिण्णपमाणस्स गहणं कायव्वं ।

है । ‘कदि भवा च’ कितने भव सम्भव हैं इस प्रकार अतीत कालके विषयमें यह प्रश्न किया गया है । यहाँपर इस वाक्यका यह अर्थ है—नरकादि गतिथीमें एक जीवके अतीत काल सम्बन्धी बहुत परिवर्तनवार व्यतीत हो गये हैं । वे दो प्रकारके हैं—क्रोधादि कषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगवाले भव परिवर्तनवार और असंख्यात उपयोगवाले भव परिवर्तनवार । उनमें से क्या एक कषायसम्बन्धी संख्यात उपयोगवाले भव बहुत हैं या असंख्यात उपयोगवाले भव बहुत हैं इस प्रकार स्वस्थानकी अपेक्षा और परस्थानकी अपेक्षा जो अल्प-बहुत्वका विधान है वह इस गाथाके उत्तरार्धमें प्रतिबद्ध है ।

शंका—इस प्रकारका अर्थ यहाँ कैसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—‘एक्कम्मि य उवजोगे’ इस प्रकार यहाँपर आया हुआ एक शब्द नाना-कालसम्बन्धी एक कषायविषयक अनेक उपयोगोंमें से यतः जातिद्वारा प्रत्येकका वाचक है इसलिए एक भवकी मुख्यतासे संख्यात और असंख्यात भेदवाले अतीत कालविषयक एक कषायसम्बन्धी अनेक उपयोगोंमें कितने भव होते हैं ? कौन थोड़े होते हैं और कौन बहुत होते हैं इस प्रकार सूत्रके अर्थका अवलम्बन करनेपर प्रकृत अर्थकी उपलब्धि विरोधको प्राप्त नहीं होती । इस प्रकार ये दो अर्थ इस गाथासूत्रमें प्रतिबद्ध हैं ।

§ ८. गाथाके इस उत्तरार्धका व्याख्यान इस प्रकार करनेवाले भी हैं । यथा ‘एक्कम्मि य उवजोगे’ ऐसा कहने पर एक कषायविषयक नानाकाल सम्बन्धी अनेक उपयोगोंका ग्रहण नहीं करना चाहिए, किन्तु अन्तर्मुहूर्त कालवाले एक ही उपयोगका ग्रहण करना चाहिए । पुनः

पुणो तम्मि केत्तिया भवा होंति त्ति पुच्छिदे जह० एगो भवो होदि, उक्क० दोण्णि भवग्गहणाणि त्ति वत्तव्वं । तं कथं ? एक्को तिरिक्खो मणुसो वा कोहकसायं पूरे-  
दूणंतोमुहुत्तमच्छिदो । पुणो अविणट्ठेणेव तेण कोधोवजोगेण णेरइएसुप्पादं लहदे । एवं  
च लब्भमाणे एगकसायोवजोगग्गि दुवे भवा लद्धा भवन्ति, अण्णहा वुण एगो चैव  
भवो त्ति । संपहि जहावसरपत्ताए तदियगाहाए समोदारो कीरदे । तं जहा—

(१२) उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया होंति ।

कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति ॥६५॥

§ ९. एसा तदियगाहा । संपहि एदिस्से अत्थपरूवणे कीरमाणे उवजोगवग्ग-  
णाओ णाम दुविहाओ हवन्ति—कालोवजोगवग्गणाओ च भावोवजोगवग्गणाओ च ।  
तासिं सरूवणिहेसमुवरि कस्सामो । पुणो तासिं दुविहाणं पि वग्गणाणं परूवणा पमाण-  
मप्पावहुअं च ओघादेसमेयभिण्णमेदम्मि गाहासुत्ते पडिबद्धमिदि घेत्तव्वं । ण च  
पमाणाणुगमो एक्को चैव एत्थ पडिबद्धो त्ति आसंकणिज्जं, पमाणाणुगमस्स परूवणप्पा-  
वहुआविणाभाविणो णिहेसेण तेसिं पि एत्थेवंतंभावदंसणादो । तत्थ 'उवजोगवग्ग-

उसमें कितने भव होते हैं ऐसा पूछनेपर जघन्यरूपसे एक भव होता है और उत्कृष्टरूपसे दो  
भव होते हैं ऐसा कहना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—एक तिर्यञ्च या मनुष्य क्रोधकषायको पूरकर अन्तमुहूर्त काल तक रहा  
पुनः अविनष्ट हुए उसी क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोगके साथ नारकियोंमें उत्पन्न होता है ।  
इस प्रकार उसी कषायके साथ अन्य पर्यायमें जानेपर एक कषायसम्बन्धी उपयोगमें दो भव  
प्राप्त होते हैं । अन्यथा एक ही भव प्राप्त होता है । अब अवसर प्राप्त तीसरी गाथाका अवतार  
करते हैं । यथा—

\* किस कषायमें कितनी उपयोगवर्गणाएँ होती हैं तथा किस गतिमें कितनी  
उपयोगवर्गणाएँ होती हैं ॥६५॥

§ ९. यह तीसरी गाथा है । अब इस गाथाके अर्थका कथन करने पर उपयोग वर्गणाएँ  
दो प्रकारकी होती हैं—कालोपयोगवर्गणा और भावोपयोगवर्गणा । उनके स्वरूपका निर्देश  
आगे करेंगे । उन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंकी प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ओघ और  
आदेशसे अलग-अलग इस गाथासूत्रमें निबद्ध है ऐसा यहाँ प्रहण करना चाहिए । एक  
प्रमाणानुगम ही इस गाथामें निबद्ध है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि प्ररूपणा  
और अल्पबहुत्वके अविनाभावी प्रमाणानुगमका निर्देश करनेसे उनका भी यहाँ अन्तर्भाव  
देखा जाता है । 'उपयोगवर्गणाएँ हैं' गाथाके इस पूर्वार्ध द्वारा कालोपयोगवर्गणाओं

१. ता० प्रती अण्णहा[णु]एगो इति पाठः ।

२. आ० प्रती -वग्गणा इति पाठः ।

णाओ' होंति त्ति एदेण गाहापुव्वद्वेण कालभावोवजोगवग्गणाणं पमाणपरूवणमोवेण सूचिदं । 'कदरिस्से च गदीए०' एदेण वि पच्छिमद्वेण तासिं चैवोवजोगवग्गणाणं-मादेसपरूवणा सूचिदा । तदो एवंविहत्थविसेसपरूवणद्वमेसा गाहा समोइण्णा त्ति सिद्धं । संपहि चउत्थगाहाए अवयारं कस्सामो । तं जहा—

(१३) एकम्मिह य अणुभागे एककसायम्मि एककालेण ।

उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥६६॥

§ १०. एसा चउत्थी गाहा । संपहि एदिस्से अत्थपरूवणे कीरमाणे दोहिं उवदेसेहिंइमं चउत्थगाहं वक्खारोति । तत्थ अपवाइज्जतेणुवदेसेण भण्णमाणे 'एकम्मि य अणुभागे एककसायम्मि' त्ति भणिदे जो कसायो सो चैवाणुभागो जो अणुभागो सो चैव कसायो त्ति एदेणहिप्पाएण जो क्रोध-माण-माया-लोभपरिणामो सो चैवाणु-भागो त्ति ग.....यत्तविवक्खावलंबणादो । तेण एगम्मि चैव कसाए अणुभागसण्णिदे एककालेणुवजुत्ता का गदी होदि । कदरिस्से गदीए सव्वे जीवा कोहादिकसायाणमेगदरकसायम्मि चैव एगसमएणुवजुत्ताओ लब्भति त्ति पुच्छिदं होदि । 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' एवं भणिदे दोसु तिसु चदुसु वा कसाएसु एक-कालेणुवजुत्ता का च गदी ए.....पुच्छा कदा होइ । एत्थ 'एककालेणे त्ति' वुत्ते

और भावोपयोगवर्गणाओंके प्रमाणकी प्ररूपणा ओघसे सूचित की गई है । तथा 'कदरिस्से च गदीए०' गाथाके इस उत्तरार्ध द्वारा भी उन्हीं उपयोगवर्गणाओंकी आदेशप्ररूपणा सूचित की गई है । इसलिए इस प्रकारके अर्थ विशेषका कथन करनेके लिए यह गाथा अवतीर्ण हुई है यह सिद्ध हुआ । अब चौथी गाथाका अवतार करेंगे । यथा—

\* एक अनुभागमें और एक कषायमें एक समयमें कौनसी गति सदृशरूपसे उपयुक्त होती है और कौनसी गति विसदृशरूपसे उपयुक्त होती है ॥६६॥

§ १०. यह चौथी गाथा है । अब इसके अर्थका कथन करने पर दो उपदेशोंके द्वारा इसका व्याख्यान करते हैं—उनमेंसे अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कथन करने पर 'एकम्मि य अणुभागे एककसायम्मि' ऐसा कहने पर जो कषाय है वही अनुभाग है और जो अनुभाग है वही कषाय है इस प्रकार इस अभिप्रायके अनुसार जो क्रोध, मान, माया और लोभ-परिणाम है वही अनुभाग है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहाँ पर उन दोनोंमें एकत्व विवक्षाका अवलम्बन लिया गया है । इसलिए अनुभागसंज्ञावाले एक ही कषायमें एक समयमें उपयुक्त हुई कौनसी गति है ? किस गतिमें क्रोधादि कषायोंमेंसे किसी एक कषायमें ही एक समयमें उपयुक्त हुए सब जीव पाये जाते हैं यह यहाँ पर पृच्छा की गई है । 'विसरिस-मुवजुज्जदे का च' ऐसा कहने पर दो, तीन या चार कषायोंमें एक समयमें उपयुक्त हुई कौनसी गति होती है इस प्रकारकी यहाँ पृच्छा की गई है । यहाँ गाथामें 'एककालेण' ऐसा

१. मूलप्रती चैवोवजोगवग्गणाण- इत्यत्र 'वजोग' इति पाठः वृद्धितः । ता० प्रती अयं पाठः नास्ति ।

एगसमएणे ति अत्थो धेत्तव्वो । जइ णिरुद्धगदीए सव्वो जीवरासी एगसमयम्मि एककेणेव कसाएण परिणदो होज्ज तो सरिसमुवजुत्ता णाम होइ, अण्णहा विसरिस-मुवजुत्तो ति भण्णदे, जीवसमूहवदिरिच्चाए गदीए अणुवलंभादो ।

§ ११. संपहि पवाइज्जंतेणुवएसेणत्थे भण्णत्थे अण्णो कसायो अण्णो च अणुभागो ति दोण्हं भेदविवक्खियं कादूण सुत्तत्थघडावणं कीरदे । तं जहा—‘एकम्मि अणुभागे ति वुत्ते एगकसायुदयट्ठाणे ति धेत्तव्वं । ‘एक्ककसायम्मि’ ति वुत्ते कोहा-दीणमण्णदरकसायस्स गहणं कायव्वं, अणुभागादो तस्स कथंचि पुधभावोवलंभादो । ‘एक्ककालेणे ति भणिदे एगकालोवजोगवगणाए गहणं कायव्वं । तदो एगस्स कसायस्स एगम्मि कसायोदयट्ठाणे एगकसायोवजोगट्ठाणे च सरिसमुवजुत्ता का च गदी होदि ति पुच्छासंबंधो कायव्वो । अयं पुनरत्र वाक्यार्थः—कोहादिकसायाणं मज्जे एक्केक्कस्स कसायस्स असंखेज्जलोगमेत्तकसायुदयट्ठाणाणि संखेज्जावलयमेत्तकसायोव-जोगट्ठाणाणि च अत्थि । तत्थेगस्स कसायस्स एगकसायुदयट्ठाणे एगकसायजोगट्ठाणे च एकम्मि समये उवजुत्ता का च गदी होदि । किं सव्वेसि जीवाणमेक्कवारेण तहापरिणामसंभवो अत्थि आहो णत्थि ति पुच्छिदं होइ ।

§ १२. ‘विसरिसमुवजुज्जदे का च’ एवं भणिदे दोसु कसायुदयट्ठाणेषु तिसु वा कसायु-उदयट्ठाणेषु एदेण विधिणा गंतूण जाव संखेज्जासंखेज्जकसायुदयट्ठाणेषु वा

कहने पर एक समयमें ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । यदि विवक्षित गतिमें सब जीवराशि एक समयमें एक ही कषायरूपसे परिणत होवे तो सदृश उपयुक्त संज्ञावाली वह जीवराशि कहलाती है, अन्यथा विसदृश उपयुक्त संज्ञावाली कही जाती है, क्योंकि जीवसमूहसे भिन्न गति नहीं पाई जाती है ।

§ ११. अब प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार यहाँ कथन करने पर अन्य कषाय है और अन्य अनुभाग है इस प्रकार दोनोंमें भेदविवक्षा करके सूत्रके अर्थको घटित करते हैं । यथा—‘एक्कम्मि अणुभागे’ ऐसा कहने पर उसका अर्थ एक कषाय उदयस्थान लेना चाहिए । ‘एक्ककसायम्मि’ ऐसा कहने पर क्रोधादिमेंसे अन्यतर कषायको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अनुभागसे कषायमें कथंचित् भेद पाया जाता है । ‘एक्ककालेण’ ऐसा कहनेपर एक कालोप-योगवर्गणाका ग्रहण करना चाहिए । इसलिए एक कषायके एक कषाय उदयस्थानमें और एक कषायोपयोगस्थानमें सदृशरूपसे उपयुक्त कौन-सी गति होती है ऐसा यहाँ पृच्छाका सम्बन्ध करना चाहिए । यहाँपर पूरे वाक्यका अर्थ यह है—क्रोधादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके असंख्यात लोकप्रमाण कषाय उदयस्थान और संख्यात आवलिप्रमाण कषाय उपयोगस्थान होते हैं । उनमेंसे एक कषायके एक कषाय उदयस्थानमें और कषायसम्बन्धी कालोपयोग-स्थानमें एक समयमें उपयुक्त हुई कौन-सी गति होती है । क्या सब जीवोंका एक साथ उस प्रकारका परिणाम सम्भव है या नहीं है ऐसी पृच्छा की गई है ।

§ १२. ‘विसरिसमुवजुज्जदे का च’ ऐसा कहने पर दो कषाय उदयस्थानोंमें या तीन कषाय उदयस्थानोंमें इस विधिसे संख्यात या असंख्यात कषाय उदयस्थानोंमें एक समयमें

एगकालेणुवजुत्ता का च गदी होदि । तहा दोहि कालोवजोगवग्गणाहि तीहिं वा कालोवजोगवग्गणाहिं एवं गंतूण संखेज्जासंखेज्जकालोवजोगवग्गणाहि वा पुव्वत्तकसायु-  
दयट्ठाणपडिबद्धाहिं एकवारेणुवजुत्ता का च गदी होदि ति पुच्छा कदा होदि । तदो  
एवंविहाहिप्पायभेदपडिबद्धेसु दोसु अत्थेसु चउत्थी गाहा पडिबद्धा ति सिद्धं । संपहि  
पंचमीए गाहाए अवयारं कस्सामो । तं जहा—

(१४) केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणाकसायेसु ।

केवडिया च कसाए के के च विसिस्सदे केण ॥६७॥

§ १३. एसा गाहा कसायोवजुत्ताणमट्ठ अणियोगद्वाराणि सूचेदि । तं कथं ?  
'केवडिगा उवजुत्ता' ति एदेण पढमावयवेण कसायोवजुत्ताणं दव्वपमाणाणुगमो  
सूचिदो, कोहादिकसाएसु उवजुत्ता जीवा ओघादेसेहिं केत्थिया होंति ति सुत्तत्थाव-  
लंबणादो । एदेणेव संतपरूवणा वि सूचिदा ति वेत्तव्वं, संतपरूवणाए विणा दव्व-  
पमाणाणुगमपवुत्तीए अणुववत्तीदो । खेत्त-पोसणाणं पि एत्थेव संगहो दडुव्वो, तेसिं पि  
दव्वपमाणपुरंगमाणं तप्परूवणाए चैव अंतम्भावाविरोहादो । एवमेदम्मि पढमे सुत्तावयवे  
चत्तारि अणियोगद्वाराणि णिलीणाणि होंति । तहा 'सरिसीसु च वग्गणाकसायेसु' ति  
एदम्मि विदियसुत्तावयवे कसायोवजुत्ताणं गाणेगजीवाणं कालाणुगमो सूचिदो, सरिसीसु

उपयुक्त हुई कौन-सी गति होती है, उसी प्रकार पूर्वोक्त कषाय उदयस्थानोंसे प्रतिबद्ध दो  
कालोपयोगवर्गणाओं या तीन कालोपयोगवर्गणाओंसे लेकर संख्यात या असंख्यात कालोप-  
योगवर्गणाओंमें एक समयमें उपयुक्त हुई कौन-सी गति होती है ऐसी पृच्छा की गई है ।  
इस प्रकार इस प्रकारके अभिप्रायभेदसे सम्बन्ध रखनेवाले दो अर्थोंमें यह चौथी गाथा  
प्रतिबद्ध है यह सिद्ध हुआ । अब पाँचवीं गाथाका अवतार करेंगे । यथा—

\* सदृश कषायोपयोगवर्गणाओंमें कितने जीव उपयुक्त होते हैं तथा चारों  
कषायोंमेंसे एक एक कषायमें कितने जीव उपयुक्त होते हैं और कषायोंमें उपयुक्त  
हुए कौन कौन जीव कषायोंमें उपयुक्त हुए अन्य किन जीवोंसे विशेषताको लिये हुए  
पाये जाते हैं ॥६७॥

§ १३. यह गाथा कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके आठ अनुयोगद्वारोंको सूचित करती  
है । वह कैसे ? 'केवडिया उवजुत्ता' गाथाके इस प्रथम अवयव द्वारा कषायोंमें उपयुक्त हुए  
जीवोंके द्रव्यप्रमाणानुगमका सूचन किया गया है, क्योंकि क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए  
जीव ओघ और आदेशकी अपेक्षा कितने हैं इस प्रकार यहाँ सूत्रार्थका अवलम्बन लिया  
गया है । तथा इसी वचन द्वारा सत्परूवणा सूचित की गई है ऐसा ग्रहण करना चाहिए,  
क्योंकि सत्परूवणाके विना द्रव्यप्रमाणानुगमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । क्षेत्रानुगम और  
स्पर्शनानुगमका यहीं पर संग्रह करना चाहिए, क्योंकि वे द्रव्यप्रमाणानुगमपूर्वक होते हैं,  
इसलिए उनका द्रव्यप्रमाणानुगममें अन्तर्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता । इस प्रकार सूत्रके  
इस प्रथम अवयवमें चार अनुयोगद्वार अन्तर्भूत हैं । तथा 'सरिसीसु च वग्गणाकसायेसु' इस  
प्रकार गाथासूत्रके इस दूसरे अवयवमें कषायोंमें उपयुक्त हुए नाना जीव और एक जीवविष-



समाणासु कसायोवजोगवग्गणासु केवचिरमुवजुत्ता होंति त्ति अज्झाहारं कादूण सुत्तद्दु-  
वक्खाणादो । पुणो एत्थेव अंतराणुगमस्स वि अंतब्भावो वत्तच्चो, कालंतराणमण्णोण्णाणु-  
गयत्तदंसणादो । 'केवडिगा च कसाये त्ति' एदेण वि सुत्तावयवेण चदुकसायोवजुत्ताणं  
भागाभागाणुगमो परूविदो, सच्चजीवाणं केवडिया भागा एक्केकम्मि कयाए उवजुत्ता  
होंति त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । 'के के च विसिस्सदे केण' एदेण वि कसायोव-  
जोगजुत्ताणमप्पावहुअपरूवणा सूचिदा । के के कसायोवजुत्तजीवा केण कसायोवजुत्त-  
जीवरासिणा सह सण्णियासिज्जमाणा केण गुणगारेण भागहारेण वा विसिस्संते  
अहिया होंति त्ति सुत्तत्थावलंबणादो । एवमेदेण गाहासुत्तेण कसायोवजुत्तजीवाणं  
द्व्यप्रमाणाणुगमो कालाणुगमो भागाभागाणुगमो अप्पावहुगाणुगमो च मुत्तकंठं  
परूविदाणि । सेसाणि चत्तारि अणियोगदाराणि सूचिदाणि । संपहि छट्ठीए गाहाए  
पडियद्वत्थपरूवणद्वमवयारणं कस्सामो । तं जहा—

(१५) जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते ।

होहिंति च उवजुत्ता एवं सच्चत्थ बोद्धव्वा ॥६८॥

§ १४. एसा गाहा वट्टमाणसमयम्मि कोहादिकसायोवजुत्ताणमणंताणं जीवाण-  
मदीदाणागदकालेसु तेत्तियमेत्ताणं चैव णिरुद्धकसायोवजाणेण परिणप्रणसंभवासंभव-

यक कालानुगम सूचित किया गया है, क्योंकि 'सरिसीसु' अर्थात् समान जो कषायोपयोग-  
वर्गणाएँ हैं उनमें कितने काल तक जीव उपयुक्त होते हैं इस प्रकार अध्याहार करके सूत्रके  
अर्थका व्याख्यान किया है। पुनः यहीपर अन्तरानुगमका भी अन्तर्भाव कहना चाहिए, क्योंकि  
कालानुयोगद्वार और अन्तरानुयोगद्वारका परस्पर अनुगतपना देखा जाता है। 'केवडिगा च  
कसाये' सूत्रके इस अवयवद्वारा चारों कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके भागाभागाणुगमका  
कथन किया गया है, क्योंकि सब जीवोंका कितना-कितना भाग एक-एक कषायमें उपयुक्त है,  
इसप्रकार यहाँ सूत्रार्थके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है। 'के के च विसिस्सदे केण' इस  
द्वारा भी कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके अल्पबहुत्वका कथन किया गया है। कषायोंमें  
उपयुक्त हुए कौन-कौन जीव कषायोंमें उपयुक्त हुई किस जीवराशिके साथ सन्निकर्षको प्राप्त  
होकर किस गुणकार या भागाहारके द्वारा विशेषताको प्राप्त होते हैं अर्थात् अधिक होते हैं इस  
प्रकार यहाँ सूत्रार्थका अवलम्बन लिया गया है। इस प्रकार इस गाथासूत्रके द्वारा कषायोंमें  
उपयुक्त हुए जीवोंके द्व्यप्रमाणानुगम, कालानुगम, भागाभागाणुगम और अल्पबहुत्वानुगमका  
मुत्तकण्ठ कथन किया गया है तथा शेष चार अनुयोगद्वार सूचित किये गये हैं। अब छठी  
गाथासे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थका कथन करनेके लिए अबतार करेंगे। यथा—

\* जो जो जीव जिस कषायमें उपयुक्त हैं वे सब जीव क्या अतीत कालमें उसी  
कषायमें उपयुक्त रहे हैं तथा क्या आगामी कालमें भी उसी कषायमें उपयुक्त रहेंगे !  
इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ॥६८॥

§ १४. वर्तमान समयमें जो अनन्त जीव क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हैं वे सब उतने  
ही जीव अतीत और अनागत कालमें भी विवक्षित कषायोंके उपयोगरूपसे परिणमन करते

गवेसणद्धमोइण्णा । तं कथं ? 'जे जे जम्हि कसाये०' एवं भणिदे जे जे जीवा जम्हि कसायम्मि कोहादीणमण्णदरे वट्टमाणसमयम्मि उवजुत्ता दीसंति, 'किण्णु भूदपुच्चा ते' ते जीवा अणूणाहिया संता विवक्खियकसायोवजोगेण किण्णु भूदपुच्चा संजादा, अदीदकाले तेणेव कसायोवजोगेण एकम्मि चेव समए तेत्तियमेत्ता चेव होदूण किण्णाम परिणदा त्ति पुच्छा कदा होइ । 'होहिंति च उवजुत्ता' एदेण अणागदकालविसयो पुच्छाणिदेसो कओ । एत्थ जइ वि उवरिमच्चुण्णिमुत्ते अणागयकालविसया परूवणा णत्थि तो वि एसो अत्थो एदम्मि गाहासुत्तपच्छिमद्धे पडिवद्धो त्ति गहेयव्वं, मुत्तकंठमेव णिद्धित्तादो । च्चुण्णिमुत्ते पुण तदपरूवणा अदीदकालपरूवणादो चेव गयत्थत्तपदुप्पायणद्धमिदि ण किं चि विरुद्धं । एवमेसो ओघपरूणाविसयो पुच्छाणिदेसो । पुणो आदेसेण वि गदियादिमग्गणासु एसो अत्थो अणुमग्गियव्वो त्ति पदुप्पायणद्धमिदमाह 'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' त्ति । एवमेदस्स छट्ठगाहासुत्तस्स पडिवद्धत्थपरूवणं कादूण संपहि सत्तमगाहासुत्तस्स पडिवद्धत्थपरूवणद्धमवयारो कीरदे—

(१६) उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहिदं चावि ।

पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा ॥७-६९॥

रहे हैं या करते रहेंगे इस बातकी सम्भावना और असम्भावनाका अनुसन्धान करनेके लिए यह गाथा अवतीर्ण हुई है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'जे जे जम्हि कसाए०' ऐसा कहनेपर जो जो जीव वर्तमान समयमें क्रोधादिमेंसे अन्यतर जिस कषायमें उपयुक्त दिखलाई देते हैं, 'किण्णु भूदपुच्चा ते' न्यूनाधिकतासे रहित वे सब जीव क्या अतीत कालमें विवश्रित कषायमें उपयुक्त थे अर्थात् अतीत कालमें एक ही समयमें उतने ही वे सब जीव क्या उसी कषायके उपयोगसे परिणत रहे हैं यह पृच्छा की गई है । 'होहिंति च उवजुत्ता' इस वचन द्वारा अनागत काल विषयक पृच्छाका निर्देश किया गया है । यहाँ यद्यपि आगे चूर्णिसूत्रमें अनागत काल विषयक प्ररूपणा नहीं की गई है तो भी यह अर्थ इस गाथासूत्रके उत्तरार्धमें निबद्ध है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि मुक्तकण्ठ होकर इसका गाथासूत्रमें निर्देश उपलब्ध होता है । चूर्णिसूत्रमें तो अतीत कालविषयक प्ररूपणासे ही वह गतार्थ है, इसलिए उसका निर्देश नहीं किया है; अतः इसमें कुछ भी विरुद्ध नहीं है । इस प्रकार यह ओघप्ररूपणाविषयक पृच्छाका निर्देश है । पुनः आदेशसे भी गति आदि मार्गणाओंमें इस अर्थका अनुसन्धान कर लेना चाहिए इस प्रकार इस बातका कथन करनेके लिए यह वचन कहा है—'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' । इस प्रकार इस छठे गाथासूत्रमें निबद्ध अर्थका कथन करके अब सातवें गाथासूत्रमें निबद्ध अर्थका कथन करनेके लिए अवतार करते हैं—

\* कितनी उपयोगवर्गणाओंसे कौन स्थान युक्त पाया जाता है और कौन स्थान रहित पाया जाता है । तथा प्रथम समयमें उपयुक्त जीवोंसे लेकर अन्तिम समय तक जानना चाहिए ॥७-६९॥

§ १५. एसा, सत्तमी गाहा पुव्वद्वेण चउण्हं कसायाणं कालोवजोगवग्गणासु भावोवजोगवग्गणासु च जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्टाणाणमोघादेसेहिं विसेसियूण परूवणट्टमोइण्णा । पच्छद्वेण वि चदुकसायोवजुत्तजीवाणं चदुगदिसंबंधेण तीहिं सेढीहिं अप्पावहुअपरूवणट्टमइण्णा । एवमेदेसु दोसु अत्थेसु एसा गाहा पडिबद्धा । संपहि एदिस्से पदच्छेदमुहेण किंचि अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—‘उवजोगवग्गणाहिं य’ एत्थुवजोगवग्गणामहणेण दुविहोवजोगवग्गणामहचरिदाणं जीवाणं ग्रहणं कायव्वं, ‘साहचर्यात्ताच्छब्दमिति’ न्यायात् । तेण उवजोगवग्गणाहिं ‘काहिं’ केत्तियमेत्ताहिं ‘अविरहिदं’ असुण्णं कं ठाणमुवल्लभइ ? ‘विरहिदं चावि’ सुण्णं वा होदूण कं ठाणमुवल्लभइ ति सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । अत एतदुक्तं भवति—दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ कसायउदयट्टाणाणि च उवजोगद्वट्टाणाणि च । एदेसु केत्तिएहिं कालोवजोगवग्गणाजीवेहिं भावोवजोगवग्गणाजीवेहिं वा कं ठाणमसुण्णं होदूण ल्लभइ, कं वा ठाणं तेहिं चेव दुविहोवजोगवग्गणामहचरिदजीवेहिं सुण्णं होदूण ल्लभइ ति एवंविहसुण्णासुण्णट्टाणाणमोघादेसेहिं विसेसियूण परूवणट्टमेसो गाहापुव्वद्वो समोइण्णो । तथा ‘पढमसमयोवजुत्तेहिं०’ एदेण वि गाहापच्छिमद्वेण गदीओ अस्सियूण कोहादिकसायोवजोगजुत्ताणं ति विहाए सेढीए थोववहुत्तपरूवणं सूचिदं । ण च अट्टसु अणियोगहारेसु पुव्वं परूविदप्पावहुएणेदस्स पुणरुत्तभावो आसंकणिज्जो, तत्थ सामण्णेण परूविदप्पावहुअस्स

§ १५. यह सातवीं गाथा पूर्वार्धके द्वारा चार कषायोंके कालोपयोगवर्गणाओंमें और भावोपयोगवर्गणाओंमें जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षा कथन करनेके लिए आई है। तथा उत्तरार्धके द्वारा भी चार कषायोंसे उपयुक्त जीवोंके चारों गतियोंके सम्बन्धसे तीन श्रेणियोंके द्वारा अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आई है। इस प्रकार इन दो अर्थोंमें यह गाथा निबद्ध है। अब इसके पदच्छेदद्वारा कुछ अर्थका विवरण करते हैं। यथा—‘उवजोगवग्गणाहिं य’ यहाँ उपयोगवर्गणा पदके ग्रहण करनेसे दो प्रकारकी उपयोगवर्गणाओंसे युक्त जीवोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि साहचर्यसे उक्त शब्द द्वारा प्रकृत अर्थका ग्रहण हो जाता है ऐसा न्याय है। इसलिए ‘काहिं’ कितनी ही उपयोगवर्गणाओंसे ‘अविरहिदं’ युक्त कौन स्थान प्राप्त होता है तथा ‘विरहिदं चावि’ उपयोगवर्गणाओंसे रहित कौन स्थान प्राप्त होता है इस प्रकार सूत्रार्थका सम्बन्ध करना चाहिए। इसलिए यह तात्पर्य हुआ कि उपयोगवर्गणाएँ जो दो प्रकारकी हैं—कषाय उदयस्थान और उपयोगाध्वस्थान। इनमें कितने कालोपयोगवर्गणाजीवोंसे और भावोपयोगवर्गणाजीवोंसे कौन स्थान युक्त प्राप्त होता है और कौन स्थान उन दो प्रकारकी वर्गणाओंसे युक्त जीवोंसे रहित प्राप्त होता है इस प्रकार शून्य और अशून्य स्थानोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षा कथन करनेके लिए यह गाथाका पूर्वार्ध आया है। तथा ‘पढमसमयोवजुत्तेहिं’ गाथाके इस उत्तरार्ध द्वारा भी गतियोंका आलम्बनकर क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके तीन प्रकारकी श्रेणिके माध्यमसे अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा सूचित की गई है। आठ अनुयोगद्वारोंमें पूर्वमें कहे गये अल्पबहुत्वके साथ इसका पुनरुक्तपना हो जायगा ऐसी आशंका भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वहाँ पर सामान्यरूपसे कहे गये अल्पबहुत्वका तीन प्रकारकी श्रेणियोंको विशेषण

तिविहाए सेटीए विसेसियूण पुणो वि परूवणे कीरमाणे पुणरुत्तदोसासंमवादो । अधवा तत्थ परूविदसंचयप्पावहुअस्स साहणभाषेण पवेसप्पावहुअपरूवणदुमेदमोङ्गणमिदि ण को तिथ दोसो ।

§ १६. एत्थ वुण गाहापच्छद्वे पदसंबंधो एवं कायव्वो—णिरयादिगदीसु पढम-समयोवजुत्तेहिं आढत्ता जाव चरिमसमयोवजुत्ता त्ति ताव जीवा 'बोद्धव्वा' अणुगंतव्वा त्ति । तत्थ 'पढमसमयोवजुत्तेहिं' ति भणिदे अयं वयणविसेसो सव्वत्थोवा इदि एदमादि-पदमवेक्खदे<sup>१</sup>, समयसहस्स पदवाचयस्स गहणादो । चरिमसमए च बोद्धव्वा' त्ति एदं पि वयणमंते पढमाणसव्ववहुअरासिमवेक्खदे<sup>२</sup> । तदो एकस्से गदीए कसायोवजोग-जुत्ताणं जीवाणं थोवपदं बहुअपदं च जाणियूण जीवप्पावहुअं कायव्वमिदि एसो एत्थ भावत्थो । तत्थ णिरयगदीए पढमसमयोवजुत्ता लोभकसायिजीवा चरिमसमयोवजुत्ता च कोधजीवा, देवगदीए कोहोवजुत्ता पढमा लोभोवजुत्ता चरिमा, तिरिक्ख-मणुस्सेसु माणोवजुत्ता पढमा वत्तव्वा, सव्व पच्छा लोभोवजुत्तजीवा वत्तव्वा । एत्थ गाहासुत्त-परिसमत्तीए सत्तण्हमंकविण्णासो किमडुं कदो ? एदाओ सत्त चेव गाहाओ उवजोगाणि-

बना कर फिर भी कथन करने पर पुनरुक्त दोष सम्भव नहीं है । अथवा वहाँ कहे गये संचय अल्पबहुत्वके साधनरूपसे प्रवेश अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए यह वचन आया है, इसलिए कोई दोष नहीं है ।

§ १६. यहाँ गाथाके उत्तरार्धमें इसप्रकार पदसम्बन्ध करना चाहिए—नरकादि गतिर्योमें प्रथम समयमें उपयुक्त हुए जीवोंसे लेकर अन्तिम समयमें उपयुक्त हुए जीवों तक जीव 'बोद्धव्वा' अर्थात् जानने चाहिए । वहाँ 'पढमसमयोवजुत्तेहिं' ऐसा कहने पर यह वचनविशेष 'सव्वत्थोवा' इस प्रकार इस प्रथम पदकी अपेक्षा करता है, क्योंकि समय शब्द पदका वाची ग्रहण किया गया है । 'चरिमसमए च बोद्धव्वा' इस प्रकार यह वचन भी अन्तमें कही गई सबसे बहुत राशिकी अपेक्षा करता है । इसलिए एक गतिमें कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके स्तोकपद और बहुत पदको जान कर जीवविषयक अल्पबहुत्व करना चाहिए इस प्रकार यह यहाँ पर भावार्थ है । वहाँ नरकगतिमें प्रथम समयमें उपयुक्त हुए लोभकषायवाले जीव और अन्तिम समयमें उपयुक्त हुए क्रोधकषायवाले जीव, देवगतिमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव प्रथम और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव अन्तमें तथा तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव प्रथम कहने चाहिए तथा सबसे अन्तमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव कहने चाहिए ।

शंका—यहाँ पर गाथासूत्रोंके समाप्त होने पर सातका अंकविन्यास किसलिए किया है ?

समाधान—ये सात ही गाथाएँ उपयोग अनुयोगद्वारमें निबद्ध हैं, अन्य नहीं इस

१. प्रतिषु—मुवेक्खदे इति पाठः ।

२. प्रतिषु—मुवेक्खदे इति पाठः ।

ओगदारे पडिबद्धाओ, णाण्णाओ त्ति जाणावण्डं । संपहि एदस्सेव फुडीकरणडु-  
मिदमाह—

\* एदाहो सत्त गाहाओ ।

§ १७. उवजोगाणिओगदारे पडिबद्धाओ त्ति भणिदं होइ । संपहि जहाकम-  
मेदेसिं गाहासुत्ताणमत्थविहासणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो उवरिमं पबंभमाह—

\* एदासिं विहासा काथन्वा ।

। १८. का विहासा णाम ? गाहासुत्तसूचिदस्स अत्थस्स विसेसियूण भासणं  
विहासा विवरणमिदि वुत्तं होइ ।

\* 'केवचिरं उवजोगो कम्हि कसायम्हि' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो  
अद्धापरिमाणं ।

§ १९. अद्धा कालो, तस्स परिमाणं पमाणावच्छेदो एदस्स पदस्स अत्थो होइ ।  
किं कारणं ? कियच्चिरमुपयोगः कस्मिन् कषाये भवत्येकस्य जीवस्येति प्रश्नार्थाव-  
लंबनात् ।

\* तं जहा ।

§ २०. तमद्धापरिमाणं 'जहा' कथं होदि त्ति पुच्छा कदा भवदि । एवं पुच्छा-  
विसयीकयस्स अद्धापरिमाणस्स ओघणिहेसो ताव कीरदे—

वातका ज्ञान करानेके लिए गाथासूत्रोंके अन्तमें सात संख्याका विन्यास किया है । अब  
इसीका स्पष्टीकरण करनेके लिए यह चूर्णिसूत्र कहा है—

\* ये सात गाथाएँ हैं ।

§ १७. उपयोग अनुयोगद्वारमें प्रतिबद्ध हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब यथाक्रम  
इन गाथासूत्रोंके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए चूर्णिसूत्रकारने आगेका प्रबन्ध कहा—

\* इनकी विभाषा करनी चाहिए ।

§ १८. शंका—विभाषा किसे कहते हैं ?

समाधान—गाथासूत्रोंके द्वारा सूचित हुए अर्थका विशेषरूपसे भाषण करनेको  
विभाषा कहते हैं । विभाषाका अर्थ विवरण है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* किस कषायमें कितने काल तक उपयोग रहता है इस पदका अर्थ अद्धा-  
परिमाण है ।

§ १९. अद्धा शब्द कालवाची है । उसका परिमाण अर्थात् प्रमाणावच्छेद इस पदका  
अर्थ है, क्योंकि किस कषायमें एक जीवका कितने काल तक उपयोग रहता है इस प्रश्नके  
अर्थका अवलम्बन लिया गया है ।

\* वह कैसे ?

§ २०. वह अद्धापरिमाण 'जहा' कैसे होता है इस प्रकार पृच्छा की गई है । इस  
प्रकार पृच्छाके विषय हुए अद्धापरिमाणका ओघसे निर्देश सर्व प्रथम करते हैं—

\* कोधद्धा माणद्धा मायद्धा लोहद्धा जहण्णियाओ वि उक्कस्सि-  
याओ वि अंतोमुहुत्तां ।

§ २१. कोह-माण-माया-लोभाणमुवजोगकालो जहण्णओ वि उक्कस्सओ वि अंतोमुहुत्तपरिमाणो चि भणिदं होइ । अंतोमुहुत्तादो अब्भहियपमाणो<sup>१</sup> कोहादीणमुव-जोगकालो किण्णोवल्लभदे ? ण, ततो परं कसायपरावत्तीए विणा अवट्टाणासंभवादो<sup>२</sup> । कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । कोहादिकसायोवजोगजुत्ताणं जहण्णकालो मरण-वाघादेहिं एगसमयमेत्तो चि जीवट्टाणादिसु परूविदो सो एत्थ किण्ण इच्छि-ज्जदे ? ण, चुण्णिसुत्ताहिप्पाएण तहासंभवाणुवलंभादो । एवमोषेण कोहादिकसायोव-जोगजुत्ताणं जहण्णुक्कस्सकालणिदेसो कओ । संपहि आदेसगयविसेसपरूवणट्टमुगार-सुरमाह—

\* क्रोधकषायका काल, मानकषायका काल, मायाकषायका काल और लोभ कषायका काल जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २१. क्रोध, मान, माया और लोभका उपयोगकाल जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—क्रोधादि कषायोंका उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक प्रमाणवाला क्यों उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषायोंके परावर्तनके बिना उससे अधिक कालतक उनका अवस्थान असम्भव है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका मरण और व्याघातसे जघन्य काल एक समयमात्र जीवस्थान आदिमें कहा है वह यहाँ पर क्यों स्वीकार नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चूर्णिसूत्रोंके अभिप्रायानुसार उस प्रकार कालको स्वीकार करना सम्भव नहीं है ।

विशेषार्थ—खुदाबन्धमें एक जीवकी अपेक्षा क्रोधकषायका मरणसे तथा मान, माया और लोभ कषायका मरण और व्याघात दोनों प्रकारसे जघन्य काल एक समय बत-लाया है । जीवस्थानमें भी यह प्ररूपणा इसी प्रकारसे की गई है । किन्तु चूर्णिसूत्रोंमें इसे स्वीकार नहीं किया गया है यह उक्त शंका-समाधानका तात्पर्य है ।

इस प्रकार ओघसे क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश किया । अब आदेशगत विशेषका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०प्रती अब्भहियपमाणो इति पाठः ।

२. ता०प्रती अवट्टाणसंभवो इति पाठः ।

\* गदीसु णिक्खमण-पवेसणेण एगसमयो होज्ज ।

§ २२. णिक्खमणेण ताव एगसमयो वुच्चदे—एगो णेरइयो भाणादिअण्णदर-कसायोवजुत्तो हांदूण द्विदो एगसमयमाउगमत्थि चि कोहोवजोगपरिणदो एगसमय-मच्छिदूण णिक्खंतो तिरिक्खो मणुस्सो वा जादो, लद्धो कोहोवजोगस्स णिक्खमण-मस्सियूण जहण्णकालो एगसमयमेत्तो । संपहि पवेसणेण वुच्चदे—एको तिरिक्खो मणुस्सो वा कोधकसाएण द्विदो कोधद्वाए एगसमयो अत्थि चि कालं कादूण णेरइए-सुववण्णो पढमसमए कोहोवजोगेण दिट्ठो, विदियसमए अण्णकसाई जादो । एवं पवेसणमस्सियूणेगसमयो लद्धो होइ । एवं सेसकसायाणं पि' जोजेयव्वं । एवं सेसासु वि गदीसु णिक्खमण-पवेसणेहि एगसमयपरूवणा कायव्वा । तदो पढमगाहाए पुव्वद्वम्मि एको अत्थो विहासिदो होदि । संपहि तत्थेव पडिबद्धस्स विदियस्स अत्थस्स विहासणट्ठमाह—

\* 'को व केणहिओ त्ति' एदस्स पदस्स अत्थो अदुधाणमप्पाबहुञ्चं ।

§ २३. पुव्वपरूवणादो अंतोमुहुत्तपमाणत्तेण सुणिच्छदानं कोहादिकसायपडि-बद्धजहण्णुकस्सद्धानमोघादेसेहि जमप्पाबहुअविहाणं तमेदस्स पदस्स अत्थो त्ति भणिदं होइ ।

\* गतियोंमें निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय होता है ।

§ २२. सर्वप्रथम निष्क्रमणकी अपेक्षा एक समय कालका कथन करते हैं—एक नारकी मानादि अन्यतर कषायमें उपयुक्त होकर स्थित है, एक समय आयुमें शेष है तब क्रोध-कषायके उपयोगसे परिणत हो गया तथा एक समयतक रहकर वहाँसे निकला और तिर्यञ्च या मनुष्य हो गया, इसप्रकार क्रोधकषायमें उपयुक्त होनेका निष्क्रमणकी अपेक्षा जघन्य काल एक समयमात्र प्राप्त हो गया । अब प्रवेशकी अपेक्षा कहते हैं—एक तिर्यञ्च या मनुष्य क्रोध-कषायके साथ स्थित है, क्रोधकषायके कालमें एक समय शेष है तब मरकर नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, प्रथम समयमें क्रोधमें उपयुक्त होकर स्थित रहा तथा दूसरे समयमें अन्य कषायरूप से परिणत हो गया । इस प्रकार प्रवेशका आश्रयकर एक समय काल प्राप्त हुआ । इसी प्रकार शेष कषायोंके एक समयमात्र कालकी योजना कर लेनी चाहिए । इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा एक समयप्रमाण कालकी प्ररूपणा करनी चाहिए । तब प्रथम ग. प्राके पूर्वार्धमें कहे गये एक अर्थका व्याख्यान होता है । अब वही पर निबद्ध हुए दूसरे अर्थका व्याख्यान करनेके लिए कहते हैं—

\* किस कषायका काल किस कषायके कालसे अधिक है इस पदका अर्थ कषायोंके कालका अल्पबहुत्व है ।

§ २३. पूर्वमें की गई प्ररूपणा द्वारा अन्तर्मुहूर्तप्रमाणरूपसे सुनिश्चित क्रोधादि कषायों-सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षा जो अल्पबहुत्वका कथन है वह 'को व केणहिओ' इस पदका अर्थ है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* तं जहा ।

§ २४. तमप्पाबहुअविहाणं कथं होदि त्ति पुच्छाणेद्देसो कदो भवदि ।

\* ओघेण माणद्धा जहणिया थोवा ।

§ २५. एत्थ 'माणद्धा जहणिया' त्ति वुत्ते तिरिक्ख-मणुसाणं णिव्वाघादेण माणोवजोगजहणकालो अंतोमुहुत्तपमाणो घेत्तव्वो, अण्णत्थ घेप्पमाणे' माणजहण द्वाए सच्चत्थोवत्ताणुववत्तीदो । तदो जहणिया माणद्धा संखेज्जावलियमेत्ता होदूण सच्चत्थोवा त्ति सिद्धं ।

\* क्रोधद्धा जहणिया विसेसाहिया ।

§ २६. एत्थ विसेसपमाणं सुगमं, पवाइज्जंतोणुवएसेणद्वाणं विसेसो अंतोमुहुत्त-मिदि उवरि सुत्तणिबद्धत्तादो ।

\* मायद्धा जहणिया विसेसाहिया ।

\* लोभद्धा जहणिया विसेसाहिया ।

§ २७. एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

\* माणद्धा उक्कस्सिया संखेज्जगुणा ।

§ २८. एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि ।

\* वह कैसे ?

§ २४. वह अल्पबहुत्वका विधान किस प्रकार है इस प्रकार इस सूत्रद्वारा पृच्छाका निर्देश किया गया है ।

\* ओघसे मानका जघन्य काल सबसे स्तोक है ।

§ २५. इस सूत्रमें 'माणद्धा जहणिया' ऐसा कहनेपर तिर्यक्क और मनुष्योंके निर्व्या-घातरूपसे मानका जघन्य उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण लेना चाहिए, क्योंकि अन्य जीवोंमें प्रहण करनेपर मानका जघन्य काल सबसे स्तोक नहीं बन सकता । इसलिए मानका जघन्य-काल संख्यात आवलिप्रमाण होकर सबसे स्तोक है यह सिद्ध हुआ ।

\* उससे क्रोधका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ २६. यहाँ पर विशेषका प्रमाण सुगम है, क्योंकि प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार-कालोंका परस्पर विशेष अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है यह बात आगे सूत्रमें निबद्ध की गई है ।

\* उससे मायाका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

\* उससे लोभका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ २७. ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

\* उससे मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

§ २८. यहाँ पर गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात अंक हैं ।



\* कोधद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया ।

§ २९. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोमुहुत्तमेत्तो ।

\* मायद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया ।

§ ३०. केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तमेत्तेण ।

\* लोभद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया ।

§ ३१. सुगमं । संपहि एत्थ विसेसाहियपमाणमेत्तियं होदि त्ति जाणावण्डु-  
मुवरिमं सुत्तपबन्धमाह—

\* पवाहज्जन्तेण उववेसेण अद्धाणं विसेसो अंतोमुहुत्तां ।

§ ३२. एदेणेगसमयमेत्तो विसमयमेत्तो एवं गंतूण संखेज्जसमयमेत्तो वा विसेसो ण होदि, किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तो चेवे त्ति जाणाविदं । तं च अंतोमुहुत्तमणेय-  
मेयभिण्णं—संखेज्जावलियाओ आवलि० संखे०भागो तदसंखेज्जदिभागो चेदि । तत्थ  
'वक्खाणादो विसेसपडिवत्ती' इदि णायादो आवलि० असंखे०भागमेत्तो अद्धाविसेसो त्ति  
गेण्हियव्वो, पुव्वाइरियसंपदायस्स तहाविहत्तादो । एवमोघेण तिरिक्ख-मणुसगईणं  
पहाणभावेणद्धप्पावहुअं कदं ।

\* उससे क्रोधका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ २९. शंका—विशेषका प्रमाण क्या है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तमात्र है ।

\* उससे मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ३०. शंका—विशेषका प्रमाण क्या है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तमात्र है ।

\* उससे लोभका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ३१. यह सूत्र सुगम है । अब यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण इतना है इस बातका  
ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रपबन्धको कहते हैं—

\* प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कालोंका परस्पर विशेष अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३२. इस वचनसे एक समयमात्र, दो समयमात्र इस प्रकार जाकर संख्यात समय  
मात्र विशेष नहीं है, किन्तु अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है इस बातका ज्ञान कराया गया है । वह  
अन्तर्मुहूर्त अनेक प्रकारका है—संख्यात आवलिप्रमाण, आवलिके संख्यातवें भागप्रमाण तथा  
आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण । उसमें भी 'व्याख्यानमे विशेषका ज्ञान होता है' इस  
न्यायके अनुसार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण परस्पर कषायोंके कालोंका विशेष है ऐसा  
ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पूर्वाचार्योंका सम्प्रदाय उसीप्रकारका पाया जाता है । इस प्रकार  
ओघसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिकी प्रधानतासे अल्पबहुत्व कहा ।

§ ३३. संयहि आदेसपरुवणाए कीरमाणाए तिरिक्ख-मणुसगदीसु णत्थि णाणत्तं । गिरयगदीए जहण्णिगया लोभद्धा थोवा, जहण्णिगया मायद्धा संखेज्जगुणा, जहण्णिगया माणद्धा संखेज्जगुणा, जहण्णिगया कोधद्धा संखेज्जगुणा, उक्कस्सिया लोभद्धा संखेज्जगुणा, उक्कस्सिया मायद्धा संखेज्जगुणा, उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा, उक्कस्सिया कोधद्धा संखेज्जगुणा । एवं देवगदीए वि । णवरि विलोमेण णेदब्बं जाव उक्कस्सिया लोभद्धा संखेज्जगुणा त्ति । एसो चदुगदीसु पादेकमप्पाबहुअणिहेसो सुत्तयारेण किण्ण कओ ? ण, उवरिमचउगइसमासप्पाबहुएणेव जाणिज्जदि त्ति तद-परुवणादो ।

\* तेणेव उवदेसेण चउगइसमासेण अप्पाबहुअं भणिहिदि ।

§ ३४. तेणेव पवाइज्जंतेण उवदेसेण चदुगदीओ सर्पिडिऊणप्पाबहुअं कीरदि त्ति भणिदं होदि । तं पुण चउगइसमासप्पाबहुअं तिविहं—जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णु-क्कस्सपदे चेदि । तत्थ आदिन्लदुगं जहण्णुक्कस्सपदप्पाबहुअपरुवणेणेव जाणिज्जदि त्ति तमेव परुवेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

\* चदुगदिसमासेण जहण्णुक्कस्सपदेण गिरयगदीए जहण्णिगया

§ ३३. अब आदेशकी अपेक्षा कथन करने पर तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें कषायोंके कालकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । नरकगतिमें लोभका जघन्य काल सबसे स्तोक है । उससे मायाका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उससे मानका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उससे क्रोधका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उससे लोभका उत्कृष्ट काल संख्यात संख्यातगुणा है । उससे मायाका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उससे मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उससे क्रोधका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । इसी प्रकार देवगतिमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि लोभका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है इस स्थानके प्राप्त होनेतक विलोमक्रमसे जानना चाहिए ।

ज्ञाना— चारों गतियोंमें पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्वका निर्देश सूत्रकारने क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि आगे कहे जानेवाले चारों गतियोंके समुच्चयरूप अल्प-बहुत्वके कथनसे ही उसका ज्ञान हो जाता है, इसलिए सूत्रकारने चारों गतियोंमें पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्वका निर्देश नहीं किया ।

\* उसी उपदेशके अनुसार चारों गतियोंमें समुच्चयरूपसे अल्पबहुत्वका कथन करेंगे ।

§ ३४. उसी प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चारों गतियोंमें एक साथ अल्पबहुत्वका कथन करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । परन्तु चारों गतियोंमें समुच्चयरूप वह अल्प-बहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्यपद, उत्कृष्टपद और जघन्योत्कृष्टपद । उनमेंसे जघन्योत्कृष्ट-पदरूप अल्पबहुत्वसे आदिके दो अल्पबहुत्वोंका ज्ञान हो जाता है, इसलिए उसीका कथन करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* चारों गतियोंमें समुच्चयरूपसे कथन करनेपर जघन्योत्कृष्ट पदकी अपेक्षा

लोभद्वा थोवा ।

§ ३५. कुदो ? णेरइएसु जादिविसेसवसेणेव दोसबहुलेसु पेजसरूवल्लोभ-परिणामस्स चिरकालभवट्टाणासंभवादो ।

\* देवगदीए जहणिया कोधद्वा विसेसाहिया ।

§ ३६. जइ वि एसा कोधद्वा देवेसु पेजबहुलेसु सुट्टु थोवा होदि तो वि णेरइयाणं जहणलोभद्वादो जादिविसेसेणेव विसेसाहिया त्ति पडिवज्जेद्वं । केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

\* देवगदीए जहणिया माणद्वा संखेज्जगुणा ।

§ ३७. किं कारणं ? देवेसु कोहोवजोगकालादो माणोवजोगकालस्स सच्चद्धं तहाभावेणावट्टाणियमदंसणादो । को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि ।

\* णिरयगदीए जहणिया मायद्वा विसेसाहिया ।

§ ३८. एत्थ विसेसपमाणं सुगमं, अणंतरमेव परूविदत्तादो ।

\* णिरयगदीए जहणिया माणद्वा संखेज्जगुणा ।

नरकगतिमें लोभका जघन्य काल सबसे स्तोक है ।

§ ३५. क्योंकि जातिविशेषके कारण ही नारकी दोषबहुल होते हैं, इसलिए उनमें पेज ( प्रेम ) स्वरूप लोभपरिणामका चिरकाल तक रहना सम्भव नहीं है ।

\* उससे देवगतिमें क्रोधका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ३६. पेजबहुल देवोंमें यद्यपि क्रोधका यह काल बहुत थोड़ा होता है तो भी नारकियोंके लोभके जघन्य कालसे जातिविशेषवश विशेष अधिक होता है ऐसा जानना चाहिए ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* देवगतिमें मानका जघन्य काल संख्यातगुणा है ।

§ ३७. क्योंकि देवोंमें क्रोधके उपयोग कालसे मानके उपयोग कालके सर्वदा उस प्रकारसे रहनेका नियम देखा जाता है ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संख्यात अंक गुणकार है ।

\* उससे नरकगतिमें मायाका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ३८. यहाँ विशेषके प्रमाणका कथन सुगम है, क्योंकि उसका कथन अनन्तर पूर्व ही कर आये हैं ।

\* उससे नरकगतिमें मानका जघन्य काल संख्यातगुणा है ।

§ ३९. एत्थ गुणगारपमाणं सुगमं ।

\* देवगदीए जहणिया मायद्धा विसेसाहिया ।

§ ४०. केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

\* मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया माणद्धा संखेज्जगुणा ।

§ ४१. मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया माणोवजोगद्धा उहयत्थ सरिसी होदूण पुन्विन्लादो संखेज्जगुणा त्ति वुत्तं होइ । एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवमेत्तो ।

\* मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया कोधद्धा विसेसाहिया ।

\* मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया मायद्धा विसेसाहिया ।

\* मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया लोहद्धा विसेसाहिया ।

§ ४२. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि, ओघम्मि परूविदकारणत्तादो ।

\* गिरयगदीए जहणिया कोधद्धा संखेज्जगुणा ।

§ ४३. किं कारणं ? सुद्धु जहणस्स वि णेरइयाणं कोहोवजोगकालस्स मणुस-

§ ३९. यहाँ पर गुणकारके प्रमाणका कथन सुगम है ।

\* उससे देवगतिमें मायाका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ४०. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* उससे मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें मानका जघन्य काल संख्यात-गुणा है ।

§ ४१. मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें मानका जघन्य उपयोग काल दोनोंमें समान होकर भी पूर्वमें कहे गये कालसे संख्यातगुणा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ पर गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात अंक है ।

\* उससे मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें क्रोधका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

\* उससे मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें मायाका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

\* उससे मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें लोभका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ४२. ये सूत्र सुगम हैं, क्योंकि कारणका कथन ओघप्ररूपणाके समय कर आये हैं ।

\* उससे नरकगतिमें क्रोधका जघन्य काल संख्यातगुणा है ।

§ ४३. क्योंकि नारकियोंमें क्रोधका सबसे जघन्य भी उपयोग काल मनुष्यों और

तिरिक्खजोणियाणं जहण्णलोभोवजोगद्दादो संखेज्जगुणभावेण तव्वकालमवद्दाण-  
णियमदंसणादो ।

\* देवगदीए जहण्णिया लोभद्दा विसोसाहिया ।

§ ४४. एत्थ विसेसपमाणं सुगमं ।

\* णिरयगदीए उक्कस्सिया लोभद्दा संखेज्जगुणा ।

§ ४५. किं कारणं ? जहण्णकालादो पुव्विल्लादो उक्कस्सकालस्सेदस्स तहाभाव-  
सिद्धीए पडिबंधाभावादो । एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तो ।

\* देवगदीए उक्कस्सिया कोधद्दा विसोसाहिया ।

§ ४६. केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

\* देवगदीए उक्कस्सिया माणद्दा संखेज्जगुणा ।

\* णिरयगदीए उक्कस्सिया मायद्दा विसोसाहिया ।

\* णिरयगदीए उक्कस्सिया माणद्दा संखेज्जगुणा ।

\* देवगदीए उक्कस्सिया मायद्दा विसोसाहिया ।

§ ४७. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि, जहण्णद्दासु परूविदकारणत्तादो ।

\* मणुस-तिरिक्खजोणियाणमुक्कस्सिया माणद्दा संखेज्जगुणा ।

तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें लोभके जघन्य उपयोग कालसे संख्यातगुणा पाया जाता है इस प्रकार उसके रहनेका सर्वदा नियम देखा जाता है ।

\* उससे देवगतिमें लोभका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ४४. यहाँ पर विशेषके प्रमाणका कथन सुगम है ।

\* उससे नरकगतिमें लोभका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

§ ४५. क्योंकि पूर्वमें कहे गये जघन्य कालसे इस उत्कृष्ट कालके उस प्रकारसे सिद्ध होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं पाया जाता । यहाँ गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण है ।

\* उससे देवगतिमें क्रोधका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ४६. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* उससे देवगतिमें मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

\* उससे नरकगतिमें मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

\* उससे नरकगतिमें मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

\* उससे देवगतिमें मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ४७. ये सूत्र सुगम हैं, क्योंकि इसके कारणका कथन जघन्य कालोंका कथन करते समय कर आये हैं ।

\* उससे मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनि जीवोंमें मानका उत्कृष्ट काल संख्यात-  
गुणा है ।

\* तेसिं चेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसोसाहिया ।

\* तेसिं चेव उक्कस्सिया मायद्धा विसोसाहिया ।

\* तेसिं चेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसोसाहिया ।

§ ४८. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

\* गिरयगदीए उक्कस्सिया कोधद्धा संखेज्जगुणा ।

§ ४९. किं कारणं ? गेरइएसु सहावपडिचद्धमच्छरेसु कोहोवजोगकालस्स सुट्ठु बहुत्तोवएसादो ।

\* देवगदीए उक्कस्सिया लोभद्धा विसोसाहिया ।

§ ५०. विसेसपमाणमेत्थ सुगमं, बहुसो परूविदत्तादो । एवं चदुगदिसमासप्पा-बहुअं समाणिय संपहि चोदस जीवसमासे अस्सियूण पयदप्पाबहुअगवेसणट्ठमुवरिमं पबन्धमाह—

\* तेसिं चेव उवदेसेण चोदस-जीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि ।

§ ५१. तेसिं चेव भयवंताणमज्जमंखु-णागहत्थीणं पवाइज्जंतेणुवएसेण चोदस-जीवसमासेसु जहणुक्कस्सपदविसेसिदो अप्पाबहुअदंडओ एत्तो भणिहिदि भणिष्यत इत्यर्थः ।

\* उससे उन्हींमें क्रोधका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

\* उससे उन्हींमें मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

\* उससे उन्हींमें लोभका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ४८. ये सूत्र सुगम हैं ।

\* उससे नरकगतिमें क्रोधका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

§ ४९. क्योंकि स्वभावसे मत्सरवृत्तिवाले नारकियोंमें क्रोधके उपयोग कालके अति बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है ।

\* उससे देवगतिमें लोभका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ५०. यहाँ पर विशेषका प्रमाण सुगम है, क्योंकि अनेकबार उसका कथन कर आये हैं । इस प्रकार चारों गतियोंमें समासरूपसे अल्पबहुत्वके कथनको समाप्त करके चौदह जीवसमासोंका आश्रयकर प्रकृत अल्पबहुत्वका अनुसन्धान करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* अब परम्परासे आये हुए उन्हीं आचार्योंके उपदेशके अनुसार चौदह जीव-समासोंमें दण्डकका कथन करेंगे ।

§ ५१. उन्हीं भगवान् आर्यमंशु और नागहस्तिके प्रवाहक्रमसे आये हुए उपदेशके अनुसार चौदह जीवसमासोंमें आगे जघन्य और उत्कृष्टपदयुक्त अल्पबहुत्वदण्डकको कहेंगे यह उक्त कथनका सात्यक्य है ।

\* चोदसण्हं जीवसमासाणं देव-णेरइयवज्जाणं जहणिया माणद्धा तुल्ला थोवा ।

§ ५२. एत्थ 'चोदसण्हं जीवसमासाणं' इदि वयणेण देव-णेरइयाणं पि सण्णि-पंचिदियपज्जत्तापज्जत्तजीवसमासंतभूदानं गहणे पसत्ते तच्चुदासकरणद्धं 'देव-णेरइय-वज्जाणं' इदि भणिदं । किमद्धं तेसिं परिवज्जणं कीरदे ? ण, सेसजीवसमासेहिं सह तेसिं माणादि-जहणणोवजोगद्धासारिच्छणिबंधणपच्चासत्तीए अभावपदुप्पायणद्धं तहा-करणादो । तदो देव-णेरइए मोत्तूण सेसासेसजीवसमासाणं जहणिया माणद्धा सरिसी होदूण सव्वत्थोवा त्ति गहेयव्वं ।

\* जहणिया कोधद्धा विसेसाहिया ।

§ ५३. एत्थाहियारवसेण चोदसण्हं जीवससासाणं देव-णेरइयवज्जाणं जहणिया कोधद्धा तुल्ला होदूण विसेसाहिया त्ति सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

\* जहणिया मायद्धा विसेसाहिया ।

\* जहणिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

\* सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा ।

\* देव और नारकियोंको छोड़कर चौदह जीवसमासोंमें मानका जघन्य काल परस्पर तुल्य होकर सबसे थोड़ा है ।

§ ५२. यहाँपर 'चोदसण्हं जीवसमासाणं' इस वचनसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवसमासोंमें अन्तर्भूत हुए देव और नारकियोंका ग्रहण प्राप्त होने पर उनका निराकरण करनेके लिए 'देव-णेरइयवज्जाणं' यह वचन कहा है ।

शंका—उनका निषेध किस लिए करते हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि शेष जीवसमासोंके साथ उनके मानादि सम्बन्धी जघन्य उपयोग कालके सदृश होनेके कारणकी प्रत्यासत्तिका अभाव है यह कहनेके लिए उस प्रकारसे सूत्रवचन निर्दिष्ट किया है । इसलिए देव और नारकियोंको छोड़कर शेष समस्त जीवसमासोंमें मानका जघन्य काल परस्पर सदृश होकर सबसे थोड़ा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

\* उससे क्रोधका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

§ ५३. यहाँ अधिकारवश देव और नारकियोंको छोड़कर चौदह जीवसमासोंमें क्रोधका जघन्य काल परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है ऐसा सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—आबलिके असंख्यातर्षे भागप्रमाण है ।

\* उससे मायाका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

\* उससे लोभका जघन्य काल विशेष अधिक है ।

\* उससे सूक्ष्म अपर्याप्तके मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।









- \* तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया ।
- \* तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ।
- \* तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।
- \* सण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा ।
- \* तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया ।
- \* तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया ।
- \* तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

§ ५४. सुगमो च एसो सव्वो वि अप्पाबहुअपबंधो । तदो पढमगाहाए पुव्वद्धस्स अत्थविहासा समत्ता ।

\* 'को वा कम्मिह कसाये अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो' त्ति एत्थ अभिक्खमुवजोगपरूवणा कायव्वा ।

§ ५५. एत्तो गाहापच्छिमद्धस्स जहावसरपत्तस्स अत्थविहासा कायव्वा त्ति पदुप्पायणट्टमेदं सुत्तमोइण्णं । एत्थ य गाहापच्छिद्धे अभिक्खमुवजोगपरूवणा कायव्वा, अभीक्षणमुपयोगो मुहुमुहुरूपयोग इत्यर्थः । एकस्य जीवस्यैकस्मिन् कषाये पौनःपुन्येनोपयोग इति यावत् । तत्थोषेण ताव कसायाणमभिक्खमुवजोगपरिणामकमपदंसणट्टमुवरिसं पबंधमाह—

- \* उससे उन्हींमें क्रोधका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।
- \* उससे उन्हींमें मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।
- \* उससे उन्हींमें लोभका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।
- \* उससे संज्ञी पर्याप्तकोंमें मानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।
- \* उससे उन्हींमें क्रोधका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।
- \* उससे उन्हींमें मायाका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।
- \* उससे उन्हींमें लोभका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है ।

§ ५४. यह सब अल्पबहुत्वका प्रबन्ध सुगम है । इस प्रकार प्रथम गाथाके पूर्वार्धके अर्थका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

\* 'कौन जीव किस कषायमें निरन्तर उपयोगसे उपयुक्त रहता है' इस प्रकार इस विषयमें निरन्तर होनेवाले उपयोगकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

§ ५५. आगे यथावसरप्राप्त गाथाके उत्तरार्धका विशेष व्याख्यान करना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए यह सूत्र अवतीर्ण हुआ है । यहाँ गाथाके उत्तरार्धके अनुसार पुनः पुनः उपयोगकी प्ररूपणा करनी चाहिए । अभीक्षण उपयोगका अर्थ है पुनः पुनः उपयोगका होना । एक जीवके एक कषायमें बार-बार उपयोगका होना यह इसका आशय है । उसमें सर्वप्रथम ओषसे कषायोंके पुनः पुनः उपयोग परिणामक्रमके दिखलानेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* ओघेण ताव लोभो माया कोधो माणो त्ति असंखेज्जेसु आगरि-  
सेसु गदेसु सइं लोभागरिसा आदिरेगा भवदि ।

§ ५६. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे—ओघेण ताव इमस्स कसायस्स अभिक्खमुव-  
जोगवारा थोवा, इमस्स च कसायस्स अभिक्खमुवजोगवारा बहुगा त्ति परूवणं कस्सामो  
त्ति जाणावणट्ठमोघणिदेसो एत्थ कओ । तत्थ वि तिरिक्ख-मणुसगईओ चेव पहाणभावे-  
णावलंविप पयदपरूवणा कीरदे । तं जहा—तत्थ लोभो माया कोधो माणो त्ति एदीए  
परिवाडीए अवट्ठिदसरूवाए असंखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु तदो एगवारं लोभागरिसा  
अदिरित्ता भवदि । कुदो एवं ? सहावदो । एत्थागरिसा त्ति वुत्ते परियदृणवारो त्ति  
गहेयच्चं । एवमेसो सुत्तस्स अवयवत्थो परूविदो । संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणडु-  
मिमा संदिट्ठिमुहेण समुदायत्थपरूवणा कीरदे । तं कथं ? लोभो माया कोधो माणो  
१ १ १ १ । पुणो वि लोभो माया कोधो माणो त्ति १ १ १ १ । एदेण विहिणा  
असंखेज्जेसु परियदृणवारेसु गदेसु तदो लोहो माया कोधो माणो होदूण पुणो लोभो  
माया त्ति मायाए ट्ठिदजीवो कोधमगंतूण पुणो पडिणियत्तिय लोभमेव गदो । लोहेण  
सह अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मायमुल्लंघियूण कोधं गदो । पच्छा माणं गदो । तदो  
चउहिं कसाएहिं अवट्ठिदपरिवाडीए असंखेज्जेसु वारेसु गदेसु एगवारं लोभागरिसो

\* ओघसे लोभ, माया, क्रोध, मान इस परिपाटीसे असंख्यात परिवर्तन-  
वारोंके हो जाने पर एक बार लोभकषायका परिवर्तनवार अधिक होता है ।

§ ५६. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—सर्व प्रथम ओघसे इस कषायके पुनः पुनः उपयोग-  
वार थोड़े होते हैं और इस कषायके पुनः पुनः उपयोगवार बहुत होते हैं इसका कथन करेंगे  
इस बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें ओघपदका निर्देश किया है । उसमें भी तिर्यञ्चगति और  
मनुष्यगतिका ही प्रधानरूपसे अवलम्बन लेकर प्रकृत प्ररूपणा करते हैं । यथा—लोभ, माया,  
क्रोध, मान इस अवस्थितस्वरूप परिपाटीसे असंख्यात परिवर्तनवारोंके होनेपर उसके  
बाद एक बार लोभका परिवर्तनवार अतिरिक्त होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है । यहाँपर  
आगरिसा ऐसा कहनेपर परिवर्तनवार ऐसा ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार यह सूत्रका  
अवयवार्थ कहा । अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिए संदृष्टिद्वारा यह समुदायार्थप्ररूपणा  
करते हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—लोभ, माया, क्रोध, मान १ १ १ १ । पुनः लोभ, माया, क्रोध, मान  
१ १ १ १ । इस प्रकार इस विधिसे असंख्यात परिवर्तनवारोंके हो जानेपर उसके बाद  
लोभ, माया, क्रोध, मान होकर पुनः लोभ और मायाके होनेपर मायामें स्थित हुआ जीव  
क्रोधको प्राप्त हुए बिना पुनः लौटकर लोभको ही प्राप्त हुआ । तब लोभके साथ अन्तर्मुहूर्त काल  
तक रह कर पुनः मायाको उल्लंघन कर क्रोधको प्राप्त हुआ । इसके बाद मानको प्राप्त हुआ ।  
इस प्रकार चारों कषायोंके साथ अवस्थित परिपाटीद्वारा असंख्यात परिवर्तनवार होनेपर एक-  
बार लोभका परिवर्तनवार अतिरिक्त होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । उसकी यह

अदिरित्तो होदि त्ति घेत्त्वं । तस्सेसा संदिट्ठी ३ २ २ २ । अथवा पढममसंखेज्ज-  
वारमवट्ठिदपरिवाडीए गंतूण पुणो अंतिमवारे लोभो माया कोदो च होदूण पुणो  
णियत्तिय लोभमेव गंतूण तदो मायं कोधं च वोलिय माणं गदो । एवं पि लोभागरिसो  
अहिओ होइ त्ति वत्तवं । एवमेसा पढमपरिवाडी सुत्ते परूविदा ।

§ ५७. संपहि एदेणेव सूचिदाओ असंखेज्जाओ परिवाडीओ वत्तइस्सामो । तं  
जहा—एगवारं लोभागरिसे अहिये जादे पुणो वि पुव्वविहाणेण लोभो माया कोधो  
माणो त्ति होदूण १ १ १ १ पुणो वि तहा चैव होदूण १ १ १ १ एवमेदेण विधिणा  
असंखेज्जवारे गंतूण तदो पच्छिमवियप्पे पुव्वुत्तविहिणा चैव लोभो माया च होदूण  
तदो जइ लोभं चैव णियत्तिदूण पडिवज्जइ, तो लोभादो मायमुल्लंघियूण<sup>१</sup> कोधो होदूण  
पुणो माणो होदि त्ति लोभागरिसो विदियवारमदिरित्तो लब्भदे ३ २ २ २ । अह जइ  
लोभो माया कोधो त्ति होदूण तत्तो पडिणियत्तिय लोभं पडिवज्जदि तो पुव्वं व  
लोभादो मायं कोधं च वोलेयूण पुणो माणं पडिवज्जदि त्ति । एवं पि लोभागरिसो  
विदियवारमदिरित्तो समुवलब्भदे । एवमेदेण विधिणा पुणो-पुणो भण्णमाणे असंखेज्जाओ  
लोभपरिवाडीओ अदिरित्ता लब्भंति । ताधे सब्बपरिवाडीणमेसा संदिट्ठी ९ ६ ६ ६ ।

संदृष्टि है ३ २ २ २ । अथवा पहले असंख्यातवार अवस्थित परिपाटीसे जाकर पुनः अन्तिम  
वारके समय लोभ, माया और क्रोध होकर पुनः लौटकर लोभको ही प्राप्त होकर उसके बाद  
माया और क्रोधको उल्लंघन कर मानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार लोभका परिवर्तनवार अधिक  
होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए । इस प्रकार यह प्रथम परिपाटी सूत्रमें कही गई है ।

§ ५७. अब इसी द्वारा सूचित हुई असंख्यात परिपाटियोंको बतलाते हैं । यथा—एक  
बार लोभपरिवर्तनवारके अधिक होनेपर फिर भी पूर्वविधिसे लोभ, माया, क्रोध, मान  
१ १ १ १ इस प्रकार होकर फिर भी उसी प्रकार होकर १ १ १ १ इस प्रकार इस विधिसे  
असंख्यातवार जाकर उसके बाद अन्तिम विकल्प पूर्वोक्त विधिसे ही लोभ और माया होकर  
उसके बाद यदि निवृत्त होकर लोभको ही प्राप्त होता है तो लोभके बाद मायाको उल्लंघन  
कर क्रोध होकर पुनः मान होता है । इस प्रकार लोभका परिवर्तनवार दूसरी बार अतिरिक्त  
प्राप्त होता है—३ २ २ २ । और यदि लोभ, माया, क्रोध इस प्रकार होकर उसके बाद  
लौटकर लोभको प्राप्त होता है तो पहलेके समान लोभके बाद माया और क्रोधको उल्लंघनकर  
पुनः मानको प्राप्त होता है । इस प्रकार भी लोभका परिवर्तनवार दूसरीबार अतिरिक्त प्राप्त  
होता है । इस प्रकार इस विधिसे पुनः पुनः कथन करनेपर असंख्यात लोभ परिपाटियाँ अति-  
रिक्त प्राप्त होती हैं । तब सब परिपाटियोंकी यह संदृष्टि ९ ६ ६ ६ होती है ।

**विशेषार्थ**—संसारमें सकषायी तिर्यञ्चों और मनुष्योंके क्रोधादि कषायोंके परिवर्तनक्रम-  
का यहाँ निर्देश करते हुए बतलाया है कि लोभ, माया, क्रोध, मान इस क्रमसे कषायोंका स्वभावसे  
परिणमन होता है । ऐसा चारों कषायोंका एकवार परिणमन हुआ इसे संदृष्टिद्वारा १ १ १ १  
इस प्रकार बतलाया गया है । इस प्रकार कषायोंके परिवर्तनका यह क्रम जब असंख्यातवार

§ ५८. एवमेदासु समत्तासु तदो अण्णारिसी परिवाडी पारमदि त्ति जाणावणट्ठ-  
मुत्तरसुत्तमोइण्णं—

\* असंखेज्जेसु लोभागरिसेसु अदिरेगेसु गदेसु कोधागरिसेहिं माया-  
गरिसा अदिरेगा होइ ।

§ ५९. एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थपरुवणा सुगमा । संपहि समुदायत्थो बुच्चदे—  
तं जहा—पुव्वुत्तलोभपरिवाडीसु णिट्ठिदासु तदो लोभो माया कोधो माणो १ १ १ १ ।  
पुणो वि लोभो माया कोधो माणो त्ति एदीए अवट्ठिदपरिवाडीए असंखेज्जेसु वारेसु  
गदेसु तदो लोभो माया कोधो त्ति होदूण पुणो मायाए णियत्तिय तत्थंतोमुहुत्तमच्छिय  
पुणो कोधमुत्तंघिय माणं गदो । एवं गदे कोधागरिसेहितो मायागरिसो एगवारमदि-  
रित्तो लद्धो । तस्स संदिट्ठी २ ३ २ २ । पुणो ९ ६ ६ ६ एदेण विहिणा असंखेज्जाओ  
लोभपरिवाडीओ समाणिय तदो एगवारमणंतरपरुविदकमेण कोधागरिसेहितो माया-  
गरिसो विदियवारमदिरित्तो लब्भदे २ ३ २ २ । पुणो वि ताए चैव परिवाडीए एदाओ

हो लेता है तब अन्तिम परिवर्तनके समय लोभ और मया होकर क्रोधको प्राप्त हुए बिना पुनः  
लोभको प्राप्त होता है । तथा अन्तर्मुहूर्त काल तक लोभके साथ रह कर मायाको उल्लंघनकर  
क्रमसे क्रोध और मानको प्राप्त होता है । इस प्रकार चारों कषायों द्वारा अवस्थित परिपाटीके  
क्रमसे असंख्यातवारोंके व्यतीत होनेपर लोभका एक परिवर्तनवार अधिक होता है । अवस्थित  
परिपाटीक्रमसे चारों कषायोंके असंख्यात परिवर्तनवार हुए और अन्तिम परिवर्तनवारके  
समय लोभका एक अतिरिक्त परिवर्तनवार हुआ इसे संदृष्टि द्वारा इस प्रकार दिखलाया गया  
है—३ २ २ २ । यह एक क्रम है । दूसरे क्रमके अनुसार असंख्यात परिवर्तनवारोंके होनेके  
बाद अन्तिम परिवर्तनवार होते समय लोभ, माया और क्रोध होकर पुनः लौटकर लोभ हुआ  
तथा माया और क्रोधको उल्लंघनकर मानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे बार-बार  
परिवर्तनवार होकर असंख्यात लोभ परिपाटियाँ अतिरिक्त प्राप्त होती हैं । यहाँ सब मिलाकर  
जितनी परिपाटियाँ हुई हैं उन्हें संदृष्टि द्वारा इस प्रकार दिखलाया गया है—९ ६ ६ ६ ।

§ ५८. इस प्रकार इन परिपाटियोंके समाप्त होनेपर अन्य प्रकारकी परिपाटी प्रारम्भ  
होती है इसका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र आया है—

\* इस प्रकार लोभसम्बन्धी असंख्यात परिवर्तनवारोंके अतिरिक्त हो जाने पर  
क्रोधसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे मायासम्बन्धी परिवर्तनवार अतिरिक्त होता है ।

§ ५९. इस सूत्रके अवयवोंकी अर्थ प्ररूपणा सुगम है । अब समुच्चय अर्थ कहते हैं ।  
यथा—पूर्वोक्त लोभपरिपाटियोंके समाप्त हो जानेपर उसके बाद लोभ, माया, क्रोध, मान  
१ १ १ १ होकर फिर भी लोभ, माया, क्रोध, मान इस अवस्थित परिपाटीके अनुसार  
असंख्यातवार हो जानेपर फिर लोभ, माया, क्रोध होकर पुनः मायामें लौटकर और उसरूप  
अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः क्रोधको उल्लंघनकर मानको प्राप्त हुआ । ऐसा होनेपर  
क्रोधसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे मायासम्बन्धी परिवर्तनवार एकवार अतिरिक्त प्राप्त हुआ ।  
उसकी संदृष्टि—२ ३ २ २ है । पुनः पूर्वोक्त ९ ६ ६ ६ इस विधिसे असंख्यात लोभ परि-  
पाटियोंको समाप्त कर उसके बाद एकवार अनन्तर प्ररूपितक्रमसे क्रोधसम्बन्धी परिवर्तन-  
वारोंसे मायासम्बन्धी परिवर्तनवार दूसरी बार अतिरिक्त प्राप्त होता है । उसकी संदृष्टि—

९ ६ ६ ६ लोभागरिसाणमदिरेयपरिवाडीओ समाणिय पुणो लोभो माया कोधो माणो  
त्ति एवमसंखेज्जवारे गंतूण तदो मायागरिसो एगवारमहिओ लब्भदे २ ३ २ २ ।  
एवमणेण विहाणेण मायागरिसा वि असंखेज्जवारमहिया लद्धा हवन्ति । एवमेसा विदिय-  
परिवाडी एदेण सुत्तेण परूविदा ।

§ ६० संपहि एदीए परिवाडीए असंखेज्जेसु मायागरिसेसु अहिएसु समइकंतेसु  
तदो अण्णाए परिवाडीए पारंभो होदि त्ति जाणावणट्टमुवरिमसुत्तमोइष्णं—

\* असंखेज्जेहि मायागरिसेहिं अदिरेगेहिं गदेहिं माणागरिसेहिं  
कोधागरिसा अदिरेगा होदि ।

§ ६१. एत्थ वि अवयवत्थपरूवणा सुगमा त्ति तमुज्झियूण समुदायत्थं चैव  
वत्तइस्सामो । तं जहा—मायागरिसेसु असंखेज्जेसु अदिरित्तेसु गदेसु लोभो माया  
कोधो माणो त्ति ताए चेवावट्ठिदपरिवाडीए ९ ६ ६ ६ एदाओ लोभागरिसाणमदिरेय-  
परिवाडीओ समाणिय पुणो लोभो माया कोधो माणो त्ति असंखेज्जवारे गंतूण तत्थ

२ ३ २ २ है। फिर भी उसी परिपाटीके अनुसार इन ९ ६ ६ ६ लोभसम्बन्धी परिवर्तन-  
वारोंकी अतिरिक्त परिपाटियोंको समाप्त कर पुनः लोभ, माया, क्रोध, मान इस विधिसे  
असंख्यातवार जाकर तदनन्तर मायासम्बन्धी परिवर्तनवार एक वार अतिरिक्त प्राप्त होता  
है। उसकी संदृष्टि २ ३ २ २ है। इस प्रकार इस विधिसे मायासम्बन्धी परिवर्तनवार भी  
असंख्यातवार अधिक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह दूसरी परिपाटी इस सूत्र द्वारा कही  
गई है।

विशेषार्थ—पूर्वमें लोभसम्बन्धी परिवर्तनवार अन्य कषायोंसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे  
अतिरिक्त किस विधिसे प्राप्त होते हैं यह बतला आये है। यहाँ मायासम्बन्धी परिवर्तनवार  
क्रोधसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे अतिरिक्त कैसे प्राप्त होते हैं यह बतलाया गया है। टीकामें  
इसका जो स्पष्टीकरण किया है उससे मालूम होता है कि जब सब परिपाटियोंके अनुसार  
लोभसम्बन्धी असंख्यात परिवर्तनवार अतिरिक्त हो लेते हैं तब एकवार मायासम्बन्धी परिवर्तन-  
वार अधिक होता है और यह क्रम मायासम्बन्धी असंख्यात परिवर्तनवारोंके अतिरिक्त होने  
तक चलता रहता है। यह दूसरी परिपाटी है जो इस सूत्रद्वारा सूचित की गई है।

§ ६०. अब इस परिपाटीके अनुसार असंख्यात मायासम्बन्धी परिवर्तनवारोंके न्यतीत  
हो जानेपर उसके बाद अन्य परिपाटीका प्रारम्भ होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिए  
आगेका सूत्र आया है—

\* इस प्रकार मायासम्बन्धी असंख्यात परिवर्तनवारोंके अतिरिक्त हो जानेके  
बाद मानसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे क्रोधसम्बन्धी परिवर्तनवार अतिरिक्त होता है।

§ ६१. यहाँ पर भी अवयवार्थ प्ररूपणा सुगम है, इसलिए उसे छोड़कर समुच्चयरूप  
अर्थको ही बतलावेंगे। यथा—मायासम्बन्धी असंख्यात परिवर्तनवारोंके अतिरिक्त हो जाने-  
पर लोभ, माया, क्रोध, मान इस प्रकार उसी अवस्थित परिपाटीके अनुसार ९ ६ ६ ६  
इन लोभसम्बन्धी परिवर्तनवारोंकी अतिरिक्त परिपाटियोंको समाप्त कर पुनः लोभ, माया

मायागरिसाणमदिरेगपाओग्गविसए तहा अहोदूण माणागरिसेहिंतो कोहागरिसा एगवार-  
महिया होइ २ २ ३ २, माणादो कोहमागंतूण पुणो लोभादिसु जहाकमं परिणमिदत्तादो ।  
एवं पुणो-पुणो कीरमाणे मायागरिसेहिंतो कोधागरिसा वि असंखेज्जवारमदिरित्ता समु-  
लद्धा हवंति । तदो एवंविहमेगं परिवत्तं कादूण पुणो वि णेदव्वं जाव णिरुद्धकालो  
समत्तो त्ति । असंखेज्जवस्समेत्तो एत्थ णिरुद्धकालो त्ति घेत्तव्वं । एत्थ णिरुद्धकालभं-  
तरे लोभागरिसाणं सव्वसमासो संदिट्ठीए एसो ४४ । एदे मायागरिसा ३५ । कोधा-  
गरिसा एदे ३३ । माणागरिसा च एदे ३२ । अहवा लोहादीणं परिवत्तणसंदिट्ठी एवं  
वा ठबेयव्वा—

३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २
३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २
३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २	३ २ २ २
२ ३ २ २	२ ३ २ २	२ ३ २ २	२ २ ३ २

एदं सव्वं पि असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुसे अस्सियूण परुविदं । संपहि  
संखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से अस्सियूण जइ वुच्चइ तो कोह-माण-माया-लोहाण-  
मागरिसा अण्णोण्णं पेक्खियूण सरिसा चैव हवंति । किं कारणं ? असंखेज्जपरिवत्तणवारा

क्रोध, मान इस विधिसे असंख्यातवार जाकर वहाँ मायासम्बन्धी परिवर्तनवारके अतिरिक्त  
प्राप्त होनेके स्थानपर उस प्रकार न होकर अर्थात् मायासम्बन्धी अतिरिक्त परिवर्तनवार  
न प्राप्त होकर मानसम्बन्धी परिवर्तनवारोंसे क्रोधसम्बन्धी परिवर्तनवार एकबार  
अधिक प्राप्त होता है । उसकी संदृष्टि २ २ ३ २ है, क्योंकि तब मानके बाद ( दूसरी बार )  
क्रोधको प्राप्त कर पुनः क्रमानुसार लोभादिरूपसे परिणमन करता है । इस प्रकार पुनः पुनः  
करनेपर मायाके परिवर्तनवारोंसे क्रोधके परिवर्तनवार भी असंख्यातवार अधिक प्राप्त होते  
हैं । तदनन्तर इस प्रकार एक परिवर्तन करके फिर भी विवक्षित कालके समाप्त होने तक फिर  
भी उक्त विधिसे परिवर्तन कराना चाहिए । यहाँ विवक्षित काल असंख्यात वर्षप्रमाण ग्रहण  
करना चाहिए । यहाँ पर विवक्षित कालके भीतर लोभके परिवर्तनवारोंका कुल जोड़ संदृष्टिके  
अनुसार ५४ है । संदृष्टिके अनुसार ये ३५ मायाके परिवर्तनवार हैं । संदृष्टिके अनुसार ये ३३  
क्रोधके परिवर्तनवार हैं । तथा संदृष्टिके अनुसार ये ३२ मानके परिवर्तनवार हैं । अथवा  
लोभादिककी परिवर्तनसंदृष्टि इस प्रकार स्थापित करनी चाहिए—

लो०	मा०	क्रो०	मा०	लो०	मा०	क्रो०	मा०	लो०	मा०	क्रो०	मा०	लो०	मा०	क्रो०	मा०
३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२
३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२
३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२
२	३	२	२	२	३	२	२	२	३	२	२	२	२	३	२

यह सभी असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंको मुख्यकर कहा है ।  
अब संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी मुख्यतासे यदि कहते हैं तो क्रोध  
मान, माया, लोभके परिवर्तनवार एक-दूसरेको देखते हुए सदृश ही होते हैं, क्योंकि

१. ता०प्रती परिणामिदत्तादो इति पाठः ।



सरिसा होदूण जाव ण गदा ताव लोभादीणमागरिसा अहिया ण होंति त्ति सुत्त-  
वयणादो ।

\* एवमोघेण ।

§ ६२. एवमेसा ओघेण चउण्हं कसायाणमभिकखमुवजोगपरूवणा कया । एत्तो  
आदेशपरूवणं वत्तइस्सामो । तत्थ वि तिरिक्ख-मणुसगदीसु ओघपरूवणादो णत्थि  
णाणत्तमिदि तप्पदुप्पायणट्टमप्पणासुत्तमाह—

\* एवं तिरिक्खजोगिगदीए मणुसगदीए च ।

§ ६३. सुगममेदमप्पणासुत्तं, विसेसाभावणिबंधणत्तादो । संपहि णिरयगदीए  
अभिकखमुवजोगविसेसपदुप्पायणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

\* णिरयगईए कोहो भाणो कोहो माणो त्ति वारसहस्साणि परि-  
यत्तिदूण सहं माया परिवत्तदि ।

असंख्यात परिवर्तनवार सदृश होकर जब तक व्यतीत नहीं होते तब तक लोभादिकके अधिक  
परिवर्तनवार नहीं होते ऐसा यह सूत्रवचन है ।

विशेषार्थ—पहले यह बतला आये हैं कि जब अपनी-अपनी परिपाटियोंके अनुसार  
लोभके एक-एक कर परिवर्तनवार असंख्यात हो जाते हैं तब एक बार मायाका परिवर्तनवार  
अधिक होता है । यहाँ क्रोधका परिवर्तनवार एकवार अधिक कैसे होता है यह बतलाया  
गया है । क्रम यह है कि जब लोभके परिवर्तनवार असंख्यातवार अधिक हो जाते हैं तब  
मायाका परिवर्तनवार एकवार अधिक होता है और इस विधिसे जब मायाके परिवर्तनवार  
असंख्यात अधिक हो जाते हैं तब एकवार क्रोधका परिवर्तनवार अधिक होता है ।  
आगे भी यही क्रम है । इस अन्तिम संदृष्टिके पूर्व चारों कषायोंके परिवर्तनवारोंको सूचित  
करनेके लिए जो संदृष्टि दी है उसमें जो विधि स्वीकार की गई है उसका खुलासा यहाँ पूर्वमें  
अंक संदृष्टि द्वारा किया ही है । उसके अनुसार अंक संदृष्टिकी अपेक्षा लोभके परिवर्तनवार  
४४, मायाके परिवर्तनवार ३५, क्रोधके परिवर्तनवार ३३ और मानके परिवर्तनवार ३२  
प्राप्त होते हैं ।

\* यह प्ररूपणा ओघसे की गई है ।

§ ६२. इस प्रकार चारों कषायोंके पुनः पुनः उपयुक्त होनेकी यह प्ररूपणा ओघसे की  
गई है । इससे आगे आदेशप्ररूपणाको बतलावेंगे । उसमें भी तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें  
ओघप्ररूपणासे आदेशप्ररूपणामें भेद नहीं है, इसलिए उसका कथन करनेके लिए अर्पणा  
सूत्रको कहते हैं—

\* इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनियोगतिमें और मनुष्यगतिमें जानना चाहिए ।

§ ६३. यह अर्पणासूत्र सुगम है, ओघसे इन दोनों गतियोंमें विशेषताका अभाव इसका  
कारण है । अब नरकगतिमें पुनः पुनः उपयोगविशेषका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको  
कहते हैं—

\* नरकगतिमें क्रोध-मान पुनः क्रोध-मान इस प्रकार हजारोंवार परिवर्तन होकर  
एकवार मायारूप परिवर्तन होता है ।

§ ६४. जहा ओघपरूवणाए लोभो माया कोधो माणो त्ति एदीए अवट्टिदपरि-  
वाडीए असंज्जेसु आगरिसेसु गदेसु तदो अण्णारिसी परिवाडी होदि तहा एत्थ णत्थि,  
किंतु एत्थ णिरयगदीए कोधो माणो कोधो माणो त्ति एसा अवट्टिदपरिवाडी । एदीए  
परिवाडीए वारसहस्साणि परियट्टिदूण तदो सइं मायापरिवत्ती होइ । किं कारणं ?  
णेइएसु अच्चंतदोसवहुलेसु कोह-माणणं चैव पउरं संभवादो । एवं पुणो-पुणो परिवत्त-  
माणे मायापरिवत्ता वि संखेज्जसहस्समेत्ता जादा । तदो अण्णो विसरिसपरिवाडीए  
वियप्पो होदि त्ति पदुप्पायणडुमाह—

\* मायापरिवत्तेहिं संखेज्जेहिं गदेहिं सइं लोहो परिवत्तदि ।

§ ६५. संखेज्जसहस्सेहिं मायापरिवत्तेहिं पादेकं कोह-माणणं संखेज्जपरिवत्तण-  
सहस्साविणाभावीहिं गदेहिं तदो सइं लोभेण परिणमदि त्ति भणिदं होदि । कुदो एवं  
चैव ? णिरयगदीए अच्चंतपापबहुलाए पेज्जसरूवलोहपरिणामस्स सुट्टु दुल्लहत्तादो ।  
एवमेस कमो ताव जाव अप्पणो णिरुद्धभवट्टिदीए चरिमसमयो त्ति । संपहि दोण्हं  
एदेसिं सुत्ताणं संदिट्टियुहेण समुदायत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—णिरयगदीए  
संखेज्जवस्साउअभवे असंखेज्जवस्साउअभवे वा कोहो माणो ? १ १ ० ० पुणो वि कोहो  
माणो त्ति २ २ ० ० एवंविहेसु संखेज्जसहस्सपरिवत्तणवारेसु गदेसु तदो अंतिमवारे

§ ६४. जिस प्रकार ओघप्ररूपणाकी अपेक्षा लोभ माया, क्रोध, मान इस प्रकार  
अवस्थित परिपाटीके अनुसार असंख्यात परिवर्तनवारोंके होनेपर तदनन्तर अन्य प्रकारकी  
परिपाटी होती है उस प्रकार यहाँ नहीं है, किन्तु यहाँ नरकगतिमें क्रोध-मान पुनः क्रोध-मान  
यह अवस्थित परिपाटी है । इस परिपाटीसे हजारों वार परिवर्तन करके तदनन्तर एक वार  
मायारूप परिवर्तन होता है, क्योंकि नारकी जाव अत्यन्त दोषबहुल होते हैं, इसलिए उनमें  
क्रोध और मानकी ही प्रचुरता पाई जाती है । इस प्रकार पुनः-पुनः परिवर्तन होनेपर मायारूप  
परिवर्तन भी संख्यात हजार वार हो जाते हैं । तब विसदृश परिपाटीके अनुसार अन्य  
विकल्प होता है इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* मायासम्बन्धी संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके होनेपर एकवार लोभसम्बन्धी  
परिवर्तनवार होता है ।

§ ६५. मायासम्बन्धी प्रत्येक परिवर्तनवार क्रोध और मानके संख्यात हजार परि-  
वर्तनवारोंका अविनाभावी है और इस प्रकार मायासम्बन्धी संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके  
होनेके पश्चात् एक वार लोभरूपसे परिणमता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा किस कारणसे होता है ?

समाधान—अत्यन्त पापबहुल नरकगतिमें प्रेयस्वरूप लोभपरिणाम अत्यन्त दुर्लभ है ।

इस प्रकार यह क्रम अपनी विवक्षित स्थितिके अन्तिम समय तक चलता रहता है ।  
अब इन दोनों सूत्रोंके समुच्चयरूप अर्थकी संदृष्टि द्वारा प्ररूपणा करेंगे । यथा—नरकगतिमें  
संख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें या असंख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें क्रोध-मान ? १ १ ० ०  
पुनः क्रोध-मान २ २ ० ० इस प्रकारके संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके हो जानेपर अन्तिम

कोहो होदूण माणमुल्लंघिय माया एगवारं परिवत्तदि ३ २ १ ० । पुणो वि पुव्वुत्त-  
विहिणा चैव कोहो माणो त्ति संखेज्जपरियट्ठणवारे गंतूण पुणो पच्छिमे वारे कोहो  
होदूण माणमुल्लंघिय मायाए एगवारं परिवत्तदि ३ २ १ ० । पुणो वि एदेणेव विहिणा  
मायागरिसाणं पि संखेज्जसहस्सवारेसु समत्तेसु तदो तदणंतरपरिवाडीए कोहो होदूण  
माणं मायं च समुल्लंघिय सइं लोभेण परिणमइ ३ २ ० १ । पुणो वि एदेण विहिणा  
३ २ १ ० । मायागरिसेसु संखेज्जसहस्सवारं परिवत्तिदेसु पुणो कोहो होदूण माणं  
मायं च वोलिय एगवारं लोभेण परिणमइ ३ २ ० १ । पुणो वि एदेणेव कमेण  
३ २ १ ० । संखेज्जसहस्समेत्तमायापरिवत्तेसु गदेसु एगवारं लोभो परिवत्तदि । ३ २ ० १ ।

एवं णेदव्वं जाव पुव्वणि रुद्धा उट्ठिदि चरिमसमयो त्ति । एत्थ सव्वसमासेण संदिट्ठी एसो—

३ २ १ ०	३ २ १ ०	३ २ १ ०	एत्थ कोह-माण-माया-लोभा-
३ २ १ ०	३ २ १ ०	३ २ १ ०	गरिसाणं जहाकमं सव्वपिंडो एसो २७
३ २ ० १	३ २ ० १	३ २ ० १	१८ ६ ३ । एदेसिमप्पावहुअं पुरदो

वत्तइस्सामो ।

वारमें क्रोध होकर मानको उल्लंघन कर एक बार मायारूप परिवर्तन होता है । उसकी संदृष्टि है— ३ २ १ ० । फिर भी पूर्वोक्त विधिसे ही क्रोध, मान इस प्रकार संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके हो जानेपर पुनः अन्तिम वारमें क्रोध होकर मानको उल्लंघन कर मायारूपसे एक बार परिवर्तन होता है । इसकी संदृष्टि है— ३ २ १ ० । फिर भी इसी पूर्वोक्त विधिसे संख्यात हजार मायासम्बन्धी परिवर्तनवारोंके भी समाप्त हो जानेपर उसके अनन्तर जो परिपाटी होती है उसमें क्रोध होकर तथा मान और मायाको उल्लंघन कर एक बार लोभ रूपसे परिणमता है । उसकी संदृष्टि ३ २ ० १ है । फिर भी इसी विधिसे ३ २ १ ० माया परिवर्तनवारोंके, संख्यात हजार बार परिवर्तित होनेपर पुनः क्रोध होकर तथा मान और मायाको उल्लंघन कर एक बार लोभरूपसे परिणमता है । उसकी संदृष्टि ३ २ ० १ है । फिर भी इसी क्रमसे ३ २ १ ० मायाके परिवर्तनवारोंके संख्यात हजार बार हो जाने पर एक बार लोभरूप परिणमता है । उसकी संदृष्टि ३ २ ० १ है । इस प्रकार पहले प्राप्त हुई आयुस्थितिके अन्तिम समय तक जानना चाहिए । यहाँ सबकी समुच्चयरूप संदृष्टि यह है—

३ २ १ ०	३ २ १ ०	३ २ १ ०	यहाँ क्रोध, मान, माया और लोभके
३ २ १ ०	३ २ १ ०	३ २ १ ०	परिवर्तनवारोंका पूरा योग यह है—
३ २ ० १	३ २ ० १	३ २ ० १	क्रो० २७ मा० १८ लोभ ३ ।
			इनका अल्पबहुत्व आगे कहेंगे ।

विशेषार्थ—नरकगतिमें कषायोंके परिवर्तनका क्रम क्या है इसका विस्तृत रूपसे विचार यहाँ पर किया गया है । नारकी जीव अत्यन्त पापबहुल होते हैं, इसलिए उनमें क्रोध और मानकी बहुलता होती है । हजारों बार जब क्रोध, मान पुनः क्रोध, मान रूप परिणाम हो लेते हैं तब क्रोधके बाद मानरूप परिणाम न होकर एक बार मायारूप परि-

§ ६६. एवं गिरयगदीए अभिक्खमुवजोगसरूवणिरूवणं कादूण संपहि देवगदीए तप्परूवणद्वुमुवरिमं पवंधमाह—

\* देवगदीए लोभो माया लोभो माया त्ति वारसहस्साणि गंतूण तदो सइं माणो<sup>१</sup> परिवत्तदि ।

§ ६७. तं जहा—देवगदीए लोभो माया लोभो माया त्ति एदेसिं दोण्हं कसायाणं वारसहस्साणि गंतूण तदो सइं माणकसायो परिवत्तदि । कुदो एवं ? पेज्जसरूवाणं लोभ-मायाणं तत्थ बहुलं संभवदंसणादो । तदो लोभ-मायाहि संखेज्जवारसहस्साणि गंतूण तदो लोभेण परिणमिय मायापाओग्गविसये तमुल्लंघिय सइं माणेण परिवत्तदि त्ति सिद्धं । एवमेदेण कमेण पुणो-पुणो कीरमाणे माणपरिवत्ता वि संखेज्जसहस्समेत्ता जादा । तदो अण्णारिसो परिवत्तो होदि त्ति जाणावणडुमाह—

णाम होता है । पुनः इसी क्रमसे हजारों वार क्रोध, मान पुनः क्रोध, मान इस रूप परिणाम होनेके बाद क्रोधरूप परिणाम होकर मानके स्थानमें मायारूप परिणाम होता है और इस विधिसे जब हजारों वार मायारूप परिणाम हो लेते हैं तब क्रोधरूप परिणामके बाद मान और मायारूप परिणाम न होकर एक वार लोभरूप परिणाम होता है । नारकियोंके जीवनके अन्त तक यही क्रम चलता रहता है । यहाँ अंकसंदृष्टि द्वारा इसी तथ्यको समझाया गया है । अंकसंदृष्टिमें ३ यह संख्या संख्यात हजारकी, २ यह संख्या दो वार की और १ यह संख्या एक वारकी सूचक है । अंकसंदृष्टिमें ० शून्यसे यह सूचित किया गया है कि जब क्रोधके बाद लोभरूप परिणाम होता है तब उस वार मायारूप परिणाम नहीं होता । यद्यपि उस वार मानरूप भी परिणाम नहीं होता । परन्तु मानके खानेमें मात्र २ यह संख्या रहनेसे यह बात सुतरां ख्यालमें आ जाती है ।

§ ६६. इस प्रकार नरकगतिमें पुनः पुनः कषायोंके उपयोगस्वरूपका कथन करके अब देवगतिमें उसका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* देवगतिमें लोभ-माया पुनः लोभ-माया इस प्रकार संख्यात हजार वार जाकर तदनन्तर एक वार मानरूप परिवर्तन होता है ।

§ ६७. यथा—देवगतिमें लोभ-माया पुनः लोभ-माया इस प्रकार इन दोनों कषायोंके संख्यात हजार वारोंको प्राप्त होकर तदनन्तर एकवार मानकषायरूपसे परिवर्तन करता है ।

शंका—ऐसा किस कारणसे होता है ?

समाधान—प्रेयस्वरूप लोभ और मायाकी वहाँ बहुलतासे उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिए लोभ और मायाके द्वारा संख्यात हजार वारोंको प्राप्त होकर उसके बाद लोभरूपसे परिणामनकर मायाके योग्य स्थानमें मायाको उल्लंघनकर एकवार मानरूपसे परिवर्तित होता है यह सिद्ध हुआ । इस प्रकार इस क्रमसे पुनः पुनः करनेपर मानके परिवर्तित वार भी संख्यात हजार हो जाते हैं । तदनन्तर अन्य प्रकारका परिवर्तनवार होता है इसका ज्ञान करानेके लिए कहते हैं—

\* माणस्स संखेज्जेसु आगरिसोसु गदेसु तदो सइं कोधो परिवत्तदि ।

§ ६८. माणागरिसेसु पादेक्कं लोभ-मायाणमागरिससहस्साविणाभावीसु गदेसु सइं कोहेण परिवत्तदि, देवगदीए अप्पसत्थयरकोहपरिणामस्स पाएण संभवाणुवलंभादो । एवमेसो परिवत्तणकमो ताव जाव णिरुद्धाउट्टिदिचरिमसमयो त्ति । एत्थ संदिट्टिमुहेण समुदायत्थपरूवणाए णिरयगइभंगो । णवरि विवज्जासेण कायव्वमिदि । लोभसव्वसमासो एसो २७ । मायासव्वसमासो १८ । माणसव्वसमामो ६ । कोहसव्वसमासो ३ ।

§ ६९. एवमेत्तिएण पबंधेण 'को वा कम्हि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो' त्ति एदम्मि गाहापच्छिमद्धे पडिबद्धमभिक्खमुवजोगपरूवणं कादूण संपहि तच्चिसयमेव-मप्पावहुअं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* एदीए परूवणाए एकम्हि भवग्गहणे णिरयगदीए संखेज्जवासिगे वा असंखेज्जवासिगे वा भवे लोभागरिसा थोवा ।

§ ७०. एदीए अणंतरपरूविदाए अभिक्खमुवजोगपरूवणाए अप्पावहुअं वत्तइ-स्सामो त्ति भणिदं होदि । एकम्हि भवग्गहणे एगभवग्गहणमहिरणं कादूणे त्ति वुत्तं

\* मानके संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके होने पर एक वार क्रोधरूप परिवर्तन होता है ।

§ ६८. प्रत्येक मानकषायका परिवर्तनवार लोभ और मायाके संख्यात हजार परिवर्तन वारोंका अविनाभावी है, इस क्रमसे मानकषायके संख्यात हजार परिवर्तनवारोंके हो जानेपर एकवार क्रोधरूपसे परिवर्तित होता है, क्योंकि देवगतिमें अग्रस्ततर क्रोधपरिणामकी प्रायः उत्पत्ति नहीं है । इस प्रकार प्राप्त हुई आयुके अन्तिम समय तक यह परिवर्तनक्रम होता रहता है । यहाँ पर संदृष्टि द्वारा प्ररूपणा नरकगतिके समान है । इतनी विशेषता है कि विपर्यासरूपसे प्ररूपणा करनी चाहिए । संदृष्टिमें लोभ कषायका कुल योग २७ अंकप्रमाण है, माया-कषायका कुल योग १८ अंकप्रमाण है, मानकषायका कुल योग ६ अंकप्रमाण है और क्रोध-कषायका कुल योग ३ अंकप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार पहले नरकगतिमें क्रोधादि कषायोंके परिवर्तनवारोंका स्पष्टीकरण कर आये हैं, यहाँ देवगतिमें भी उसी प्रकार जान लेना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वहाँ क्रोध, मान, माया और लोभ इस क्रमको स्वीकार कर स्पष्टीकरण किया है । किन्तु यहाँ लोभ, माया, मान और क्रोध इस क्रमको स्वीकार कर विवेचन करना चाहिए ।

§ ६९. इस प्रकार इस प्रबन्ध द्वारा गाथाके 'को वा कम्हि कसाए अभिक्खमुवजोग-मुवजुत्तो' इस उत्तरार्धसे सम्बन्ध रखनेवाले पुनः पुनः उपयोगका कथन कर अब उसीके विषयभूत अल्पबहुत्वका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* इस प्ररूपणाके अनुसार एक भवग्रहणमें नरकगतिमें संख्यात वर्षवाले भवमें या असंख्यात वर्षवाले भवमें लोभके परिवर्तनवार सबसे स्तोफ हैं ।

§ ७०. अनन्तर पूर्व कही गई इस पुनः-पुनः होनेवाली उपयोगप्ररूपणाके अनुसार अल्पबहुत्वको बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है । एकम्हि भवग्गहणे' अर्थात् एक भवग्रहण-

होइ । णिरयगदीए ताव पयदपरुवणं कस्सामो, पच्छा सेसगदीणमिदि जाणावणट्ठं 'णिरयदीए' ति वुत्तं । तत्थ वि संखेज्जवस्सिगे असंखेज्जवस्सिगे वा भवग्गहणे सरिसी एसा परुवणा ति पटुप्पायणट्ठं 'संखेज्जवस्सिगे वा असंखेज्जवस्सिगे वा' ति णिद्देसो कओ । 'लोभागरिसा थोवा' लोभपरिवत्तणवारा सन्वत्थोवा ति भणिदं होदि । कुदो एदेसिं थोवत्तमिदि चे ? णिरयगदीए लोभपरियट्ठणवाराणं सुट्ठु विरलाणमुवलंभादो ।

\* मायागरिसा संखेज्जगुणा ।

§ ७१. कुदो ? एक्केक्कम्मि लोभपरिवत्ते संखेज्जसहस्साणं भायापरिवत्तणवाराण-मुवलंभादो । को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जसहस्सरूवाणि ।

\* माणागरिसा संखेज्जगुणा ।

§ ७२. एत्थ वि कारणमणंतरपरुविदत्तादो सुगमं । गुणगारो च तप्पाओग्ग-संखेज्जरूवमेत्तो ।

\* कोहागरिसा विसेसाहिया ।

§ ७३. केत्तियमेत्तो विसेसो ? सगसंखेज्जदिभागमेत्तो । लोभ-भायागरिसमेत्तेण

को आधार बनाकर यह उक्त कथनका तात्पर्य है । सर्व प्रथम नरकगतिमें प्रकृत प्ररूपणा करेंगे, तदनन्तर शेष गतियोंकी अपेक्षा वह प्ररूपणा करेंगे इस बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'णिरयगदीए' यह वचन कहा है । उसमें भी संख्यात वर्षकी आयुवाले और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें यह प्ररूपणा समान है इस बातका कथन करनेके लिए सूत्रमें 'संखेज्जवस्सिगे वा असंखेज्जवस्सिगे वा' यह निर्देश किया है । 'लोभागरिसा थोवा' लोभके परिवर्तनवार सबसे स्तोक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इनका स्तोकपना किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि नरकगतिमें लोभके परिवर्तनवार अत्यन्त विरल पाये जाते हैं, इससे जानते हैं कि वहाँ लोभके परिवर्तनवार सबसे स्तोक हैं ।

\* उनसे मायाकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।

§ ७१. क्योंकि लोभके एक-एक परिवर्तनवारमें मायाके परिवर्तनवार संख्यात हजार पाये जाते हैं ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संख्यात हजार अंक गुणकार है ।

\* उनसे मानकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।

§ ७२. यहाँ पर भी कारणका कथन सुगम है, क्योंकि उसका अनन्तर पूर्व कथन कर आये हैं । और गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात हजार अंकप्रमाण है ।

\* उनसे क्रोधकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं ।

§ ७३. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—अपना संख्यातवाँ भागप्रमाण है । मानके परिवर्तनवारोंसे लोभ और

माणगारिसहितो कोहागरिसा विसेसाहिया त्ति वुत्तं होइ ।

§ ७४. एवं गिरयोधो परुविदो । एवं सव्वासु पुढवीसु । णवरि पढमपुढवीदो अण्णत्थ संखेज्जवस्सियभवग्गहणालावो ण कायव्वो । संपहि देवगदीए पयदप्पावहुअ-गवेसणद्धमाह—

\* देवगदीए कोधागरिसा थोवा ।

§ ७५. ३ । गिरयगदीए लोभागरिसाणं थोवत्ते परुविदकारणमेत्थ वि परुवेयव्वं, विसेसाभावादो ।

\* माणागरिसा संखेज्जगुणा ।

§ ७६. ६ । एत्थ वि कारणं सुगमं, गिरयगइमायागरिसेहिं वक्खाणिदत्थादो ।

\* मायागरिसा संखेज्जगुणा ।

§ ७७. १८ । सुगममेदं पि सुत्तं, गिरयगदिमाणगरिसेहिं समानपरुवणत्तादो ।

मायाके परिवर्तनवार मात्र क्रोधके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अर्थात् मानकषायके परिवर्तनवारोंमें लोभ और मायाके परिवर्तनवारोंको मिला देने पर क्रोधके परिवर्तनवार आ जाते हैं जो अपने अर्थात् क्रोधकषायके समस्त परिवर्तनवारोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसे अंकसंदृष्टिसे अच्छी तरह समझा जा सकता है । अंकसंदृष्टि पहले दे ही आये हैं ।

§ ७४. इस प्रकार ओधसे नारकियोंमें प्ररूपणा की । इसी प्रकार सब पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीके सिवाय अन्य पृथिवियोंमें संख्यात वर्षवाले भवप्रहरणरूप आलाप नहीं कहना चाहिए । अब देवगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका अनुसन्धान करनेके लिए कहते हैं—

\* देवगतिमें क्रोधकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े हैं ।

§ ७५. ३ । नरकगतिमें लोभकषायके परिवर्तनवारोंके स्तोकपनेका जो कारण कह आये हैंउसे यहाँ भी कहना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । तात्पर्य यह है कि देवगति प्रेयबहुल गति है, इसलिए वहाँ पर क्रोधकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े पाये जाते हैं । यहाँ अंकसंदृष्टिमें उनकी संख्या ३ प्राप्त होती है ।

\* उनसे मानकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।

§ ७६. ६ । यहाँ पर भी कारणका कथन सुगम है, क्योंकि नरकगतिमें मायाकषायके परिवर्तनोंके कथनके साथ उस अर्थका व्याख्यान कर आये हैं । तात्पर्य यह है कि देवोंमें क्रोधकषायका एक-एक परिवर्तनवार तब होता है जब मानकषायके संख्यात हजार परिवर्तनवार हो लेते हैं । पिछले चूर्णिसूत्रके प्रसंगसे अंकसंदृष्टि द्वारा क्रोधकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ३ कल्पित की गई है । यहाँ मानकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ६ कल्पित की है ।

\* उनसे मायाकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।

§ ७७. १८ । यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि नरकगतिमें मानकषायके परिवर्तनवारोंके समान इसकी प्ररूपणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा संख्यात हजारकी सहनानी ३ है । पूर्वमें मान-

\* लोभागरिसा विसेसाहिया ।

§ ७८. २७ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? सगसंखे०भागभूदकोह-भाणागरिसमेत्तो ।

§ ७९. एवं भवणादि जाव सच्चव्वसिद्धिं त्ति वत्तच्चं, विसेसाभावादो । संपहि तिरिक्ख-मणुसगदीसु पयदप्पावहुअविहासणडुमाह—

\* तिरिक्ख-मणुसगदीए असंखेज्जवस्सिगे भवग्गहणे माणागरिसा थोवा ।

§ ८० एत्थासंखेज्जवस्सियभवग्गहणविसेसणं संखेज्जवस्सियभवग्गहणे पयदप्पावहुअसंभवो णत्थि त्ति जाणावणफलं दडुच्चं, तत्थ चदुण्हं कसायाणं परिवत्तणवाराणं सरिसत्तदंसणादो । एत्थ संदिट्ठीए माणागरिसाणं पमाणमेदं ३२ ।

\* कोहागरिसा विसेसाहिया ।

परिवर्तनवारोंकी संख्या अंकसंदृष्टिमें ६ बतला आये हैं । इसे ३ से गुणा करने पर १८ प्राप्त होते हैं । इसे ध्यानमें रख कर वास्तविक अर्थ जान लेना चाहिए ।

\* उनसे लोभकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं ।

§ ७८. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—अपने संख्यातवें भागप्रमाण जो क्रोध और मानकषायके परिवर्तनवार हैं उतना विशेषका प्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ टीकामें 'सगसंखे०भागभूद' पद आया है । उसका तात्पर्य है कि लोभकषायके जितने परिवर्तनवार हैं उनके संख्यातवें भागप्रमाण । वह संख्यातवाँ भाग कितना होगा ऐसा प्रश्न होने पर बतलाया है कि क्रोध और मानकषायके जितने परिवर्तनवार हैं उतना है । अंकसंदृष्टिमें यहाँ अपने संख्यातवें भागकी सहनानी ९ का अंक है । पूर्व सूत्रके प्रसंगसे अंक संदृष्टिमें मायाकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या १८ दे आये हैं । उसका ९ संख्या संख्यातवाँ भाग है । यह क्रोध और मानके परिवर्तनवारोंकी जितनी संख्या है-उतनी है । इन दोनोंका योग २७ है । इसलिए यहाँ अंकसंदृष्टिमें लोभकषायके परिवर्तनवार २७ बतलाये हैं ।

§ ७९. इसी प्रकार अर्थात् देवगतिकी ओषप्ररूपणाके समान भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें कथन करना चाहिए, क्योंकि उक्त प्ररूपणासे इसके कथनमें कोई अन्तर नहीं है । अब तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर मानकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े हैं ।

§ ८०. संख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर प्रकृत अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके इस लिए सूत्रमें 'असंखेज्जवस्सियभवग्गहणे' यह विशेषण जानना चाहिए, क्योंकि संख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें चारों कषायोंके परिवर्तनवार समान देखे जाते हैं । यहाँ पर अंकसंदृष्टिमें मानकषायके परिवर्तनवारोंका प्रमाण यह ३२ है ।

\* उनसे क्रोधकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं ?



§ ८१. केत्तिममेत्तो विसेसो ? तप्पाओग्गासंखेजरुवमेत्तो । किं कारणं ? असंखे-  
ज्जासु परिवाडीसु कोह-माणगरिसाणमवड्ढिसरुवेण गदासु तदो सइं माणागरिसेहिंतो  
कोहागरिसाणमदिरेयभावो होदि त्ति ममणंतरमेव परुवियत्तादो । तदो माणागरिसाण-  
मसंखे०भागमेत्तो एत्थ विसेसो त्ति घेत्तव्वं ३३ ।

\* मायागरिसा विसेसाहिया ।

§ ८२. केत्तियमेत्तो विसेसो ? कोहागरिसाणमसंखे०भागमेत्तो ३५ ।

\* लोभागरिसा विसेसाहिया ।

§ ८३. केत्तियमेत्तेण ? मायागरिसाणमसंखे०भागमेत्तेण ४४ ।

एवं गाहापच्छद्वस्स अत्थे विहासिय समत्ते पढमगाहा समत्ता भवदि ।

§ ८१. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागमात्र हैं, क्योंकि क्रोध और मानकषायके परिवर्तनवारोंकी अवस्थितरूपसे असंख्यात परिपाटियोंके जानेपर तदन्तर मानके परिवर्तन-  
वारोंसे क्रोधके परिवर्तनवारोंकी एक बार अधिकता होती है यह भले प्रकार पहले ही कथन  
कर आये हैं । इसलिए मानकषायके परिवर्तनवारोंका असंख्यातवाँ भाग यहाँ पर विशेष ग्रहण  
करना चाहिए ३३ ।

विशेषार्थ—अंक संदृष्टिमें विशेषका प्रमाण १ अंक स्वीकार करने पर क्रोध कषायके  
कुल परिवर्तनवार ३३ हुए, क्योंकि पूर्वमें मानकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ३२ दे  
आये हैं ।

\* उनसे मायाकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं ।

§ ८२. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—क्रोधकषायके परिवर्तनवारोंका असंख्यातवाँ भाग विशेषका प्रमाण है ३५ ।

विशेषार्थ—पूर्वमें अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा क्रोधकषायके परिवर्तनवार ३३ बतला आये  
हैं । उनका असंख्यातवाँ भाग २ अंक प्रमाण स्वीकार कर लेनेपर मायाकषायके परिवर्तन-  
वारोंकी कुल संख्या ३५ प्राप्त होती है ।

\* उनसे लोभकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं ।

§ ८३. शंका—कितने मात्रसे अधिक हैं ?

समाधान—मायाकषायके परिवर्तनवारोंके असंख्यातवें भागमात्रसे अधिक हैं ४४ ।

विशेषार्थ—पूर्वमें अंकसंदृष्टिमें मायाकषायके परिवर्तनवार ३५ बतला आये हैं ।  
उनका असंख्यातवाँ भाग ९ अंक प्रमाण स्वीकार करनेपर लोभकषायके कुल परिवर्तनवारोंकी  
संख्या ४४ प्राप्त होती है ।

इस प्रकार प्रथम गाथाके उत्तरार्धका व्याख्यान समाप्त  
होने पर प्रथम गाथाका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

\* एत्तो विदियगाहाए विभासा ।

§ ८४. एत्तो पढमगाहाविहासणादो अणंतरमिदाणि विदियगाहाए विहासा अहिकीरदि त्ति भणिदं होइ ।

\* तं जहा ।

§ ८५. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

\* एकम्मि भवग्गहणे एककसायम्मि कदि च उवजोगा त्ति ।

§ ८६. एदस्स ताव गाहापुव्वद्वस्स अत्थविहासणं कस्सामो त्ति भणिदं होइ । एदम्मि गाहापुव्वद्वे णिरयादिगदीसु संखेज्जवस्सियमसंखेज्जवस्सियं वा भवग्गहणमाहारं कादूण तत्थेगेगस्स कसायस्स केत्तिया उवजोगा होति, किं संखेजा असंखेजा वा त्ति पुच्छाणिद्देसेण उवरिमसव्वपरूवणा संगहिया त्ति गहेयव्वं । संपहि एवंविहत्थविसेसपडि-वद्वस्सेदस्स गाहापुव्वद्वस्स णिरयगइसंबंधेणत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* एकम्मि णेरहयभवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

§ ८७. एकम्मि णेरइयभवग्गहणे णिरुद्धे तत्थ कोहोवजोगा केत्तिया होति त्ति संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होति त्ति भणिदं । तं जहा—दसवस्ससहस्सप्पहुडि कोहोव-

\* इससे आगे अब दूसरी गाथाकी विभाषा करते हैं ।

§ ८४. 'एत्तो' अर्थात् प्रथम गाथाका विशेष विवेचन करनेके बाद अब दूसरी गाथाका विशेष विवेचन अधिकृत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* वह कैसे ?

§ ८५. यह पृच्छावाक्य सुगम है ।

\* एक भवग्रहणके भीतर एक कषायके कितने उपयोग होते हैं ।

§ ८६. सर्व प्रथम इस गाथाके पूर्वार्धका विशेष विवेचन करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है । नरकादि गतियोंमें संख्यात वर्षवाले और असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणको आधार बना कर वहाँ एक-एक कषायके कितने उपयोग होते हैं—क्या संख्यात उपयोग होते हैं या असंख्यात उपयोग होते हैं इस प्रकार इस गाथाके पूर्वार्धमें पृच्छाके निर्देश द्वारा आगेकी समस्त प्ररूपणा संगृहीत की गई है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए । अब इस प्रकारके अर्थविशेषसे सम्बन्ध रखनेवाले गाथाके इस पूर्वार्धके अर्थका नरकगतिके सम्बन्धसे विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* नारकियोंके एक भवग्रहणके भीतर क्रोधकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।

§ ८७. नरकियोंके एक भवग्रहणके विवक्षित होनेपर उसमें क्रोधसम्बन्धी उपयोग कितने होते हैं ऐसी पृच्छा होने पर संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं यह कहा है । यथा—

जोगा संखेज्जा होदूण लब्धंति जाव तप्पाओग्गसंखेज्जवस्सियभवग्गहणं ति । पुणो तत्थुक्कस्ससंखेज्जमेत्ता कोहोवजोगा होदूण तत्तो प्पहुडि उवरिमसव्वभववियप्पेसु संखेज्जवस्सिएसु असंखेज्जवस्सिएसु च असंखेज्जा चेव होति । किं कारणं ? तप्पाओग्गसंखेज्जवस्साणं सव्वोवजोगे एगपुंजं कादूण पुणो सरिस-वेभागे करिय तत्थेगभागं वेत्तूणुक्कस्ससंखेज्जमेत्ता कोहोवजोगा लब्धंति । सेसेगभागो वि माणादिउवजोगा होति । एदेण कारणेण एदं भवग्गहणं संखेज्जोवजोगाणं पज्जवसाणत्तेण गहियं । एदस्स तप्पाओग्गसंखेज्जवस्समेत्तभवग्गहणस्स पमाणणिण्णयमुवरि कस्सामो । एवमेत्ता कोहोवजोगाणं परूवणा कया । संपहि माणोवजोगाणं पयदत्थगवेसणहुमाह ।

\* माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

§ ८८. 'एक्कम्मि णेरइयभवग्गहणे' इदि अहियारसंबंधो एत्थ कायव्वो । सेसं सुगमं ।

\* एवं सेसाणं पि ।

§ ८९. जहा कोह-माणणं पयदपरूवणा कया एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावादो । एवं णिरयगदीए पयदपरूवणं कादूण सेसासु वि गदीसु एसो चेव कमो अणुगंतव्वो त्ति पदुप्पायणहुमप्पणासुत्तमाह—

दस हजार वर्षसे लेकर तात्प्रायोग्य संख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात ही प्राप्त होते हैं । पुनः वहाँ क्रोधकषायके उपयोग उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण प्राप्त होकर तदनन्तर आगेके सब संख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले और असंख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले भवके भेदोंमें असंख्यात ही क्रोधसम्बन्धी उपयोग होते हैं ।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—तात्प्रायोग्य संख्यात वर्षोंके भीतर प्राप्त हुए सब कषायोंसम्बन्धी उपयोगोंका एक पुञ्ज करके पुनः उसके परस्पर समान दो भाग करके उनमेंसे एक भागको ग्रहण कर उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग होते हैं । शेष एक भागप्रमाण उपयोग भी मानादिकषायसम्बन्धी होते हैं । इस कारणसे इस भवको, संख्यात उपयोगोंकी यहाँ परिसमाप्ति हो जाती है, यह बतलानेके लिए ग्रहण किया है । इस तात्प्रायोग्य संख्यात वर्ष-प्रमाण भवके प्रमाणका निर्णय आगे करेंगे । इस प्रकार यह क्रोधके उपयोगोंका कथन किया । अब मानसम्बन्धी उपयोगोंके प्रकृत अर्थका अनुसन्धान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* मानकषायके उपयोग संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं ।

§ ८८. नारियोंके एक भवका अधिकार होनेसे 'एक्कम्मि भवग्गहणे' इस पदका यहाँ पर सम्बन्ध कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

\* इसी प्रकार शेष कषायोंकी अपेक्षा भी जानना चाहिए ।

§ ८९. जिस प्रकार क्रोध और मानकषायकी प्रकृत प्ररूपणा की है उसी प्रकार माया और लोभ कषायोंकी भी करनी चाहिए । इस प्रकार नरकगतिमें प्रकृत विषयकी प्ररूपणा करके शेष गतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए । इस तथ्यका कथन करनेके लिए अर्पणासूत्रको

\* एवं सेसासु वि गदीसु ।

§ ९०. सुगममेदमप्पणासुत्तं, एकम्मिह भवग्गहणे कोहादीणमुवजोगा संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति एदेण मेदाभावादो । संपहि एत्थेव सण्णियासविसेसपरूवणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* गिरयगदीए जम्मिह कोहोवजोगा संखेज्जा तम्मिह माणोवजोगा णियमा संखेज्जा ।

§ ९१. एदेण सुत्तेण गिरयगदीए कोहस्स संखेज्जोवजोगाणं णिरुंभणं कादूण तत्थ माणोवजोगा किं संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति भग्गणा कीरदे । तं कथं ? जम्मिह णेरइय-भवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा तत्थ माणोवजोगा णियमा संखेज्जा चेव भवंति, कोहोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो विसेसहीणाणं माणोवजोगाणं तहाभावसिद्धीए वाहाणुवलंभादो ।

\* एवं माया-लोभोवजोगा ।

§ ९२. जहा कोहोवजोगेसु संखेज्जेसु माणोवजोगा णियमा संखेज्जा जादा एवं माया-लोभोवजोगा च णियमा संखेज्जा त्ति वत्तव्वं, तेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो संखेज्ज-

कहते हैं—

\* इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी कथन करना चाहिए ।

§ ९०. यह अर्पणासूत्र सुगम है, क्योंकि एक भवमें क्रोधादि कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात होते हैं इस प्रकार इस कथनसे यहाँके कथनमें कोई अन्तर नहीं है । अब इसी गतिमें सन्निकर्ष विशेषका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* नरकगतिमें जिस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें मानकषायके उपयोग निधमसे संख्यात होते हैं ।

९१. इस सूत्र द्वारा नरकगतिमें क्रोधकषायके संख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर वहाँ मानकषायके उपयोग क्या संख्यात होते हैं या असंख्यात होते हैं इस विषयका अनुसन्धान किया गया है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—नारकियोंके जिस भवमें क्रोधके उपयोग संख्यात होते हैं वहाँ मानकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं, क्योंकि क्रोधकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर उनसे विशेष हीन मानकषायके उपयोगोंके संख्यात सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती ।

\* इसी प्रकार मायाकषाय और लोभ कषायके उपयोग जानने चाहिए ।

§ ९२. जिस प्रकार क्रोधकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर मानकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं उसी प्रकार माया और लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि उनके संख्यात होने पर उनसे संख्यातगुणे हीन इन उपयोगों-

गुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णिवाहमुवलंभादो ।

\* जम्हि माणोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

§ ९३. जम्हि णेरइयभवग्गहणे माणोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा चेवे त्ति णत्थि णियमो, किंतु संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होति । किं कारणं ? उक्कस्स-संखेज्जमेत्तेसु माणोवजोगेसु जादेसु तत्तो विसेसाहियाणं कोहोवजोगाणमसंखेज्जत्त-दंसणादो । उक्कस्ससंखेज्जादो पुण हेट्ठा तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तेसु जादेसु दोण्हं पि अप्पप्पणो पडिभागेण संखेज्जाणमुवजोगाणमुवलंभादो ।

\* मायोवजोगा लोहोवजोगा णियमा संखेज्जा ।

§ ९४. कुदो ? माणोवजोगेसु संखेजेसु संतेसु तत्तो संखेज्जगुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो ।

\* जम्हि मायोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

§ ९५. कुदो मायोवजोगेसु उक्कस्ससंखेज्जमेत्तेसु जादेसु तत्तो संखेज्जगुणाणं कोह-माणोवजोगाणमसंखेज्जत्तुवलंभादो, तत्तो संखेज्जगुणहीणमद्धानमोदरिय हेट्ठा

के संख्यातरूप होनेकी सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है ।

\* नारकियोंके जिस भवमें मानकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।

§ ९३. नारकियोंके जिस भवमें मानकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात ही होते हैं यह नियम नहीं है । किन्तु संख्यात या असंख्यात होते हैं

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—मानकषायके उपयोग उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण हो जाने पर उनसे विशेष अधिक क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात देखे जाते हैं । परन्तु उत्कृष्ट संख्यातसे नीचे तत्प्रायोग्य संख्यातप्रमाण उपयोगोंके होनेपर दोनोंके ही अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार संख्यात उपयोग पाये जाते हैं ।

\* मायाकषायके उपयोग और लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ।

§ ९४. क्योंकि मानकषायके उपयोगोंके संख्यात होनेपर उनसे संख्यातगुणे हीन उक्त दोनों कषायोंके उपयोगोंका संख्यात सिद्ध होना न्यायप्राप्त है ।

\* नारकियोंके जिस भवमें मायाकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग और मानकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।

§ ९५. क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण होनेपर उनसे संख्यात-गुणे क्रोध और मानकषायके उपयोग असंख्यात पाये जाते हैं । तथा वहाँसे संख्यातगुणे हीन

सव्वत्थ मायोवजोगेहिं सह कोह-माणोवजोगाणं संखेज्जपमाणत्तुवलंभादो च ।

\* लोभोवजोगा णियमा संखेज्जा ।

§ ९६. कुदो ? मायोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो संखेज्जगुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो ।

\* जत्थ लोभोवजोगा संखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा मायोवजोगा भजियव्वा ।

! ९७. लोभस्स संखेज्जोवजोगेसु णिरुद्धेसु कोहादिकसायाणमुवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होति त्ति भजियव्वा । किं कारणं ? आदीदो प्पहुडि सव्वेसिं संखेज्जोवजोगेसु गच्छमाणेसु पुव्वमेव कोधस्स असंखेज्जोवजोगा पारंभति, तदो माणस्स, तदो मायाए, सव्वपच्छा लोभस्स । एदेण कारणेण लोहोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु सेसकसायाणमुवजोगा संखेज्जासंखेज्जवियप्पेहिं भयणिज्जा त्ति णत्थि संदेहो । एवं ताव कोहादिकसायाणं संखेज्जोवजोगाणिरुंभणं कादूण तत्थं सेसकसायोवजोगाणं संखेज्जासंखेज्जभागविचारं कादूण संपहिं तेसिं चेवासंखेज्जोवजोगाणिरुंभणमुहेण सण्णियासविहाणट्टुमुवरिसं पबंधमाह—

\* जत्थ णिरयभवग्गहणे कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसा

स्थान उतरकर नीचे सर्वत्र मायाकषायके उपयोगोंके साथ क्रोध और मानकषायके उपयोग संख्यातप्रमाण ही पाये जाते हैं ।

\* लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ।

§ ९६. क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर उनसे संख्यातगुणे हीन इनकी उक्त प्रकारसे सिद्धि विना किसी बाधाके हो जाती है ।

\* नारकियोंके जिस भवमें लोभकषायके उपयोग संख्यात होते हैं वहाँ क्रोधकषायके उपयोग, मानकषायके उपयोग और मायाकषायके उपयोग भजनीय होते हैं ।

§ ९७. लोभकषायके संख्यात उपयोगोंके होनेपर क्रोधादि कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात होते हैं, इसलिए ये भजनीय हैं, क्योंकि प्रारम्भसे, लेकर सभी कषायोंके संख्यात उपयोग हो जानेपर सबसे पहले क्रोधकषायके असंख्यात उपयोग प्रारम्भ होते हैं, उसके बाद मानके और उसके बाद मायाके तथा सबके अन्तमें लोभके असंख्यात संख्याको लिये हुए उपयोग प्रारम्भ होते हैं । इस कारणसे लोभके उपयोगोंके संख्यात होने पर शेष कषायोंके उपयोग संख्यात और असंख्यातरूप विकल्पोंके द्वारा भजनीय होते हैं इसमें सन्देह नहीं है । इस प्रकार सर्वप्रथम क्रोधादिकषायोंके संख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर वहाँ शेष कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात कहाँ कितने होते हैं इसका विचार कर अब उन्हीं कषायोंके असंख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर सन्निकर्षका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* नारकियोंके जिस भवमें क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ शेष

**सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा ।**

§ ९८. कुदो एवं ? कोहस्स जहणपरित्तासंखेज्जमेत्तेसु उवजोगेसु जादेसु तदो विसेसाहियमद्धानं गंतूण माणस्स असंखेज्जोवजोगाणं पारंभदंसणादो । माया-लोभाणं पि तत्तो संखेज्जगुणमद्धानमप्पप्पणो पडिभागेण गंतूण तदो असंखेज्जोवजोगविसय-समुप्पत्तिदंसणादो । तम्हा जत्थ कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसोवजोगा सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा ति सिद्धमविरुद्धं ।

\* जत्थ माणोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।

§ ९९. कुदो ? कोहस्स असंखेज्जोवजोगेसु पारद्वेसु तत्तो विसेसाहियमद्धानं गंतूण माणस्सासंखेज्जोवजोगाणं पारंभदंसणादो ।

\* सेसा भजियन्वा ।

§ १००. कुदो ? मायालोभोवजोगाणं गिरुद्धविसयसंखेज्जाणमसंखेज्जाणं च संभवे बाहाणुवलंभादो ।

\* जत्थ मायोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।

**कषायोंके उपयोग संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं ।**

§ ९८. शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्रोधकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगोंके होने पर उससे विशेष अधिक स्थान जाकर मानकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ देखा जाता है । माया और लोभोंके भी उससे अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार संख्यातगुणे स्थान जाकर असंख्यात उपयोगोंके विषयकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिए जहाँ क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात हैं वहाँ शेष कषायोंके उपयोग संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं यह विना विरोधके सिद्ध हुआ ।

\* जिस भवमें मानकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोधकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं ।

§ ९९. क्योंकि क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ होनेपर वहाँसे विशेष अधिक स्थान जाकर मानकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ देखा जाता है ।

\* शेष कषायोंके उपयोग भजनीय हैं ।

§ १००. क्योंकि वहाँ पर मायाकषाय और लोभकषायके उपयोगोंके संख्यात या असंख्यात होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती ।

\* जिस भवमें मायाकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोध और मानकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं ।

§ १०१. कुदो ? तेसिं तण्णांतरीयत्तादो ।

\* लोभोवजोगा भजियन्वा ।

§ १०२. किं कारणं ? मायोवजोगेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तेसु जादेसु तत्तो संखेज्जगुणमद्धानमुवरि गंतूण लोभस्सासंखेज्जोवजोगाणमुप्पत्तिदंसणादो ।

\* जत्थ लोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोह-माण-मायोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।

§ १०३. जत्थ णिरयभवग्गहणे लोभोवजोगा असंखेज्जा जादा तम्मि णिरुद्धे सेसकसायोवजोगा णियमा असंखेज्जा होंति, तेसिमसंखेज्जत्ताभावे णिरुद्धलोभकसायस्स वि असंखेज्जोवजोगाणमणुप्पत्तीदो । एवं ताव णिरयगदीए सन्वेसिं कसायाणं संखेज्जा-संखेज्जोवजोगाणं षादेक्कं णिरुंभणं कादूण सण्णियासविही परुविदो । संपहि एसो चेव सण्णियासविसेसो देवगदीए विवज्जाससरूवेण जोजेयन्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

\* जहा णेरइयाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं लोभोव-जोगाणं वियप्पा ।

\* जहा णेरइयाणं माणोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं मायोव-जोगाणं वियप्पा ।

§ १०१. क्योंकि वे उनके अविनाभावी हैं । अर्थात् क्रोध और मानके उपयोग असंख्यात होनेपर तत्प्रायोग्य स्थान जाकर ही मायाके उपयोग असंख्यात होते हैं, इसलिए मायाके उपयोग असंख्यात होने पर क्रोध और मानके उपयोग असंख्यात होंगे ही यह नियम है ऐसा इनमें अविनाभाव है ।

\* लोभकषायके उपयोग भजनीय हैं ।

§ १०२. क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण होनेपर वहाँसे संख्यातगुणे स्थान आगे जाकर लोभकषायके असंख्यात उपयोगोंकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

\* जिस भवमें लोभकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोध, मान और मायाकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं ।

§ १०३. नारकियोंके जिस भवमें लोभकषायके उपयोग असंख्यात हो जाते हैं वहाँ शेष कषायोंके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं, क्योंकि यदि वे असंख्यात न हों तो विवक्षित लोभकषायके भी असंख्यात उपयोगोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । इस प्रकार नरकगतिमें सभी कषायोंके संख्यात और असंख्यात उपयोगोंमेंसे प्रत्येकको विवक्षित कर सन्निकर्षविधि कही । अब इसी सन्निकर्षविशेषको देवगतिमें विपरीतरूपसे लगा लेना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए इस प्रबन्धको कहते हैं—

\* जिस प्रकार नारकियोंके क्रोधकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके लोभकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं ।

\* जिस प्रकार नारकियोंके मानकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके मायाकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं ।



\* जहा णेरइयाणं मायोवजोगाणं वियप्पा तथा देवाणं माणोव-  
जोगाणं वियप्पा ।

\* जहा णेरइयाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा तथा देवाणं कोहोव-  
जोगाणं वियप्पा ।

§ १०४. एदेसि सुत्ताणमत्थपरूवणा सुगमा । संपहि तिरिक्ख-मणुसगदीसु  
णत्थि एसो सण्णियासभेदो, तत्थ संखेज्जवस्सिये भवग्गहणे सव्वेसिमविसेसेण संखे-  
ज्जोवजोगणियमदंसणादो । असंखेज्जवस्सिये वि सव्वेसिमसंखेज्जोवजोगत्तेण णाणत्ता-  
भावादो । किं कारणं ? अवट्ठिदपरिवाडीए सव्वेसिमसंखेज्जेसु आगरिसेसु लोभ-मायादि-  
कमेण गदेसु सहं विसरिसपरिवाडीए तत्थुप्पत्तिणियमदंसणादो ।

§ १०५. एवमेत्तिण पवंधेण गाहापुव्वद्वस्स अत्थविहासणं कादूण संपहि  
गाहापच्छिमद्वमवलं विय अदीदकालसंबंधेण भवप्पाबहुअं परूवेमाणो तदवसरकरणट्ट-  
माह—

\* जेसु णेरइयभवेसु असंखेजा कोहोवजोगा माण-माया-लोभोव-

\* जिस प्रकार नारकियोंके मायाकषायके उपयोगोंके सन्निकर्ष विकल्प होते हैं  
उसी प्रकार देवोंके मानकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं ।

\* जिस प्रकार नारकियोंके लोभकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं  
उसी प्रकार देवोंके क्रोधकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं ।

§ १०४. इन सूत्रोंके अर्थका कथन सुगम है । अब तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें यह  
सन्निकर्षभेद नहीं है, क्योंकि वहाँ संख्यात वर्षकी आयुवाले भवप्रहणके भीतर सभी  
कषायोंके समानरूपसे संख्यात उपयोगोंका नियम देखा जाता है । असंख्यात वर्षकी आयु-  
वाले भवमें भी सभी कषायोंके असंख्यात उपयोगरूपसे नानात्वका अभाव है, क्योंकि  
अवस्थित परिपाटीके द्वारा लोभ, माया आदिके क्रमसे सभी कषायोंके असंख्यात परिवर्तन-  
वारोंके होने पर एकवार विसदृश परिपाटीके आश्रयसे वहाँ नानापनेकी उत्पत्तिका नियम  
देखा जाता है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें लोभ, माया, क्रोध और मान इस क्रमसे  
यह जीव चारों कषायोंमें असंख्यात वार तक पुनः-पुनः उपयुक्त होता रहता है, इसलिए तो  
संख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें चारों कषायोंके संख्यात सदृश उपभोगभेद बतला कर वहाँ  
नानात्वका निषेध किया है । तथा असंख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें भी चारों कषायोंके  
असंख्यातवार सदृश उपयोग परिवर्तनोंके बाद ही एक वार विसदृश परिपाटीसे उपयोग  
परिवर्तन होना सम्भव है । इसलिए वहाँ भी चारों कषायोंके असंख्यात सदृश उपयोगोंको  
ख्यालमें रखकर नानापनेका निषेध किया है ।

§ १०५. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा गाथाके पूर्वार्धके अर्थका स्पष्टीकरण करके  
अब गाथाके उत्तरार्धका अवलम्बन लेकर अतीत कालके सम्बन्धसे भवके अल्पबहुत्वको  
कहते हुए उसका अवसर करनेके लिए कहते हैं—

\* नारकियोंके जिन भवोंमें क्रोधकषायके उपयोग तथा मान, माया और

जोगा वा, जेसु वा संखेज्जा, एदेसिमट्टण्हं पदाणमप्पाबहुअं ।

§ १०६. एत्थ णिरयगदीए ताव पयदपरुवणं वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्ठं णेरइयभवानमहियरणभावेण णिदेसो कओ 'जेसु णेरइयभवेसु' त्ति । ते च अट्टभेद-  
भिण्णा । तं जहा—क्रोधस्स असंखेज्जोवजोगिगा, माणस्सासंखेज्जोवजोगिगा, मायाए  
असंखेज्जोवजोगिगा, लोभस्स असंखेज्जोवजोगिगा, कोइस्स संखेज्जोवजोगिगा, माणस्स  
संखेज्जोवजोगिगा, मायाए संखेज्जोवजोगिगा, लोभस्स संखेज्जोवजोगिगा चेदि । एदेसि-  
मट्टण्हं पदाणमदीदकालसंबंधेणप्पाबहुअं कायव्वमिदि सुत्तस्स समुच्चयत्थो ।

\* तत्थ उवसंदरिसणाए करणं ।

§ १०७. किमुवसंदरिसणाकरणं णाम ? उवसंदरिसणाकरणं णिदरिसणकरणं  
णिण्णयकरणमिदि एयट्ठो । कोहादिकसायाणं संखेज्जोवजोगिगाणमसंखेज्जोवजोगिगाणं  
च भवाणं विसयविभागजाणावणट्ठमुवसंदरिसणाभुहेण किं पि अट्टपदं पयदप्पाबहुअ-  
साहणं वत्तइस्सामो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

\* एकम्मि वस्से जत्तियाओ कोहोवजोगद्धाओ तत्तिएण जहण्णा-  
संखेज्जयस्स भागो जं भागलद्धमेत्तियाणि वस्साणि जो भवो तम्मिह  
लोभकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं अथवा जिन भवोंमें ये सब उपयोग संख्यात  
होते हैं, उन आठों पदोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार है ।

§ १०६. यहाँ नरकगतिमें सर्व प्रथम प्रकृत प्ररूपणाको बतलाते हैं इस बातका ज्ञान  
करानेके लिए नारकियोंके भवोंका 'जेसु णेरइयभवेसु' इस प्रकार अधिकरणरूपसे निर्देश  
किया है । और वे भव आठ प्रकारके हैं । यथा—क्रोध कषायके असंख्यात उपयोगवाले भव,  
मानकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, लोभ  
कषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, क्रोध कषायके संख्यात उपयोगवाले भव, मान कषायके  
संख्यात उपयोगवाले भव, माया कषायके संख्यात उपयोगवाले भव और लोभ कषायके  
संख्यात उपयोगवाले भव । इन आठों पदोंका अतीत कालके सम्बन्धसे अल्पबहुत्व करना  
चाहिए इस प्रकार सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

\* प्रकृतमें अब उनका निर्णय करते हैं ।

§ १०७. शंका—उपसंदर्शनाकरण पदका क्या अर्थ है ?

समाधान—उपसंदर्शनाकरण, निदर्शनकरण और निर्णयकरण ये तीनों एक अर्थके  
वाची शब्द हैं ।

क्रोधादि कषायोंके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंके विषय-  
विभागका ज्ञान करानेके लिए उपसंदर्शनाद्वारा प्रकृत अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेवाले कुछ  
अर्थपदको कहेंगे यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

\* एक वर्षके भीतर क्रोध कषायके जितने उपयोगकाल होते हैं उनके द्वारा  
जघन्य असंख्यातको भाजित किया, जो भाग उपलब्ध आया उतने वर्षप्रमाण जो

असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्दाओ ।

§ १०८. एदेण सुत्तेण कोहस्स संखेज्जोवजोगिगाणमसंखेज्जोवजोगिगाणं च भवग्गहणाणमुवसंदरिसणं कयं होइ । तं कथं ? एगवस्सब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्तीओ कोहोवजोगद्दाओ होति । अंतोमुहुत्तब्भंतरे जइ एगा कोहोवजोगद्दा लब्भइ तो एगवस्सब्भंतरे केत्तियमेत्तीयो लहामो त्ति तेरासियकमेण तासिमुप्पत्तिदंसणादो । पुणो एदाहिं एगवस्सब्भंतर-कोहोवजोगद्दाहिं जहण्णासंखेज्जयस्स भागो घेत्तव्वो । संखेज्जसहस्समेत्ताणमुवजोगाणं जइ एगवस्सपमाणं लब्भइ तो जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्ताणमुवजोगाणं केत्तियमेत्ताणि वस्साणि लहामो त्ति एवं तेरासियं कादूण पमाणेण फल-गुणिदिच्छाए ओवड्ढिदाए जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि रूवाणि आगच्छंति । पुणो एत्तियाणि वस्साणि जो भवो भागलद्धमेत्ताणि वस्साणि घेत्तूण जो भवो त्ति भणिदं होदि । तम्हि असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्दाओ । किं कारणं ? एगवस्सब्भंतरे जइ संखेज्जसहस्समेत्तीओ कोहोवजोगद्दाओ लब्भंति तो अणंतरणिहिद्ध-भागलद्धमेत्तवस्सेसु केत्तियमेत्तीओ लहामो त्ति तेरासियं कादूण जोइदे जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तीणं कोहोवजोगद्दाणमेत्थुवलंभादो । एवमेदेण सुत्तेण कोहस्स संखेज्जासंखेज्जो-

भव होता है उसमें क्रोधके असंख्यात उपयोगकाल होते हैं ।

§ १०८. इस सूत्र द्वारा क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंका निर्णय किया गया है ।

**शंका—**वह कैसे ?

**समाधान—**एक वर्षके भीतर क्रोध कषायके संख्यात हजारप्रमाण उपयोगकाल होते हैं, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर यदि क्रोधकषायका एक उपयोगकाल प्राप्त होता है तो एक वर्षके भीतर कितने उपयोगकाल प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक विधिसे संख्यात हजारप्रमाण उपयोगकालोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । फिर एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए क्रोधकषायके इन उपयोगकालोंके द्वारा जघन्य परीतासंख्यातको भाजित करना चाहिए—संख्यात हजार उपयोगोंका यदि एक वर्षप्रमाण काल प्राप्त होता है तो जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगोंके कितने वर्ष प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक कर फलराशिसे गुणित इच्छाराशिमें प्रमाणराशिसे भाजित करने पर जघन्य परीतासंख्यातके संख्यातवें भाग प्रमाण अंक प्राप्त होते हैं । पुनः इतने वर्षोंका जो भव है अर्थात् पूर्वोक्त त्रैराशिक करने पर जो भाग लब्ध आया उतने वर्षोंका जो भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, उस भवमें क्रोध कषायके असंख्यात उपयोगकाल होते हैं, क्योंकि एक वर्षके भीतर क्रोधकषायके यदि संख्यात हजारप्रमाण उपयोगकाल प्राप्त होते हैं तो अनन्तर प्राप्त हुए जिस भागका निर्देश कर आये हैं तत्प्रमाण वर्षोंके भीतर क्रोधकषायके कितने उपयोगकाल प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक करके देखने पर क्रोधकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगकाल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार इस सूत्रके द्वारा क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंके विषयविभागका सम्यक् प्रकारसे निर्णय कर दिया गया है, क्योंकि

वजोगिगाणं भवाणं विसयविभागो सम्ममुवसंदरिसिदो होदि, सुत्तुदिट्टुविसयादो उवरिमाणं सव्वेसिमेवासंखेज्जोवजोगियत्तदंसणादो । तत्तो हेट्ठिमाणं च सव्वेसिं संखेज्जो-वजोगियत्तुवलंभादो ।

§ १०९. संपहि सेसकसायाणं पि एवं चेव संखेज्जासंखेज्जोवजोगिगाणं भवाणं विसयविभागो उवसंदरिसियव्वो त्ति पदुप्पायणट्टुमुवरिमसुत्तमाह—

\* एवं माण-माया-लोभोवजोगाणं ।

§ ११०. जहा कोहस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगाणं विसओ परूविदो एवमेदेसिं पि कसायाणं कायव्वं, अप्पप्पणो एगवस्सोवजोगेहिं जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स भागं घेत्तूण तत्थ भागलद्धमेत्तवस्सेहिं तदुप्पत्तिं पडि विसेसाभावादो । संपहि एदस्से-वत्थस्स सुहाववोहणट्टुमेत्थ संदिट्ठिमुहेण किं चि परूवणं कस्सामो । तं कथं ? तत्थ कोहस्स एगवस्सोवजोगा एदे २७, माणस्स एगवस्सोवजोगा एदे १८, मायाए एग-

सूत्रमें निर्दिष्ट किये गये भवसे आगेके सभी भव असंख्यात उपयोगवाले देखे जाते हैं । तथा उससे पूर्वके सभी भव संख्यात उपयोगवाले उपलब्ध होते हैं ।

विशेषार्थ—नारकियोंकी कितनी आयुके किस भव तक क्यों तो क्रोध कषायके संख्यात उपयोगकाल होते हैं और आगेके सब भवोंमें क्यों असंख्यात उपयोगकाल होते हैं इस बातका इस सूत्र द्वारा सम्यक् प्रकारसे निर्णय किया गया है । सामान्य नियम यह है कि एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर क्रोधादि कषायोंका एक उपयोगकाल होता है, इसलिए एक वर्षके भीतर संख्यात हजार उपयोगकाल हुए । इस नियमके अनुसार इन उपयोगकालोंका जघन्य परीतासंख्यातमें भाग देने पर जितने वर्ष प्राप्त होंगे उतने वर्षका जो भव होता है उसमें नियमसे असंख्यात उपयोगकाल सुघटित हो जाते हैं । स्पष्ट है कि इस भवसे कम आयुवाले नारकियोंके जितने भव होते हैं उनमें क्रोध कषायके संख्यात उपयोगकाल ही प्राप्त होते हैं और पूर्वोक्त भव सहित आगेके जितने भव होते हैं उनमें क्रोध कषायके असंख्यात उपयोग-काल ही होते हैं ।

§ १०९. अब शेष कषायोंके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंका विषय विभाग इसी प्रकार निर्णीत करना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इसी प्रकार मान, माया और लोभकषायके उपयोगवाले भवोंका विषय-विभाग जानना चाहिए ।

§ ११०. जिस प्रकार क्रोध कषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगोंका विषय कहा उसी प्रकार इन कषायोंका भी करना चाहिए, क्योंकि एक वर्षके भीतर प्राप्त होनेवाले अपने-अपने उपयोगों अर्थात् उपयोगकालोंके द्वारा जघन्य परीतासंख्यातको भाजित कर वहाँ जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण वर्षोंके द्वारा मान, माया और लोभ कषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगकालोंकी उत्पत्ति होनेकी अपेक्षा उक्त कथनसे इस कथनमें कोई भेद नहीं है । अब इसी अर्थका सुखपूर्वक ज्ञान करानेके लिए यहाँपर संदृष्टि द्वारा कुछ कथन करेंगे ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—प्रकृतमें क्रोधकषायके वर्षके भीतर प्राप्त हुए उपयोग ये हैं—२७, मान-



त्ति गहेयव्वा । कोहस्स असंखेज्जोवजोगिगा भवा पुव्वमेव<sup>१</sup> पारभंति, तदो माणस्स, तदो मायाए, सव्वपच्छा लोभस्स असंखेज्जोवजोगिगा भवा पारभंति । एगंकादो हेट्ठिम-सव्वसुण्णट्ठाणाणि संखेज्जोवजोगिगभवा त्ति गेण्हियव्वा । कोहस्स संखेज्जोवजोगिगा भवा पुव्वमेव समप्पंति, तदो पच्छा माण-माया-लोहाणं संखेज्जोवजोगिगभवा अप्पप्पणो पाओग्गमद्दाणं गंतूण जहाकमं समप्पंति त्ति घेत्तव्वं । एवमेत्तिएण पवंधेण उवसंदरिसणा-करणं समाणिय संपहि एदम्हादो साहणादो पयदप्पानहुअपरूवणट्ठुवरिमं पवंधमाह—

\* एदेण कारणेण जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा ।

§ ११२. जेण कारणेण सव्वपच्छा एदेसिं पारंभो तेणेदे सव्वत्थोवा त्ति भणिदं होइ । तेसिं पमाणं केत्तियं ? एगवस्सन्भंतरलोभोवजोगेहिं जहण्णपरित्तासंखेज्जे भागे हिदे तत्थ भागलद्धसंखेज्जरूवमेत्तवस्सेहिं परिहीणतेत्तीसं सागरोवमपमाणा होदूण पुणो अदीदकालप्पणाए अणंता त्ति घेत्तव्वा, पादेकमणंतवारमेदेसु भववियप्पेसु एगजीवस्स समुप्पत्तिदंसणादो । तदो एदे सव्वे संभूय अणंतसंखावच्छिण्णा होदूण सव्वत्थोवा त्ति

भवोंको सूचित करते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए । क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव पहले ही प्रारम्भ हो जाते हैं । तदनन्तर मानकषायके, उनके बाद मायाकषायके और सबके बाद लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव प्रारम्भ होते हैं । एक अंकसे पूर्वके सब शून्यस्थान संख्यात उपयोगवाले भवोंके सूचक है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । क्रोध-कषायके संख्यात उपयोगवाले भव पहले ही समाप्त हो जाते हैं । उसके बाद मान, माया और लोभकषायके संख्यात उपयोगवाले भव अपने-अपने योग्य स्थान तक जाकर क्रमसे समाप्त होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा उपसंदर्शनाकरणको समाप्त कर अब इस साधनके अनुसार प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* इस कारणसे लोभकषायके जो असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे सबसे थोड़े हैं ।

§ ११२. जिस कारणसे लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंका सबके बाद प्रारम्भ होता है, इसलिए ये सबसे थोड़े हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—उनका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए लोभकषायके उपयोगोंके द्वारा जघन्य परीता-संख्यातके भाजित करने पर वहाँ लब्ध हुए एक भागप्रमाण जो संख्यात वर्ष उनसे हीन तेतीस सागरोपमप्रमाण होकर पुनः अतीत कालकी मुख्यतासे वे अनन्त हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पृथक्-पृथक् अनन्तवार भेदवाले भवविकल्पोंमें एक जीवकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

१. ता०प्रती० उवरिमसव्वसुण्णट्ठाणाणि असंखेज्जोवजोगिगा भवा एदाणि दसवस्ससहस्साणि तदो समयुत्तरादिकमेण गेण्हियव्वं जाव तेसिं सागरोवमाणि त्ति पुव्वमेव इति पाठः ।

२. ता०आ०प्रत्योः —प्पणाए इति पाठः ।

णिदिहा ।

\* जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

§ ११३. किं कारणं ? ततो पुनमेव एदेसि पारंभदंसणादो । जइ वि एत्थ हेट्ठिमभववियप्पा उवरिमभववियप्पाणमसंखेज्जदिभागमेत्ता चेव तो वि णासंखेज्जगुणत्त-मेदेसिं विरुज्झदे, हेट्ठिमभववियप्पेसु पादेकमसंखेज्जपरिवाडीओ वोलाविय पुणो उवरिमभववियप्पेसु समयाविरोहेण संकतिणियमदंसणादो । तेणुवरिमभववियप्पा दोण्हं पि समाणा होदूण पुणो हेट्ठिमवियप्पे अस्सियूण पुव्विल्लेहिंतो एदे असंखेज्जगुणा त्ति घेत्तन्वं ।

\* जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

§ ११४. एत्थ वि कारणपरूवणा सुगमा, अणंतरादीदपबंधेणेव गयत्थत्तादो ।

\* जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

§ ११५. एत्थ वि कारणं अणंतरपरूविदमेव ।

\* जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

इसलिए ये सब मिलकर अनन्त संख्यारूप होकर सबसे स्तोक है यह निर्देश किया है ।

\* जो मायाकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ११३. क्योंकि उनसे पहले ही इनका प्रारम्भ देखा जाता है । यद्यपि यहाँ पर अधस्तन भवविकल्प उपरिम भवविकल्पोंके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं तो भी ये असंख्यात-गुणे हैं यह विरोधको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि अधस्तन भवविकल्पोंमें पृथक्-पृथक् असंख्यात परिपाटियोंको विताकर पुनः उपरिम विकल्पोंमें आगमके अनुसार संक्रान्तिका नियम देखा जाता है । इसलिए उपरिम भवविकल्प दोनोंके समान होकर पुनः अधस्तन भवविकल्पोंका आश्रयकर लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंसे ये असंख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव पहले प्रारम्भ हो जाते हैं और लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव बादमें प्रारम्भ होते हैं । इसलिए मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले सभी भवविकल्प लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवविकल्पोंसे असंख्यातगुणे हो जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* जो मानकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ११४. यहाँ भी कारणका कथन सुगम है, अनन्तर पूर्व कहे हुए प्रबन्धसे ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

\* जो क्रोधकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ११५. यहाँ पर भी वही कारण जानना चाहिए जिसका कथन इसके पूर्व कर आये हैं ।

\* जो क्रोधकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ११६. असंखेज्जोवजोगिगभवाणमसंखेज्जदिभागपमाणत्तादो णेदेसिमसंखेज्ज-  
गुणत्तं घडदि त्ति णासंकणिज्जं, तहाभावे संते वि हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभव-  
परिवत्ताणमसंखेज्जगुणहीणत्तावलंबणेणासंखेज्जगुणत्तसाहणादो । तं जहा—एगो  
णेरइएसुप्पज्जमाणो दसवस्ससहस्साउएसुववण्णो । एवमुववण्णस्स संखेज्जोवजोगिग-  
भवसलामा एक्का जादा । पुणो वि एदेणेव विहिणा दसवस्ससहस्सम्मि असंखेज्जवार-  
मुप्पज्जिय तदो एगवारं समयुत्तरदसवस्ससहस्साउअभवम्मि उववण्णो । पुणो पुच्च-  
णिरुद्धदसवस्ससहस्सियभवम्मि असंखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो समयुत्तरभवम्मि विदियवार-  
मुववण्णो । पुणो वि एदेणेव विहिणा उप्पाइज्जमाणे समयुत्तराउअभवा वि असंखेज्जमेत्ता  
जादा । एवं संजादेसु पुणो एगवारं दुसमयुत्तराउअभवम्मि उववण्णो । पुणो पल्लट्ठिय  
समयुत्तरभवम्मि समयाविरोहेण संखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो विदियवारं दुसमयुत्तरभवम्मि  
उववण्णो । एवं णेदच्चं जाव दुसमयुत्तरभववियप्पा असंखेज्जा जादा त्ति । एवं  
तिसमयुत्तरादिभवेसु वि समुप्पाइय णेदच्चं जाव उक्कस्ससंखेज्जोवजोगिगभवं पत्तो त्ति ।  
तदो उक्कस्ससंखेज्जोवजोगिगभवम्मि समयाविरोहेणासंखेज्जवारमुप्पज्जिय पुणो एगवारं  
जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगिगभवम्मि समुप्पज्जइ । पुणो वि एदेण विहाणेण पुव्वुत्त-

§ ११६. शंका—क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भव असंख्यात उपयोगवाले  
भवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिए ये असंख्यातगुणे नहीं हो सकते ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर भी अधस्तन  
भवपरिवर्तनोंकी अपेक्षा उपरिम भवपरिवर्तन असंख्यातगुणे हीन होते हैं, इसलिए इस  
तथ्यको ध्यानमें रखकर क्रोध कषायके असंख्यात-उपयोगवाले भवोंसे संख्यात-उपयोगवाले  
भव असंख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध किया है। यथा—एक जीव नारकियोंमें उत्पन्न होता  
हुआ दस हजारकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न हुए जीवकी  
संख्यात-उपयोगवाले भवकी एक शलाका हुई। फिर भी इसी विधिसे दस हजार वर्षकी  
आयुके साथ असंख्यातवार उत्पन्न होकर तदनन्तर एक वार एक समय अधिक दस हजार  
वर्षकी आयुवाले भवमें उत्पन्न हुआ। पुनः पहलेके समान दस हजार वर्षकी आयुवाले  
भवमें असंख्यातवार उत्पन्न होकर तदनन्तर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले  
भवमें दूसरी वार उत्पन्न हुआ। फिर भी इसी विधिसे उत्पन्न कराने पर एक समय अधिक  
दस हजार वर्षकी आयुवाले भव भी असंख्यात हो जाते हैं। ऐसा हो जाने पर पुनः एक वार  
दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें उत्पन्न हुआ। पुनः लौटकर एक समय  
अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें आगमानुसार संख्यातवार उत्पन्न होकर तदनन्तर  
दूसरी वार दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार  
दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भव विकल्प असंख्यात होने तक उत्पन्न  
कराते रहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट संख्यात-उपयोगवाले भवके प्राप्त होने तक तीन  
समय अधिक आदि दस हजार वर्षकी आयुवाले भवोंमें भी उत्पन्न कराते हुए ले जाना  
चाहिए। तदनन्तर उत्कृष्ट संख्यात-उपयोगवाले भवमें आगमके अनुसार असंख्यात वार  
उत्पन्न होकर पुनः एक वार जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण-उपयोगवाले भवमें उत्पन्न होता है।



भवम्मि असंखेज्वारमुप्पज्जियं तदो विदियवारं समयुत्तरभवम्मि समुप्पज्जदि । एवमेत्थ वि असंखेज्वारमुववण्णो । एवं समयुत्तरादिकमेण उवरिमासंखेज्जोवजोगिगभवेसु वि गिरंतरमुप्पायणविहिं कादूण णेदव्वं जाव तेत्तोसं सागरोवमियचरिमभवे ति । एदमेगं भवपरिवत्तं कादूण एवंविहा अणंता भवपरिवत्ता णेदव्वा, अदीदकालप्पणाए भवपरिवत्ताणं तप्पमाणत्तोवलंभादो । जेणेत्थ हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभवपरिवत्ता असंखेज्जगुणहीणा जादा तेणासंखेज्जकोहोवजोगिगभवाणमुवरि तस्सेव संखेज्जोवजोगिगभवा असंखेज्जगुणा ति भणिदा ।

\* जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

§ ११७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? कोहस्स संखेज्जोवजोगिगभवाणमसंखेज्जभागमेत्तो । किं कारणं ? कोहस्स संखेज्जोवजोगिगभवेहिंतो विसेसाहियमद्दाणं विसईकरिय एदेसिमवट्ठिदत्तादो ।

\* जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

§ ११८. एत्थ वि सयगुणगारो जइ वि संखेज्जरुवमेत्तो तो वि विसेसाहियत्तमेदं ण विरुज्झदे, हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभवपरिवत्ताणमसंखेज्जगुणहीणत्ते संते वि सयगुणगारस्स तत्थ पाहणियाभावादो ।

फिर भी इसी विधिसे पूर्वोक्त भवमें असंख्यात वार उत्पन्न होकर तदनन्तर दूसरी वार एक समय अधिक भवमें उत्पन्न होता है । इस प्रकार इस भवमें भी असंख्यात वार उत्पन्न हुआ । इस प्रकार एक समय अधिक आदिके क्रमसे उपरिम असंख्यात-उपयोगवाले भवोंमें भी निरन्तर उत्पन्न करानेकी विधि करके तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तिम भवके प्राप्त होने तक उत्पन्न कराते हुए ले जाना चाहिए । यह एक भवपरिवर्तन करके इसी प्रकार अनन्त भव परिवर्तन कराने चाहिए, क्योंकि अतीत कालकी मुख्यतासे भवपरिवर्तन तत्प्रणाम उपलब्ध होते हैं । चूँकि यहाँ अधस्तन भव परिवर्तनोंसे उपरिम भवपरिवर्तन असंख्यातगुणे हीन हुए, इसलिए क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंसे उसीके संख्यात-उपयोगवाले भव असंख्यातगुणे हैं यह कहा है ।

\* जो मानकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

§ ११७. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—क्रोधकषायके संख्यात-उपयोगवाले भवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भवसे विशेष अधिक अध्वानको विषयकर ये अवस्थित हैं ।

\* जो मायाकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

§ ११८. यहाँपर भी अपना गुणकार यद्यपि संख्यात अंकप्रमाण है तो भी इनका विशेष अधिक होना विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि अधस्तन भवपरिवर्तनोंसे उपरिम भवपरिवर्तन असंख्यातगुणे हीन होनेपर भी अपने गुणकारकी वहाँ प्रधानता नहीं है ।

\* जे संखेज्जलो भोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

§ ११९. केत्तियमेत्तो विसेसो ? पुव्विल्लाणमसंखेज्जभागमेत्तो । एवमेदेसिमट्टण्हं पदाणं णिरयंगइपडिबद्धाणं सकारणमप्पाबहुअं परूविय संपहि देवगदीए वि एसो चैव अप्पाबहुआलावो विलोमकमेण जोजेयव्वो त्ति पदुप्पायणट्टमप्पणासुत्तमाह—

\* जहा णेरइएसु तथा देवेसु । णवरि कोहादो आढवेयव्वो ।

§ १२०. जहा णेरइएसु पयदप्पाबहुआलावो कओ तथा देवेसु वि कायव्वो । णवरि विसेसो कोहादो आढवेयव्वो त्ति । कोहादो आढविय पच्छाणुपुव्वीए जोजेयव्वो त्ति भणिदं होइ । संपहि एदस्सेव जोजणकमप्पदंसणट्टं उवरिमं पबंधमाह—

\* तं जहा ।

§ १२१. सुगमं ।

\* जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा ।

\* जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

\* जे असंखेज्जमाथोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

\* जे असंखेज्जलो भोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

\* जो लोभकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

§ ११९. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—पहले जो विशेषका प्रमाण बतलाया है उनके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार नरकगतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ पदोंके अल्पबहुत्वका सकारण कथन करके अब विलोमक्रमसे देवगतिमें भी यही अल्पबहुत्व आलाप योजित कर लेना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए अर्पणासूत्रको कहते हैं—

\* जिस प्रकार नारकियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्व है उसी प्रकार देवोंमें है । इतना विशेष है कि देवोंमें क्रोधकषायसे प्रारम्भ करना चाहिए ।

§ १२०. जिस प्रकार नारकियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन किया है उसी प्रकार देवोंमें भी करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायसे अल्पबहुत्वका प्रारम्भ करना चाहिए । क्रोधकषायसे आरम्भ कर पश्चादानुपूर्वीसे योजना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इसी विषयके योजनाक्रमको दिखलानेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* वह कैसे ?

§ १२१. यह सूत्र सुगम है ।

\* जो क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव सबसे स्तोक हैं ।

\* जो मानकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

\* जो मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

\* जो लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

\* जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

\* जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

\* जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

\* जे संखेज्जकोधोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

§ १२२. सुगमत्वान्नात्र किंचिद्वक्तव्यमस्ति । णवरि भवपरिवत्ते भण्णमाणे दसवस्ससहस्समादिं कादूण समयुत्तरादिकमेण णेदव्वं जाव एकत्तीससागरोवमियभवे ति । एत्थ तिरिक्ख-भणुसगदीसु पयदप्पावहुअमग्गणा ण संभवइ, तत्थ सव्वेसिं कसायाणं संखेज्जासंखेज्जोवजोगिगभवाणं समाणत्तेण पयदभेदाणुवलंभादो ।

\* विदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

§ १२३. सुगममेदमुवसंहारवक्कं । संपहि तदियसुत्तगाहाए जहावसरपत्तमत्थ-विहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* 'उवजोगवग्गणाओ कम्मिह कसायम्मि केत्तिया होंति' त्ति एसा सव्वा वि गाहा पुच्छासुत्तां ।

§ १२४. एसा सव्वा वि तदियगाहा सपुव्वद्ध-पुच्छद्दा पुच्छासुत्तमिदि भणिदं होदि । किमेदेण पुच्छिज्जदे ? कोहादिकसायविसयाणमुवजोगवग्गणाणं पमाणोघादेसेहिं

\* जो लोभकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

\* जो मायाकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

\* जो मानकषायके संख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

\* जो क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

§ १२२. सुगम होनेसे यहाँपर कुछ वक्तव्य नहीं है । इतनी विशेषता है कि भव-परिवर्तनका कथन करनेपर दस हजार वर्षसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे इकतीस सागरोपम भव तक ले जाना चाहिए । यहाँ तिर्यञ्जगति और मनुष्यगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्व प्ररूपणा सम्भव नहीं है, क्योंकि उनमें सभी कषायोंके संख्यात-उपयोगवाले और असंख्यात-उपयोगवाले भवोंके समान होनेसे प्रकृत भेद नहीं पाया जाता ।

\* इस प्रकार दूसरी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ।

§ १२३. यह उपसंहारवाक्य सुगम है । अब अवसर प्राप्त तीसरी सूत्रगाथाके अर्थका व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'उवजोगवग्गणाओ कम्मिह कसायम्मि केत्तिया होंति' इस प्रकार यह समस्त गाथा पृच्छासूत्र है ।

§ १२४. पूर्वार्ध और उत्तरार्धके साथ यह समस्त ही तीसरी गाथा पृच्छासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इसके द्वारा क्या पृच्छा की गई है ?

पुच्छिज्जदे । तत्थ गाहापुव्वद्वेण 'उवजोगवग्गणाओ कम्मिह कसायम्मिह केत्तिया होंति' ति ओघेण पुच्छाणिद्वेसो कओ । पच्छद्वेण वि 'कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति' ति आदेसविसया पुच्छा णिदिट्ठा ति दट्ठ्वा, गदिमग्गणाविसयस्सेदस्स पुच्छाणिद्वेसस्स सेसासेसमग्गणाणं देसामासयभावेणावट्ठाणदंसणादो ।

\* तस्स विहासा ।

§ १२५. तस्सेदस्स तदियगाहासुत्तस्स कोहादिकसायाणमुवजोगवग्गणापमाण-विसयपुच्छाए वावदस्स अत्थविहासा एत्तो कीरदि ति वुत्तं होइ ।

\* तं जहा ।

§ १२६. सुगममेदं पुच्छावकं ।

\* उवजोगवग्गणाओ दुविहाओ—कालोवजोगवग्गणाओ भावोव-जोगवग्गणाओ य ।

§ १२७. उवजोगो णाम कोहादिकसाएहिं सह जीवस्स संपजोगो । तस्स वग्गणाओ वियप्पा भेदा ति एयट्ठो । जहण्णोवजोगट्ठाणप्पहुडि जाव उक्कस्सोव-जोगट्ठाणे ति णिरंतरमवट्ठिदाणं तच्चियप्पाणमुवजोगवग्गणाववएसो ति वुत्तं होइ । सो च जहण्णुकस्सभावो दोहिं पयारेहिं संभवइ—कालदो भावदो च । तत्थ कालदो

समाधान—इसद्वारा ओघ और आदेशसे क्रोधादिविषयक उपयोगवर्गणाओंका प्रमाण पूछा गया है ।

वहाँ गाथाके पूर्वार्ध द्वारा 'किस कषायमें कितनी उपयोगवर्गणाएँ होती हैं' इस प्रकार ओघसे पृच्छानिर्देश किया गया है तथा गाथाके उत्तरार्ध द्वारा भी 'किस गतिमें कितनी वर्गणाएँ होती हैं' इस प्रकार आदेशविषयक पृच्छा निर्दिष्ट की गई है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि गतिमार्गणाविषयक इस पृच्छा निर्देशमें शेष समस्त मार्गणाओंका देशमर्षक-भावसे अवस्थान देखा जाता है ।

\* अब उसकी विभाषा करते हैं ।

§ १२५. क्रोधादि कषायोंकी उपयोगवर्गणाओंकी प्रमाणविषयक पृच्छामें व्यापृत हुए उस इस तीसरे गाथासूत्रकी आगे अर्थविभाषा करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* वह कैसे ?

§ १२६. यह पृच्छावाक्य सुगम है ।

\* उपयोगवर्गणाएँ दो प्रकारकी हैं—कालोपयोगवर्गणाएँ और भावोपयोग-वर्गणाएँ ।

§ १२७. क्रोधादि कषायोंके साथ जीवके संप्रयोग करनेको उपयोग कहते हैं । उनकी वर्गणाएँ अर्थात् विकल्प, भेद इन सबका एक अर्थ है । जघन्य उपयोगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगस्थान तक निरन्तर अवस्थित हुए उपयोगके विकल्पोंकी उपयोगवर्गणा संज्ञा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह जघन्यभाव और उत्कृष्टभाव दो प्रकारसे सम्भव है—कालकी

जहण्णोवजोगकालप्पहुडि जावुक्कस्सोवजोगकालो त्ति पिरंतरमवड्ढिदाणं वियप्पाणं कालोवजोगवग्गणा त्ति सण्णा, कालविसयाओ उवजोगवग्गणाओ कालोवजोगवग्गणाओ त्ति गहणादो । भावदो तिव्वमंदादिभावपरिणदाणं कसायुदयट्ठाणाणं जहण्णवियप्पप्पहुडि जावुक्कस्सवियप्पो त्ति छवड्ढिकमेणावड्ढियाणं भावोवजोगवग्गणा त्ति ववएसो, भावविसेसिदाओ उवजोगवग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ त्ति विवक्खियत्तादो । एवंविहाओ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ एत्थाहिकयाओ त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । संपहि काओ ताओ कालोवजोगवग्गणाओ काओ वा भावोवजोगवग्गणाओ त्ति विसेसिगूण परूवणट्ठमुवरिमसुत्तदयमोइण्णं—

\* कालोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि ।

§ १२८. कसायाणमुवजोगो तस्स अद्दा कालपरिच्छित्ती कसायोवजोगद्धा । त्तिस्से ट्ठाणाणि जहण्णुकस्सादिवियप्पा कालोवजोगवग्गणाओ णाम । कोहादिकसायोवजोगजहण्णकालमुक्कस्सकालादो सोहिय सुद्धसेसम्मि एगरूवे पक्खित्ते कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि होति । तेसिं कालोवजोगवग्गणाववएसो त्ति सुत्तत्थसंगहो ।

\* भावोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोदयट्ठाणाणि ।

§ १२९. कसायाणमुदयट्ठाणाणि कसायोदयट्ठाणाणि । ताणि भावोवजोगवग्गणाओ । एतदुक्तं भवति—कोहादिकसायाणमेकेकस्स कसायस्स असंखेजलोग-

अपेक्षा और भावकी अपेक्षा । उनमेंसे कालकी अपेक्षा जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक निरन्तर अवस्थित हुए विकल्पोंकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है, क्योंकि कालविषयक उपयोगवर्गणाएँ कालोपयोगवर्गणाएँ हैं ऐसा यहाँ ग्रहण किया गया है । भावकी अपेक्षा तीव्र और मन्द आदि भावोंसे परिणत हुए तथा जघन्य विकल्पसे लेकर उत्कृष्ट विकल्प तक छह वृद्धिक्रमसे अवस्थित हुए कषाय-उदयस्थानोंकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है, क्योंकि भावविशिष्ट उपयोगवर्गणाएँ भावोपयोगवर्गणाएँ कहलाती हैं ऐसी यहाँ विवक्षा की गई है । इस प्रकार दो प्रकारकी उपयोगवर्गणाएँ यहाँपर अधिकृत हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब वे कालोपयोगवर्गणाएँ क्या हैं और भावोपयोगवर्गणाएँ क्या हैं इस प्रकार विशेषरूपसे कथन करनेके लिए आगे दो सूत्र आये हैं—

\* कषायके उपयोगसम्बन्धी अद्दास्थानोंकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है ।

§ १२८. जो कषायोंका उपयोग है उसकी 'अद्दा' अर्थात् कालमर्यादा वह कषायोपयोगाद्दा है । उसके जघन्य और उत्कृष्ट आदि भेदरूप स्थानोंको कालोपयोगवर्गणा कहते हैं । क्रोधादिकषायोंके उपयोगसम्बन्धी जघन्य कालको उत्कृष्ट कालमेंसे घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलानेपर कषायसम्बन्धी उपयोग अद्दास्थान होते हैं । उनकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

\* कषायोंके उदयस्थानोंकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है ।

§ १२९. कषायोंके उदयस्थान कषायोदयस्थान कहलाते हैं । उनकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है । इसका यह तात्पर्य है—क्रोधादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके असंख्यात लोक-

मेत्ताणि उदयट्टाणाणि अत्थि । ताणि पुण माणे थोवाणि, कोहे विसेसाहियाणि, मायाए विसेसाहियाणि, लोभे विसेसाहियाणि । एदाणि सव्वाणि समुदिदाणि मग-सगकसायपडिबद्धाणि भावोवजोगवग्गणाओ णाम, तिव्व-मंदादिभावणिवंधणत्तादो त्ति ।

\* एदासिं दुविहाणं पि वग्गणाणं परुवणा पमाणमप्पाबहुत्थं च वस्तब्बं ।

§ १३०. एदासिमणंतरणिदिट्ठाणं दुविहाणं पि वग्गणाणं काल-भावोवजोग-विसयाणमेत्तो परुवणादीहिं तीहिं अणियोगदारेहिं अणुगमो कायव्वो, अण्णहा तव्विसयसम्मण्णाणाणुववत्तीदो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स पिंडत्थो । एदाणि च सुगमाणि त्ति चुण्णिसुत्तयारेण ण वित्थरिदाणि, तदो एदेसिं पज्जवड्डियपरुवणं वत्तइस्सामो । तत्थ ताव कालोवजोगवग्गणाणं परुवणदाए ओघादेसेहिं चउण्हं पि कसायाणमत्थि कालोवजोगवग्गणाओ । पमाणाणुगमेण चउण्हं कसायाणं मज्झे तत्थ एकेकस्स कसायस्स कालोवजोगवग्गणाओ अंतोमुहुत्तमेत्तीओ होंति ।

§ १३१. अप्पाबहुत्थं दुविहं—सत्थाण-परत्थाणमेएण । सत्थाणे ताव पयदं—सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णकालोवजोगवग्गणा । उक्कस्सकालोवजोगवग्गणा संखेज्ज-गुणा । अहवा सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णकालोवजोगवग्गणा । वग्गणाविसेसो संखेज्जगुणो । किं कारणं ? जहण्णकालोवजोगवग्गणमुक्कस्सकालोवजोगवग्गणाए सोहिय

प्रमाण उदयस्थान हैं । परन्तु मानमें वे सबसे स्तोक हैं, उनसे क्रोधमें विशेष अधिक हैं, उनसे मायामें विशेष अधिक हैं और उनसे लोभमें विशेष अधिक हैं । अपने-अपने कषाय-सम्बन्धी ये सब मिलकर भावोपयोगवर्गणा कहलाते हैं, क्योंकि ये तीव्रभाव और मन्दभाव आदिके निमित्तसे होते हैं ।

\* इन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंकी प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

§ १३०. अनन्तर पूर्व कही गई कालोपयोग और भावोपयोगको विषय करनेवाली इन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंका आगे प्ररूपणा आदि तीन अनुयोगद्वारोंका आश्रय कर अनुगमन करना चाहिए, अन्यथा तद्विषयक सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता, इस प्रकार यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है । किन्तु ये सुगम हैं, इसलिए चूर्णिसूत्रकारने इनका विस्तार नहीं किया । इसलिए इनकी पर्यायार्थिक अर्थात् अलग-अलग प्ररूपणा करेंगे । सर्वप्रथम उनमेंसे कालोपयोगवर्गणाओंकी प्ररूपणा करनेपर ओघ और आदेशसे चारों ही कषायोंकी कालोपयोगवर्गणाएँ हैं । प्रमाणानुगमकी अपेक्षा चारों कषायोंमेंसे एक-एक कषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती हैं ।

§ १३१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व । स्वस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है—क्रोधकी जघन्य कालोपयोगवर्गणा सबसे अल्प है । उससे उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणा संख्यातगुणी है । अथवा क्रोधकी जघन्य कालोपयोगवर्गणा सबसे स्तोक है । उससे वर्गणाविशेष संख्यातगुणा है, क्योंकि उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणामेंसे जघन्य कालोपयोगवर्गणाके घटानेपर जो शेष रहे उसके कथनका यहाँ अवलम्बन लिया गया है ।

सुद्रसेसस्स तव्ववएसावलंबणादो । वग्गणाओ विसेसाहियाओ, जहण्णकालोवजोग-  
वग्गणाणं पि एत्थ पवेसदंसणादो । एवं माण-माया-लोहाणं पि सत्थाणप्पाबहुअं  
कायव्वं ।

§ १३२. संपहि परत्थाणप्पाबहुए भण्णमाणे सव्वत्थोवाओ माणस्स कालोव-  
जोगवग्गणाओ । कोहस्स कालोवजोगवग्गणाओ विसेसाहियाओ । मायाए कालोव-  
जोगवग्गणाओ विसेसाहिया० । लोहस्स कालोवजोगवग्गणा० विसेसाहिया० । विसेसो  
पुण सव्वत्थावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो । एवमेसा ओघेण परत्थाणप्पाबहुअपरूवणा  
कया । तिरिक्ख-मणुसगदीसु वि एवं चैव वत्तव्वं, विसेसाभावादो ।

§ १३३. आदेसेण णेरह० सव्वत्थोवाओ लोभस्स कालोवजोगवग्गणाओ ।  
मायाए कालोवजोगवग्गणाओ संखेज्जगुणाओ । माणस्स कालोवजोगवग्गणा० संखेज्ज-  
गुणा० । कोहस्स कालोवजोगवग्गणा० संखेज्जगुणा० । एवं देवगदीए वि । णवरि  
कोहादो आढविय पच्छाणुपुव्वीए णेदव्वमिदि ।

§ १३४. संपहि भावोवजोगवग्गणाणं परूवणे भण्णमाणे चउण्हं पि कसायाण-  
मत्थि भावोवजोगवग्गणाओ । पमाणं वुच्चदे—चउण्हं पि कसायाणं पादेकमसंखेज्ज-  
लोगमेत्तीओ भावोवजोगवग्गणाओ होति । अप्पाबहुअं दुविहं—सत्थाण-परत्थाणमेदेण ।  
सत्थाणे पयदं । सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णभावोवजोगवग्गणा । किं कारणं ? सव्व-

उससे क्रोधकी कालोपयोगवर्गणाएँ विशेष अधिक हैं, क्योंकि जघन्य कालोपयोगवर्गणाओंका भी इनमें प्रवेश देखा जाता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभकषायका भी स्वस्थान अल्पबहुत्व करना चाहिए।

§ १३२. अब परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेपर मानकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ सबसे थोड़ी हैं। उनसे क्रोधकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ विशेष अधिक हैं। उनसे माया-कषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ विशेष अधिक हैं और उनसे लोभकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण सर्वत्र आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार यह ओघसे परस्थान अल्पबहुत्वप्ररूपणा की। तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए, क्योंकि ओघसे इनमें उक्त अल्पबहुत्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

§ १३३. आदेशसे नारकियोंमें लोभकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ सबसे स्तोक हैं। उनसे मायाकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ संख्यातगुणी हैं। उनसे मानकषायकी कालोपयोग-वर्गणाएँ संख्यातगुणी हैं। उनसे क्रोधकषायकी कालोपयोगवर्गणाएँ संख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार देवगतिमें भी कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्रोधसे आरम्भ कर पश्चादानुपूर्वीसे जानना चाहिए।

§ १३४. अब भावोपयोगवर्गणाओंका कथन करनेपर चारों ही कषायोंकी भावोपयोग-वर्गणाएँ हैं। प्रमाणका कथन करते हैं—चारों ही कषायोंमेंसे प्रत्येककी असंख्यात लोकप्रमाण भावोपयोगवर्गणाएँ होती हैं। स्वस्थान और परस्थानके भेदसे अल्पबहुत्व दो प्रकारका है। स्वस्थानका प्रकरण है। क्रोधकषायकी जघन्य भावोपयोगवर्गणा सबसे स्तोक है, 'क्योंकि

जहण्णकसायुदयट्ठाणस्सेक्कस्स चैव गहणादो । वग्गणाविसेसो असंखेज्जगुणो । को गुणमारो ? असंखेज्जा लोगा । वग्गणाओ विसेसाहियाओ, जहण्णवग्गणाए वि एत्थंतब्भावदंसणादो । एवं माणादीणं पि वत्तव्वं ।

§ १३५. परत्थाणे पयदं । सव्वत्थोवाणि माणस्स कसायुदयट्ठाणाणि । कोहस्स कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । मायाए कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । लोभस्स कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । विसेसो पुण सव्वत्थासंखेज्जा लोगा । एसा ओघेण भावोवजोगवग्गणाणं दुविहप्पावहुअपरूवणा कया । एत्तो आदेसपरूवणा वि चदुगदिपडिबद्धा एवं चैव णेदव्वा, विसेसाभावादो ।

\* तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता ।

§ १३६. सुगममेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । एवमेदं समाणिय संपहि चउत्थगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपवंधमुत्तरं भणइ—

\* चउत्थीए गाहाए विहासा ।

§ १३७. एत्तो चउत्थीए गाहाए अत्थविहासा अहिकया त्ति वुत्तं होइ । का सा चउत्थी गाहा त्ति सिस्साहिप्पायं मणेणासंक्रिय तण्णिहेसकरणट्टमाह—

\* 'एकम्मिह दु अणुभागे एक्ककसायग्ग्मि एक्ककालेण । उवजुत्ता का

सबसे जघन्य एक ही कषाय उदयस्थानका ग्रहण किया है । उससे वर्गणाविशेष असंख्यात-गुणा है । गुणकार क्या है ? असंख्यात लोकप्रमाण है । उससे वर्गणाए' विशेष अधिक हैं, क्योंकि जघन्य वर्गणाका भी इसमें अन्तर्भाव देखा जाता है । इसी प्रकार मानादि कषायोंकी अपेक्षा भी उक्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

§ १३५. परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है । मानकषायके कषाय-उदयस्थान सबसे स्तोक हैं । उनसे क्रोधकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं । उनसे मायाकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं और उनसे लोभकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकप्रमाण है । यह ओघसे भावोपयोग वर्गणाओंके दो प्रकारके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की । आगे चारों गतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली आदेशप्ररूपणा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त प्ररूपणासे इसमें कोई अन्तर नहीं है ।

\* इस प्रकार तीसरी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ।

§ १३६. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है । इस प्रकार इसको समाप्त कर अब चौथी गाथाके अवसरप्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्र-प्रबन्धको कहते हैं—

\* अब चौथी गाथाकी अर्थविभाषा अधिकृत है ।

§ १३७. आगे चौथी गाथाकी अर्थविभाषा अधिकार प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह चौथी गाथा कौनसी है इस प्रकार शिष्योंके अभिप्रायको मनसे सोचकर उसका निर्देश करनेके लिए कहते हैं—

\* एक कषायसम्बन्धी एक अनुभागमें एक कालमें कौन सी गति उपयुक्त



च गदी विसरिससुवजुज्जदे का च ॥' ति ।

§ १३८. एसा सा चउत्थी गाहा ति वुत्तं होइ । एत्थ 'इदि'सदो गाहासुत्त-  
सरूवावहारणफलो । एसा च गाहा पुच्छामुहेण संगहियासेसपयदत्थपरूवणादो तदो  
पुच्छासुत्तमिदि जाणावणट्टमाह—

\* एदं सच्चं पुच्छासुत्तं ।

§ १३९. एदं सच्चमणंतरणिद्धिगाहासुत्तं सपुच्चपच्छदं पुच्छासुत्तमिदि भणिदं  
होदि ।

\* एत्थ विहासाए दोणिण उवएसा ।

§ १४०. एत्थ एदम्मि गाहासुत्ते विहासिज्जमाणे दोणिण उवएसा अवलंबेयव्या,  
परमगुरुसंपदायापरिच्चागेणेव वक्ख्वाणपउत्तीए णाइयत्तादो' ति भणिदं होदि ।

\* एक्केण उवएसेण जो कसायो सो अणुभागो ।

§ १४१. एक्केण उवएसेण अपवाइज्जंतेणुवएसेणे ति वुत्तं होइ । कुदो एदं  
णच्चदे ? पवाइज्जंतोवएसस्स सणामणिहेसेण पुरदो भणिस्समाणत्तादो । तत्थ जो  
कसायो सो अणुभागो ति भणंतस्साहिप्पायो ण कसायादो वदिरित्तो अणुभागो अत्थि,

होती है तथा कौन सी गति विसदृशरूपसे उपयुक्त होती है ।

§ १३८. यह वह चौथी गाथा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । गाथासूत्रके स्वरूपका  
अवधारण करनेके प्रयोजनसे यहाँ 'इदि' शब्द आया है । यह गाथा पृच्छामुखसे समस्त प्रकृत  
अर्थका संग्रह कर कथन करती है, इसलिए यह पृच्छासूत्र है इस बातका ज्ञान करानेके लिए  
कहते हैं—

\* यह सब पृच्छासूत्र है ।

§ १३९. अपने पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सहित अनंतर पूर्व कहा गया यह समस्त गाथासूत्र  
पृच्छासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* इस गाथाकी अर्थविभाषामें दो उपदेश पाये जाते हैं ।

१४०. एत्थ अर्थात् इस गाथासूत्रका व्याख्यान करते समय दो उपदेशोंका अवलम्बन  
लेना चाहिए, क्योंकि परम गुरुसम्प्रदायका त्याग किये बिना ही व्याख्यानकी प्रवृत्तिका होना  
न्यायप्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* एक उपदेशके अनुसार जो कषाय है वही अनुभाग है ।

१४१. एक उपदेशके अनुसार अर्थात् अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रवाह्यमान उपदेशका अपने नामके साथ चूर्णिसूत्रकार आगे स्वयं कथन  
करेंगे इससे उक्त तथ्य जाना जाता है ।

प्रकृतमें 'जो कषाय है वही अनुभाग है' ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि अनुभाग

तत्तो पुधभूदस्स तस्साणुवल्लदीदो । अणुभागो कारणं कसायपरिणामो तक्कज्जमिदि ताणं मेदो ण वोत्तुं जुत्तो, कज्जे कारणोवयारेण ताणमेयत्तञ्चुवगमादो । संपडि एदस्सेव अत्थस्स पदंसणड्ढिमिदमाह—

\* क्रोधो क्रोधाणुभागो ।

१४२. क्रोध एव क्रोधानुभागो नान्यः कश्चिदित्यर्थः ।

\* एवं माण-माया-लोभाणं ।

§ १४३. यथा क्रोध एव क्रोधानुभाग इति समर्थितमेवं मान एव मानानुभागो, मायैव मायानुभागो, लोभ एव लोभानुभाग इति वक्तव्यं, कार्यकारणयोरभेदो-पचारात् ।

\* तदो का च गदी एगसमएण एगकसायोवजुत्ता वा दुक्कसायोव-जुत्ता वा तिकसायोवजुत्ता वा चदुक्कसायोवजुत्ता वा त्ति एदं पुच्छासुत्तं ।

§ १४४. जदो एवं कसायो चेवाणुभागो त्ति समत्थिदं तदो 'एकम्हि दु अणु-भागे' इच्चादिपुच्छासुत्तस्स एवमणुगमो कायव्वो । तं जहा—णिरयादिगदीणं मज्झे का च गदी एगसमएण एगकसायोवजुत्ता वा होदि त्ति एसा पढमा पुच्छा, 'एकम्हि

कषायसे जुदा नहीं है, क्योंकि कषायसे पृथक् वह पाया नहीं जाता ।

शंका—अनुभाग कारण है और कषाय परिणाम उसका कार्य है इस प्रकार इनमें भेद है ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं, कार्यमें कारणका उपचार करके उन दोनोंमें अपृथक्पना स्वीकार किया गया है । अब इसी अर्थको दिखलानेके लिए कहते हैं—

\* क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है ।

§ १४२. क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है, अन्य कुछ नहीं यह इस सूत्रका अर्थ है ।

\* इसी प्रकार लोभ, मान और मायाकषायकी अपेक्षा कहना चाहिए ।

§ १४३. जिस प्रकार क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है इस प्रकार समर्थन किया है इसी प्रकार मानकषाय ही मानानुभाग है, मायाकषाय ही मायानुभाग है और लोभकषाय ही लोभानुभाग है ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर कार्य और कारणमें अभेदका उपचार किया गया है ।

\* इसलिए कौन गति एक समयमें एक कषायमें उपयुक्त है, दो कषायोंमें उपयुक्त है, तीन कषायोंमें उपयुक्त है अथवा चारों कषायोंमें उपयुक्त है इस प्रकार यह पृच्छासूत्र है ।

§ १४४. यतः कषाय ही अनुभाग है इसका उक्त प्रकारसे समर्थन किया है, अतः 'एकम्हि दु अणुभागे' इत्यादि पृच्छासूत्रका इस प्रकार अनुगम करना चाहिए । यथा—नरकादि गतियोंमेंसे 'कौन सी गति एक समयमें एक कषायमें उपयुक्त है' यह प्रथम पृच्छा

दु अणुभागे एककसायम्हि एककालेण उवजुत्ता का च गदी' ति एत्थेदिस्से णिवद्वत्त-  
दसणादो । संपहि 'विसरिसमुवजुज्जदे का च ।' ति गाहासुत्तावयवमस्सियूण द्दुकसायोव-  
जुत्ता वा, तिकसायोवजुत्ता वा, चदुकसायोवजुत्ता वा का गदी होदि ति एदेसिं तिण्हं  
पुच्छाणिहेसाणमणुगमो कायव्वो, एगकसायोवजोगविवज्जासलक्खणो विसरिसोवजोगो  
त्ति गहणादो । एवंविहपुच्छापडिवद्वत्थपदुप्पायणदुमेदं गाहासुत्तमोइण्णमिदि जाणा-  
वणदुमेदं पुच्छासुत्तमिदि भणिदं । संपहि एवंविहपुच्छाणं णिण्णयविहाणदुमुत्तरो  
सुत्तपबंधो—

\* तदो णिदरिसणं ।

§ १४५. तदो पुच्छाणुगमादो अणंतरमिदाणि णिदरिसणं णिण्णयकरणं वत्त-  
इस्सामो ति वुत्तं होइ ।

\* तं जहा ।

\* णिरय-देवगदीणमेदे वियप्पा अत्थि, सेसाओ गदीओ णियमा  
चदुकसायोवजुत्ताओ ।

§ १४६. एदे अणंतरपरूविदा पुच्छावियप्पा तदुत्तरवियप्पा च णिरय-देव-  
गदीणमत्थि । किं कारणं ? णिरयगदीए ताव कोधकसायोवजुत्तजीवरासी अद्दा-  
माहप्पेण सव्वबहुओ होदूण णिरंतरासित्तमणुहवइ । एवं देवगदीए वि लोभोव-

है, क्योंकि 'एक कषायसम्बन्धी एक अनुभागमें एक कालमें कौन सी गति उपयुक्त है' इस प्रकार इस सूत्रवचनमें यह अर्थ निबद्ध देखा जाता है । अब 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार गाथासूत्रके इस अंशका आश्रय कर दो कषायोंमें उपयुक्त, तीन कषायोंमें उपयुक्त अथवा चार कषायोंमें उपयुक्त कौन-कौन सी गति होती है इस प्रकार इन तीन पृच्छा निर्देशों का अनुगम करना चाहिए, क्योंकि यहाँपर गाथामें आये हुए 'विसदृश उपयोग' पदका अर्थ एक कषायके उपयोगसे विपर्यास अर्थात् भिन्न प्रकारके लक्षणवाला उपयोग ग्रहण किया गया है । इस प्रकारकी पृच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थका कथन करनेके लिए यह गाथासूत्र आया है इस बातका ज्ञान करानेके लिए यह पृच्छासूत्र है इस प्रकार कहा है । अब इस प्रकारकी पृच्छाओंका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध है—

\* अब आगे निर्णय करते हैं ।

§ १४५. 'तदो' अर्थात् पृच्छाओंके अनुगमके अनन्तर अब इनका 'णिदरिसणं' अर्थात् निर्णय करके बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* वह कैसे ?

\* नरकगति और देवगतिमें ये विकल्प होते हैं, शेष गतियाँ नियमसे चारों कषायोंमें उपयुक्त होती हैं ।

§ १४६ ये अनन्तर पूर्व कहे गये पृच्छा विकल्प और उनके उत्तरस्वरूप कहे गये विकल्प नरकगति और देवगतिमें हैं, क्योंकि नरकगतिमें तो क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई जीव-  
राशि कालके माहात्म्यके कारण सबसे अधिक होकर निरन्तर राशिपनेका अनुभव करती है ।

जुत्तजीवरासीए णिरंतरभावो दडुव्वो । तदो दोण्हमेदेसिमुभयत्थ णिरंतररासित्तादो एगकसायोवजुत्ताणं धुवभावं कादूण सेसकसाएहिं सह दु-ति-चदुसंजोगा वत्तव्वा त्ति । एदेण कारणेण णिरय-देवगदीओ एगकसायोवजुत्ताओ दुकसायोवजुत्ताओ तिकसायोव-जुत्ताओ चदुकसायोवजुत्ताओ वा होंति त्ति सिद्धं । सेसगदीओ णियमा एवं भणिदे तिरिक्ख-मणुसगदीओ णियमेण चदुकसायोवजुत्ताओ होंति त्ति वेत्तव्वं । किं कारणं ? तत्थ चउण्हं पि कसायरासीणं धुवभावोवलंभादो । एवमेदं परुविय संपहि णिरय-देवगदीसु चउण्हं पि वियप्पाणं संभवे तत्थ कदमेण कसाएण कदमो वियप्पो समु-प्पज्जदि त्ति एदस्सत्थस्स फुडीकरणदुमुवरिमं पबंधमुवइसइ—

\* णिरयगईए जइ एक्को कसायो णियमा कोहो ।

§ १४७. कुदो ? कोहोवजोगकालस्स तत्थ सव्ववहुत्तोवएसेण सव्वस्स णेरइय-रासिस्स तत्थेवावट्ठाणे विरोहाभावादो । ण सेसकसायोवजोगद्वासु वि तहासंभवासंका कायव्वा, तहाविहसंभवस्स पुव्वुत्तकालप्पावहुअसुत्तेण बाहियत्तादो ।

\* जदि दुकसायो कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो ।

§ १४८. दोण्हं कसायाणं समाहारेण जणिदो उवजोगो दुकसायो त्ति भण्णदे । सो कथमुप्पज्जदि त्ति भणिदे 'कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो' त्ति णिहिद्धं । कोहरासिं

इसी प्रकार देवगतिमें भी लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिको निरन्तर जानना चाहिए । इसलिए क्रमसे ये दोनों राशियाँ नरकगति और देवगतिमें निरन्तर राशि होनेसे एक कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंको ध्रुव करके शेष कषायोंके साथ दो संयोगी, तीन संयोगी और चार संयोगी भंग कहना चाहिए । इस कारणसे नरकगति और देवगति एक कषाय-उपयुक्त, दो कषाय-उपयुक्त, तीन कषाय-उपयुक्त अथवा चार कषाय-उपयुक्त होती हैं यह सिद्ध हुआ । शेष गतियाँ नियमसे' ऐसा कहने पर तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति नियमसे चार कषायोंमें उपयुक्त होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इन दो गतियोंमें चारों ही कषायराशियाँ ध्रुवरूपसे पाई जाती हैं । इस प्रकार उक्त चूणिसूत्रकी व्याख्या करके अब नरकगति और देवगतिमें चारों ही विकल्पोंके सम्भव होनेपर वहाँ किस कषायके साथ कौन विकल्प बनता है इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिए उपरिम प्रबन्धका उपदेश करते हैं—

\* नरकगतिमें यदि एक कषाय है तो नियमसे क्रोधकषाय होती है ।

§ १४७. क्योंकि क्रोधकषायके उपयोग कालका वहाँ सबसे अधिक उपदेश होनेके कारण समस्त नारकराशिका क्रोधकषायमें अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता । पर इससे शेष कषायोंके उपयोग कालोंमें भी उस प्रकारसे सम्भव होनेकी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उस प्रकारका सम्भव पूर्वमें कहे गये अल्प-बहुत्व सूत्रसे बाधित हो जाता है ।

\* यदि दो कषायोंका संयोग है तो क्रोधके साथ अन्यतर एक कषाय इस प्रकार दो कषायोंका संयोग होता है ।

§ १४८. दो कषायोंके समाहारसे उत्पन्न हुआ उपयोग दो-कषाय ऐसा कहा जाता है । वह कैसे उत्पन्न होता है ऐसी पृच्छा होने पर 'कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो'

धुवं कादूण तेण सह माणादीणमण्णदरं घेत्तूण दुसंजोगे कीरमाणे समुप्पज्जइ त्ति भणिदं होइ । तं कथं ? कोह-माणोवजुत्ता वा, कोह-मायोवजुत्ता वा, कोह-लोभोव-जुत्ता वा त्ति एवमेदे तिण्णिण दुसंजोगभंगा ३ । संपहि तिकसायोवजुत्तवियप्पपदुप्पा-यणट्टमाह—

\* जदि तिकसायो कोहेण सह अण्णदरो तिसंजोगो ।

§ १४९. तिण्हं कसायाणं संजोगो तिकसायो त्ति वुच्चदे । सो कथमुप्पज्जइ त्ति भणिदे कोहेण सह सेसकसायाणमण्णदरदोकसाए घेत्तूण तिसंजोगे कीरमाणे समुप्पज्जइ त्ति भणिदं । तं कथं ? कोह-माण-मायोवजुत्ता वा, कोह-माण-लोभोवजुत्ता वा, कोह-माया-लोभोवजुत्ता वा त्ति । एवमेत्थ वि तिण्णिण चैव भंगा ३ । संपहि चदुकसाय-पदुप्पायणट्टमाह—

\* जदि चउकसायो सव्वे चैव कसाया ।

§ १५०. सुगममेदं, सव्वे चैव कोहादिकसाए घेत्तूण चदुकसायोवजुत्तवियप्पु-प्पत्तीए विसंवादाभावादो । एवमेत्थ एको चैव भंगो होदि । एवं णिरयोधो परूविदो ।

यह निर्देश किया है । क्रोधराशिको ध्रुव कर उसके साथ मानादिकमेंसे अन्यतर कषायको ग्रहण कर दोका संयोग करने पर द्विसंयोगी भंग उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्रोध और मानमें उपयुक्त हुए जीव, अथवा क्रोध और मायामें उपयुक्त हुए जीव अथवा क्रोध और लोभमें उपयुक्त हुए जीव इस प्रकार ये तीन द्विसंयोगी भंग ३ होते हैं ।

अब तीन कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके विकल्पोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* यदि तीन कषायोंका संयोग है तो क्रोधके साथ अन्यतर दो कषाय इस प्रकार तीन कषायोंका संयोग होता है ।

§ १४९. तीन कषायोंका संयोग तीन-कषाय ऐसा कहा जाता है । वह कैसे उत्पन्न होता है ऐसी पृच्छा होनेपर क्रोधके साथ शेष कषायोंमेंसे अन्यतर दो कषायोंको ग्रहणकर तीनका संयोग करने पर उत्पन्न होता है ऐसा कहा है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्रोध, मान और मायामें उपयुक्त हुए जीव, अथवा क्रोध, मान और लोभमें उपयुक्त हुए जीव अथवा क्रोध, माया और लोभमें उपयुक्त हुए जीव । इस प्रकार यहाँ पर भी तीन ही भंग ३ होते हैं ।

अब चार कषायोंके कथन करनेके लिए कहते हैं—

\* यदि चार कषायोंका संयोग है तो सभी कषायें होती हैं ।

§ १५० यह सूत्र सुगम है, क्योंकि सभी क्रोधादि कषायोंको ग्रहण कर चार कषायोंमें उपयुक्तरूप विकल्पकी उत्पत्तिमें विसंवाद नहीं है । इस प्रकार यहाँ पर एक ही भंग होता

एवं चेव सत्तसु पुढवीसु णेदब्बं, विसेसाभावादो । संपहि देवगदीए वि एसा चेव परूवणा लोभादो आढविय विवज्जाससरूवेण णेदब्बा त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

\* जहा णिरयगदीए कोहेण तहा देवगदीए लोभेण कायब्बा ।

§ १५१. जहा णिरयगद्दमग्गणाए कोहेण धुवभावमावण्णेण सह सेसकसाए ढोएदूण एग-दु-ति-चदुकसायोवजुत्तवियप्पपरूवणा कया एवं देवगदीए वि लोभेण सह पयदपरूवणा णिव्वामोहमणुमग्गियब्बा त्ति वुत्तं होइ । एवं ताव अपवाइजंतोवएस-मस्सियूण गाहासुत्तत्थमेकेण पयारेण विहासिय पयदत्थोवसंहारवक्कमाह—

\* एक्केण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि ।

§ १५२. सुगममेदमुवसंहारवक्कं । संपहि विदियोवएसमस्सियूण गाहासुत्तत्थं विहासिदुकामो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* पवाइजजंतोण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा ।

§ १५३. एत्तो पवाइजंतोवएसमवलंबिय एदिस्से चउत्थीए सुत्तगाहाए अत्थ-विहासणा कीरदि त्ति वुत्तं होइ । को वुण पवाइजंतोवएसो णाम ? वुच्चदे—वुत्तमेदं सव्वाइरियसम्मदो चिरकालमव्वोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए

है । इस प्रकार ओघसे नरकगतिमें कथन किया । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें कथन करना चाहिए, क्योंकि विवक्षित ओघ परूपणासे उसमें कोई भेद नहीं है । अब देवगतिमें भी लोभसे आरम्भकर पश्चादानुपूर्वीसे यही परूपणा कहनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए यह सूत्र कहते हैं—

\* जिस प्रकार नरकगतिमें क्रोधके साथ कथन किया है उसी प्रकार देव-गतिमें लोभके साथ कथन करना चाहिए ।

§ १५१. जिस प्रकार नरकगति मार्गणामें ध्रुवपनेको प्राप्त हुए क्रोधके साथ शेष कषायोंका आश्रय कर एक, दो, तीन और चार कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके विकल्पोंका कथन किया है उसी प्रकार देवगतिमें भी लोभके साथ प्रकृत परूपणा निःसंशयरूपसे जान लेनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार सर्व प्रथम अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार गाथासूत्रके अर्थका एक प्रकारसे व्याख्यान करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार वाक्य कहते हैं—

\* एक उपदेशके अनुसार चौथी गाथाकी व्याख्या समाप्त होती है ।

§ १५२. यह उपसंहार वाक्य सुगम है । अब दूसरे उपदेशका आश्रय कर गाथासूत्रके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्र प्रबन्धको कहते हैं—

\* प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चौथी गाथाका विशेष व्याख्यान करते हैं ।

§ १५३ आगे प्रवाह्यमान उपदेशका आलम्बन लेकर इस चौथी सूत्रगाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—प्रवाह्यमान उपदेश किसे कहते हैं ?

समाधान—यह कहा है कि जो सब आचार्योंके द्वारा सम्मत है, चिरकालसे अनुत्तित

पवाइज्जदे पण्णविज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे । अथवा अज्जमंखुभयवंताण-  
मुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम । णागहत्थिखवणाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति  
घेत्तव्वो ।

\* 'एकम्मि दु अणुभागे त्ति' जं कसायउदयट्ठाणं सो अणुभागो  
णाम ।

§ १५४. एतदुक्तं भवति, पुत्रिविल्लपरूवणाए जो कसायो सो चेवाणुभागो त्ति  
विवक्खियं, कज्जकारणाणमव्वदिरेगणयावलंबणादो कज्जे कारणोवयारादो च । एत्थ  
वुण अण्णो कसायो अण्णो च अणुभागो त्ति विवक्खियं, कज्ज-कारणाणं भेद-  
णयावलंबणादो । ण च कज्जं चेव कारणं होइ, विप्पडिसेहादो । तदो एवंविहाहिप्पाएण  
पयट्ठा एसा परूवणा त्ति घेत्तव्वं । संपहि सुत्तथविवरणं कस्सामो । 'एकम्मि दु  
अणुभागे त्ति' एदेण गाहासुत्तावयवमिदि सट्ठपरं परामरसिय तदो जं कसायउदयट्ठाणं  
सो अणुभागो त्ति तस्स अत्थणिहेसो कओ । ण कसायो चेवाणुभागो, किंतु जं कसाय-  
मुदयट्ठाणमसंखेज्जलोगभेयभिण्णं तमेत्थाणुभागो त्ति विवक्खियमिदि एसो एदस्स  
भावत्थो ।

\* 'एगकालेणे त्ति' कसायोवजोगद्धट्ठाणे त्ति भणिदं होदि ।

सम्प्रदाय क्रमसे चला आ रहा है, और जो शिष्य परम्पराके द्वारा प्रवाहित किया जाता है  
प्रज्ञापित किया जाता है वह प्रवाह्यमान उपदेश कहा जाता है । अथवा आर्यमंखु भगवान्का  
उपदेश प्रकृतमें अप्रवाह्यमान उपदेश है और नागहस्तिक्षमाश्रमणका उपदेश प्रवाह्यमान  
उपदेश है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

\* 'एक अनुभागमें' यहाँपर जो कषाय उदयस्थान है उसकी अनुभाग  
संज्ञा है ।

§ १५४. इसका यह तात्पर्य है कि पिछली प्ररूपणामें जो कषाय है वही अनुभाग है  
ऐसी विवक्षा की थी, क्योंकि वहाँ कार्य और कारणमें अभेदनयका अवलम्बन लिया गया  
था और कार्यमें कारणका उपचार किया गया था । परन्तु यहाँ पर कषाय अन्य है और  
अनुभाग अन्य है यह विवक्षा की गई है, क्योंकि यहाँ कार्य और कारणमें भेदविवक्षाका  
अवलम्बन लिया गया है । और कार्य ही कारण नहीं होता, क्योंकि इन दोनोंके एक होनेका  
निषेध है । इसलिए इस प्रकारके अभिप्रायसे यह प्ररूपणा प्रवृत्त हुई है ऐसा यहाँ ग्रहण करना  
चाहिए । अब सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं—'एकम्मि दु अणुभागो' इस वचन द्वारा गाथा  
सूत्रके अंशके शब्दार्थका परामर्श करके तदनुसार जो कषाय-उदयस्थान है वह अनुभाग है  
इस प्रकार उसका अर्थनिर्देश किया । कषाय ही अनुभाग नहीं है किन्तु असंख्यात लोकप्रमाण  
भेदोंको लिये हुए जो कषाय-उदयस्थान है वह यहाँ पर अनुभाग है ऐसी विवक्षा की है  
यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

\* 'एगकालेण' इस पदका अर्थ कषायोपयोगाद्वास्थान है ऐसा कहा गया है ।

§ १५५. एगकालेणे त्ति एत्थतणकालसहो समवायवाचओ त्ति पुव्विन्ल-  
परुवणाए वक्खाणिदो । एत्थ पुण तहा ण धेप्पइ, किंतु एसो कालसहो कालोवजोग-  
वग्गणाणं वाचओ । तदो 'एगकालेणे त्ति' वुत्ते एगेण कसायोवजोगद्धाणेणे त्ति  
भणिदं होदि ।

\* एसा सण्णा ।

§ १५६. एसा अणंतरपरुविदा सण्णा पवाइजंतोवएसेण णायव्वा त्ति भणिदं  
होइ ।

\* तदो पुच्छा ।

§ १५७. एदं सण्णाविसेसमवलंविय तदो गाहासुत्ताणुसारेण एसा पुच्छा  
कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । केरिसी सा पुच्छा त्ति आसंकाए उत्तरमाह—

\* 'का च गदी एकम्हि कसायउदयट्ठाणे एकम्हि वा कसायउव-  
जोगद्धाणे भवे ।

§ १५८. गिरयादिगदीणं मज्झे का णाम गदी कोहादीणमण्णदरकसायपडिबद्धे  
एकम्हि चैव कसायुदयट्ठाणे एकम्हि चैव वा कसायोवजोगद्धाणे एगसमएणुवजुत्ता  
भवे किमेवंविहसंभवो अत्थि वा ण वेत्ति पुच्छिदं होदि । संपहि 'विसरिसमुवजुज्जदे  
का च' त्ति एदं चरिमावयवमस्सियूणविसरिसोवजोगविसयं विदियं पुच्छावक्कमाह—

§ १५५. 'एगकालेण' इस पदमें आया हुआ काल शब्द समवायवाचक है ऐसी पिछली  
परुवणामें कह आये हैं । परन्तु यहाँ पर उस प्रकार ग्रहण नहीं करना है, किन्तु यह काल  
शब्द कालोपयोग वर्गणाओंका वाचक है । इसलिए 'एगकालेण' ऐसा कहनेपर उसका अर्थ  
एक कषायोपयोगाद्धास्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* यह संज्ञा है ।

§ १५६. अनन्तर पूर्व कही गई यह संज्ञा प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार जानना  
चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* इसके बाद पृच्छा करनी चाहिए ।

§ १५७. इस संज्ञाविशेषका अवलम्बन लेकर अनन्तर गाथासूत्रके अनुसार यह  
पृच्छा करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह पृच्छा किस प्रकार की है ऐसी आशंका  
होनेपर उत्तरका कथन करते हैं—

\* एक कषाय उदयस्थानमें अथवा एक कषाय उपयोगाद्धास्थानमें कौन गति  
होती है ।

§ १५८. नरकादि गतियोंमेंसे कौन गति क्रोधादिकमेंसे अन्यतर कषाय-सम्बन्धी एक  
ही कषाय उदयस्थानमें अथवा एक ही कषायोपयोगाद्धास्थानमें एक समयमें उपयुक्त होती  
है । क्या इस प्रकारका सम्भव है अथवा नहीं है यह इस पृच्छाका तात्पर्य है । अब विस-  
रिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार इस अन्तिम अंशका आश्रय कर विसदृश उपयोगविषयक  
दूसरे पृच्छावाक्यको कहते हैं—



\* अथवा अणेगेसु कसायउदयद्वाणेसु अणेगेसु वा कसायउवजोगद्वा-  
द्वाणेसु का च गदी ।

§ १५९. अणेगेसु कसायउदयद्वाणेसु अणेगेसु वा कसायोवजोगद्वाणेसु एग-  
समयम्मि उवजुत्ता भवे इदि पुच्छाहिसंबंधो अहियारवसेणेत्थ वि जोजेयव्वो ।

\* एसा पुच्छा ।

§ १६०. एसा अणंतरपरुविदा दुविहा पुच्छा एदम्मि गाहासुत्ते पडिबद्धा त्ति  
भणिदं होदि । एवमेदम्मि उवदेसे पुच्छाभेदमुवसंदरिसिय संपहि एदिस्से पुच्छाए  
णिण्णयकरणट्टमिदमाह—

\* अयं णिहेसो ।

§ १६१. सुगमो ।

\* तसा एक्केकम्मि कसायुदयद्वाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ १६२. सो च दुविहो णिहेसो—कसायुदयद्वाणविसयो कसायोवजोगद्वाण-  
विसयो च । तत्थ ताव कसायुदयद्वाणेसु तसजावे अस्सियूण पयदपरुवणट्टमेदं  
सुत्तमोइण्णं । तं जहा—तसकाइया जीवा एक्केकम्मि कसायुदयद्वाणे उक्कस्सेण आवलि-

\* अथवा अनेक कषाय उदयस्थानोंमें अथवा अनेक कषाय-उपयोगाद्वास्थानोंमें  
कौन गति उपयुक्त होती है ।

§ १५९. अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें अथवा अनेक कषायोपयोगाद्वास्थानोंमें एक  
समयमें उपयुक्त कौन गति होती है इस प्रकार अधिकारके वशसे यहाँ पर भी पुच्छाका  
सम्बन्ध कर लेना चाहिए ।

\* यह पुच्छा है ।

§ १६० यह अनन्तर पूर्व कही गईं दो प्रकारकी पुच्छाएँ इस गाथासूत्रसे प्रतिबद्ध हैं  
यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इस उपदेशमें पुच्छाभेदको दिखलाकर अब इस  
पुच्छाका निर्णय करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

\* यह निर्देश है ।

§ १६१. यह सूत्र सुगम है ।

\* त्रसजीव एक-एक कषाय उदयस्थानमें अवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण  
होते हैं ।

§ १६२. यह निर्देश दो प्रकारका है—कषाय-उदयस्थानविषयक और कषायोपयोगा-  
द्वास्थानविषयक । वहाँ सर्व प्रथम कषाय-उदयस्थानोंमें त्रसजीवोंका आश्रयकर प्रकृत  
विषयकी प्ररूपणा करनेके लिए यह सूत्र आया है । यथा—त्रसकायिक जीव एक-एक कषाय-  
उदयस्थानमें उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं । इस वचनसे त्रसजीव  
नियमसे अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें रहते हैं इस बातका ज्ञान हो जाता है, क्योंकि आवलिके

याए असंखेज्जदिभागमेत्ता हवंति । एदेण तसजीवा णियमा अणेगेसु कसायुदयट्ठाणेसु अच्छंति त्ति जाणाविदं । किं कारणं ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं जइ एणं कसायुदयट्ठाणमुवलब्भदे तो जगपदरासंखेज्जभागमेत्तस्स तसजीवरासिस्स केत्तियाणि कसायुदयट्ठाणाणि लहामो त्ति तेरासियं कादूण जोइदे असंखेज्जसेट्ठिमेत्ताणं कसायुदयट्ठाणाणमागमणदंसणादो । जइ वि एत्थ सव्वेसु कसायुदयट्ठाणेसु तसजीवाणं सरिस-भावेणावट्ठाणसंभवो णत्थि तो वि समकरणं कादूण तेरासियविहाणमेदमणुगंतव्वं । जेणेवमेत्तियमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु एककालेण तसजीवरासी अच्छदि तेण पढमपुच्छाए संभवमोसारिय 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' त्ति एदिस्से विदियपुच्छाए चैव संभवो पदरिसिओ होइ । एवं णिरयादिगदीणं पि पादेकणिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा णिरव-सेसमणुगंतव्वा, एकेकम्मि कसायोदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा होंति त्ति एदेण भेदाभावादो । एवं कसायुदयट्ठाणेसु पयदणिहेसं कादूण संपहि कसायुवजोगद्धट्ठाणेसु पयदत्थपरूवणट्ठमाह—

\* कसायउवजोगद्धट्ठाणेसु पुण उक्कस्सेण असंखेज्जाओ सेठीओ ।

§ १६३. एकेकम्मि कसाए उवजोगद्धट्ठाणे तसजीवा उक्कस्सेणासंखेज्जदि-भागमेत्ता अच्छंति त्ति वुत्तं होदि । किं कारणं ? अंतोमुहुत्तमेत्तकसायोवजोगद्धट्ठाणेसु सव्वो तसजीवरासी जहापविभागमवचिड्ढदि त्ति कादूण तेरासियकमेण जोइदे असंखेज्ज-

असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंका यदि एक कषाय-उदयस्थान प्राप्त होता है तो जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रसजीवराशिके कितने कषाय-उदयस्थान प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक करके देखनेपर असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंका आगमन देखा जाता है । यद्यपि यहाँपर समस्त कषाय-उदयस्थानोंमें त्रसजीवोंका सदृशरूपसे अवस्थान सम्भव नहीं है तो भी समीकरण करके यह त्रैराशिकविधान जानना चाहिए । यतः इस प्रकार इतने-मात्र कषाय-उदयस्थानोंमें एक कालमें त्रस जीवराशि रहती है, इसलिए प्रथम पृच्छा यहाँ सम्भव नहीं, इसलिये उसका अपसरण कर 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार इस दूसरी पृच्छाकी ही यहाँ सम्भावना दिखलाई है । इसी प्रकार नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिकी विवक्षित कर प्रकृत प्ररूपणा पूरी जाननी चाहिए, क्योंकि एक-एक कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं इस प्रकार इस कथनकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । इस प्रकार कषाय-उदयस्थानोंमें प्रकृत विषयका निर्देश करके सब कषायोगयोगाद्धा-स्थानोंमें प्रकृत अर्थका कथन करनेके लिए कहते हैं—

\* किन्तु कषायोपयोगकालस्थानोंमें उत्कृष्टरूपसे असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण होते हैं ।

§ १६३. एक-एक कषाय-उपयोगाद्धास्थानमें त्रस जीव उत्कृष्टरूपसे असंख्यातवें भाग-मात्र होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कषाय-उपयोगाद्धा-स्थानोंमें समस्त त्रसजीवराशि यथा प्रविभागके अनुसार रहती है यह विधि करके त्रैराशिक-

सेहिमेत्ताणं जीवाणमेक्कम्मि कसायुवजोगद्धाणे समुवलंभादो । जइ वि सव्वेसु कसायोवजोगद्धाणेषु समपविभागेण तसजीवरासीए अवट्टाणसंभवो णत्थि तो वि समकरणविहाणेणेदं तेरासियमणुगंतव्वं । एत्थ वि णिरयादिगदीणं पादेक्कणिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा समयाविरोहेणाणुगंतव्वा । तदो एत्थ वि सो चेव भावत्थो अणेगेसु कसायोवजोगद्धाणेषु णियमा सव्वा गदी उवजुज्जदि त्ति । संपहि एदस्स चेव भावत्थस्स फुडीकरणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

\* एवं भणिदं होइ सव्वगदीओ णियमा अणेगेसु कसायुदयट्टाणेषु अणेगेसु च कसायउवजोगद्धाणेषु त्ति ।

§ १६४. कुदो पुव्वुत्तेण णाएण तहाभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । एवमेदं परूविय संपहि पयदविसये जीवप्पावहुअपदुप्पायणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

\* तदो एवं परूवणं कादूण णवहि पदेहि अप्पावहुत्तं ।

§ १६५. एवं कसायुदयट्टाणेषु उवजोगद्धाणेषु च जीवाणभवट्टाणक्कमं परूविय तदो पयदविसये तसजीवाणमप्पावहुअभिदाणि कस्सामो त्ति भणिदं होदि । तं कथं कीरदि त्ति भणिदे 'णवहिं पदेहिं' कायव्वमिदि णिदिट्ठं । काणि ताणि णवपदाणि ?

क्रमसे देखनेपर एक-एक कषाय-उपयोगाद्धास्थानमें असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण जीव उपलब्ध होते हैं । यद्यपि उक्त सभी कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें समान प्रविभागसे त्रसजीवराशिका अवस्थान सम्भव नहीं है तो भी समीकरण विधानके अनुसार यह त्रैराशिक जानना चाहिए । यहाँपर भी नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिको विवक्षित कर आगमानुसार प्रकृत परूवणा जानना चाहिए । इसलिए यहाँपर भी वही तात्पर्य है कि अनेक कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें नियमसे सब गतियाँ प्रयुक्त होती हैं । अब इसी भावार्थका स्पष्टीकरण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इस प्रकार पूर्वोक्त कथनका यह तात्पर्य है कि सभी गतियाँ अनेक कषाय उदयस्थानोंमें और अनेक कषाय-उपयोगकालस्थानोंमें नियमसे हैं ।

§ १६४. क्योंकि पूर्वोक्त न्यायसे उ स प्रकारसे सिद्धि निर्बाध पाई जाती है । इस प्रकार इसका कथन करके अब प्रकृत विषयमें जीव-अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

\* इस प्रकार उक्त कथन करके नौ पदों द्वारा अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

§ १६५. इस प्रकार कषाय-उदयस्थानोंमें और उपयोगाद्धास्थानोंमें जीवोंके अवस्थान-क्रमका कथन करके तदनन्तर प्रकृत विषयमें इस समय त्रसजीवोंका अल्पबहुत्व करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह कैसे किया जाता है ऐसी पृच्छा होनेपर नौ पदोंके द्वारा करना चाहिए यह निर्देश किया है ।

शंका—वे नौ पद कौन हैं ?

माणादीणमेक्केकस्स कसायस्स जहण्णुकस्साजहण्णाणुकस्समेयभिण्णकसायुदयट्ठाण-  
पडिबट्ठाणं तिण्हं पदाणं कसायोवजोगट्ठाणोहिं तहा चेव तिहाविहत्तेहिं संजोगेण  
समुप्पण्णाणि णवपदाणि होति । तं जहा—कोहादीणमुक्कस्सकसायुदयट्ठाणे कसायोव-  
जोगट्ठाए च पडिबट्ठमेक्कं पदं । तेसिं चेषुकस्सकसायुदयट्ठाणे जहण्णकसायोवजोगट्ठाए  
च विदियं । उक्कस्सकसायुदयट्ठाणे अजहण्णाणुकस्सकसायोवजोगट्ठासु च तदियं ।  
जहण्णकसायुदयट्ठाणे उक्कस्सकसायोवजोगट्ठाए च चउत्थं । जहण्णकसायुदयट्ठाणे  
जहण्णकसायोवजोगट्ठाए च पंचमं । जहण्णकसायुदयट्ठाणे अजहण्णाणुकस्सकसायोव-  
जोगट्ठाणेषु च छट्ठं । अजहण्णाणुकस्सकसायुदयट्ठाणेषु उक्कस्सकसायोवजोगट्ठाए  
च सत्तमं । अजहण्णाणुकस्सकसायुदयट्ठाणेषु जहण्णकसायोवजोगट्ठाए च अट्ठमं ।  
अजहण्णाणुकस्सकसायुदयट्ठाणेषु अजहण्णाणुकस्सकसायोवजोगट्ठाणेषु च णवममिदि ।  
एवमेदेहिं णवहि पदेहिं तसजीवाणं थोवबहुत्तमेत्तो अहिकीरदि त्ति सुत्तत्थसम्भावो ।

\* तं जहा ।

§ १६६. सुगममेदं पुच्छावक्कं । एवं च पुच्छाविसईकयस्स अप्पावहुअस्स  
माणादिकसायपरिवाडीए एसो णिहेसो ।

\* उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगट्ठाए जीवा  
थोवा ।

समाधान—मानादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्या-  
नुत्कृष्ट इस प्रकारसे भेदरूप कषाय-उदयस्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले तीन पदोंके तथा उसी  
प्रकार तीन रूपसे विभक्त हुए कषाय-उपयोगाद्वास्थानोंके संयोगसे उत्पन्न हुए नौ पद होते हैं ।  
यथा—क्रोधादिके उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और कषाय-उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध एक  
पद है । उन्हींके उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य कषाय उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध  
दूसरा पद है । उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोगकालस्थानोंमें  
प्रतिबद्ध तीसरा पद है । जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट कषाय उपयोगकालस्थानमें  
प्रतिबद्ध चौथा पद है । जघन्य कषाय उदयस्थानमें और जघन्य कषाय-उपयोगकालस्थानमें  
प्रतिबद्ध पाँचवाँ पद है । जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोग-  
कालस्थानोंमें प्रतिबद्ध छठा पद है । अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट कषाय-  
उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध सातवाँ पद है । अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और  
जघन्य कषाय-उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध आठवाँ स्थान है । अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदय-  
स्थानोंमें और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोगकालस्थानोंमें प्रतिबद्ध नौवाँ स्थान है । इस  
प्रकार इन नौ पदोंके द्वारा आगे त्रसजीवोंका अल्पबहुत्व अधिकृत है यह इस सूत्रके अर्थका  
आशय है ।

\* वह कैसे ?

§ १६६. यह पृच्छावाक्य सुगम है । इस प्रकार पृच्छाके विषयभूत हुए अल्पबहुत्वका  
मानादि कषायोंके क्रमसे यह निर्देश है ।

\* उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १६७. उक्कस्सकसायोदयट्ठाणं णाम उक्कस्साणुभागोदयजणिदो कसाय-परिणामो असंखेज्जलोयमेयभिण्णानमज्झवसाणट्ठाणाणं चरिमज्झवसाणट्ठाणमिदि वुत्तं होदि । 'उक्कस्समाणोवजोगट्ठाए' ति वुत्ते माणकसायस्स उक्कस्सकालोवजोग-वग्गणाए गहणं कायव्वं । तदो एदेहिं दोहिं उक्कस्सपदेहिं माणकसायपडिन्नद्वेहिं अण्णोण्णसंजुत्तेहिं परिणदा तसजीवा थोवा ति सुत्तत्थसंबंधो । कुदो एदेसिं थोवत्तमव-गम्मदे ? ण, दोण्हं पि उक्कस्सभावेण परिणमंताणं जीवाणं सुट्ठु विरलाणमुवएसादो । किं माणमेदेसिं ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जइ वि उक्कस्समाणोवजोगट्ठाए असंखेज्जसेट्ठिमेत्तजीवाणमवट्ठाणसंभवो तो वि उक्कस्सकसायुदयट्ठाणे णिरुद्धे तत्थाव-लियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव जीवरासी होदि, पयारंतरासंभवादो ।

\* जहणियाए माणोवजोगट्ठाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १६८. एत्थ उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे ति अहियारसंबंधो कायव्वो । तेण उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहणियाए माणोवजोगट्ठाए च परिणदा जीवा पुव्वि-

§ १६७. उत्कृष्ट अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुए तथा असंख्यात लोकप्रमाण अध्यवसान स्थानोंमेंसे अन्तिम अध्यवसानस्थानरूप कषाय परिणामकी उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान संज्ञा है । 'उत्कृष्ट मानोपयोगाद्धामे' ऐसा कहनेपर मानकषायकी उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणाका ग्रहण करना चाहिए । इसलिए मानकषायसे सम्बन्ध रखनेवाले और परस्पर संयुक्त हुए इन दोनों उत्कृष्ट पदरूपसे परिणत हुए त्रसजीव सबसे थोड़े हैं ऐसा सूत्रके अर्थका सम्बन्ध करना चाहिए ।

शंका—इसका स्तोकपना किस प्रमाणसे जाता जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दोनों ही पदोंके उत्कृष्टभावसे परिणत हुए जीव बहुत विरल होते हैं ऐसा परमाणुका उपदेश है

शंका—इनका प्रमाण क्या है ?

समाधान—इनका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागमात्र है । यद्यपि मानकषायके उत्कृष्ट उपयोगकालमें असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण त्रसजीवोंका अवस्थान सम्भव है तो भी उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानसे युक्त उसमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही जीवराशि होती है, क्योंकि यहाँ अन्य प्रकार सम्भव नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ उदयस्थानका अर्थ कषायपरिणाम और उपयोगाद्धाका अर्थ कषाय-परिणामका काल लिया है । ये दोनों जिन जीवोंके उत्कृष्ट होते हैं उनकी संख्या आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं पाई जाती यह उक्त कथनका तात्पर्य है । आगे भी इसी प्रकार तात्पर्य घटित कर लेना चाहिए ।

\* उनसे जघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालमें स्थित हुए जीव असंख्यात गुणे हैं ।

§ १६८. इस सूत्रमें 'उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें' अधिकारवश इस पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिए । इससे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और मानकषायके जघन्य उपयोगकालमें

न्लेहितो असंखेज्जगुणा त्ति सुत्तथो । एसो वि रासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव । किंतु उक्कस्समाणोवजोगद्दाए परिणममाणजीवेहितो जहण्णमाणोवजोगद्दाए परिणममाणजीवा बहुआ होंति, जहण्णकालस्स पउरं संभवादो । तदो सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

**\* अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्दासु जीवा असंखेज्जगुणा ।**

§ १६९. एत्थ वि पुब्बं व अहियारसंबंधो कायन्वो । तदो एसो वि जीवरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव होइ । होंतो वि पुव्विन्लरासीदो एसो असंखेज्जगुणो । किं कारणं ? जहण्णिया माणोवजोगद्दा एयवियप्पा चेव, अजहण्णाणुक्कस्समाणोवजोगद्दाओ पुण अण्येयवियप्पाओ । तेणेत्य बहुवियप्पसंभवादो बहुओ जीवरासी परिणमदि त्ति सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं । गुणगारो च आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मानकषायरूपसे परिणत हुए जीव पूर्वोक्त जीवोंसे असंख्यातगुणे होते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थ फलित हो जाता है। यह राशि भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। किन्तु उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें परिणमन करते हुए जीवोंसे जघन्य मनोपयोगकालमें परिणमन करनेवाले जीव बहुत होते हैं, क्योंकि जघन्य काल प्रचुररूपसे पाया जाता है, इसलिये ये जीव असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध हुआ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

**\* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ १६९. यहाँपर भी पहलेके समान अधिकारका सम्बन्ध करना चाहिए। इसलिए यह जीवराशि भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होती है। उतनी होती हुई भी पिछली राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है, क्योंकि मानोपयोगका जघन्य काल एक ही प्रकारका है, किन्तु अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकाल अनेक भेदोंको लिये हुए है। इसलिए यहाँपर बहुत विकल्प सम्भव होनेसे बहुत जीवराशि मानकषायरूपसे परिणमन करती है, इसलिए पूर्वोक्त जीवराशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है यह सिद्ध हुआ। यहाँ गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—मानकषायके उत्कृष्टकाल और जघन्यकालको छोड़कर शेष समस्त काल अजघन्य-अनुत्कृष्टकालमें परिगृहीत हो जाता है। यतः इस कालके भीतर मानकषायरूपसे परिणत सब त्रसजीवराशि नहीं ली गई है। किन्तु उत्कृष्ट मानकषायरूपसे परिणत त्रसजीवराशि ही ली गई है, इसलिए वह आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर भी पूर्वोक्त जीवराशिसे असंख्यातगुणी बन जाती है, क्योंकि मानकषायके जघन्यकालका प्रमाण एक समय मात्र है और अजघन्य-अनुत्कृष्टकाल असंख्यात समयप्रमाण है, इसलिए उक्तरूपसे जीवराशि बन जाती है। यहाँ सर्वत्र त्रस जीवराशिकी अपेक्षा यह अल्पबहुत्व बतलाया जा रहा है यह ध्यान रहे।

\* जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७०. सब्बजहण्णयमणुभागोदयट्ठाणं तसजीवपाओग्गमेत्थ जहण्णकसायु-  
दयट्ठाणमिदि विवक्खियं । तेण जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्समाणोवजोगद्धा-  
पडिबद्धे वट्टमाणो जीवरासी असंखेज्जगुणो त्ति सुत्तत्थसंबंधो । एसो वि आवलियाए  
असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव, एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे णिरुद्धे आवलियाए असंखेज्जदि-  
भागमेत्तो चेव तस जीवरासी होदि त्ति पुब्बमेव णिण्णीयत्तादो । णवरि उक्कस्स-  
कसायुदयट्ठाणादो जहण्णकसायुदयट्ठाणस्स सुलहत्तेण पुव्विल्लरासीदो एसो असंखेज्ज-  
गुणो जादो । एत्थ गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

\* जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७१. एत्थ जहण्णकसायुदयट्ठाणग्गहणमणुवट्टदे, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो-  
जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए च अक्कमेण परिणदा जीवा  
पुव्विल्लेहितो असंखेज्जगुणा त्ति । एत्थ कारणं सुगमं । गुणगारो च आवलियाए  
असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

\* अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७२. एसो वि जीवरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो होदूण पुव्विल्लादो  
असंखेज्जगुणो होइ । कारणं सुगमं ।

\* उनसे जघन्यकषाय उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायसम्बन्धी उपयोग-  
कालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७०. सबसे जघन्य अनुभागोदयस्थान त्रसजीवोंके योग्य जघन्य कषाय-उदयस्थान  
है ऐसी यहाँपर विवक्षाकी गई है । तदनुसार उत्कृष्ट मानोपयोगकालसे सम्बन्ध रखनेवाले  
जघन्य कषायोदयस्थानमें विद्यमान जीवराशि असंख्यगुणी है ऐसा यहाँ सूत्रका अर्थके साथ  
सम्बन्ध करना चाहिए । यह जीवराशि भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, क्योंकि  
एक-एक कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही त्रसराशि होती है, इस  
बातका पहले ही निर्णय कर आये हैं । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट कषायोदयस्थानसे जघन्य  
कषायोदयस्थान सुलभ है, इसलिए पूर्वोक्त राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी हो जाती है ।  
यहाँपर गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* उनसे जघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७१. यहाँपर 'जघन्य कषाय-उदयस्थान' पदकी अनुवृत्ति होती है । इसलिए ऐसा  
सम्बन्ध करना चाहिए । जघन्य कषाय उदयस्थानमें और जघन्य मानोपयोगकालमें युगपत्  
परिणत हुए जीव पिछले जीवोंसे असंख्यातगुणे हैं । यहाँपर कारणका कथन सुगम है ।  
गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७२. यह भी जीवराशि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर पिछली राशिसे  
असंख्यातगुणी है । कारणका कथन सुगम है ।

\* अणुकस्समजहण्णेषु अणुभागट्टाणेषु उक्कस्सियाए माणोवजोगट्टाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७३. पुण्विल्लरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो, एसो वुण असंखेज्जसेट्ठिमेत्तो, अजहण्णाणुकस्सकसायुदयट्टाणेषु णिरुद्धेषु तदुवलंभसंभवादो । तम्हा पुण्विल्लादो असंखेज्जगुणो जादो । गुणगारो वि असंखेज्जाओ सेट्ठीओ ।

\* जहण्णियाए माणोवजोगट्टाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७४. 'अणुकस्समजहण्णेषु अणुभागट्टाणेषु' त्ति पुण्वसुत्तादो अणुवट्टदे । तेणेषो वि रासी असंखेज्जसेट्ठिमेत्तो होदूण पुण्विल्लादो असंखेज्जगुणो जादो, उक्कस्स-माणोवजोगट्टापरिणदजीवेहिंतो जहण्णमाणोवजोगट्टापरिणदजीवाणं सरिसकसायुदयट्टाण-विसयाणं तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो ।

\* अणुकस्समजहण्णासु माणोवजोगट्टासु जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७५. एत्थ वि 'अणुकस्समजहण्णेषु' त्ति अहियारसंबंधो । सेसं सुगमं ।

\* एवं सेसाणं कसायाणं ।

§ १७६. जहा माणकसायस्स णवहिं पदेहिं पयदप्पाबहुअविणिण्णयो कओ तहा कोह-माया-लोभाणं पि कायव्वो, विसेसाभावादो । संपहि एदेणेव परत्थाणप्पा-

\* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७३. पिछली राशि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, किन्तु यह राशि असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है, क्योंकि अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें उनकी उपलब्धि सम्भव है । इसलिए पिछली राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है । गुणकार भी असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है ।

\* उनसे जघन्य मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७४. 'अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें' इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । इसलिए यह राशि भी असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण होकर पिछली राशिसे असंख्यातगुणी बन जाती है, क्योंकि उत्कृष्ट मानोपयोगकालसे युक्त जीवोंसे उक्त जीवोंके समान कषाय-उदयस्थानके विषयभूत ऐसे जघन्य मानोपयोगकालसे युक्त जीवोंके असंख्यातगुणे सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

\* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालोंमें स्थित जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७५. यहाँपर भी 'अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

\* इसी प्रकार शेष कषायोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

§ १७६. जिस प्रकार नौ पदोंके आश्रयसे मानकषायके प्रकृत अल्पबहुत्वका निर्णय किया उसी प्रकार क्रोध, माया और लोभकषायकी अपेक्षा भी करना चाहिए, क्योंकि उससे



बहुअं पि साहेयव्वमिदि पदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

\* एत्तो छत्तीसपदेहिं अप्पाबहुअं कायव्वं ।

§ १७७. एदम्हादो चैव सत्थाणप्पाबहुआदो साहेयूण परत्थाणप्पाबहुअं पि छत्तीसपदेहिं पडिबद्धं कायव्वमिदि वुत्तं होइ । तं जहा—उकस्सए कसायुदयट्टाणे उकस्सियाए माणोवजोगद्धाए उवजुत्तजीवा थोवा । उकस्सए कसायुदयट्टाणे उकस्सियाए कोधोवजोगद्धाए परिणदजीवा विसेसाहिया । एत्थ कारणं माणद्धादो कोधद्धा विसेसाहिया, तेण रासी वि तप्पडिभागो चैव होइ त्ति वत्तव्वं । विसेसो पुण पवाइअंतोव-एसेणावलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागिओ । एवमुवरिमपदेसु वि विसेसाहियपमाण-मणुगंतव्वं । उकस्सए कसायुदयट्टाणे उकस्सियाए मायोवजोगद्धाए परिणदजीवा विसेसाहिया । उकस्सए कसायुदयट्टाणे उकस्सियाए लोहोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उकस्सए कसायुदयट्टाणे जहणियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । उकस्सए कसायुदयट्टाणे जहणियाए कोहोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उकस्सए कसायुदयट्टाणे जहणियाए मायोव-जोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उकस्सए कसायुदयट्टाणे जहणियाए लोभोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उकस्सए कसायुदयट्टाणे अजहणमणुकस्सियासु माणोवजोगद्धासु

इन तीनों कषायोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । अब इसी अल्पबहुत्वके आश्रयसे परस्थान अल्पबहुत्वकी भी सिद्धि कर लेनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अब इससे आगे छत्तीस पदोंके द्वारा अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

§ १७७. इसी स्वस्थानअल्पबहुत्वसे साधकर छत्तीस पदोंसे सम्बन्ध रखनेवाला परस्थान अल्पबहुत्व करना चाहिये, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें उपयुक्त हुए जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । यहाँपर मानके कालसे क्रोधके कालका विशेष अधिक होना इसका कारण है, इसलिए जीवराशि भी उसी प्रतिभागके हिसाबसे अधिक है ऐसा यहाँ कहना चाहिए । किन्तु विशेषका प्रमाण प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना है । इसी प्रकार आगेके पदोंमें भी विशेष अधिकका प्रमाण जान लेना चाहिए । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मायोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट लोभोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य मानोपयोगकालमें स्थित जीव असंख्यातगुण हैं । गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे



उकस्सिया० माणोवजोगद्दा० जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेदीओ । अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उकस्सिया० कोहोवजोगद्दा० जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उकस्सिया० मायोवजोगद्दा० जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उक्क० लोभोव० जीवा विसे० । अजहण्णमणुक्कस्सए० कसायुदयट्ठाणे० जहण्णिया० माणोवजोगद्दा० जीवा असंखेज्जगुणा । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० कोहोवजोगद्दा० जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० मायोवजोगद्दा० जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० लोभोवजोगद्दा० जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु माणोवजोगद्दासु जीवा असंखेज्जगुणा । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु कोहोवजोगद्दासु जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु मायोवजोगद्दासु जीवा विसेसाहिया । अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठाणेसु अजहण्णमणुक्कस्सियासु लोभोवजोगद्दासु जीवा विसेसाहिया । एवमोघेण परस्थानप्पावहुअमेदं परूविदं । एवं चेव तिरिक्खमणुसगदीसु वि वत्तवं, विसेसाभावादो । गिरयगदीसु परस्थानप्पावहुअं चितिय षेदवं । तदो चउत्थीए गाहाए अत्थविहासा समप्पदि त्ति उवसंहारवक्कमाह—

\* एवं चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता ।

गुणकार क्या है ? असंख्यात जगच्छ्रेणिप्रमाण गुणकार है । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य मानोपयोगकालमें जीव असंख्यात-गुणे हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य मानो-पयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायो-पयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं । इस प्रकार ओघसे परस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया । इसी प्रकार तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें भी कहना चाहिए, क्योंकि ओघकथनसे इनके कथनमें कोई भेद नहीं है । नरकगति और देवगतिमें परस्थान अल्पबहुत्वको विचारकर जानना चाहिए । इसके बाद चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त होता है इस आशयके उपसंहार वाक्यको कहते हैं—

\* इस प्रकार चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

§ १७८. सुगममेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । एवमेदं समाणिय संपहि पंचमगाहा-  
सुत्तस्य जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* केवडिगा उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणाकसाएसु चेति एदिस्से  
गाहाए अत्थविहासा ।

§ १७९. सुगममेदं, एदिस्से पंचमीए गाहाए अत्थविहासा एत्तो अहिकीरदि ति  
पदुप्पायणफलदात्तो । णवरि गाहाए पुव्वद्धमिदि सहपरमुच्चारिय तेण देसामासथेण  
सव्विस्से चैव गाहाए सपुव्वपच्छद्दाए परामरसो एत्थ कओ दडुव्वो । एसा च गाहा  
कोहादिकसायोवजुत्ताणं परुवणडुदाए अट्टण्हमणियोगदाराणं सूचणडुमागया । तदो  
सूचनासुत्तमेदमिति पदुप्पायणडुमाइ—

\* एसा गाहा सूचनासुत्तं ।

§ १८०. सुगमं । संपहि किमेदेण सूचिज्जमाणमत्थजादमिच्चासंकाए उत्तरमाइ—

\* एदीए सूचिदाणि अट्ट अणिओगदाराणि ।

§ १८१. एदीए गाहाए कोहादिकसायोवजोगजुत्तजीवाणं परुवणडुदाए अट्ट  
अणियोगदाराणि सूचिदाणि ति भणिदं होइ । संपहि काणि ताणि अट्ट अणिओगदाराणि  
ति आसंकिय पुच्छासुत्तमाइ—

§ १७८. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है । इस प्रकार इसको  
समाप्त कर अब पाँचवीं सूत्रगाथाके अवसरप्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके  
सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'सदृश कषायोपयोगवर्गणाओंमें कितने जीव उपयुक्त हैं' इस गाथाके अर्थका  
विशेष व्याख्यान करते हैं ।

§ १७९. यह वचन सुगम है, क्योंकि इस पाँचवीं गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान  
अधिकार प्राप्त है इस बातका कथन करना इसका फल है । इतनी विशेषता है कि गाथाके  
पूर्वार्धका शब्दपरक उच्चारण करके उससे देशामर्षकभावसे पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सहित  
पूरी गाथाका परामर्श यहाँपर किया गया जानना चाहिए । यह गाथा क्रोधादि कषायोंमें  
उपयुक्त हुए जीवोंका कथन करनेके लिए आठों अनुयोगद्वारोंका सूचन करनेके लिए आई है ।  
इसलिए यह सूचनासूत्र है इस बातका कथन करनेके लिए कहते हैं—

\* यह गाथा सूचनासूत्र है ।

§ १८०. यह वचन सुगम है । अब इसके द्वारा क्या अर्थसमूह सूचित किया जा-  
वाला है इस आशंकाका उत्तर देते हैं—

\* इसके द्वारा आठ अनुयोगद्वार सूचित किये गये हैं ।

§ १८१. क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका कथन करनेके लिए इस गाथा द्वारा  
आठ अनुयोगद्वार सूचित किये गये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब वे आठ अनुयोगद्वार  
कौनसे हैं ऐसी आशंका कर पृच्छासूत्र कहते हैं—

\* तं जहा ।

§ १८२. सुगमं ।

\* संतपरूवणा द्रव्यपमाणं खेत्तपमाणं फोसणं कालो अंतरं भागा-  
भागो अप्पाबहुगं च ।

§ १८३. एवमेदाणि अट्ट अणिओगहारणि एदीए गाहाए सूचिदाणि त्ति वुत्तं  
होइ । संपहि एदस्स गाहासत्तस्स कदमम्मि अवयवे कदममणिओगहारं पडिबद्धमिदि  
एदस्स जाणावणड्डुमुवरिमं पबंधमाह—

\* केवडिगा उवजुत्ता त्ति द्रव्यपमाणाणुगमो ।

§ १८४. एदम्मि गाहापढमावयवे द्रव्यपमाणाणुगमो पडिबद्धो त्ति भणिदं होइ,  
कोहादिकसायेसु उवजुत्ता जीवा केवडिया होति त्ति पुच्छामुहेणेत्य तस्स पडिबद्धत्त-  
दंसप्पादो ।

\* सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु त्ति कालाणुगमो ।

§ १८५. एदम्मि गाहासुत्तविदियावयवे कालाणुगमो णिबद्धो त्ति भणिदं होदि ।  
कथमेत्थ कालाणुगमस्स णिबद्धत्तमिदि चे ? वुच्चदे—सरिसीसु च एगकसायपडिबद्धासु

\* वे जैसे ।

§ १८२. यह वचन सुगम है ।

\* सत्परूवणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और  
अल्पबहुत्व ।

§ १८३. इस प्रकार ये आठ अनुयोगद्वारा इस गाथा द्वारा सूचित किये गये हैं यह  
उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस गाथासूत्रके किस अवयवमें कौनसा अनुयोद्वारा प्रतिबद्ध  
है इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

\* 'कितने जीव उपयुक्त हैं' इस वचन द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम सूचित किया  
गया है ।

§ १८४. गाथाके इस प्रथम पादमें द्रव्यप्रमाणानुगम प्रतिबद्ध है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है, क्योंकि 'क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीव कितने हैं' इस पृच्छा द्वारा यहाँपर  
उक्त गाथावचन प्रतिबद्ध देखा जाता है ।

\* 'सदृश कषायोपयोगवर्गणाओंमें' इस वचन द्वारा कालानुगम सूचित किया  
गया है ।

§ १८५. गाथासूत्रके इस दूसरे पादमें कालानुगम निबद्ध है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

शंका—इसमें कालानुगमका निबद्धपना कैसे है ?

समाधान—'सरिसीसु च' अर्थात् एक कषायसे सम्बन्ध रखनेवाली 'वग्गणाकसाएसु'

वर्गणाकसायेसु कसायोवजोगवर्गणासु केवचिरसुवजुत्ता ह्येति ति सुत्तत्थावलंबणादो कालानुगमस्स पडिबद्धत्तमेत्थ दट्टुव्वं ।

\* 'केवडिगा च कसाए' ति भागाभागो ।

§ १८६. एदम्मि तदियावयवे भागाभागानुगमो णिवद्धो ति गहेयव्वो, कम्मि कसाये कसायोवजुत्तसव्वजीवाणं केवडिया भागा उवजुत्ता ह्येति ति षदसंबंधावलंबणादो ।

\* 'के के च विसिस्सदे केणे' ति अप्पाबहुत्तं ।

§ १८७. एदम्मि गाहासुत्तचरिमावयवे अप्पाबहुत्तानुगमो णिवद्धो, के कसायोवजुत्ता जीवा कत्तो कसायोवजुत्तजीवरासीदो केत्तियमेत्तेण विसिस्सदे अहिया ह्येति ति षदसंबंधं कादूण सुत्तत्थावलंबणादो ।

\* एवमेदाणि चत्तारि अणिओगदाराणि सुत्तणिबद्धाणि ।

§ १८८. कुदो ? चदुण्हमेदेसिं णामणिदेसं कादूणेदम्मि गाहासुत्ते णिदिट्ठत्तादो ।

\* सेसाणि सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

§ १८९. सेसाणि पुण संतपरूवणादीणि चत्तारि अणिओगदाराणि सूचणाणुमाणेणेत्थ गहेयव्वाणि, सुत्तणिदिट्ठणं चउण्हमणियोगदाराणं देसामासयभावेणावट्ठणदंसणादो ति भणिदं होइ । तम्हा एदाणि अट्ठ अणिओगदाराणि एदीए गाहाए सूचिदाणि

अर्थात् कषायोपयोगवर्गणाओंमें जीव कितने काल तक उपयुक्त होते हैं इस प्रकार सूत्रके अर्थका अवलम्बन करनेसे प्रकृतमें कालानुगम प्रतिबद्ध है ऐसा जानना चाहिए ।

\* 'किस कषायमें कौन कितनेवाँ भाग उपयुक्त है' इस वचन द्वारा भागाभागानुगम सूचित किया गया है ।

§ १८६. गाथाके इस तृतीय पादमें भागाभागानुगम निबद्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि किस कषायमें कषायसे उपयुक्त हुए सब जीवोंके कितनेवाँ भाग जीव उपयुक्त होते हैं इस प्रकार पदके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है ।

\* 'कौन-कौन कषायवाले जीव किस कषायवाले जीवोंसे अधिक होते हैं' इस वचन द्वारा अल्पबहुत्व सूचित किया गया है ।

§ १८७. गाथासूत्रके इस अन्तिम पादमें अल्पबहुत्वानुगम निबद्ध है, क्योंकि कषायसे उपयुक्त हुए कौन जीव कषायसे उपयुक्त हुई किस जीवराशिसे कितने 'विसिस्सदे' अर्थात् अधिक होते हैं इस प्रकार पद सम्बन्ध करके सूत्रके अर्थका अवलम्बन लिया गया है ।

\* इस प्रकार ये चार अनुयोगद्वार सूत्रनिबद्ध हैं ।

§ १८८. क्योंकि इन चारका नामनिर्देश करके ये इस गाथासूत्रमें निर्दिष्ट किये गये हैं ।

\* शेष अनुयोगद्वार सूचनावश अनुमानद्वारा ग्रहण कर लेने चाहिए ।

§ १८९. किन्तु शेष सत्परूवणा आदि चार अनुयोगद्वार सूचनावश अनुमानद्वारा यहाँपर ग्रहण कर लेने चाहिए, क्योंकि सूत्रमें निर्दिष्ट किये गये चार अनुयोगद्वारोंका देशा-मर्षकभावसे अवस्थान देखा जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसलिए ये आठ अनु-

त्ति सिद्धं । संपहि एदेहिं अट्टहिं अणिओगहारेहिं कसायोवजुत्ताणं मग्गणट्टदाए तत्थ इमाणि मग्गणट्टाणाणि होति त्ति जाणावणट्टमिदमाह—

\* कसायोवजुत्ते अट्टहिं अणिओगहारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-दंसण-लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण ।

§ १९० एदेसु गदियादितेरसमग्गणट्टाणेसु कसायोवजुत्ता जीवा अणंतरणिदिट्टेहिं अट्टहिं अणिओगहारेहिं अणुगंतव्वा त्ति वुत्तं होइ । साम्प्रतं यथोक्तेषु मार्गणास्थानेषु यथोक्तरनुयोगद्वारैः सदादिभिर्विशेषितान् कषायोपयुक्तानन्वेषयिष्यामः । तद्यथा—तत्थ संतपरूवणाए दुविहो णिदेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण अत्थि कोह-माण-माया-लोभोवजुत्ता जीवा । एवं सव्वमग्गणासु णेदव्वं ।

§ १९१. दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण कोह-माण-माया-लोभोवजुत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खा० । आदेसेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेवा त्ति । णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-सव्वट्ट-देवा चट्टकसायोवजुत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

योगद्वार इस गाथाद्वारा सूचित किये गये हैं यह सिद्ध हुआ । अब इन आठ अनुयोगद्वारोंके अवलम्बनसे कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अनुसन्धान करनेपर वहाँ ये मार्गणास्थान होते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए कहते हैं—

\* कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका आठ अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार इन तेरह अनुगमोंमें मार्गण करके ।

§ १९०. इन गति आदि तेरह मार्गणास्थानोंमें कषायोंसे उपयुक्त हुए जीव अनन्तर पूर्व कहे गये आठ अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब यथोक्त मार्गणास्थानोंमें सत् आदि यथोक्त अनुयोगद्वारोंसे विशेषताको प्राप्त हुए कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अन्वेषण करते हैं । यथा—उनमेंसे सत्परूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे क्रोध, मान, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त जीव हैं । इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें कथन करना चाहिए ।

§ १९१. द्रव्यप्रमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे क्रोध, मान, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च जीव जानने चाहिये । आदेशसे नरकगतिमें नारकी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देव जानने चाहिए । इतनी विशेषता है कि चारों कषायोंमें उपयुक्त हुए मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने

खेत्त-पोसणं जाणियूण पेदव्वं ।

§ १९२. कालानुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण क्रोधादिकसायोवजुत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं गदियादिसव्वमग्गणासु पेयव्वं ।

§ १९३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण क्रोधादिकसायोवजुत्ताणं णाणाजीवे पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं गदियादिसु पेदव्वं ।

§ १९४. भागाभागानुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण क्रोहोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? चदुब्भागो देसूणो । एवं माण-मायोवजुत्ताणं पि वत्तव्वं । लोभोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? चदुब्भागो सादिरेओ । एवं तिरिक्ख-मणुस्सेसु । आदेसेण णेरइया क्रोहोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? सखेज्जा भागा । सेसं संखेज्जादिभागो । एवं सव्वणेरइय० । देवगदीए लोभोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । मायादिकसायोवजुत्ता जीवा संखेज्जादिभागो । एवं पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । क्षेत्र और स्पर्शनका जानकर कथन करना चाहिए ।

§ १९२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार गति आदि सब मार्गणाओंमें जानना चाहिए ।

§ १९३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार गति आदि मार्गणाओंमें जानना चाहिए ।

§ १९४. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधमें उपयुक्त हुए जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? कुछ कम चतुर्थ भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मान और माया कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका भी कथन करना चाहिए । लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? साधिक चतुर्थ भाग-प्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च और मनुष्योंमें जान लेना चाहिए । आदेशसे क्रोध कषायमें उपयुक्त हुए नारकी जीव सब नारकी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष कषायोंमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए । देवगतिमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव सब देव जीवोंके कितने भाग-प्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । माया आदि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।



§ १९५. अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण सव्वत्थोवा माणकसायोवजुत्ता जीवा । कोहकसायोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया । मायकसायोवजुत्ता विसेसाहिया । लोभकसायोवजुत्ता विसेसाहिया । एवं तिरिक्ख-मणुस्सेसु । णिरयगदीए सव्वत्थोवा लोभोवजुत्ता जीवा । मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा । माणोवजुत्ता जीवा संखेज्जगुणा । कोहोवजुत्ता संखेज्जगुणा । एवं देवगदीए वि । णवरि कोहादी वत्तव्वं । एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं । एवमेदेसु तेरससु अणुगमेसु संतपरूवणादीहिं कसायोवजुत्ताणं मग्गणं कादूण तदो किं कायव्वमिदि आसंकाए इदमाह—

\* महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा ।

§ १९६. चदुगदिसमासप्पाबहुअविसओ दंडओ महादंडओ त्ति एत्थ विवक्खिओ, एगोगदिपडिबद्धदंडोहिंतो एदस्स बहुविसयत्तेण तहाभावोवत्तीदो । सो च महादंडओ एवमणुगंतव्वो—

§ १९७. सव्वत्थोवा मणुसगदीए माणोवजुत्ता जीवा । कोहोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया । मायोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया । लोभोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया । णिरयगदीए लोभोवजुत्ता० असंखेज्जगुणा । मायोव० संखेज्जगुणा । माणोव०

§ १९५. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे माया कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे लोभ कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें जानना चाहिए । नरकगतिमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार देवगतिमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायको आदि कर कथन करना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इस प्रकार इन तेरह अनुगमोंमें सत्परूपणा आदिके द्वारा कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अनुसन्धान करनेके बाद क्या करना चाहिए ऐसी आशंका होनेपर यह कहते हैं—

\* और महादण्डक करके पाँचवीं गाथा समाप्त हुई ।

§ १९६. चारों गतियोंके समुदायरूप अल्पबहुत्वको विषय करनेवाले दण्डकको महा-दण्डक कहते हैं यह प्रकृतमें विवक्षित है, क्योंकि एक-एक गतिसे सम्बन्ध रखनेवाले दण्डकसे यह बहुतकी विषय करनेवाला होनेसे इसे महादण्डकपना बन जाता है । और वह महादण्डक इस प्रकार जानना चाहिए—

§ १९७. मनुष्यगतिमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे क्रोध-कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे नरकगतिमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव

संखेज्जगुणा । कोहोव० संखेज्जगुणा । देवगदीए कोहोवजुत्ता असंखेज्जगुणा । माणोव-  
जुत्ता संखेज्जगुणा । मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा । लोभोवजुत्ता संखेज्जगुणा । तिरिक्ख-  
गदीए माणोवजुत्ता अणंतगुणा । कोहोव० विसेसाहिया । मायो० विसेसाहिया ।  
लोभोवजुत्ता विसेसाहिया । एवमेसो गहमग्गणाविसओ एगो महादंडओ ।  
एवमिदियमग्गणाए वि पंचण्हमिदियाणं समासेण चदुकसायोवजुत्ताणमप्पावहुए  
कीरमाणे विदिओ महादंडगो होइ । पुणो एदेणेव विहिणा कसायमग्गणं मोत्तूण  
सेससच्चमग्गणासु पादेकमेगेगमहादंडओ जाणिय णेयव्वो । एवं णीदे पंचमी गाहा  
समत्ता भवदि ।

\* 'जे जे जमिह कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते' त्ति एदिस्से  
छट्टीए गाहाए कालजोणी कायव्वा ।

§ १९८. एदेण गाहापुव्वद्धमिदि सहपरमुच्चारिय पच्छद्धस्स वि देसा-  
मासयण्णाएण बुद्धीए परामरसं कादूण तदो एदिस्से छट्टीए गाहाए अत्थविहासणदं  
कालजोणी कायव्वा त्ति णिहिदं । कालो चैव जोणी आसयो पयदपरूवणाए कायव्वो  
त्ति वुत्तं होइ । कुदो एवं ? एदिस्से गाहाए वट्टमाणसमय-माणादिकसायोवजुत्ताण-

संख्यातगुणे हैं । उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे क्रोधकषायमें  
उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे देवगतिमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव असंख्यात-  
गुणे हैं । उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे मायाकषायमें उपयुक्त  
हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे  
तिर्यञ्चगतिमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए  
जीव विशेष अधिक हैं । उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे  
लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । इस प्रकार यह गतिमार्गणाविषयक एक  
महादण्डक है । इसी प्रकार इन्द्रियमार्गणामें भी पाँच इन्द्रियोंके समुदायके साथ चार कषायोंमें  
उपयुक्त हुए जीवोंका अल्पबहुत्व करनेपर दूसरा महादण्डक होता है । पुनः इसी विधिसे  
कषायमार्गणाको छोड़कर शेष सब मार्गणार्थोंमेंसे प्रत्येकके आश्रयसे एक-एक महादण्डकको  
जानकर ले जाना चाहिए । इस प्रकार ले जाने पर पाँचवीं गाथा समाप्त होती है ।

\* 'जो जो जीव वर्तमान समयमें जिस कषायमें उपयुक्त हैं क्या वे अतीत  
कालमें उसी कषायमें उपयुक्त थे' इस छठी गाथाकी कालके आश्रयसे प्ररूपणा करनी  
चाहिए ।

§ १९८. इस द्वारा गाथाके पूर्वार्धका उल्लेखपूर्वक उच्चारण करके तथा इसके  
उत्तरार्धका भी देशामर्षक न्यायसे बुद्धिद्वारा परामर्श करके अनन्तर इस छठी गाथाके अर्थका  
विशेष व्याख्यान करनेके लिए कालयोनि करना चाहिए । प्रकृत-प्ररूपणामें काल ही योनि  
अर्थात् आश्रय करने योग्य है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

मदीदाणागदकालेसु माण-णोमाण-मिस्सादिकालवियप्पडिबद्धपमाणपरूवणाए णिवद्धत्तादो । कथमेदं णव्वदे ? जे जे जीवा जग्घि कसाए वट्टमाणसमए उवजुत्ता ते तप्पमाणा चेव होदूण किण्णु भूदपुच्चा किं माणोवजुत्ता चेव होदूण माणकालेण परिणदा आहो माणवदिरित्तसेसकसायोवजुत्ता होदूण णोमाणकालपरिणदा, किं वा माण-णोमाणेहिं जहापविभागमक्कमोवजुत्ता होदूण मिस्सयकालेण परिणदा त्ति एवमादि-पुच्छाहिसंबंधेण सुत्तत्थवक्खाणावलंबणादो । एत्थ गाहापुव्वद्वम्मि अदीदकालविसयो पुच्छाणिदेसो पडिबद्धो । 'होहिंति च उवजुत्ता' त्ति एदम्मि वि पच्छद्वावयवे अणागय-कालविसयो पुच्छाणिदेसो णिवद्धो । एवमोषेण पुच्छाणिदेसं कादूण तदो आदेस-परूवणाए वि किंचि वीजपदमुवइड्डं 'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' त्ति । तदो एदिस्से छट्ठीए गाहाए कालजोणिया परूवणा कायव्वा त्ति सिद्धं ।

**समाधान—**क्योंकि इस गाथामें वर्तमान समयमें मानादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंकी अतीत और अनागत कालमें मान, नोमान और मिश्र आदि कालके भेदोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रमाणकी प्ररूपणा निबद्ध है ।

**शंका—**यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान—**क्योंकि जो जो जीव वर्तमान समयमें जिस कषायमें उपयुक्त हैं वे सबके सब क्या भूतपूर्व अर्थात् अतीत कालमें भी मानकषायमें ही उपयुक्त होकर क्या मानकालसे परिणत थे या मानव्यतिरिक्त शेष कषायोंमें उपयुक्त होकर नोमानकालसे परिणत थे अथवा क्या यथाविभाग मान और नोमानरूपसे युगपत् उपयुक्त होकर मिश्रकालसे परिणत थे इत्यादि पृच्छाके सम्बन्धसे सूत्रार्थके व्याख्यानका अवलम्बन लिया है, इससे जाना जाता है कि इस गाथामें उक्त प्ररूपणा निबद्ध है ।

यहाँ गाथाके पूर्वार्धमें अतीतकालविषयक पृच्छाका निर्देश किया गया है तथा गाथाके उत्तरार्धके 'होहिंति च उवजुत्ता' इस पादमें भी अनागत कालविषयक पृच्छाका निर्देश किया गया है । इस प्रकार ओषसे पृच्छाका निर्देश करके तदनन्तर आदेशप्ररूपणासम्बन्धी भी 'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' इस चरणद्वारा संक्षेपमें बीजपदका निर्देश किया गया है । इसलिए इस छठी गाथाकी कालके आश्रयसे प्ररूपणा करनी चाहिए यह सिद्ध हुआ ।

**विशेषार्थ—**कषायके चार भेदोंमेंसे वर्तमान समयमें जो जीव जिस कषायसे उपयुक्त हैं वे अतीत कालमें क्या उसी कषायसे उपयुक्त थे या भविष्य कालमें उसी कषायसे उपयुक्त रहेंगे ऐसी पृच्छा होनेपर मानकषायकी अपेक्षा इसका उत्तर तीन प्रकारसे होगा । प्रथम उत्तर होगा कि वे सब जीव अतीत कालमें भी मानकषायसे उपयुक्त थे या मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे । दूसरा उत्तर होगा कि वे सब जीव अतीत कालमें क्रोध, माया और लोभ कषायसे उपयुक्त थे या क्रोध, माया और लोभकषायसे उपयुक्त रहेंगे । तथा तीसरा उत्तर होगा कि उन जीवोंमेंसे कुछ तो क्रोध, माया और लोभकषायसे उपयुक्त थे और कुछ जीव मानकषायसे उपयुक्त थे या कुछ जीव तो क्रोध, माया और लोभ कषायसे उपयुक्त रहेंगे और कुछ जीव मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे । उक्त पृच्छाके ये तीन उत्तर हैं । अतएव इस हिसाबसे काल भी तीन भागोंमें विभक्त हो जाता है—प्रथम उत्तरके अनुसार मानकाल, दूसरे उत्तरके अनुसार

§ १९९. संपदि पयदपरूवणाए अवसरकरणडं पुच्छावकमाह—

\* तं जहा ।

§ २००. सुगमं ।

\* जे अस्सिं समए माणोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णोमाणकालो मिससयकालो इदि एवं तिविहो कालो ।

§ २०१. जे जीवा एदम्मि वड्डमाणसमये माणोवजुत्ता अणंता होदूण दीसंति तेसिं तीदे काले तिविहो कालो बोलीणो—माणकालो णोमाणकालो मिससयकालो चेदि । तत्थ जम्मि कालविसेसे एसो आदिट्ठो वड्डमाणसमयमाणोवजुत्ता जीवरासी अणूणाहिओ होदूण माणोवजोगेणेव परिणदो लब्भइ सो माणकालो त्ति भण्णइ । एसो चेव णिरुद्धजीवरासी जम्मि कालविसेसे एगो वि माणो अहोदूण क्रोह-माया-लोभेसु चेव जहापविभागं परिणदो सो णोमाणकालो त्ति भण्णदे माणवदिरित्तसेसकसायाणं

नोमानकाल और तीसरे उत्तरके अनुसार मिश्रकाल ये उनकी संज्ञायें हैं । जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं वे सबके सब यदि अतीत कालमें मानकषायसे उपयुक्त थे भविष्यकालमें मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी मानकाल संज्ञा है । इसी प्रकार जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं वे सबके सब अतीतकालमें यदि मानके सिवाय अन्य कषायसे उपयुक्त थे या अन्य कषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी नोमानकाल संज्ञा है । तथा इसी प्रकार जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं उनमेंसे कुछ तो अतीत कालमें मानके सिवाय अन्य कषायसे उपयुक्त थे और कुछ मानकषायसे उपयुक्त थे या कुछ अन्य कषायसे उपयुक्त रहेंगे और कुछ मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी मिश्रकाल संज्ञा है । यह मानकषायको विवक्षित कर कालके भेदोंका निरूपण है । इसी प्रकार अन्य कषायोंको विवक्षित कर आगमानुसार कालके भेदोंका निरूपण कर लेना चाहिए । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब जो कषाय विवक्षित हो तब उसके अनुसार कालके भेदोंकी संज्ञा हो जाती है । जैसे क्रोधकाल, नोकोधकाल और मिश्रकाल आदि ।

§ १९९. अब प्रकृत परूपणाका अवसर करनेके लिए पृच्छावाक्यको कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ २००. यह सूत्र सुगम है ।

\* जो जीव इस समय मानकषायसे उपयुक्त हैं उनका अतीत कालमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल इस प्रकार तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है ।

§ २०१. जो इस अर्थात् वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त अनन्त जीव दिखलाई देते हैं उनका अतीतकालमें तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है—मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल । उनमेंसे जिस कालविशेषमें यह विवक्षित वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि न्यूनधिक हुए बिना मानोपयोगसे ही परिणत होकर प्राप्त होती है उसे मानकाल कहते हैं । तथा यही विवक्षित जीवराशि जिस कालविशेषमें एक भी मानरूप न होकर यथा-विभाग क्रोध, माया और लोभरूपसे ही परिणत हुई उस कालविशेषको नोमानकाल कहते हैं, क्योंकि मानके सिवाय शेष कषायें नोमान संज्ञाके योग्य हैं इस विवक्षाका यहाँ अवलम्बन लिया गया

णोमाणववएसारिहंतेणावलंबणादो । पुणो इमो चैव गिरुद्धजीवरासी जम्मि काले थोवो माणोवजुत्तो थोवो च कोह-माया-लोभेसु जहासंभवमुवजुत्तो होदूण परिणदो दिट्ठो सो मिस्सयकालो णाम । तम्हा माणोवजुत्ताणमेसो सत्थाणविसयो तिविहो कालो सम-दिक्कंतो त्ति सम्ममवहारिदं । ण केवलमेसो तिविहो चैव कालपरिवत्तो विवक्खिय-जीवाणं, किंतु अण्णो वि कालपरिवत्तो परत्थाणविसयो समइक्कतो त्ति पदुप्पायणडु-मुत्तरसुत्तमोइण्णं—

\* कोहे च तिविहो कालो ।

§ २०२. तस्सेव वट्टमाणसमयमाणोवजुत्तजीवरासिस्स कोहे वि तिविहो कालो अइक्कंतो त्ति वुत्तं होइ । तं जहा—कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो चेदि । तत्थ जम्मि समये सो चैव वट्टमाणसमयमाणोवजुत्तजीवरासी कसायंतरपरिहारेण कोहकसाएणेव परिणदो होदूणच्छिदो सो माणोवजुत्ताणं कोहकालो त्ति भण्णदे । पुणो एसो चैव जीवरासी जम्मि कालविसेसे कोह-माणेसु एक्केण वि जीवेणाहोदूण माया-लोभेसु चैव परिणदो सो माणोवजुत्ताणं णोकोहकालो त्ति विण्णायदे । पुणो माणे एगो वि जीवो अहोदूण थोवो कोहोवजुत्तो थोवो च माया-लोभोवजुत्तो होदूण जम्मि काले परिणदो सो माणोवजुत्ताणं कोहमिस्सयकालो त्ति भण्णदे । अहवा णोकोह-मिस्सयकालेसु माणेण वि परिणामिदे ण दोसो, तेण वि परिणदस्स णोकोह-

है । तथा यही विवक्षित जीवराशि जिस कालमें कुछ मानमें उपयुक्त होकर और कुछ क्रोध, माया और लोभमें यथासम्भव उपयुक्त होकर परिणत दिखाई दी उसकी मिश्रकाल संज्ञा है । इसलिए मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका स्वस्थानविषयक यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह सम्यक् प्रकारसे निश्चित किया । विवक्षित जीवोंका तीन प्रकारका केवल यही कालपरिवर्तन नहीं है किन्तु परस्थानविषयक अन्य भी कालपरिवर्तन व्यतीत हुआ है इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

\* क्रोधकषायमें तीन प्रकारका काल होता है ।

§ २०२. वर्तमान समयमें मानमें उपयुक्त हुई उसी जीवराशिका क्रोधकषायमें भी तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—क्रोधकाल नोक्रोधकाल और मिश्रकाल । उनमेंसे वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुई वही जीवराशि जिस समयमें अन्य कषायोंका परिहार कर क्रोधकषायरूपसे परिणत होकर रही, वह मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवों का क्रोधकाल कहा जाता है । पुनः यही जीवराशि जिस कालविशेषमें एक भी जीव क्रोध और मानरूप न होकर माया और लोभ रूपसे ही परिणत हुई, वह मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोक्रोधकाल जाना जाता है । पुनः एक भी जीव मानरूप न होकर थोड़ेसे जीव क्रोधकषायमें उपयुक्त होकर और थोड़ेसे जीव माया और लोभकषायमें उपयुक्त होकर जिस कालमें परिणत हुए, वह मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकी अपेक्षा मिश्रकाल कहा जाता है । अथवा नोक्रोधकाल और मिश्रकाल इनमें मानकषायरूपसे भी परिणमावे, दोष नहीं है, क्योंकि

मिस्सत्तसंभवे विरोहाभावादो । एवमेसो वट्टमाणसमयम्मि माणोवजुत्ताणं कोहावेक्खाए वि तिविहो कालो बोलीणो त्ति सिद्धं । संपहि माया-लोभेसु वि एसो चैव कमो त्ति पदुप्पायणट्टमाह—

\* मायाए तिविहो कालो ।

§ २०३. माय-णोमाय-मिस्सयभेदेण तत्थ वि तिविहकालसिद्धीए णिप्पडिबंध-मुबलंभादो ।

\* लोभे तिविहो कालो ।

§ २०४. लोभ-णोलोभ-मिस्सयभेदेण तत्थ वि तिविहकालसिद्धीए पडिबंधाणुवलंभादो । एदेसिं च कालाणं कोहभंगेणेव जोजणा कायच्चा । एवमेसो कालविभागो वट्टमाणसमयम्मि माणोवजुत्ताणमेक्केक्कम्मि कसाए पादेक्कं तिविहो होदूण बारस-विहो होदि त्ति वेत्तच्चं । एदस्सेवत्थस्सोवसंहारवक्कमुत्तरं—

\* एवमेसो कालो माणोवजुत्ताणं बारसविहो ।

§ २०५. सुगममेदं ।

मानकषायरूपसे परिणत हुए जीवके नोक्रोध और मिश्रपना सम्भव है, इसमें कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार वर्तमान समयमें मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकी अपेक्षा भी यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह सिद्ध हुआ । अब माया और लोभमें भी यही क्रम है यह कथन करनेके लिए कहते हैं—

\* मायाकषायमें तीन प्रकारका काल होता है ।

§ २०३. क्योंकि माया, नोमाया और मिश्रके भेदसे मायाकषायमें भी तीन प्रकारके कालकी सिद्धि बिना बाधाके उपलब्ध होती है ।

\* लोभकषायमें तीन प्रकारका काल है ।

§ २०४. लोभ, नोलोभ और मिश्रके भेदसे लोभकषायमें भी तीन प्रकारके कालकी सिद्धि बिना बाधाके उपलब्ध होती है । इन कालोंकी क्रोधकालके भंगके समान योजना करनी चाहिए । इस प्रकार यह कालविभाग वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका एक-एक कषायमें प्रत्येकके तीन भेद होकर बारह प्रकारका होता है ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए । अब इसी अर्थके उपसंहाररूप आगेके वाक्यको कहते हैं—

\* इस प्रकार मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका यह बारह प्रकारका काल है ।

§ २०५. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—पहले वर्तमानमें मानकषाय परिणत जीवोंके स्वस्थानकी अपेक्षा मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल ऐसे तीन भेद बतला आये हैं । यहाँ परस्थानकी अपेक्षा भेदोंका निरूपण करते हुए नौ भेद बतलाये गये हैं । खुलासा इस प्रकार है—

§ २०६. संपहि वट्टमाणसमयकोहोवजुत्ताणं कदिविधो कालो होदि त्ति आसंकाए णिण्णयकरणट्टमाह—

\* अस्सिं समये कोहोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णत्थि, णोमाणकालो भिस्सयकालो य ।

§ २०७. कुदो ताव माणकालो णत्थि त्ति पुच्छिदे वुच्चदे—कोहरासी बहुओ, माणोवजुत्तजीवरासी थोवो होइ, अट्टाविसेसमस्सियूण माणरासीदो कोहरासिस्स विसेसाहियत्तदंसणादो । तदो वट्टमाणसमये कोहोवजुत्तो होदूण ट्टिदरासी अदीद-कालम्मि एककसमएण सव्वो चेव माणोवजुत्तो होदूणावट्टाणं ण लहइ, तत्तो विसेस-

नानाजीव	वर्तमानमें	अतीतकालमें	कालसंज्ञा	अपेक्षा
"	मानपरिणत	मानपरिणत	मानकाल	स्वस्थानकी अ०
"	"	क्रो०, माया, या लो० प०	नोमानकाल	"
"	"	कुछ मान परिणत कुछ अन्य कषाय परिणत	मिश्रकाल	"
"	"	क्रोध परिणत	क्रोधकाल	परस्थानकी अ०
"	"	मान, माया या लोभ प०	नोक्रोधकाल	परस्थानकी अ०
"	"	कुछ क्रोधप०, कुछ अन्य कषाय परिणत	मिश्रकाल	"
"	"	मायापरिणत	मायाकाल	"
"	"	क्रोध०, मान या लोभ प०	नोमायाकाल	"
"	"	कुछ मायाप०, कुछ अन्य कषाय परिणत	मिश्रकाल	"
"	"	लोभपरिणत	लोभकाल	"
"	"	क्रो०, मान या मायाप०	नोलोभकाल	"
"	"	कुछ लोभप०, कुछ अन्य कषाय परिणत	मिश्रकाल	"

§ २०६. अब वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त हुए जीवोंका कितने प्रकारका काल होता है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिए कहते हैं—

\* इस समयमें जो जीव क्रोधकषायमें उपयुक्त हैं उनका अतीत कालमें मान-काल नहीं है, नोमानकाल और मिश्रकाल है ।

§ २०७. सर्व प्रथम मानकाल किस कारणसे नहीं है ऐसी पृच्छा होनेपर कहते हैं— क्रोधकषाय परिणत जीवराशि बहुत है और मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि अल्प है, क्योंकि क्रोधकषायपरिणत जीवराशिका काल अधिक है, इसलिए मानराशिसे क्रोधराशि विशेष अधिक देखी जाती है। अतः वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त होकर स्थित हुई जीवराशि अतीतकालमें एक समयके द्वारा सबकी सब मानमें उपयुक्त होकर अवस्थानको

हीणस्सेव जीवरासिस्स तन्भावेण परिणमणदंसणादो । ण च तद्वा परिणममाणयस्स तस्स माणकालसंभवो अत्थि, माणकसाये चैव सन्वोवसंहारेण तदवट्ठणाणुलंभादो । तम्हा एत्थ माणकालो णत्थि त्ति भणिदं । णोमाणकालो मिस्सयकालो य अत्थि । कि कारणं ? णिरुद्धसन्वजीवरासिस्स माणवदिरित्तसेसकसाएसु चैवावट्ठाणे णोमाणकालो होइ, माणेदरकसाएसु जहापविभागमवट्ठाणे मिस्सकालो होदि त्ति एवंविहसंभवस्स परिण्णुडमुवलंभादो ।

\* अवसेसाणं णवविहो कालो ।

§ २०८. तेसिं चैव वट्ठमाणसमयकोहोवजुत्तजीवाणं माणवदिरित्तसेसकसाएसु पादेकं तिविहकालसंभवोदो तत्थ णवविहो कालो समुप्पज्जइ त्ति वुत्तं होइ । कुदो एवं ? वट्ठमाणसमए कोहोवजुत्तसन्वजीवरासिस्स अदीदकालम्मि एगसमएण सन्वप्पणा

प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि उससे विशेष हीन जीवराशिका ही मानभावसे परिणमन देखा जाता है और इस प्रकार परिणमन करनेवाली उस जीवराशिका मानकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि समस्त राशिका उपसंहार होकर मानकषायमें ही उसका अवस्थान नहीं पाया जाता । इसलिए यहाँ मानकाल नहीं है यह कहा है । नोमानकाल और मिश्रकाल है, क्योंकि विवक्षित समस्त जीवराशिका मानकषायके सिवाय शेष कषायोंमें ही अवस्थान होनेपर नोमानकाल होता है तथा मानकषाय और अन्य कषायोंमें यथाविभाग अवस्थान होनेपर मिश्रकाल होता है, क्योंकि इस प्रकारका सम्भव स्पष्टरूपसे बन जाता है ।

विशेषार्थ—वर्तमानमें जितनी जीवराशि क्रोधभावसे परिणत है उतनी सबकी सब जीवराशि अतीतकालमें एक साथ मानभावसे परिणत नहीं हो सकती, क्योंकि क्रोधकषायके कालसे मानकषायका काल अल्प है, इसलिये अपने कालके भीतर जितनी अधिक क्रोधराशिका संचय होता है, मानकालके भीतर उतनी अधिक मानराशिका संचय होना संभव नहीं है । स्पष्ट है कि वर्तमानमें जो जीव क्रोधभावसे परिणत हैं उन सबका अतीतकालमें केवल मानभावसे परिणत होना सम्भव नहीं है, इसलिए परस्थानकी अपेक्षा यहाँ मानकालका निषेध किया है । परस्थानकी अपेक्षा इन जीवोंका नोमानकाल और मिश्रकाल बन जाता है, क्योंकि यह सम्भव है कि जो वर्तमानमें क्रोधभावसे परिणत हैं वे अतीतकालमें मानकषायसे परिणत न होकर अन्य कषायरूपसे परिणत रहे हैं, इसलिए तो नोमानकाल बन जाता है और जो वर्तमानमें क्रोधभावसे परिणत हैं वे अतीत कालमें कुछ तो मानभावसे परिणत रहे हैं और कुछ अन्य कषायरूपसे परिणत रहे हैं, इसलिए मिश्रकाल भी बन जाता है ।

\* अवशेष कषायोंकी अपेक्षा नौ प्रकारका काल होता है ।

§ २०८. क्योंकि वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए उन्हीं जीवोंका मानकषायके सिवाय शेष कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायकी अपेक्षा तीन प्रकारका काल सम्भव होनेसे वहाँ नौ प्रकारका काल उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई सब जीवराशिका



कोह-माया-लोभेसु परिणमणसंभवे विरोहाणुवलंभादो । सुगममण्णं । एवमेसो णवविहो कालो, पुव्वुत्तो दुविहो माणकालो, एवमेदे वेत्तूण वड्डमाण-समयकोहोवजुत्तजीवरासिस्स एकारसविहो कालो होदि त्ति पयदत्थोवसंहारवक्कमुत्तरं—

\* एवं कोहोवजुत्ताणमेकारसविहो कालो विदिक्कंतो ।

§ २०९. सुगमं । संपहि वड्डमाणसमयमायोवजुत्ताणमदीदकालमस्सियूण कद-विधो कालो संभवदि त्ति पुच्छाए णिच्छयकरणड्डुवरिमो पवंधो—

जे अस्सिं समए मायोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो, कोहकालो दुविहो, मायाकालो तिविहो, लोभकालो तिविहो ।

§ २१०. कुदो ताव कोह-माणकालाणमेत्थ दुविहत्तणियमो ? वड्डमाणसमय-मायोवजुत्तजीवरासिस्स कोह-माणजीवरासीहिंतो अट्टामाहप्पेण विसेसाहियत्तदंसणादो । तम्हा णिरुद्धजीवरासिस्स माणकालो कोहकालो च णत्थि । णोमोह-णोकोह-मिस्स-कालाणं चेव तत्थ संभवो त्ति सिद्धं । माया-लोभकसाएसु पुण तिविहकालसंभवो ण विरुज्झदे, णिरुद्धजीवरासिस्स तत्थ सव्वप्पणा उवसंहारसंभवादो । तम्हा एत्थ सव्व-

अतीतकालमें एक साथ पूरी तरहसे क्रोध, माया और लोभरूपसे परिणमन सम्भव है, इसमें कोई विरोध नहीं आता । शेष कथन सुगम है । इस प्रकार यह नौ प्रकारका काल तथा पूर्वोक्त दो प्रकारका मानकाल इस प्रकार इनको ग्रहणकर वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त हुई जीवराशिका ग्यारह प्रकारका काल होता है । इस प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाले आगेके सूत्रवचनको कहते हैं—

\* इस प्रकार क्रोधकषायमें उपयुक्त जीवोंका ग्यारह प्रकारका काल व्यतीत हुआ ।

§ २०९. यह सूत्रवचन सुगम है । अब वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका अतीतकालकी अपेक्षा कितने प्रकारका काल सम्भव है ऐसी पृच्छा होनेपर निश्चय करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध कहते हैं—

\* जो वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हैं उनके अतीतकालमें मानकाल दो प्रकारका, क्रोधकाल दो प्रकारका, मायाकाल तीन प्रकारका और लोभकाल तीन प्रकारका होता है ।

§ २१०. शंका—यहाँ क्रोधकाल और मानकालके द्विविधपनेका नियम किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिका कालके माहात्म्यवश क्रोध और मानभावसे परिणत हुई जीवराशिकी अपेक्षा विशेष अधिकपना देखा जाता है, इसलिए विवक्षित जीवराशिका मानकाल और क्रोधकाल नहीं है । वहाँ नोमान, नोक्रोध और मिश्रकाल ही सम्भव हैं यह सिद्ध हुआ । माया और लोभकषायोंमें तो तीनों प्रकारके कालोंका सम्भव विरोधको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि विवक्षित जीवराशिका उनमें

समासेण दसविहो पयदकालो लम्भइ त्ति पयदत्थमुवसंहरइ—

\* एवं मायोवजुत्ताणं दसविहो कालो ।

§ २११. सुगममेदं, अणंतरादीदपबंधेणैव गयत्थत्तादो । संपहि वट्टमाणसमय-  
लाभोवजुत्ताणमदीदकालविसये पयदकालाणमियत्तावहारणट्टुमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

\* जे अस्सिं समये लोभोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो,  
कोहकालो दुविहो, मायाकालो दुविहो, लोभकालो तिविहो ।

§ २१२. एत्थ कारणं पुच्चं व परुवेयव्वं ।

\* एवमेसो कालो लोहोवजुत्ताणं णवविहो ।

§ २१३. सुगमं चेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । संपहि चट्टण्हं कसायाणं सव्व-  
पदसमासो एत्तिओ होइ त्ति पट्टुप्पायणट्टुमुत्तरसुत्तोवण्णासो—

\* एवमेदाणि सव्वाणि पदाणि थावालीसं भवंति ।

§ २१४. माणादिकसाएसु जहाकमं १२ ११ १० ९ एत्तियाणं पदान-  
मेगट्टीकरणेण तट्टुप्पत्तिदंसणादो ।

पूरी तरहसे उपसंहार सम्भव है, इसलिए यहाँपर सब कालोंको मिलाकर दस प्रकारका प्रकृत काल प्राप्त होता है इस प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हैं—

\* इस प्रकार मायामें उपयुक्त हुए जीवोंके दस प्रकारका काल होता है ।

§ २११. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तर अतीत हुए प्रबन्धके द्वारा इसका अर्थ ज्ञात है । अब वर्तमान समयमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके अतीत कालकी अपेक्षा प्रकृत कालोंकी संख्याका अवधारण करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* जो इस समय लोभकषायमें उपयुक्त हैं उनके अतीत कालमें मानकाल दो प्रकारका, क्रोधकाल दो प्रकारका, मायाकाल दो प्रकारका और लोभकाल तीन प्रकारका होता है ।

§ २१२. यहाँपर कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए ।

\* इस प्रकार लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके यह काल नौ प्रकारका होता है ।

§ २१३. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है । अब चारों कषायोंके सब पदोंका योग इतना होता है इस बातका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका उपन्यास करते हैं—

\* इस प्रकार ये सब पद व्यालीस होते हैं ।

§ २१४. मानादि कषायोंमें यथाक्रम १२ + ११ + १० + ९ इतने पदोंका योग करनेपर उनकी अर्थात् ४२ पदोंकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

विशेषार्थ—पहले हम मानकषायके तीन स्वस्थान पद दिखला आये हैं । इसी प्रकार क्रोध, माया और लोभकषाय इनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन स्वस्थान पद जान लेना चाहिए ।

§ २१५. एत्थ ताव बारस सत्थाणपदाणि घेत्तूणप्पाबहुअं परूवेमाणो तदवसर-  
करणद्वमुवरिमं पबंधमाह—

\* एत्तो बारस सत्थाणपदाणि गहियाणि ।

§ २१६. एत्तो बादालीसपदपिंडादो बारस सत्थाणपदाणि ताव गहिदाणि त्ति  
सुत्तं होइ । काणि ताणि सत्थाणपदाणि त्ति सिस्साहिप्पायमासंक्रिय सुत्तमुत्तरं भणइ—

\* कधं सत्थाणपदाणि भवंति ?

§ २१७. किं सरूवाणि ताणि त्ति पुच्छिदं होइ ।

\* माणोवजुत्ताणं माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो ।

§ २१८. एदाणि ताव तिण्णि सत्थाणपदाणि माणोवजुत्ताणं भवंति, सेसाणं  
णवण्हं पदाणं कोहादिसंबंधीणं परत्थाणविसयत्ते एत्थ गहणाभावादो ।

\* कोहोवजुत्ताणं कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो ।

ये सब मिलाकर १२ हुए । शेष ३० परस्थान पद जानने चाहिए । उनमेंसे जो वर्तमानमें  
मानकषायसे उपयुक्त हैं उनके ९ परस्थान पद, जो वर्तमानमें क्रोधकषायसे उपयुक्त हैं उनके  
८ परस्थान पद, जो वर्तमानमें मायाकषायसे उपयुक्त हैं उनके ७ परस्थान पद और जो  
वर्तमानमें लोभकषायसे उपयुक्त हैं उनके ६ परस्थान पद इस प्रकार सब मिलाकर सब  
परस्थानपद ३० होते हैं । इन सबका स्पष्टीकरण सुगम है ।

§ २१५. अब यहाँपर सर्व प्रथम बारह स्वस्थान पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करते  
हुए उसका अवसर करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* इनमेंसे बारह स्वस्थान पदोंको ग्रहण किया है ।

§ २१६. यह जो न्यालीस पदोंका पिंड है उनमेंसे सर्वप्रथम बारह स्वस्थान पद ग्रहण  
किये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वे स्वस्थान पद कौनसे हैं इस प्रकार शिष्यके अभि-  
प्रायानुसार आशंकारूप आगेका सूत्र कहते हैं—

\* वे स्वस्थान पद क्यों हैं ?

§ २१७. इस सूत्र द्वारा उनका अर्थात् स्वस्थान पदोंका स्वरूप क्या है यह पृच्छा की  
गई है ।

\* मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल  
ये तीन स्वस्थान पद होते हैं ।

§ २१८. मात्र ये तीन स्वस्थानपद मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके होते हैं, क्योंकि  
क्रोधादि कषायोंसे सम्बन्ध रखनेवाले शेष नौ पद परस्थानको विषय करनेवाले होनेसे यहाँ  
उनका ग्रहण नहीं किया है ।

\* क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल  
ये तीन स्वस्थान पद होते हैं ।

§ २१९. वट्टमाणसमए कोहोवजुत्ताणं पि एदाणि तिण्णि चैव सत्थाणपदाणि गहेयव्वाणि, सेसाणमट्टण्हं पदाणं परत्थाणविसयाणमेत्थ गहणाभावादो ।

\* एवं मायोवजुत्त-लोहोवजुत्ताणं पि ।

§ २२०. माया-लोभोवजुत्ताणं पि एवं चैव तिण्णि तिण्णि सत्थाणपदाणि गहेयव्वाणि । तं जहा—मायोवजुत्ताणं मायकालो नोमायकालो मिस्सयकालो च । लोभोवजुत्ताणं लोभकालो नोलोभकालो मिस्सयकालो चेदि । एवमेदाणि चउण्हं कसायाणं तिण्णि तिण्णि पदाणि घेत्तूण बारस सत्थाणपदाणि होति त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो ।

§ २२१. संपद्दि एदेसिं थोववहुत्तणिहालणट्टमुवरिमो सुत्तपवंधो—

\* एदेसिं बारसण्हं पदाणमप्पाबहुअं ।

§ २२२. एदेसिं सत्थाणपडिबद्धाणं बारसण्हं पदाणं एत्तो अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो त्ति पइण्णावक्कमेदं—

§ २१९. वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी ये तीन ही स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए, क्योंकि परस्थानविषयक श्लेष आठ पदोंका इनमें ग्रहण नहीं होता ।

\* इसी प्रकार मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके तीन-तीन स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए ।

§ २२०. मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी इसी प्रकार तीन-तीन स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए । यथा—मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल तथा लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकाल । इस प्रकार चार कषायोंके ये तीन-तीन पदोंको ग्रहणकर बारह स्वस्थान पद होते हैं यह प्रकृतमें विवक्षित सूत्रोंका समुच्चय अर्थ है ।

विशेषार्थ—यहाँ कतिपय सूत्रों द्वारा स्वस्थानपदोंका निर्णय करते हुए जो बतलाया गया है उसका आशय यह है कि वर्तमानमें जितने जीव जिस कषायमें उपयुक्त होते हैं और उसके पूर्व भी यदि वे ही जीव उसी कषायमें उपयुक्त रहे हैं तो उन जीवोंके विवक्षित कषायविषयक उपयोगकालकी वही संज्ञा हो जाती है । जैसे पूर्वमें तथा वर्तमानमें मानमें उपयुक्त हुए जीवोंके कालकी मानकाल संज्ञा तथा क्रोधमें उपयुक्त हुए जीवोंके कालकी क्रोध-काल संज्ञा आदि । तथा पूर्वमें क्रोध, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त रहे हैं और वर्तमानमें मानकषायमें उपयुक्त हैं तो उनके उस कालकी नोमानकाल संज्ञा है । इसी प्रकार अन्य कषायोंके अनुसार यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए । तथा पूर्वमें मानकषायके साथ अन्य कषायमें उपयुक्त रहे हैं तथा वर्तमानमें मानकषायमें उपयुक्त हैं तो उनके उस कालकी मिश्र-काल संज्ञा है । यहाँ भी अन्य कषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्वस्थान पदोंका निर्णय कर लेना चाहिए ।

§ २२१. अब इन पदोंके अल्पबहुत्वका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र प्रबन्ध है—

\* इन बारह पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं ।

§ २२२. आगे स्वस्थान सम्बन्धी इन बारह पदोंका अल्पबहुत्व बतलावेंगे इस प्रकार

\* तं जहा ।

§ २२३. सुगममेदं । एत्थ पयदप्पावहुअविसए अच्चुप्पण्णसोदारानं सुहावगम-  
समुप्पायणडुमेदेसिं बारसण्हं सत्थाणपदाणमेसा संदिट्ठी—

वट्टमाणकाले माणोवजुत्तरासिपमाणं १६, वट्टमाणकाले कोहोवजुत्तरासिपमाणं  
२०, वट्टमाणकाले मायोवजुत्तरासिपमाणं २५, वट्टमाणकाले लोभोवजुत्तरासि-  
पमाणं ३१ । तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले माणोवजुत्तकालो एसो ३६, तेसिं चेव  
जीवाणमदीदकाले कोहोवजुत्तकालो एसो १२, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले मायोव-  
जुत्तकालो एसो ४, तेसिं चेव जीवाण मदीदकाले लोभोवजुत्तकालो एसो २, तेसिं  
चेव जीवाणमदीदकाले णोमाणकालो एसो २९१६, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले  
णोकोहकालो एसो ९७२, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले णोमायकालो एसो ३२४, तेसिं  
चेव जीवाणमदीदकाले णोलोभकालो एसो १०८, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले माण-  
मिस्सयकालो एसो ८७४८, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले कोहमिस्सयकालो एसो १०७१६,  
तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले मायमिस्सयकालो एसो ११३७२, तेसिं चेव जीवाणमदीद-  
काले लोभमिस्सयकालो एसो ११५९० । एवमेदीए संदिट्ठीए जणिदसंसकाराणं  
सिस्साणमिदाणिं पयदप्पावहुअमोदारहस्सामो—

\* लोभोवजुत्ताणं लोभकालो थोवो ।

यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

\* वह जैसे ।

§ २२३. यह सूत्र सुगम है । यहाँपर प्रकृत अल्पबहुत्वके विषयमें अज्ञानकार  
श्रोताओंको सुखपूर्वक ज्ञान उत्पन्न करनेके लिए इन बारह स्वस्थान पदोंकी यह संदृष्टि है—  
वर्तमानकालमें मानमें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण १६, वर्तमान कालमें क्रोधमें उपयुक्त  
हुई जीवराशिका प्रमाण २०, वर्तमान कालमें मायामें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण २५  
तथा वर्तमान कालमें लोभमें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण ३१ । उन्हीं जीवोंका अतीत  
कालमें मानोपयुक्त काल यह है—३६ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें क्रोधोपयुक्त काल यह  
है—१२ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मायोपयुक्त काल यह है—४ । उन्हीं जीवोंका अतीत  
कालमें लोभोपयुक्त काल यह है—२ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोमानकाल यह है—  
२९१६ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोक्रोधकाल यह है ९७२ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें  
नोमायाकाल यह है—३२४ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोलोभकाल यह है—१०८ । उन्हीं  
जीवोंका अतीत कालमें मानमिश्रकाल यह है—८७४८ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें क्रोध-  
मिश्रकाल यह है—१०७१६ । उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मायामिश्रकाल यह है—११३७२ ।  
उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें लोभमिश्रकाल यह है—११५९० । इस प्रकार इस संदृष्टि द्वारा  
संस्कार प्राप्त शिष्योंके निमित्त इस समय प्रकृत अल्पबहुत्वका अवतार करेंगे—

\* लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका लोभकाल सबसे थोड़ा है ।

§ २२४. किं कारणं ? वट्टमाणसमयम्मि लोभोवजुत्तजीवरासी सेसकसायोव-  
जुत्तजीवे अवेक्खिय बहुओ होदूण पुणो अदीदकालम्मि एकदो कादुमदीव दुण्लहो  
होइ, तेणेसो कालो अदीदकालमाहप्पेणाणंतो होदूण सव्वथोवो जादो । तस्स  
पमाणमेदं २ ।

\* मायोवजुत्ताणं मायकालो अणंतगुणो ।

§ २२५. किं कारणं ? वट्टमाणसमयलोभोवजुत्तजीवरासीदो वट्टमाणसमय-  
मावोवजुत्तजीवरासी विसेसहीणो होइ । थोवो च जीवरासी लहुमेव तत्थ परिणमदि  
त्ति एदेण कारणेणेसो कालो अणंतो होदूण पुण्विलकालादो अणंतगुणो त्ति सिद्धं ४ ।

\* कोहोवजुत्ताणं कोहकालो अणंतगुणो ।

§ २२६. १२, कारणं पुण्व व वत्तव्वं ।

\* माणोवजुत्ताणं माणकालो अणंतगुणो ।

§ २२७. ३६, एत्थ वि कारणमणंतरपरूविदमेव ।

\* लोभोवजुत्ताणं णोलोभकालो अणंतगुणो ।

§ २२८. किं कारणं ? वट्टमाणसमयलोभोवजुत्तजीवरासिस्स अदीदकालम्मि

§ २२४. क्योंकि वर्तमान समयमें लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि शेष कषायोंमें  
उपयुक्त जीवराशिकी अपेक्षा बहुत है । फिर भी उसे अतीत कालमें एकत्र करना अति दुर्लभ  
है, इसलिए यह काल अतीत कालके माहात्म्यवश अनन्त होकर भी सबसे थोड़ा है । उसका  
प्रमाण यह है—२ ।

\* उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मायाकाल अनन्तगुणा है ।

§ २२५. क्योंकि वर्तमान समयमें लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिसे वर्तमान  
समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि विशेष हीन है । और थोड़ी जीवराशि शीघ्र ही  
उस रूप परिणम जाती है, इस प्रकार इस कारणसे यह काल अनन्त होकर भी पूर्वराशिके  
कालसे अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ । उसका प्रमाण ४ है ।

विशेषार्थ—यहाँ अनन्तका प्रमाण २, लोभकाल २;  $२ \times २ = ४$  मायाकाल ।

\* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकाल अनन्तगुणा है ।

§ २२६. क्रोधकाल १२ । कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोभकाल २, मायाकाल ४; दोनोंका योग ६;  $६ \times २ = १२$  क्रोधकाल ।

\* उससे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मानकाल अनन्तगुणा है ।

§ २२७. ३६, यहाँ भी पूर्वमें कहा गया ही कारण जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोभ-माया काल ६, क्रोधकाल १२, दोनोंका योग १८,  $१८ \times २ = ३६$   
मानकाल ।

\* उससे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोलोभकाल अनन्तगुणा है ।

§ २२८. क्योंकि वर्तमान समयमें लोभकषायमें उपयुक्त जीवराशिका अतीत कालमें

लोभगमणेण विणा सेसकसाएसु थोवावट्टाणकालो पुव्वल्लकालादो बहुओ होइ, विसय-बहुत्तेण तहाविहसंपत्तीए सुलहत्तदंसणाद्रो । तदो माणोवजुत्ताणं माणकालादो एसो कालो अणंतगुणो ति सिद्धं १०८ ।

\* मायोवजुत्ताणं णोमायकालो अणंतगुणो ।

§ २२९. ३२४, वट्टमाणसमयमायोवजुत्ताणमदीदकालम्मि मायमगंतूण सेस-कसाएसु चेवावट्टाणकालो । एसो पुव्विल्लणोलोभकालं पेक्खियुणाणंतगुणो । कधमेदं परिच्छिज्जे ? पुव्विल्लविसयादो एदस्स विसयबहुत्तोवलंभादो । तं कधं ? पुव्विल्ल-विसयो णाम कोह-माण-मायासु अच्छणकालो । एसो पुण कोह-माण-लोभेसु अवट्टाण-कालो ति तेणाणंतगुणो जादो । रासीणं थोवबहुत्तं च एत्थ कारणं वत्तव्वं ।

\* कोहोवजुत्ताणं णोकोहकालो अणंतगुणो ।

§ २३०. ९७२ । एत्थ ति कारणमणंतरपरूविदमेव दडुव्वं ।

लोभकषायमें जानेके विना शेष कषायोंमें थोडा अवस्थान काल पूर्वके कालसे बहुत है, क्योंकि विषयका बाहुल्य होनेसे उस प्रकारसे कालकी प्राप्ति सुलभ देखी जाती है। इसलिए मान-कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके मानकालसे यह काल अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ। उसका प्रमाण १०८ है।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोधकाल १८, मानकाल ३६, दोनोंका योग ५४; ५४ × २ = १०८ नोलोभकाल ।

\* उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोमायाकाल अनन्तगुणा है ।

§ २२९. नोमायाकाल ३२४ । वर्तमान समयमें मायामें उपयुक्त हुए जीवोंका अतीत कालमें माया कषायरूप न परिणम कर शेष कषायोंमें ही जो अवस्थान काल है उसे नोमाया-काल कहते हैं। यह पूर्वके नोलोभकालको देखते हुए अनन्तगुणा है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—पूर्वके विषयसे इसका विषय बहुत उपलब्ध होता है, इससे जाना जाता है कि नोलोभकालसे नोमायाकाल अनन्तगुणा है ।

शंका—बह कैसे ?

समाधान—क्योंकि क्रोध, मान और मायामें रहनेके कालको पूर्वका विषय कहते हैं, परन्तु यह क्रोध, मान और लोभमें रहनेका काल है, इसलिए उससे यह अनन्तगुणा ही गया है। तथा राशियोंके अल्पबहुत्वको इसमें कारण कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, दोनोंका योग १६२; १६२ × २ = ३२४ नोमायाकाल ।

\* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोक्रोधकाल अनन्तगुणा है ।

§ २३०. नोक्रोधकाल ९७२ । कारणका कथन पहले कर आये हैं। उसे ही यहाँपर जानना चाहिए ।

\* माणोवजुत्ताणं णोमाणकालो अणंतगुणो ।

§ २३१. २९१६ । एत्थ वि कारणमणंतरणिदिट्ठमेव ।

\* माणोवजुत्ताणं मिस्सयकालो अणंतगुणो ।

§ २३२. ८७४८ । किं कारणं णोमाणकालो णाम माणवदिरित्तसेसकसाएसु णिरुद्धजीवाणमवट्टाणकालो । तदो तिण्हमट्टाणं समासादो जेण चउण्हमट्टाणं समूहो बहुओ तेण मिस्सयकालो पुव्विन्लकालादो अणंतगुणो त्ति गहेयव्वं । अण्णं च माणोव-जुत्तवट्टमाणजीवरासिस्स अब्भंतरादो जइ वि एगो जीवो णिप्पिडियूणणकसाये पविसइ तो वि माणस्स मिस्सयकालो णाम वुच्चइ । एवं जइ वि दो जीवा अण्णकसाएसु पविसंति तो वि माणमिस्सयकालो भवइ । एदेण विहिणा संखेजासंखेजाणंतवियप्पेहि माणस्स मिस्सयकालो लब्भइ । जदो एवमणंतवियप्पेहि पयदकालोवलंभसंभवो तदो अणंतगुणो त्ति सिद्धं ।

\* कोहोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, तीनों कालोंका योग ४८६;  $४८६ \times २ = ९७२$  नोक्रोधकाल ।

\* उससे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोमानकाल अनन्तगुणा है ।

§ २३१. नोमानकाल २९१६ । कारणका कथन पहले कर आये हैं । उसे ही यहाँपर जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, नोक्रोधकाल ९७२, चारों कालोंका योग १४५८ ।  $१४५८ \times २ = २९१६$  नोमानकाल ।

\* उससे मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल अनन्तगुणा है ।

§ २३२. मानकषायसम्बन्धी मिश्रकाल ८७४८, क्योंकि मानकषायके सिवाय शेष कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके अवस्थान कालकी नोमानकाल संज्ञा है । इसलिए तीन कालोंके योगसे चार कालोंका योग बहुत होता है, अतः पूर्वके कालसे मिश्रकाल अनन्तगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । दूसरी बात यह है कि मानकषायमें उपयुक्त हुई वर्तमान जीव-राशिमैंसे यद्यपि एक जीव निकल कर अन्य कषायरूप परिणम जाता है तो भी मानकषायका मिश्रकाल कहा जाता है । इसी प्रकार यद्यपि दो जीव अन्य कषायरूप परिणम जाते हैं तो भी मानकषायका मिश्रकाल होता है । इस विधिसे संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रकारसे मानकषायका मिश्रकाल प्राप्त होता है । यतः इस प्रकार अनन्त प्रकारसे प्रकृत कालकी प्राप्ति सम्भव है, अतः यह काल अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, नोक्रोधकाल ९७२, नोमानकाल २९१६, इन सब कालोंका योग ४३७४ ।  $४३७४ \times २ = ८७४८$  मानमिश्रकाल ।

\* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।



§ २३३. केत्तियमेत्तो विसेसो ? कोह-णोकोहकालेहिं परिहीणमाण-णोमाणकाल-मेत्तो । तं कथं ? अदीदकालसव्वपिंडादो माण-णोमाणकालेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो माणस्स मिस्सयकालो होइ । सो च संदिट्ठीए एत्तियो ८७४८, अदीदकालसव्वसमासो संदिट्ठीए ११७०० एत्तियमेत्तो त्ति गहणादो । पुणो एत्थेव कोह-णोकोहकालेसु माण-णोमाणकालेहितो अणंतगुणहीणेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो कोहमिस्सयकालो संदिट्ठीए एत्तियमेत्तो होइ १०७१६ । एसो च माणमिस्सयकालादो माण-णोमाणकालाणमणंत-भागमेत्तेण विसेसाहिओ त्ति णत्थि संदेहो । संदिट्ठी विसेसपमाणमेदं १९६८ ।

\* मायोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहियो ।

§ २३४. ११३७२ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? माय-णोमायकालेहिं परिहीणकोह-णोकोहकालमेत्तो । सो च संदिट्ठीए एसो ६५६ । सेसं सुगमं, अणंतरादीदसुच-

§ २३३. विशेषका प्रमाण क्या है ?

समाधान—मान और नोमानके कालोंमेंसे क्रोध और नोक्रोधके कालोंको कम कर देने पर जो शेष रहे उतना विशेषका प्रमाण है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—अतीत कालसम्बन्धी सब कालोंके योगमेंसे मान और नोमानकालके कम कर देनेपर जो शेष रहे वह मानकषायका मिश्रकाल होता है और वह अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ८७४८ इतना है, क्योंकि अतीत कालसम्बन्धी सब कालोंका योग अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ११७०० इतना ग्रहण किया गया है । पुनः इसीमेंसे मान और नोमानकालसे अनन्तगुणे हीन क्रोध और नोक्रोधकालके घटा देनेपर जो काल शेष रहता है वह क्रोधमिश्रकाल है, जो कि अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा इतना है—१०७१६ । और यह मानके मिश्रकालसे मान-नोमानकालके अनन्तर्वे भागमात्र अधिक है इसमें सन्देह नहीं है । संदृष्टिकी अपेक्षा विशेषका प्रमाण यह है—१९६८ ।

विशेषार्थ—(१) मानकाल ३६, नोमानकाल २९१६; दोनोंका योग २९५२ । क्रोधकाल १२, नोक्रोधकाल ९७२; दोनोंका योग ९८४ । २९५२ - ९८४ = १९६८ विशेषका प्रमाण । मान-मिश्रकाल ८७४८ + १९६८ = १०७१६ क्रोधमिश्रकाल ।

(२) मान-नोमानकाल २९५२, २९५२ ÷ ३ (अनन्त) = ९८४ मान-नोमानके कालसे अनन्त-गुणा हीन क्रोध-नोक्रोधका काल । ११७०० अतीतसम्बन्धी सब कालोंका योग । ११७०० - ९८४ = १०७१६ क्रोधमिश्रकाल ।

\* उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।

§ २३४. मायाकषायका मिश्रकाल—११३७२ ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—क्रोध और नोक्रोधके कालोंमेंसे माया और नोमायाके कालोंको कम करनेपर जो शेष रहे उतना है । संदृष्टिकी अपेक्षा उसका प्रमाण इतना है—६५६ । शेष कथन

परूवणाए चैव गयत्थत्तादो ।

\* लोभोवज्जत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहियो ।

§ २३५. ११५९० । केत्तियमेत्तो विसेसो ? माय-णोमायकालेहितो लोभ-णोलोभकालेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो । तं च सुद्धसेसपमाणमेत्थ संदिट्ठीए एत्तियमेत्त-मिदि घेत्तव्वं २१८ ।

§ २३६. सब्वत्थ अप्पणो काल-णोकालेसु अदीदकालादो सोहिदेसु सुद्धसेसो मिस्सयकालो होदि त्ति वत्तव्वं । सब्वेसिमदीदकालपमाणसंदिट्ठी एसा ११७०० ।

§ २३७. एवमेदेसिं बारसण्हं सत्थाणपदाणमप्पाबहुअपरूवणा कया । संपहि सेसपरत्थाणपदाणं पि एदेसु बारससु पदेसु पवेसणं कादूण बादालीसपदपडिबद्धं परत्थाण-प्पाबहुअं पि णेदव्वमिदि पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

\* एत्तो बादालीसपदप्पाबहुअं कायव्वं ।

सुगम है, क्योंकि इससे पूर्वके सूत्रमें कथनके समय ही उसका व्याख्यान कर आये हैं ।

विशेषार्थ—माया-नोमायाकाल ३२८, क्रोध-नोक्रोधकाल ९८४ ।  $९८४ - ३२८ = ६५६$  विशेषका प्रमाण । क्रोधमिश्रकाल १०७१६,  $१०७१६ + ६५६ = ११३७२$  माया मिश्रकाल ।

\* उससे लोभकपायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।

§ २३५. लोभमिश्रकाल ११५९० ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—माय-नोमायासम्बन्धी कालोंमेंसे लोभ-नोलोभसम्बन्धी कालोंको कम कर देने पर जो शेष रहे उतना है । यहाँपर संदृष्टिकी अपेक्षा उस शेषका प्रमाण इतना २१८ ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—माया-नोमायाकाल ३२८, लोभ-नोलोभकाल ११०;  $३२८ - ११० = २१८$  विशेषका प्रमाण । मायामिश्रकाल ११३७२;  $११३७२ + २१८ = ११५९०$  लोभमिश्रकाल ।

§ २३६. सर्वत्र अतीत कालमेंसे अपने-अपने काल तथा नोकालको कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना अपना-अपना मिश्रकाल होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए । सबके अतीत कालके प्रमाणकी अंकसंदृष्टि यह है—११७०० ।

विशेषार्थ—अतीत काल ११७००, मान-नोमानकाल २९५२, क्रोध-नोक्रोधकाल ९८४, माया-नोमायाकाल ३२८, लोभ-नोलोभकाल ११० ।  $११७०० - २९५२ = ८७४८$  मानमिश्रकाल ।  $११७०० - ९८४ = १०७१६$  क्रोधमिश्रकाल,  $११७०० - ३२८ = ११३७२$  मायामिश्रकाल,  $११७०० - ११० = ११५९०$  लोभमिश्रकाल ।

§ २३७. इस प्रकार इन बारह स्वस्थान पदोंके अल्पबहुत्वका कथन किया । अब शेष परस्थान पदोंको भी इन बारह पदोंमें प्रविष्ट करके ब्यालीस पदसम्बन्धी परस्थान अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए इस तथ्यका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

\* आगे ब्यालीस पदसम्बन्धी अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

§ २३८. एत्तो बादालीसपदणिबद्धं परत्थाणप्पाबहुअं पि चितिय णेदव्वमिदि वुत्तं होइ । तं पुण बादालीसपदमप्पाबहुअं संपहियकाले विसिद्धोवसाभावो ण सम्ममवगम्मदि ति ण तव्विवरणं कीरदे ।

\* तदो छट्ठी गाथा समत्ता भवदि ।

§ २३९. एवमेदं समाणिय संपहि सत्तमगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* 'उवजोगवर्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहियं वा वि' ति एवस्मि अद्धे एको अत्थो, विदिये अद्धे एको अत्थो; एवं दो अत्था ।

§ २४०. एदेण सुत्तावयवेण एदिस्से सत्तमीए सुत्तगाहाए दोसु अत्थाहियारेसु पडिबद्धत्तं परूविदं । तत्थ ताव पुव्वद्धे दुविहाओ उवजोगवर्गणाओ अहिकरिय तासु जीवेहिं विरहिदाविरहिदद्वाणपरूवणा णाम पढमो अत्थो णिवद्धो, उवजोगवर्गणा-सहचरिदाणं जीवाणमुवजोगवर्गणावएसं कादूण तेहिं विरहिदमविरहिदं वा कं द्वाणं होदि ति पुच्छामुहेण सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । एत्थ 'काहिं ति' वुत्ते केत्तियमेत्ताहिं उवजोगवर्गणासहचरिदजीववर्गणाहिं कं द्वाणमविरहिदं होदि ति घेत्तव्वं । अहवा उवजोगवर्गणाहिं काल-भावविसयाहिं केत्तियमेत्ताहिं गदाहिं जीवेहिं विरहिदं द्वाणं होइ, केत्तियमेत्ताहिं वा णिरंतरसरूवाहिं जीवविरहिदमद्वाणं लब्भइ ति पदसंबंधं कादूण

§ २३८. अब व्यालीस पदोंमें निबद्ध परस्थान अल्पबहुत्वका भी विचार कर कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु वह व्यालीस पदविषयक अल्पबहुत्व वर्तमान कालमें विशिष्ट उपदेशका अभाव होनेसे सम्यक् प्रकारसे ज्ञात नहीं है, इसलिए उसका विशेष व्याख्यान नहीं करते हैं ।

\* इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे व्याख्यान करनेपर छठी गाथा समाप्त होती है ।

§ २३९. इस प्रकार इस गाथाके व्याख्यानको समाप्तकर अब सातवीं गाथाके अवसर प्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'कितनी उपयोगवर्गणाओंसे कौन स्थान अविरहित पाया जाता है और कौन स्थान विरहित पाया जाता है ।' इस प्रकार गाथाके इस पूर्वार्धमें एक अर्थ निबद्ध है और गाथाके उत्तरार्धमें एक दूसरा अर्थ निबद्ध है । इस प्रकार इस गाथामें दो अर्थ निबद्ध हैं ।

§ २४०. इस सूत्रवचन द्वारा यह सातवीं सूत्रगाथा दो अर्थाधिकारोंमें निबद्ध है यह कहा गया है । उनमेंसे सर्वप्रथम गाथाके पूर्वार्धमें दो प्रकारकी उपयोगवर्गणाओंको अधिकृत कर उनमें जीवोंसे रहित और सहित स्थानरूपणा नामक प्रथम अर्थाधिकार निबद्ध है, क्योंकि उपयोग वर्गणाओंसे युक्त जीवोंकी उपयोगवर्गणा संज्ञा करके उनसे रहित या सहित कौन स्थान है इस प्रकारकी पृच्छाद्वारा सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है । इस गाथामें 'काहिं' ऐसा कहनेपर कितनी उपयोगवर्गणाओंसे युक्त जीववर्गणाओंसे कौन स्थान युक्त है यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । अथवा काल और भावविषयक कितनी उपयोगवर्गणाओंके जानेके बाद जीवोंसे रहित स्थान होता है, अथवा निरन्तरस्वरूप कितनी

सुत्तत्थसमत्थणा कायव्वा । तदो गाहापुव्वद्वे एवंविहो एक्को अत्थो पडिबद्धो त्ति सम्मभवहारिदं । पच्छद्वे वि कसायोवजुत्तजीवाणं गदीयो अस्सियूण तिविहाए सेटीए अप्पावहुअपरूवणं णाम विदियो अत्थो पडिबद्धो । एवमेदेषु दोसु अत्थविसेसेसु पडिबद्धत्तमेदस्स गाहासुत्तस्स णिरूविय संपहि 'जहा उद्देशो तथा णिद्देशो' त्ति णायावलंबणेण पुव्वद्वस्स ताव विहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* पुरिमद्वस्स विहासा ।

§ २४१. गाहासुत्तपुरिमद्वस्स ताव विहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ ।

\* एत्थ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ—कसायउदयट्टाणाणि च उवजोगद्वट्टाणाणि च ।

§ २४२. एत्थ पुरिमद्वविहासणावसरे दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ होंति । काओ ताओ त्ति पुच्छिदे कसायुदयट्टाणाणि च उवजोगद्वट्टाणाणि चेदि भणिदं । तत्थ कसायोदयट्टाणाणि णाम कोहादिकसायाणमुदयवियप्पा पादेकमसंखेजलोयमेयभिण्णा । उवजोगद्वट्टाणाणि त्ति वुत्ते कोहादिकसायाणं जहण्णोवजोगकालप्पहुडि जावुकस्सतकालो त्ति एदेसिं वियप्पाणं संगहो कायव्वो । एदाणि च उवजोगद्वट्टाणाणि अंतो-मुहुत्तमेत्ताणि, जहण्णकालमुक्कस्सकालादो सोहिय सुद्धसेसम्मि एयरूवपक्खेवे कदे

उपयोगवर्गणाओंके द्वारा जीवोंसे रहित स्थान प्राप्त होता है इस प्रकार पदसम्बन्ध करके सूत्रके अर्थका समर्थन करना चाहिए । इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धमें इस प्रकारका एक अर्थ प्रतिबद्ध है इसका सम्यक् प्रकारसे निश्चय किया । गाथाके उत्तरार्धमें भी कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके गतियोंके आश्रयसे तीन प्रकारकी श्रेणियोंद्वारा अल्पबहुत्वका कथन नामक दूसरा अर्थ प्रतिबद्ध है । इस प्रकार इन दो अर्थविशेषोंमें निबद्ध इस गाथासूत्रका निरूपण करके अब 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायका अवलम्बन लेकर सर्वप्रथम पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* अब पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हैं ।

§ ३४१. सर्वप्रथम गाथासूत्रके पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* प्रकृतमें उपयोग वर्गणाएँ दो प्रकारकी हैं—कषाय-उदयस्थान और उपयोग-अद्धास्थान ।

§ २४२. प्रकृतमें पूर्वार्धके विशेष व्याख्यानके अवसरपर उपयोगवर्गणाएँ दो प्रकारकी होती हैं । वे कौनसी हैं ऐसा पूछनेपर कषाय-उदयस्थान और उपयोग-अद्धास्थान ऐसा कहा है । उनमेंसे जो क्रोधादि कषायोंके उदय विकल्प प्रत्येक असंख्यात लोकप्रमाण भेदोंको लिये हुए हैं वे सब कषाय-उदयस्थान कहलाते हैं । उपयोग-अद्धास्थान ऐसा कहनेपर क्रोधादि कषायोंके जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक इन भेदोंका संग्रह करना चाहिए । ये उपयोग-अद्धास्थान अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हैं, क्योंकि उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको

तच्चियप्पुप्पत्तिदंसणादो । एवमेदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उवजोगसंबंधिसादो उवजोगवग्गणाओ त्ति एत्थ विवक्खियाणि । संपहि एदस्सेवत्थस्स णिग्गमणट्टमुवरिमं सुत्तमाह—

\* एदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उवजोगवग्गणाओ त्ति वुचंति ।

§ २४३. सुगममेदं । तत्थ ताव उवजोगद्वट्ठाणेसु जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्ठाण-परूवणट्टमुवरिमो सुत्तपबंधो—

\* उवजोगद्वट्ठाणेहिं<sup>१</sup> ताव केत्तिएहिं विरहिदं केहिं कम्मिह अविरहिदं ?

§ २४४. केत्तिएहिं उवजोगद्वट्ठाणेहिं णिरंतरसरूवेण गदेहिं जीवविरहिदं ठाणमुवलब्भइ, केहिं वा जीवेहिं कम्मिह गदिविसेसे अविरहियमसुण्णं होदूण कं ठाणमुवलब्भदि त्ति एत्थ पदसंबंधो कायव्वो । एवं पुच्छाणिहेसं कादूण तदो एसा मग्गणा एत्थ कायव्वो त्ति पदुप्पायणट्टमिदमाह—

\* एत्थ मग्गणा ।

§ २४५. एदम्मि अत्थविसेसे एसा मग्गणा णिरयादिगदीओ अस्सियूण कायव्वो त्ति भणिदं होइ । तत्थ ताव णिरयगदीए पयदमग्गणट्टमुवरिमपबंधमाह—

घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंकके मिला देनेपर उनके भेदोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । इस प्रकार ये दोनों ही स्थान उपयोगसम्बन्धी होनेसे उपयोगवर्गणाएँ<sup>१</sup> हैं ऐसा यहाँ विवक्षित किया गया है । अब इसी अर्थका विशेष ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

\* ये दोनों ही प्रकारके स्थान उपयोगवर्गणा इस नामसे कहे जाते हैं ।

§ २४३. यह सूत्र सुगम है । सर्वप्रथम उनमेंसे उपयोग-अद्धास्थानोंमें जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

\* कितने उपयोग-अद्धास्थानोंके जानेके बाद कौन स्थान रहित पाया जाता है और किन जीवोंसे किस गतिविशेषमें कौन स्थान सहित पाया जाता है ।

§ २४४. कितने उपयोग-अद्धास्थानोंके द्वारा निरन्तररूपसे जानेके बाद कौन स्थान जीवोंसे रहित उपलब्ध होता है और किन जीवोंसे किस गतिविशेषमें कौन स्थान सहित अर्थात् अशून्य उपलब्ध होता है इस प्रकार यहाँपर पदसम्बन्ध करना चाहिए । इस प्रकार पुच्छानिर्देश करके उसके बाद यह मार्गणा यहाँपर करनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अब प्रकृतमें उक्त विषयकी मार्गणा करते हैं ।

§ २४५. इस अर्थविशेषको ध्यानमें रखकर नरकादि गतियोंके आश्रयसे यह मार्गणा करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसमें सर्वप्रथम नरकगतिमें प्रकृत मार्गणाके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* गिरयगदीए एगस्स जीवस्स कोहोवजोगद्धाणेसु णाणाजीवाणं जवमज्झं ।

§ २४६. एत्थ गिरयगदीएसो सेसगईणं पडिसेहट्टो, सव्वासिमक्कमेण परूवणो-वायाभावादो । तत्थ वि कोहादिकसायाणं चउण्हमक्कमेण परूवणोवायाभावादो कोह-कसायविसयमेव ताव पयदपरूवणं वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्टमेगजीवस्स कोहोव-जोगद्धाणेसु त्ति णिदेसो कओ । एत्थेगजीवणिदेसो कोहोवजोगद्धाणाणमेगजीवो-दाहरणमुहेण सुहावचोहणट्टमिदि दट्टव्वं । तदो एगजीवस्स कोहोवजोगद्धाणाणमंतो-मुहुत्तमेत्ताणमेगसेट्ठिआगारेण रचणं कादूण तत्थ णाणाजीवाणमवट्टाणकमप्पदंसणट्ट-मेदं बुच्चदे—णाणाजीवाणं जवमज्झमिदि । तेसु अद्धाणेसु एयजीवविसयत्तेण णिद्वारिदसरूवेसु णाणाजीवाणं जवमज्झायारेणावट्टाणं होइ त्ति भणिदं होइ ।

§ २४७. संपहि एदस्सत्थस्स किं चि फुडीकरणं वत्तइस्सामो । तं जहा—जहण्णाए उवजोगद्धाणे जीवा असंखेज्जसेट्ठिमेत्ता होंति । विदिए वि उवजोगद्धाणे जीवा असंखेज्जसेट्ठिमेत्ता चेव होंति । होंता वि जहण्णाट्टाणजीवे आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडियूणेयखंडमेत्तेणब्भहिया होंति । पुणो वि एदेण विहिणा ट्टाणं पडि विसेसाहियसरूवेण गच्छमाणा<sup>१</sup> भागहारमेत्तोवजोगद्धाणाणि गंखूण तदित्थोव-

\* नरकगतिमें एक जीवके क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा यवमध्य होता है ।

§ २४६. इस चूर्णिसूत्रमें 'नरकगति' पदका निर्देश शेष गतियोंके प्रतिषेधके लिए किया है, क्योंकि सभी गतियोंके एक साथ प्ररूपण करनेका कोई उपाय नहीं है । उसमें भी चारों क्रोधादि कषायोंके एक साथ प्ररूपण करनेका कोई उपाय न होनेसे क्रोधकषायविषयक प्रकृत प्ररूपणाको ही सर्वप्रथम बतलाते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए 'एक जीवके क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंमें' इस पदका निर्देश किया है । यहाँपर 'एक जीव' पदका निर्देश क्रोध-सम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंका एक जीवके उदाहरण द्वारा सुखपूर्वक ज्ञान करानेके लिए जानना चाहिए । इसलिए एक जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंकी श्रेणिरूपसे रचना करके उनमें नाना जीवोंके अवस्थानक्रमको दिखलानेके लिए 'नाना जीवोंका यवमध्य' यह वचन कहा है । एक जीवके विषयरूपसे निर्धारित किये गये उन अद्धास्थानोंमें नाना जीवोंका यवमध्यके आकाररूपसे अवस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ २४७. अब इसी अर्थका कुछ स्पष्टीकरण करके बतलाते हैं । यथा—जघन्य उपयोग-अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगच्छ्रेणिप्रमाण होते हैं । दूसरे भी उपयोग-अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण ही होते हैं । यद्यपि इतने होते हैं तो भी जघन्य स्थानके जीवोंकी संख्यामें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं । फिर भी इस विधिसे प्रत्येक स्थानके प्रति विशेष अधिकरूपसे जीवोंका प्रमाण लाते हुए भागहारप्रमाण उपयोग-अद्धास्थानोंके जानेपर वहाँके उपयोग-अद्धास्थानोंमें जो जीव

जोगद्वद्वाणजीवा पदमद्वद्वाणजीवेहितो दुगुणा भवन्ति । पुणो एदस्स दुगुणवड्ढिद्वद्वाण-  
स्सुवरि विसेसाहियसरूवेण तेत्तियमेत्तमद्वाणं गंतूण अण्णेगं दुगुणवड्ढिद्वद्वाणमुप्पज्जइ ।  
णवरि पुण्विल्लपक्खेवेहितो संपहियपक्खेवा दुगुणा होंति त्ति वत्तव्वं । पुणो एदेण  
विहिणा आवलियाए असंखेज्जदिभागदुगुणमेत्तभागवड्ढीओ अवड्ढिदपक्खेवभागहार-  
पडिबद्वाओ उवरि गंतूण तत्थेगम्मि उवजोगद्वद्वाणे जवमज्झं होइ, तत्तो उवरिमद्वद्वाणेषु  
विसेसहाणिकमेण जीवाणमवद्वद्वाणदंसणादो । णवरि जवमज्झादो हेट्ठिमसयलदुगुण-  
वड्ढिद्वद्वाणेहितो उवरिमदुगुणहाणिद्वद्वाणंतराणि संखेज्जगुणाणि त्ति घेत्तव्वं,  
हेट्ठिमद्वद्वाणादो उवरिमद्वद्वाणस्स संखेज्जगुणत्तादो । ण चेदमसिद्धं, उवरिमसुत्तेण तेसिं  
तहाभावसिद्धीदो । किं तं उवरिमसुत्तमिदि चे तस्सेदाणिमवयारो कीरदे—

\* तं जहा—द्वद्वाणाणं संखेज्जदिभागे ।

§ २४८. एदमणंतराणिहिद्धं जवमज्झद्वद्वाणं सयलद्वद्वाणाणमादीदो प्पहुडि  
संखेज्जदिभागे समुप्पणमिदि वुत्तं होइ । तदो द्वद्वाणाणं संखेज्जदिभागे चेव जव-  
मज्झद्वद्वाणं होदूण पुणो उवरिमसयलद्वद्वाणम्मि विसेसहाणिसरूवेणावलियाए असंखेज्जदि-  
भागमेत्तगुणहाणिद्वद्वाणंतराणि हेट्ठिमगुणवड्ढिद्वद्वाणेहितो संखेज्जगुणाणि समयाविरोहेण  
णेदव्वाणि त्ति सिद्धं ।

प्राप्त होते हैं वे प्रथम स्थानके जीवोंसे दूने होते हैं । पुनः इस द्विगुणवृद्धिस्थानके ऊपर विशेष  
अधिकरूपसे उतने ही स्थान जाकर एक दूसरा द्विगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है । इतनी  
विशेषता है कि पिछले द्विगुणवृद्धिस्थानोंके प्रक्षेपोंसे वर्तमान द्विगुणवृद्धिस्थानोंके प्रक्षेप दूने  
होते हैं ऐसा यहाँ कहना चाहिए । पुनः इस विधिसे अवस्थित प्रक्षेप-भागहारसे सम्बन्ध  
रखनेवाली आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण द्विगुणभागवृद्धियाँ ही जानेपर वहाँपर प्राप्त  
हुए एक उपयोग-अद्धास्थानमें यवमध्य होता है, क्योंकि उससे आगेके स्थानोंमें विशेष हानिके  
क्रमसे जीवोंका अवस्थान देखा जाता है । इतनी विशेषता है कि यवमध्यसे पूर्वके समस्त  
द्विगुणवृद्धिस्थानोंसे आगेके द्विगुणहानिस्थान संख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँपर ग्रहण करना  
चाहिए, क्योंकि पूर्वके अध्वानसे आगेका अध्वान संख्यातगुणा है । और यह असिद्ध भी  
नहीं है, क्योंकि आगेके सूत्रसे उनके उस प्रकारसे होनेकी सिद्धि होती है । वह आगेका सूत्र  
कौनसा है ऐसी आशंका होनेपर उसका इस समय अवतार करते हैं—

\* वह यवमध्यस्थान जितने स्थान हैं उनके संख्यातवें भागमें होता है ।

§ २४८. यह पूर्वमें जो यवमध्यस्थान निर्दिष्ट कर आये हैं वह समस्त अद्धास्थानोंके  
प्रारम्भसे लेकर संख्यातवें भाग जानेपर उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसलिये  
समस्त स्थानोंके संख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर ही यवमध्यस्थान होकर पुनः  
आगेके समस्त अध्वानोंमें विशेष हानिके क्रमसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणहानि-  
स्थान पिछले गुणवृद्धिस्थानोंसे समयके अविरोधपूर्वक संख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहाँपर यवमध्यस्थानके प्राप्त होने तक पूर्वमें कितनी द्विगुणवृद्धियाँ होती

§ २४९. संपहि जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च एगगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमसुत्तमोहणं—

\* एगगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरमावलियवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ २५०. आवलिया णाम पमाणविसेसो । तिस्से वग्गमूलमिदिवुत्ते तप्पटमवग्ग-मूलस्स गहणं कायव्वं । तस्स वि असंखेज्जदिभागो जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च एग-गुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरमवट्ठिदं होइ । णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ वुण असंखेजा-वलियपटमवग्गमूलमेत्ताओ एदम्हादो चेव साहेयव्वाओ त्ति पुध ण वुत्ताओ । एदं सव्वमदीदकालमस्सियूण परूविदं । संपहि वट्ठमाणकालमस्सियूण विसेसपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

\* हेट्ठा जवमज्झस्स सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि सदा ।

§ २५१. जवमज्झस्स हेट्ठा ताव सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि सव्वकालमवि-रहिदसरूवेण जीवेहिं आवुण्णाणि चेव होंति त्ति णिच्छओ कायव्वो, एकस्स वि गुणहाणिट्ठाणंतरस्स जीवसुण्णस्स तत्थ संभवाणुवलंभादो । संपहि तत्थतणसव्वअट्ठट्ठाणाणि

हैं और उसके आगे कितनी द्विगुणहानियाँ होनी हैं इस प्रमाणका निर्देश करते हुए यह बतलाया गया है कि यवमध्यस्थान जहाँ अवस्थित हैं वहाँ तक जितनी द्विगुणवृद्धियाँ होती हैं उससे आगे द्विगुणहानियाँ संख्यातगुणी होती हैं ।

§ २४९. अब यवमध्यसे पूर्वमें और आगे एक गुणवृद्धिस्थान और एक गुणहानिस्थान आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र आया है—

\* एक गुणवृद्धिस्थानान्तर और एक गुणहानिस्थानान्तर आवलिके वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ २५०. आवलि प्रमाणविशेषका नाम है । उसका वर्गमूल ऐसा कहनेपर उसके प्रथम वर्गमूलको ग्रहण करना चाहिए । उसके भी असंख्यातवें भागप्रमाण यवमध्यसे पूर्व एक गुणवृद्धिस्थानान्तर और उसके आगे एक गुणहानिस्थानान्तर अवस्थितस्वरूप है । अर्थात् एक आवलिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागका जो प्रमाण है उतना प्रकृतमें एक गुणवृद्धि-स्थान और एक गुणहानिस्थानका प्रमाण है । नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ तो असंख्यात आवलियोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं यह इसी वचनसे साध लेना चाहिए, इसलिए उनका कथन अलगसे नहीं किया है । यह सब अतीत कालका आश्रय लेकर कहा है । अब वर्तमान कालका आश्रय लेकर विशेषका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* यवमध्यके अधस्तन ( पूर्व ) वर्ती सब गुणहानिस्थानान्तर सर्वदा आपूर्ण हैं अर्थात् जीवोंसे भरे हुए हैं ।

§ २५१. यवमध्यके पूर्ववर्ती तो सर्व गुणहानिस्थानान्तर सर्वदा अन्तरालके बिना जीवोंसे आपूर्ण ही होते हैं ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिए, क्योंकि उनमें एक भी गुणहानि-



किं जीवेहिं गिरंतरमावुण्णाणि आहो गेदि एवंविहासंकाए गिरारेगीकरणड्डुमुवरिमं सुत्तमाह—

\* सच्चअद्धट्टाणाणं पुण असंखेज्जा भागा आवुण्णा ।

२५२. तत्थतणसच्चअद्धट्टाणाणमसंखेज्जा चेव भागा जीवेहिं अविरहिदसरूवेणा-  
वुण्णा । तदसंखेज्जदिभागो पुण जीवेहिं विरहिदो होदूण लब्भदि त्ति वुत्तं होइ । जह-  
एवं सच्चाणि गुणहाणिट्टाणंतराणि आवुण्णाणि त्ति कथं पुवुत्तं घडदि त्ति णासंका  
कायच्चा, पादेकसच्चगुणहाणिट्टाणंतरेसु केत्तियाणं पि अद्धट्टाणाणं जीवसुण्णत्ते वि  
तेसिं गुणहाणिट्टाणंतराणं समुदायविवक्खाए आवुण्णत्ताविरोहादो । एवं ताव  
जवमज्जादो हेट्टा जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्टाणाणं गवेसणं कादूण संपहि तत्तो उवरिमेसु  
वि ट्टाणेसु पयदयमगणड्डुमुवरिमं पबंधमाह—

\* उवरिमजवमज्जस्स जहण्णेण गुणहाणिट्टाणंतराणं संखेज्जदिभागो  
आवुण्णो । उक्कस्सेण सच्चाणि गुणहाणिट्टाणंतराणि आवुण्णाणि ।

§ २५३. जहा जवमज्जादो हेट्टा सच्चाणि गुणहाणिट्टाणंतराणि णियमा आवुण्णाणि  
ण एवं जवमज्जादो उवरिमगुणहाणिट्टाणेसु तहाविहणियमसंभवो । किंतु तत्थ जहण्णेण  
सच्चगुणहाणिट्टाणंतराणं संखेज्जदिभागो चेव जीवेहिं आवूरिज्जदि, सेसाणं संखेज्जा-

स्थानान्तर जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता । अब वहाँके सब अद्धास्थान क्या जीवोंसे निरन्तर  
आपूर्ण हैं या नहीं इस प्रकारकी आशंका होनेपर निशंक करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु सर्व अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग ही आपूर्ण है ।

§ २५२ वहाँके सर्व अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग ही जीवोंसे निरन्तररूपसे  
आपूर्ण हैं । उनका असंख्यातवाँ भाग तो जीवोंसे रहित पाया जाता है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सब गुणहानिस्थानान्तर आपूर्ण हैं यह पूर्वोक्त कथन कैसे  
घटित होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पृथक्-पृथक् सब गुणहानि-  
स्थानान्तरोंमेंसे कितने ही अद्धास्थान जीवोंसे रहित होनेपर भी समुदायकी विवक्षामें उन  
गुणहानिस्थानान्तरोंके आपूर्णपनेके होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

इस प्रकार सर्व प्रथम यवमध्यसे पूर्वके जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका विचार  
करके अब उससे उपरिम स्थानोंमें भी प्रकृत विषयका विचार करनेके लिये आगेके प्रबन्धको  
कहते हैं—

\* यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानान्तरोंका जघन्यरूपसे संख्यातवाँ भाग  
जीवोंसे आपूर्ण है तथा उत्कृष्टरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे आपूर्ण हैं ।

§ २५३. जिस प्रकार यवमध्यसे पूर्वके सब गुणहानिस्थानान्तर नियमसे जीवोंसे  
आपूर्ण हैं उस प्रकार यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानोंमें उस प्रकारका नियम नहीं देखा  
जाता । किन्तु उनमें जघन्यरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तरोंका संख्यातवाँ भाग ही जीवोंद्वारा

भागमेत्तगुणहाणिट्ठाणंतराणं जीवसुण्णाणं कदाइं संभवोवलंभादो । उक्कस्सेण पुण सच्चाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि लब्भंति, कदाइं सच्चाणि वि गुणहाणिट्ठाणंतराणि णिरुंभियूण णेरइयाणमवट्ठाणदंसणादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो । जवमज्झादो हेट्ठा वुण ण एवविहो जहण्णुकस्सपविभागो अत्थि, तत्थ सच्चकालं जहण्णादो उक्कस्सदो वि पुव्वपरूविदेण कमेण जीवाणमवट्ठाणणियमदंसणादो । तदो ण तत्थ जहण्णुकसभेदं कादूण तण्णिहेसो कओ त्ति दट्ठुव्वं । संपहि जवमज्झादो उवरिम-अट्ठट्ठाणाणं पि जहण्णुकस्सभेदेण जीवेहिं सुण्णासुण्णभावगवेषणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

\* जहण्णेण अट्ठट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो । उक्कस्सेण अट्ठट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा आवुण्णा ।

§ २५४. जहण्णेण ताव अट्ठट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो चैव जीवेहिं आवुण्णो होइ । किं कारणं ? जवमज्झादो उवरिमगुणहाणिट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागमेत्तगुणहाणिट्ठाणंतरेसु जहण्णेणावुण्णेषु तदवयवभूदाणमट्ठट्ठाणाणं पि सच्चअट्ठट्ठाणाणं संखेज्जदिभागमेत्ताणमावूरणे विरोहाभावादो । उक्कस्सेण वुण णिरुद्धविसयसयलट्ठट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा जीवेहिं आवुण्णा हीति, सच्चेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु उक्कस्सपक्खेवेणावूरिदेसु वि तदवयवभूदाणमट्ठट्ठाणाणं सगसच्चअट्ठट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागमेत्ताणं

भरा जाता है, क्योंकि शेष संख्यात बहुभागप्रमाण गुणहानिस्थानान्तर कदाचित् जीवोंसे रहित पाये जाते हैं । परन्तु उत्कृष्टरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे आपूर्ण प्राप्त होते हैं, क्योंकि कदाचित् सभी गुणहानिस्थानान्तरोंको व्याप्तकर नारकियोंका अवस्थान देखा जाता है यह प्रकृतमें सूत्रार्थका तात्पर्य है । परन्तु यवमध्यके पूर्व इस प्रकारका जघन्य और उत्कृष्टरूप विभाग नहीं है, क्योंकि वहाँ सर्वदा जघन्यरूपसे और उत्कृष्टरूपसे भी पूर्वमें कहे गये क्रमके अनुसार ही जीवोंके अवस्थानका नियम देखा जाता है । इसलिये वहाँ जघन्य और उत्कृष्टका भेद करके उक्त विषयका निर्देश नहीं किया है ऐसा यहाँ समझना चाहिए । अब यवग. यसे आगेके अट्ठास्थानोंमें भी जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे जीवोंसे रहित और सहितपनेकी गवेषणा करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* जघन्यरूपसे अट्ठास्थानोंका संख्यातवाँ भाग जीवोंसे आपूर्ण है तथा उत्कृष्टरूपसे अट्ठास्थानोंका असंख्यात बहुभाग जीवोंसे आपूर्ण है ।

§ २५४. जघन्यरूपसे तो अट्ठास्थानोंका संख्यातवाँ भाग ही जीवोंसे आपूर्ण होता है, क्योंकि यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानान्तरोंके संख्यातवें भागमात्र गुणहानिस्थानान्तरोंके जघन्यरूपसे जीवोंसे आपूर्ण होनेपर उनके अवयवभूत अट्ठास्थानोंके भी, जो कि सब अट्ठास्थानोंके संख्यातवें भागमात्र हैं, जीवोंसे परिपूर्ण होनेमें कोई विरोध नहीं आता । परन्तु उत्कृष्टरूपसे तो विवक्षित विषयसम्बन्धी सब अट्ठास्थानोंके असंख्यात बहुभागस्थान जीवोंसे आपूर्ण होते हैं, क्योंकि सब गुणहानिस्थानान्तरोंके उत्कृष्ट प्रक्षेपसे आपूरित होनेपर भी उनके अवयवभूत अट्ठास्थानोंमेंसे अपने सब अट्ठास्थानोंके असंख्यातवें भागमात्र स्थानोंके

जीवसुण्णाणमुवलंभसंभवे विरोहाणुवलंभादो । एवं ताव एकेणुवदेसेण जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च गुणहाणिट्ठाणाणमद्दट्ठाणाणं च एत्तिओ एत्तिओ भागो जीवेहिं अविरहिओ होइ एत्तिओ च भागो जीवविरहिओ होइ ति णिण्णयपरूवणं कादूण संपहि एदिस्से उवएसस्स सच्चाइरियसम्मदत्तेण पहाणभावपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

\* एसो उवएसो पवाइज्जह ।

§ २५५. जो एसो अणंतरपरूविदो उवएसो सो<sup>१</sup> पवाइज्जदे पण्णाविज्जदे अवि-संवादसरूवेण सच्चाइरिहिं सच्चकालमादिरिज्जदि ति वुत्तं होइ । अपवाइज्जंतेण पुण उवदेसेण केरिसी पयदपरूवणा होदि ति एवंविहासंकाए णिण्णयकरणट्ठमुत्तर-सुत्तमोइण्णं—

\* अण्णो उवदेसो सच्चाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि अविरहियाणि जीवेहिं, उवजोगद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा अविरहिदो ।

§ २५६. पवाइज्जंतादो अण्णो जो उवएसो अपवाइज्जंतो, तेण जीवविरहिदा-विरहिदट्ठाणपरूवणाए कीरमाणाए जवमज्झादो हेट्ठा उवरि वि भेदेण विणा एवं होदि ति वुत्तं होइ । सुगममण्णं जवमज्झादो हेट्ठिमपुब्बिन्लपरूवणाए समाण-वक्खाणत्तादो ।

जीवोंसे रहित उपलब्ध होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता । इस प्रकार एक उपदेशके अनुसार यवमध्यसे पूर्वके और आगेके गुणहानिस्थानों और अद्धास्थानोंका इतना इतना भाग जीवोंसे युक्त होता है और इतना भाग जीवोंसे रहित होता है इसके निर्णयका कथन करके अब यह उपदेश सब आचार्योंद्वारा सम्मत होनेके कारण प्रधान है इस बातका कथन करनेके लिये इस सूत्रवचनको कहते हैं—

\* यह उपदेश प्रवाह्यमान है ।

§ २५५. जो यह अनन्तर कहा गया उपदेश है वह प्रवाह्यमान है, प्रहापित है, अवि-संवादरूपसे सब आचार्य सदा उसका आदर करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार प्रकृत परूपणा किस प्रकारकी है इस प्रकारकी आशंका होने-पर निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र अवतीर्ण हुआ है—

\* अन्य उपदेश है कि सब गुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे युक्त हैं तथा उपयोग अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग जीवोंसे युक्त है ।

§ २५६. प्रवाह्यमानसे अन्य जो उपदेश है वह अप्रवाह्यमान उपदेश है । उसके अनुसार जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका कथन करनेपर यवमध्यसे पूर्वके और आगेके सभी स्थान भेदके विना इस प्रकारके होते हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । अन्य सब कथन सुगम है, क्योंकि यवमध्यसे पूर्वको और बादकी परूपणाका व्याख्यान समान है ।

१ ता०प्रती सो इति पाठो नास्ति ।

२ ता०प्रती उवजोगद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा अविरहिया इति पाठः टीकांशस्वरूपेण मुद्रितः ।

§ २५७. संपदि एदेणत्थपदेणेत्थ जवमज्झपरूवणाए तत्थेमाणि छ अणि-योगहाराणि णदव्वाणि भवन्ति—परूवणा जाव अप्पाबहुएत्ति । परूवणादाए जहण्णाए उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा, विदिये उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा । एवं जाव उक्कस्सए उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा । पमाणं—जहण्णाए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा केत्तिया ? असंखेज्जसेट्ठिमेत्तिया भवन्ति । विदिए वि उवजोगद्धट्ठाणे जीवा असंखेज्जसेट्ठिमेत्ता । एवं जाव उक्कस्सट्ठाणे ति ।

§ २५८. सेट्ठिपरूवणा दुविहा—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च । अणंतरोव-णिधाए जहण्णाए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा थोवा । विदिये उवजोगद्धट्ठाणे जीवा विसेसाहिया आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण । एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव जवमज्झे ति । तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सट्ठाणे ति । परंपरोवणिधाए जहण्णुवजोगद्धट्ठाणजीवेहिंतो आवलिधाए असंखेज्जादिभागं गंतूण दुगुणवट्ठिदा, एवं दुगुणवट्ठिदा जाव जवमज्झे ति । तेण परं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सट्ठाणे ति ।

§ २५९. एत्थ तिष्णिण अणियोगहारेहिं परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च । तत्थ परूवणाए अत्थि णाणादुगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरसलागाओ एगदुगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरं च । पमाणमेगदुगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरमावलियपढमवग्गमूलस्सासंखेज्जदिभागो । णाणादुगुण-

§ २५७. अब इस अर्थपदके अनुसार यहाँ यवमध्यकी प्ररूपणा करनेपर उस विषयमें प्ररूपणासे लेकर अल्पबहुत्व तकके ये छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । प्ररूपणाके अनुसार कथन करनेपर जघन्य उपयोगाद्धास्थानमें जीव हैं, दूसरे उपयोग अद्धास्थानमें जीव हैं । इसी प्रकार यावत् उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थानमें जीव हैं । प्रमाण अनुयोगद्वारके अनुसार कथन करनेपर जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव कितने हैं ? असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण हैं । दूसरे भी उपयोग अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण हैं । इसी प्रकार उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थान तक जानना चाहिये ।

§ २५८. श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा । अनन्त-रोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे दूसरे उपयोग अद्धास्थानमें विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना है । इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक विशेष अधिक विशेष अधिक जानना चाहिए । उसके बाद उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक विशेष हीन, विशेष हीन जानने चाहिए । परंपरोपनिधाकी अपेक्षा विचार करनेपर जघन्य उपयोग अद्धास्थानके जीवोंसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणवृद्धिरूप हो जाते हैं । इसी प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक द्विगुणवृद्धिरूप, द्विगुणवृद्धिरूप जानने चाहिए । उसके बाद उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणहीन, द्विगुणहीन जानने चाहिए ।

§ २५९. यहाँ प्रकृतमें तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व । उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा नाना द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर और द्विगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ हैं तथा एक द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर और एक द्विगुणहानिस्थानान्तर शलाका है । प्रमाण—एक

वड्डि-हाणिट्टाणंतरसलागाओ असंखेज्जाणि आवलियपढमवग्गमूलाणि । अप्पावहुअं—  
एयदुगुणवड्डि-हाणिट्टाणंतरं थोवं । णाणादुगुणवड्डि-हाणिट्टाणंतरसलागाओ असंखेज्ज-  
गुणाओ ।

§ २६०. संपहि अवहारो वुच्चदे—जहण्णउवजोगद्धट्टाणजीवपमाणेण सच्च-  
उवजोगद्धट्टाणजीवा केवचिरेण कालेण अवहिरिजंति ? असंखेज्जेण कालेण अवहिरिजंति ।  
अथवा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण अवहिरिजंति । एत्तो भागहारं  
विसेसहीणं कादूण णेदच्चं जाव जवमज्जे त्ति । पुणो जवमज्जजीवपमाणेण तिग्णि-  
गुणहाणिट्टाणंतरेण कालेण अवहिरिजंति । एत्तो उवरि भागहारो विसेसाहियसरूवेण  
णेदच्चो जाव उक्कस्सट्टाणे त्ति । पुणो उक्कस्सट्टाणजीवपमाणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-  
भागेण कालेण अवहिरिजंति । भागाभागो जाणिय णेदच्चो ।

§ २६१. अप्पावहुअं—सच्चथोवा उक्कस्सए उवजोगद्धट्टाणे जीवा । जहण्णए  
उवजोगट्टाणे जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।  
जवमज्जजीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । जव-  
मज्जस्स हेट्टिमजीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर तथा एक द्विगुणहानिस्थानान्तर आवलिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें  
भागप्रमाण है । नाना द्विगुणवृद्धिस्थानान्तरशलाकाएँ और नाना द्विगुणहानिस्थानान्तर  
शलाकाएँ आवलिके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं । अल्पबहुत्व—एक द्विगुणवृद्धि-  
स्थानान्तर और एक द्विगुणहानिस्थानान्तर सबसे स्तोक है । उससे नाना द्विगुणवृद्धि-  
स्थानान्तरशलाकाएँ और नाना द्विगुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं ।

§ २६०. अब अवहारका कथन करते हैं—जघन्य उपयोग अद्धास्थानके जीवोंके  
प्रमाणसे सब उपयोग अद्धास्थानोंके जीव कितने कालके द्वारा अपहृत होते हैं ? असंख्यात  
कालके द्वारा अपहृत होते हैं । अथवा पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा  
अपहृत होते हैं । इससे आगे यवमध्यके प्राप्त होने तक भागहारको विशेष हीन करके ले  
जाना चाहिए । पुनः यवमध्यके जीवोंके प्रमाणसे तीन गुणहानिस्थानान्तरप्रमाण काल द्वारा  
अपहृत होते हैं । इससे आगे उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक भागहारको विशेष अधिक करके  
ले जाना चाहिए । पुनः उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणसे पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण  
कालद्वारा अपहृत होते हैं । यहाँ प्रत्येक स्थानपर विवक्षित कालको भागहार बनाकर सब  
उपयोग अद्धास्थानोंके जीवोंके प्रमाणको उससे भाजित कर विवक्षित स्थानकी संख्या प्राप्त  
की गई है । भागहारका उल्लेख मूलमें किया ही है । भागाभागका जानकर कथन करना  
चाहिए ।

§ २६१. अल्पबहुत्व—उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे  
जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? पत्योपमके  
असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है । उनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या  
है ? पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है । उनसे यवमध्यसे पूर्ववर्ती स्थानोंके  
जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है ।

ज्वमज्झादो उवरिमजीवा विसेसाहिया । सव्वेसु द्वाणेषु जीवा विसेसाहिया । एसा णिरयगदीए कोहकसायस्स णिरुंभणं कादूण परूवणा कया । एवं सेसकसायाणं सेस-  
गदीणं च पादेकं णिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा णिरवसेसमणुगंतव्वा । तदो उवजोगद्ध-  
द्वाणपरूवणा समत्ता ।

§ २६२. संपहि कसायुदयद्वाणेषु पयदपरूवणडुमुवरिमो सुत्तपबंधो—

\* एदेहिं दोहिं उवदेसेहिं कसायउदयद्वाणाणि षेदव्वाणि तसाणं ।

§ २६३. एदेहिं उवजोगद्धद्वाणाणमणंतरपरूविदेहिं दोहि उवदेसेहिं पवाइजंता-  
पवाइजंतसरूवेहिं कसायुदयद्वाणाणि षेदव्वाणि त्ति वुत्तं होइ । दोण्हं पि उवदेसाणमेत्थ  
परूवणाभेदो णत्थि । तेण दोहिं मि सरिसेहिं भावोवजोणवग्गणाओ अणुमग्गियव्वाओ  
त्ति भावत्थो । कुदो एवं परिच्छिज्जदे ? सुत्ते तदुभयविसयविसेसणिहेसादंसणादो ।  
केसिं पुण जीवाणं कसायुदयद्वाणाणि षेदव्वाणि त्ति आसंकाए तसाणमिदि णिहेसो  
कओ । तसजीवे अहिकरिय एसा परूवणा कायव्वा, तदण्णेसिं जीवाणमणंतसंखा-  
वच्छिण्णाणमसंखेज्जलोगमेत्तेसु थावरपाओग्गकसायुदयद्वाणेषु सव्वकालं णिरंतरसरूवेण  
समयाविरोहेणावद्वाणसिद्धीए अणुत्तसिद्धत्तेण तव्विसयपरूवणाए अणहियारादो ।

उनसे यवमध्यसे उपरिम स्थानोंके जीव विशेष अधिक हैं । उनसे सब स्थानोंके जीव विशेष  
अधिक हैं । नरकगतिमें क्रोधकषायकी मुख्यतासे यह प्ररूपणा की गई है । इसी प्रकार  
शेष कषायों और शेष गतियोंमेंसे प्रत्येकको मुख्यकर समस्त प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिए ।  
इसके बाद उपयोग अद्धास्थान प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ २६२. अब कषाय उदयस्थानोंमें प्रकृत प्ररूपणा करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको  
कहते हैं ।

\* इन दोनों उपदेशोंके आश्रयसे त्रसजीवोंके कषाय उदयस्थान जानने चाहिये ।

§ २६३. उपयोग अद्धास्थानोंके विषयमें अनन्तर कहे गये इन दोनों प्रवाह्यमान और  
अप्रवाह्यमान उपदेशोंके आश्रयसे कषायउदयस्थान जानने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य  
है । इन दोनों ही उपदेशोंकी अपेक्षा प्रकृतमें प्ररूपणाभेद नहीं है, इसलिए सदृश इन दोनों  
उपदेशोंके अनुसार भावोपयोगवर्गणाओंकी मार्गणा कर लेनी चाहिए यह उक्त कथनका  
भावार्थ है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि सूत्रमें इन दोनों उपदेशोंके अनुसार पृथक् पृथक् विशेष निर्देश  
नहीं देखा जाता ।

किन जीवोंके कषाय उदयस्थान ले जाने चाहिए ऐसी आशंका होनेपर 'तसाणं' पदका  
निर्देश किया है । त्रसजीवोंको अधिकृतकर यह प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उनसे अन्य  
स्थावर जीवोंकी संख्या अनन्त है । उनका स्थावरप्रायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण कषाय  
उदयस्थानोंमें निरन्तररूपसे सर्वदा आगमानुसार पाया जाना सिद्ध है, इस प्रकार अनुक्त  
सिद्ध होनेसे तद्विषयक प्ररूपणाका यहाँ अधिकार नहीं है । इसलिए त्रसोंकी ओघसे प्ररूपणा

तदो तसाणमोधपरूवणद्वमुवरिमो परूवणापबंधो—

\* तं जहा ।

§ २६४. सुगममेदं पृच्छावकं । संपहि एवं पृच्छाविसईकयत्थस्स परूवणं कुणमाणो तत्थ ताव कसायुदयट्टाणाणभियत्तावहारणद्वमुवरिमं सुत्तमाह—

\* कसायुदयट्टाणाणि असंखेज्जा लोगा ।

§ २६५. असंखेज्जाणं लोगाणं जत्तिया आगासपदेसा अत्थि तत्तियमेत्ताणि चेव कसायुदयट्टाणाणि होति त्ति भणिदं होइ । ताणि च कसायुदयट्टाणाणि जहण्ण-ट्टाणप्पहुडि जावुकस्सट्टाणे त्ति छवट्टिकमेणावट्टिदाणि त्ति घेतव्वं । तत्थ ताव वट्टमाण-समयम्मि तसजीवेहिं केत्तियाणि ट्टाणाणि आवूरिदाणि केत्तियाणि च सुण्णट्टाणाणि त्ति एदस्स णिद्वारणद्वमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

\* तेसु जत्तिया तसा तत्तियमेत्ताणि आवुण्णाणि ।

§ २६६. तेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्टाणेषु तसपाओग्गेषु वट्टमाण-समयम्मि केत्तियाणि ट्टाणाणि तसजीवेहिं अवुण्णाणि त्ति णिहालिजमाणे जत्तिया तसा अत्थि तत्तियमेत्ताणि चेव कसायुदयट्टाणाणि जीवेहिं अवुण्णाणि लब्भंति, एक्केकम्मि कसायुदयट्टाणे एक्केकस्स चेव तसजीवस्स कदाइमवट्टाणसंभवादो । णवरि तेत्तियमेत्ताणि कसायुदयट्टाणाणि एगेगजीवाहेट्टियाणि णिरंतरसरूवेण ण लब्भंति, आवलियाए

करनेके लिये आगेका प्ररूपणाप्रबन्ध है—

\* वह कैसे ?

§ २६४. यह पृच्छावाक्य सुगम है । अब इस प्रकार पृच्छाके विषयभूत अर्थका कथन करते हुए वहाँपर सर्वप्रथम कषाय उदयस्थानोंके परिमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* कषाय-उदयस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

§ २६५. असंख्यात लोकोंके जितने आकाशप्रदेश हैं उतने ही कषायउदयस्थान हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वे कषाय उदयस्थान जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान तक छह वृद्धियोंके क्रमसे अवस्थित हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । उनमेंसे सर्वप्रथम वर्तमान समयमें त्रस जीवोंके द्वारा कितने उदयस्थान आपूर्ण हैं और कितने शून्यस्थान हैं इस प्रकार इस विषयका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* उनमेंसे जितने त्रसजीव हैं उतने स्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं ।

§ २६६. उन असंख्यात लोकप्रमाण त्रसप्रायोग्य उदयस्थानोंमेंसे वर्तमान समयमें कितने ही स्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं इस विषयका विचार करनेपर जितने त्रसजीव हैं उतने ही कषाय उदयस्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण प्राप्त होते हैं, क्योंकि एक एक कषाय उदयस्थानमें एक एक ही त्रसजीवका कदाचित् अवस्थान सम्भव है । इतनी विशेषता है कि उतने सब उदयस्थान एक-एक जीवके द्वारा निरन्तररूपसे अधिष्ठित होकर नहीं प्राप्त होते । किन्तु उत्कृष्टरूपसे

असंखेज्जदिभागमेत्ताणं चैव जीवसहिदाणमुक्कस्सपक्खेण गिरंतरट्ठाणाणमुवएसादो । तदो सांतर-गिरंतरकमेण तसजीवमेत्ताणि चैव कसायुदयट्ठाणाणि जीवेहि आवुण्णाणि त्ति घेत्तव्वं । एवं ताव वट्टमाणकालविसये तसजीवमेत्ताणं ट्ठाणाणं जीवेहि आवुण्णत्तं गिरूविय संपहि अदीदकालमस्सियूण सव्वेसु कसायुदयट्ठाणेसु तसजीवाणमवट्ठाण-कमप्पदंसणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

\* कसायुदयट्ठाणेषु जवमज्जेण जीवा रांति ।

§ २६७. असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेषु अदीदकालविसये तसजीवाण-मवट्ठाणकमो केरिसो त्ति पुच्छिदे जवमज्जेण जीवा रांति त्ति गिदिट्ठं । एवं च कसायुदयट्ठाणेषु जवमज्जसरूवेण जीवाणमवट्ठाणं होदि त्ति पइण्णाय संपहि जवमज्ज-परूवणाए कीरमाणाए तत्थ इमाणि छ अणियोगद्वाराणि णादव्वाणि भवंति—परूवणा जाव अप्पावहुए त्ति । तत्थ परूवणाए जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अत्थि जीवा । एवं जावुकस्सए कसायुदयट्ठाणे अत्थि जीवा त्ति । पमाणं—जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जीवा जहण्णेणेको वा दो वा जावुकस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागो । विदियट्ठाणे वि त्तिया चैव । एवं णेदव्वं जावुकस्सट्ठाणे वि जीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति । एवमेदाणि दो वि सुगमाणि त्ति सुत्ते ण परूविदाणि । संपहि सेट्ठिपरूवणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही जीव सहित निरन्तर स्थान पाये जानेका उपदेश है । इसलिए सान्तर-निरन्तरक्रमसे त्रसजीवोंकी संख्याप्रमाण ही कषाय-उदयस्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार सर्व प्रथम वर्तमान कालकी अपेक्षा त्रसजीवप्रमाण स्थान जीवोंसे आपूर्ण हैं इस बातका कथनकर अब अतीत कालकी अपेक्षा सब कषाय उदयस्थानोंमें अवस्थानक्रमको दिखलानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* कषाय-उदयस्थानोंमें जीव यवमध्यके आकारसे रहते हैं ।

§ २६७. असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें अतीत कालकी अपेक्षा त्रस-जीवोंका अवस्थानक्रम कैसा है ऐसा पूछनेपर यवमध्यरूपसे जीव रहते हैं ऐसा निर्देश किया है । और इसप्रकार कषाय-उदयस्थानोंमें यवमध्यरूपसे जीवोंका अवस्थान है ऐसी प्रतिज्ञा करके अब यवमध्यकी प्ररूपणा करनेपर वहाँ ये छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—प्ररूपणासे लेकर अल्पबहुत्व तक । उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा जघन्य कषाय उदयस्थानमें जीव हैं । इसी प्रकार उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान तक प्रत्येक कषाय उदय-स्थानमें जीव हैं । प्रमाण—जघन्य कषाय-उदयस्थानमें जीव जघन्यसे एक या दो से लेकर उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । द्वितीय स्थानमें भी जीव उतने ही हैं । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थानमें भी जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए । इस प्रकार ये दोनों ही अनुयोगद्वार सुगम हैं, इसलिए इनका सूत्रमें कथन नहीं किया । अब श्रेणिका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

१. ता० प्रती एंति इति पाठः । २. ता० प्रती एंति इति पाठः ।



\* जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा ।

§ २६८. कुदो ? सव्वजहण्णसंकिंसेण परिणममाणजीवाणं बहूणमणुवलंभादो । किंपमाणा एदे ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता । कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? परम-गुरुवएसादो । जह एसा जवमज्झपरुवणा अदीदकालविसया तो जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अणंतेहि तसजीवेहिं होदव्वमिदि णासंक्रणिज्जं, अदीदकाले एगसमयम्मि उक्खसेणा-वलियाए असंखेज्जदिभागादो अहियाणं तसजीवाणं तत्थ परिणदाणमणुवलंभादो । तदो अदीदकालविसयमेगसमयुक्खससंचयं धेत्तूणेषा परुवणा पयट्ठा त्ति ण किंचि विरुद्धं ।

\* विदिये वि तत्तिया चेव ।

§ २६९. ण केवलमेकम्मि चेव जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा, किंतु तत्तो विदिये वि कसायुदयट्ठाणे तेत्तिया चेव तसा होत्ति, ण ऊणा ण वड्ढिमा त्ति वुत्तं होइ । कुदो एस णियमो ? सहावदो चेय ।

\* जघन्य कषाय-उदयस्थानमें त्रसजीव सबसे स्तोक हैं ।

§ २६८. क्योंकि सबसे जघन्य संक्लेशरूपसे परिणमन करनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते ।

शंका—इनका प्रमाण कितना है ?

समाधान—ये आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—यह परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

शंका—यदि यह यवमध्यप्ररूपणा अतीत कालविषयक है तो जघन्य कषाय-उदय-स्थानमें अनन्त त्रसजीव होने चाहिए ।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अतीत कालविषयक एक समयमें उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक त्रसजीव उक्त स्थानमें परिणमन करते हुए नहीं पाये जाते, इसलिए अतीत कालविषयक एक समयके उत्कृष्ट संचयको ग्रहणकर यह प्ररूपणा प्रवृत्त हुई है, इसलिए कुछ भी विरुद्ध नहीं है ।

\* द्वितीय कषाय उदयस्थानमें भी उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २६९. न केवल एक ही जघन्य कषाय-उदयस्थानमें त्रसजीव सबसे थोड़े रहते हैं । किन्तु उससे दूसरे भी कषाय-उदयस्थानमें उतने ही त्रसजीव होते हैं, न कम और न अधिक यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही यह नियम है ।

\* एवमसंखेज्जेसु लोगट्ठाणेषु तत्तिया चेव ।

§ २७०. एवमेदेण कमेण गिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेषु जहण्णट्ठाण-जीवेहिं सरिसा चेव जीवा होंति त्ति भणिदं होइ । जइ एवं कसायुदयट्ठाणेषु जवमज्जेण जीवा रांति तो एदिस्से पइण्णाए विघातो दुक्कदि त्ति णासंकणिज्जं, सच्चट्ठाणेषु गिरंतरवड्ढीए असंभवे पि तत्थ जवमज्जाकारोवदेसस्स विरोहाभावादो ।

\* तदो पुणो अण्णम्मिह ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ ।

§ २७१. असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेषु जहण्णट्ठाणेण सरिसपमाणजीवेहिं अहिट्ठिएसु गदेसु तदो पच्छा अण्णम्मिह तदित्थकसायुदयट्ठाणम्मि एक्को चेव जीवो अहिओ जायदे, सहावदो चेव तत्थ तहाविह्वड्ढीए जीवाणमवट्ठाणणियमदंसणादो । एवमेक्केकम्मि ट्ठाणम्मि एगजीववड्ढी होदूण पुणो तत्तो उवरि वड्ढि-हाणीहिं विणा असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेषु तेत्तियमेत्ता चेव जीवा होंति त्ति पदुप्पायणट्ठ-मिदमाह—

\* तदो पुण असंखेज्जेसु लोगेषु ट्ठाणेषु तत्तिया चेव ।

§ २७२. सुगममेदं । एवमेत्तियमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेषु अवट्ठिदपमाणा जीवा

\* इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २७०. इस प्रकार इस क्रमसे निरन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें जघन्य स्थानके जीवोंके सदृश ही जीव होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'कषाय-उदयस्थानोंमें यवमध्यरूपसे जीव रहते हैं' इस प्रतिज्ञाका विघात प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सब स्थानोंमें निरन्तर वृद्धिके असंभव होनेपर भी वहाँ यवमध्याकारके उपदेशमें कोई विरोध नहीं आता ।

\* तदनन्तर पुनः अन्य स्थानमें एक जीव अधिक रहता है ।

§ २७१. जघन्य स्थानके सदृश प्रमाणको लिए हुए जीवोंसे युक्त असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंके जानेपर उसके पश्चात् वहाँके अन्य कषाय-उदयस्थानमें एक ही जीव अधिक रहता है, क्योंकि स्वभावसे ही वहाँ उस प्रकारकी वृद्धिके साथ जीवोंके अवस्थानका नियम देखा जाता है । इस प्रकार एक-एक स्थानमें एक जीवकी वृद्धि होकर पुनः उसके आगे वृद्धि और हानिके विना असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होते हैं इस बातका कथन करनेके लिये कहते हैं—

\* तदनन्तर पुनः असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २७२. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार इतने कषाय-उदयस्थानोंमें अबस्थित प्रमाण-

होदूण तदो अण्णम्मि तदित्थद्वाणविसेसे एगजीवड्ढी पुव्वं व होदि त्ति जाणावणट्ट-  
मुवरिमसुत्तमोइण्णं—

\* तदो अण्णम्मिद्दुवाणे एक्को जीवो अब्भहिओ ।

§ २७३. कुदो एवं चेव ? सहावदो । एत्तो पुण असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदय-  
द्वाणेषु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण तदो अण्णम्मि द्वाणम्मि तदिओ जीवो वड्ढावेव्वो ।  
एवं पुणो पुणो असंखेज्जलोगमेत्तद्वाणं गंतूणेगेगजीवं वड्ढाविय णेदव्वं जावुक्कस्सेणा-  
वलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजीवा जहण्णद्वाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणा समुप्पण्णा त्ति ।  
पुणो तम्मि उद्देसे असंखेज्जलोगमेत्तेसु द्वाणेषु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण जवमज्ज-  
मुप्पज्जदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

\* एवं गंतूण उक्कस्सेण जीवा एक्कम्मिद्दुवाणे आवलियाए असंखेज्जदि-  
भागो ।

२७४. एवमणंतरपरूविदेणेव क्रमेण गंतूण एक्कम्मि द्वाणविसेसे आवलियाए  
असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा जहण्णद्वाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणमेत्ता उक्कस्सेण वड्ढिदा,  
तत्तो परं वड्ढीए असंभवादो । एवं वड्ढिदे जवमज्जद्वाणमेत्थंतरे समुप्पज्जदि त्ति  
भणिदं होदि । समुप्पज्जमाणं किमेक्कम्मि चेव द्वाणे समुप्पज्जइ, आहो संखेज्जेसु

वाले जीव होकर उसके बाद अन्य वहाँके स्थानविशेषमें पहलेके समान एक जीवकी वृद्धि  
होती है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* तदनन्तर अन्य स्थानमें एक जीव अधिक रहता है ।

§ २७३. शंका—ऐसा ही किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा है ।

तदनन्तर पुनः असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होकर उसके  
बाद अन्य स्थानमें तीसरा जीव बढ़ाना चाहिए । इस प्रकार पुनः पुनः असंख्यात लोकप्रमाण  
स्थान जाकर एक-एक जीवको बढ़ाते हुए उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण  
जीवोंके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए, जो जीव जघन्य स्थानके जीवोंसे संख्यातगुणे हैं ।  
पुनः वहाँपर असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव होकर यवमध्य उत्पन्न होता है  
इस प्रकार इस अर्थ विशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* इस प्रकार जाकर एक स्थानमें उत्कृष्ट रूपसे जीव आवलिके असंख्यातवें  
भागप्रमाण होते हैं ।

§ २७४. इस प्रकार अनन्तर ही कहे गये क्रमसे जाकर एक स्थानविशेषमें आवलिके  
असंख्यातवें भागप्रमाण जीव, जो कि जघन्य स्थानके जीवोंसे संख्यातगुणे हैं, उत्कृष्टरूपसे  
वृद्धिगत हो जाते हैं, क्योंकि इससे और अधिक वृद्धि होना असम्भव है । इस प्रकार वृद्धि  
होनेपर इस बीच यवमध्यस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यवमध्य उत्पन्न

असंखेज्जेसु वा त्ति एदस्स णिण्णयकरणट्टमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

\* जत्तिया एकम्मिह द्वाणे उक्कस्सेण जीवा तत्तिया चेव अण्णम्मिह द्वाणे । एवमसंखेज्जलोगद्वाणाणि । एदेसु असंखेज्जेसु लोकेसु द्वाणेषु जवमज्झं ।

§ २७५. सुगममेदं, उक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेसु जीवेषु एकम्मि द्वाणे वड्ढिदेसु तत्तो प्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयद्वाणेषु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण तेसु द्वाणेषु जवमज्झसमुप्पत्ती होदि त्ति णिण्णयकरणफलत्तादो । संपहि जवमज्झादो उवरिमेसु द्वाणेषु जीवाणमवद्वाणक्कमप्पदंसणट्टमुवरिमं एवंधमणुसरामो—

\* तदो अण्णं द्वाणमेक्केण जीवेण हीणं ।

§ २७६. तदो जवमज्झादो अण्णं द्वाणमणंतरोवरिममेक्केण जीवेण हीणं होदि ।

\* एवमसंखेज्जलोगद्वाणाणि तुल्लजीवाणि ।

§ २७७. एदेणाणंतरणिदिट्ठेण द्वाणेण समाणजीवाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि द्वाणाणि णिरंतरमत्थि त्ति वुत्तं होइ ।

\* एवं सेसेसु वि द्वाणेषु जीवा णेदव्वा ।

होता हुआ क्या एक ही स्थानमें उत्पन्न होता है या संख्यात या असंख्यात स्थानोंमें उत्पन्न होता है इस प्रकार इस बातका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* जितने एक स्थानमें उत्कृष्टरूपसे जीव हैं उतने ही अन्य स्थानमें पाये जाते हैं । इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें जानना चाहिए । इन असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें यवमध्य है ।

§ २७५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके एक स्थानमें वृद्धिगत होनेपर वहाँसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होकर उन स्थानोंमें यवमध्यकी उत्पत्ति होती है इस बातका निर्णय करना इसका फल है । अब यवमध्यसे आगेके स्थानोंमें जीवोंके अवस्थानक्रमके दिखलानेके लिए आगेके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

\* तदनन्तर अन्य स्थान एक जीवसे हीन होता है ।

§ २७६. तदनन्तर यवमध्यसे समनन्तर आगेका अन्य स्थान एक जीवसे हीन होता है ।

\* इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थान तुल्य जीवोंसे युक्त हैं ।

§ २७७. इस अनन्तर पूर्व कहे हुए स्थानके समान जीवोंसे युक्त आगेके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान निरन्तर हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* इसी प्रकार शेष स्थानोंमें भी जीव उक्त क्रमके अनुसार ले जाने चाहिए ।

§ २७८. एतो उवरिमेसु सेसेसु वि द्वाणेषु उक्कस्सद्वाणपज्जंतेसु जीवा समयाविरोहेण पेदव्वा त्ति वुत्तं होइ । जहा जवमज्झादो हेड्ढा वड्ढी तहा ततो उवरि हाणी वि जहाकमं कायव्वा त्ति एसो एदस्स भावत्थो । णवरि हेड्ढिमद्वाणादो उवरिमद्वाणमसंखेज्जगुणं, हेड्ढिमगुणवड्ढिद्वाणेहिंतो उवरिमगुणहाणिद्वाणाणमसंखेज्जगुणत्तोवएसादो । अदो चेव जहण्णद्वाणजीवेहितो उक्कस्सद्वाणजीवा असंखेज्जगुणहीणा त्ति एदस्सत्थविसेसस्स संदिट्ठिमुहेण पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

\* जहण्णए कसायुदयद्वाणे चत्तारि जीवा, उक्कस्सए कसायुदयद्वाणे दो जीवा ।

§ २७९. जइ वि जहण्णए कसायुदयद्वाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा होति तो वि य संदिट्ठीए तेसिं पमाणं चत्तारिरूवमेत्तमिदि घेत्तच्चं । उक्कस्सए वि कसायुदय-द्वाणे दो जीवा त्ति संदिट्ठीए गहेयव्वा । ण संदिट्ठिपरूवणमेदमत्थो चेव एरिसो त्ति किण्ण वक्खाणिज्जदे ? ण, तहा वक्खाणे कीरमाणे उक्कस्सए कसायुदयद्वाणे गुणिकम्मंसिया वि जीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता होति त्ति एदेण सह विरोहप्पसंगादो, जवमज्झच्छेदणयाणमसंखेज्जदिभागमेत्तीओ हेड्ढा णाणागुणहाणिसलागाओ तेसि-मसंखेज्जा भागा उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति एत्थेव पुरदो भणिस्समाण-

§ २७८. जो पूर्वमें स्थान कह आये हैं उनसे आगेके उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त शेष स्थानोंमें भी आगमानुसार जीव ले जाने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । जिस प्रकार यव-मध्यसे पूर्वके स्थानोंमें वृद्धि वतलाई उसी प्रकार उससे आगेके स्थानोंमें क्रमसे हानि भी करना चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है । इतनी विशेषता है कि यवमध्यसे पूर्वके अध्वानसे आगेका अध्वान असंख्यातगुणा है, क्योंकि अधस्तन गुणवृद्धिस्थानोंसे उपरिम गुणहानिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं ऐसा उपदेश पाया जाता है । और इसीलिये जघन्य स्थानके जीवोंसे उत्कृष्ट स्थानके जीव असंख्यातगुणे हीन होते हैं इस प्रकार इस अर्थविशेषका संदृष्टिद्वारा कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* जघन्य कषाय-उदयस्थानमें चार जीव हैं और उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें दो जीव हैं ।

§ २७९. यद्यपि जघन्य कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं तो भी संदृष्टिमें उनका प्रमाण चार संख्यामात्र ग्रहण करना चाहिए । उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें भी दो जीव हैं इस प्रकार संदृष्टिमें ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—यह संदृष्टिरूपसे कथन न होकर वास्तवमें इसी प्रकार है अर्थात् उक्त स्थानोंमें वास्तवमें इतने ही जीव हैं ऐसा व्याख्यान क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकारसे व्याख्यान करनेपर उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान में गुणितकर्मांशिक जीव भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं इस प्रकार उक्त कथनके साथ इस कथनका विरोध प्राप्त होता है । दूसरे यवमध्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं और उनके असंख्यात बहुभागप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं इस प्रकार इसी प्रकरणमें आगे कहे जानेवाले

परंपरोवणिधासुत्तेण बाहिज्जमाणत्तादो च । तदो जहण्णट्टाणे उक्कस्सट्टाणे च जीवा अत्थदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता होदूण पुणो संदिट्ठीए चत्तारि दोण्णि चेदि गहेयव्वा त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थपरमत्थो ।

§ २८०. एवमेदेसु जहण्णुक्कस्सकसायुदयट्टाणजीवेसु आवलियाए असंखेज्जदि-  
भागमेत्तेण सिद्धेसु जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति सिद्धमेवेदं,  
ण तत्थ संदेहो कायव्वो त्ति पदुप्पायणड्डमुत्तरसुत्तमोहणं—

\* जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ २८१. हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा जहण्णट्टाण-  
जीवेसु गुणिदेसु जवमज्झजीवा समुप्पज्जंति उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्ण-  
ब्भत्थरासिणा उक्कस्सट्टाणजीवेसु च गुणिदेसु जवमज्झजीवा समुप्पज्जंति । तदो जवमज्झ-  
जीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति एसो एत्थ सुत्तस्स भावत्थो । एवं अणंत-  
रोवणिधा गदा ।

§ २८२. संपहि एदेणेव सुत्तेण सूचिदा परंपरोवणिधा वुच्चदे । तं जहा—  
जहण्णकसायुदयट्टाणजीवेहिंतो असंखेज्जलोगमेत्तकसायुदयट्टाणाणि गंतूण दुगुण-  
वट्ठिदा । एवं दुगुणवट्ठिदा दुगुणवट्ठिदा जाव जवमज्झे त्ति । तेण परमसंखेज्ज-

परम्परोपनिधासूत्रके साथ उक्त कथन बाधा जाता है, इसलिए जघन्य स्थानमें और उत्कृष्ट स्थानमें जीव वास्तवमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर पुनः संदृष्टिमें क्रमसे चार और दो ग्रहण करने चाहिए यह प्रकृतमें इस सूत्रका वास्तविक अर्थ है ।

§ २८०. इस प्रकार जघन्य उदयस्थान और उत्कृष्ट उदयस्थानके ये जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं यह सिद्ध होनेपर यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण ही हैं यह सिद्ध ही है, उसमें सन्देह नहीं करना चाहिए इस प्रकार कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

§ २८१. अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे जघन्य स्थानके जीवोंके गुणित करनेपर यवमध्यके जीव उत्पन्न होते हैं । तथा उपरिम नाना गुणहानि-  
शलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके गुणित करनेपर यवमध्यके जीव उत्पन्न होते हैं । इसलिये यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं इस प्रकार यह यहाँ सूत्रका भावार्थ है । इसप्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई ।

§ २८२. अब इसी सूत्रद्वारा सूचित हुई परम्परोपनिधाका कथन करते हैं । यथा—  
जघन्य कषाय-उदयस्थानके जीवोंसे असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थान जाकर जीव दूने हो जाते हैं । इस प्रकार यवमध्य तक जीव दूने दूने होते जाते हैं । उसके बाद असंख्यात

लोगमेत्तद्वाणं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सद्वाणे त्ति ।

§ २८३. संपहि एत्थ गुणहाणिं पडि असंखेज्जलोगमेत्तद्वाणमवट्ठिदसरूवेण गंतूण तदो एगो जीवो अहिओ होइ । गुणहाणिअद्वाणं च सन्वत्थ सरिसं णाणागुणहाणिसलाओ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ जवमज्झहेट्ठिमणाणागुणवट्ठिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ एगोगद्वाणजीवपमाणमावलियाए असंखेज्जदिभागो अवहारकालो च अवट्ठिदो होदि त्ति एवमेदेसिमत्थाणं मग्गणं कस्सामो । तं जहा—आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजहण्णद्वाणजीवपमाणं विरलिय पुणो तं चेव जहण्णद्वाणजीवपमाणं समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ विरलणरूवं पडि एगोगजीवपमाणं पावइ । संपहि एत्थ जहण्णद्वाणप्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तेसु द्वाणेषु अवट्ठिदपमाणा जीवा होदूण तदो एगद्वाणम्मि एगो जीवो अहिओ होदि त्ति तत्थ विरलणाए पढमरूवधरिदेगजीवपमाणं वट्ठावेय्वं । एवमेदेण क्रमेण गंतूण विरलणरूवमत्तसन्वजीवेषु पविट्ठेसु पढमदुगुणवट्ठिद्वाणप्पज्जदि ।

§ २८४. पुणो इमं दुगुणवट्ठिद्वाणं पुव्विन्लअवट्ठिदविरलणाए उवरि समखंडं कादूण दिण्णे एककेक्कस्स रूवस्स दो दो जीवपमाणं पावदि । पुणो एत्थेगरूवेधरिददोजीवा पुव्विन्लमेत्तद्वाणं गंतूण जइ वट्ठाविज्जंति तो पढमगुणवट्ठिअद्वाणेण

लोकप्रमाण स्थान जाकर वे आघे रह जाते हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर आघे-आघे होते जाते हैं ।

§ २८३. अब यहाँपर प्रत्येक गुणहानिके प्रति असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थान अवस्थितरूपसे जाकर उसके बाद एक जीव अधिक होता है, गुणहानिका आयाम सर्वत्र सदृश है, नाना गुणहानिशलाकाएँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं, एक-एक स्थानके जीवोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा अवहारकाल अवस्थितस्वरूप है इस प्रकार इन अर्थोंका विचार करेंगे । यथा—जघन्य स्थानसम्बन्धी आवलिके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंके प्रमाणका विरलनकर पुनः जघन्य स्थानके जीवोंके उसी प्रमाणको समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर वहाँ विरलनके प्रत्येक अंकके प्रति जीवोंका एक-एक प्रमाण प्राप्त होता है । अब यहाँपर जघन्य स्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें अवस्थित प्रमाणवाले जीव होकर उसके बाद एक स्थानमें एक जीव अधिक होता है, इसलिए वहाँपर विरलनके प्रथम अंकके प्रति स्थापित संख्यामें एक जीवका प्रमाण बढ़ा देना चाहिए । इस प्रकार इस क्रमसे जाकर विरलनके अंकप्रमाण सब जीवोंके प्रविष्ट होनेपर प्रथम द्विगुणवृद्धि-स्थान उत्पन्न होता है ।

§ २८४. इस द्विगुण वृद्धिस्थानको पहलेके अवस्थित विरलनके ऊपर समखण्ड करके देनेपर एक-एक विरलन अंकके प्रति दो-दो जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है । पुनः यहाँपर विरलनके एक अंकके प्रति स्थापित दो जीव पहलेके जितने स्थान हैं मात्र उतने स्थान जाकर

विदियगुणवड्ढिअद्दाणं सरिसं होइ । णवरि एवमेत्थ वड्ढावेदुं ण सक्किज्जदे, एक्केको चैव जीवो वड्ढदि त्ति चुण्णिमुत्ते मुत्तकंठमुवइइत्तादो । तदो एगेगो चैव जीवो वड्ढावेयव्वो । तहा वड्ढाविज्जमाणे वि गुणहाणिअद्दाणमणवड्ढिदं होइ, पढमगुणवड्ढिअद्दाणादो दुगुणमद्दाणं गंतूण विदियदुगुणवड्ढिसमुप्पत्तिदंसाणादो । एवं सेसगुणवड्ढीणं पि अणंतराणंतरादो दुगुण-दुगुणमद्दाणं गंतूण समुप्पत्ती वत्तव्वा । ण चेदमिच्छिज्जदे, जवमज्झादो हेइ उवरिं च गुणवड्ढि-हाणिअद्दाणाणं सरिसत्तब्भुवगमेण सह विरोहादो । तदो पयारंतरमस्सियूण एगेगजीववड्ढीए वि जहा गुणवड्ढिअद्दाणाणमवड्ढिदत्तं ण विरुज्जदे तहा वत्तइस्सामो । तं जहा—

§ २८५. जहण्णट्ठाणजीवपमाणविरलणाए पढमदुगुणवड्ढिट्ठाणजीवे समखंडं करिय दिण्णे विरलणरूवं पडि दो दो जीवा पावंति त्ति तत्थ पढमरूवोवरि ड्ढिददोजीवेसु एगो जीवो पढमगुणहाणिमिह एगजीववड्ढिअद्दाणस्स अद्वं गंतूण वड्ढावेयव्वो । पुणो विदियजीवो वि एत्तियमेत्तमद्दाणमुवरि गंतूण वड्ढावेयव्वो । एवं पुणो पुणो कीरमाणे विरलणरूवमेत्तसव्वरूवधरिदेसु परिवाडीए पविट्ठेसु तदो विदियदुगुणवड्ढिट्ठाणं पढमदु-गुणवड्ढिट्ठाणेण समाणमद्दाणं होदूण समुप्पज्जइ । पुणो एदं दुगुणवड्ढिट्ठाणमवड्ढिद-विरलणाए समखंडं कादूण दिण्णे एक्केकस्स रूवस्स चत्तारि चत्तारि जीवा होदूण

यदि बढ़ाते हैं तो द्वितीय गुणवृद्धिस्थान प्रथम गुणवृद्धिस्थानके समान होता है । इस प्रकार यहाँपर बढ़ाना शक्य नहीं है, क्योंकि एक-एक ही जीव बढ़ता है ऐसा चूर्णिसूत्रमें मुक्तकण्ठ उपदेश दिया गया है । इसलिये एक-एक जीव ही बढ़ाना चाहिए । किन्तु इस प्रकार बढ़ानेपर भी गुणहानिअध्वान अनवस्थित हो जाता है, क्योंकि प्रथम गुणवृद्धिस्थानसे द्विगुण अध्वान जाकर द्वितीय गुणवृद्धिकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसीप्रकार शेष गुणवृद्धियोंकी भी सम-नन्तर पूर्व समनन्तर पूर्व द्विगुणवृद्धिसे द्विगुण द्विगुण अध्वान जाकर उत्पत्ति कहनी चाहिए । परन्तु यह इष्ट नहीं है, क्योंकि यद्यमध्यसे पूर्वके और आगेके गुणवृद्धि और गुणहानि स्थानोंके सदृश स्वीकार करनेसे उक्त कथनका इस कथनके साथ विरोध आता है । इसलिये दूसरे प्रकारका अवलम्बन लेकर एक-एक जीवकी वृद्धि करते हुए भी जिस प्रकार गुणवृद्धि-स्थानोंका अवस्थितपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है उस प्रकारसे बतलाते हैं । यथा—

§ २८५. जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणका विरलन करनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति द्विगुणवृद्धिस्थानके जीवोंके समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति दो-दो जीव प्राप्त होते हैं, इसलिये वहाँ प्रथम अंकके ऊपर स्थित दो जीवोंमेंसे एक जीवको प्रथम गुणहानिमें एक जीवसम्बन्धी वृद्धिका जो अध्वान है उसका अर्धभाग जानेपर बढ़ाना चाहिए । पुनः दूसरे जीवको भी इतना अध्वान आगे जानेपर बढ़ाना चाहिए । इस प्रकार पुनः पुनः करनेपर विरलन अंकप्रमाण सब अंकोंपर स्थापित जीवोंके क्रमसे प्रविष्ट होनेपर द्वितीय द्विगुणवृद्धिस्थान प्रथम द्विगुणवृद्धिस्थानके समान आयामवाला होकर उत्पन्न होता है । पुनः इस द्विगुणवृद्धिस्थानको अवस्थित विरलनके ऊपर समान खण्ड करके देयरूपसे देने-पर एक-एक अंकके प्रति चार-चार जीव होकर प्राप्त होते हैं । पुनः इनके बढ़ानेपर प्रथम



पावन्ति । पुणो एदेसु वड्ढाविज्जमाणेसु पढमदुगुणवड्ढिअद्धानम्मि एगेगजीववड्ढिविसयस्स चउब्भागमेत्तद्धानं गंतूणेगो जीवो वड्ढदि त्ति वत्तव्वं । एवमुवरि वि जाणियूण भण्णमाणे अणंतरहेट्ठिमगुणहाणिमिह वड्ढिदेगजीवद्धानादो उवरिमाणंतरगुणहाणीए वड्ढाविज्जमाणेगजीवद्धानमद्वद्धं होदूण गच्छइ जाव तप्पाओग्गपमाणाओ दुगुणवड्ढीओ उवरि गंतूणं जवमज्झद्धानं समुप्पणामिदि ।

§ २८६. पुणो इमं जवमज्झद्धानजीवपमाणं घेतूण पुव्विन्लमवड्ढिदविरलणं दुगुणिय विरलेयूण समखंडं करिय दिण्णे विरलणरूवं पडि जवमज्झादो हेट्ठिमाणंतरगुणहाणिम्मि एगेगरूवं पडि संपत्तजीवपमाणं होदूण पावइ । पुणो एत्थेगरूवधरिदमणंतरहेट्ठिम-गुणहाणीए वड्ढाविदविहाणेणासंखेजलोगमेत्तद्धानं गंतूणेगेगजीवहाणिकमेण परिहायदि । पुणो वि एवं चेव परिहाणिं कादूण णेदव्वं जाव संपहियविरलणाए अद्धमेत्तरूवधरिदेसु सव्वेसु जहाकमं परिहीणेसु जवमज्झादो उवरि पढमं दुगुणहाणिद्धानमुप्पणं ति । एवमेदेण विहाणेण णेदव्वं जाव तप्पाओग्गेसु गुणहाणिद्धानेसु गदेसु जहण्णद्धान-जीवपमाणमवड्ढिदं ति । णवरि हेट्ठिमगुणहाणीए एगजीवपरिहाणिअद्धानादो उवरिम-गुणहाणीए एगजीवपरिहीणद्धानं दुगुण-दुगुणकमेण सव्वत्थ गच्छदि त्ति वत्तव्वं ।

§ २८७. एत्तो इमं जहण्णद्धानजीवपमाणं पुव्विन्लमवड्ढिदभागहारं विरलिय

द्विगुणवृद्धिसम्बन्धी आयाममेंसे एक-एक जीवकी वृद्धिसम्बन्धी आयामका चौथा भागमात्र आयाम जाकर एक जीव बढ़ता है ऐसा कहना चाहिए । इसीप्रकार आगे भी जानकर कथन करनेपर अनन्तर अधस्तन गुणहानिमें वृद्धिको प्राप्त हुए एक जीवसम्बन्धी आयामसे, तत्प्रायोग्य प्रमाणवाली द्विगुणवृद्धियाँ ऊपर जाकर यवमध्यस्थानके उत्पन्न होने तक, उपरिम अनन्तर गुणहानिमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले एक जीवसम्बन्धी आयामसे आधा-आधा होकर प्राप्त होता है ।

§ २८६. पुनः यवमध्यस्थानके जीवोंके इस प्रमाणको ग्रहणकर पिछले अवस्थित विरलनके दूनेको विरलितकर और उसपर समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर प्रत्येक विरलन अंकके प्रति यवमध्यसे अधस्तन ( पूर्वकी ) अनन्तर गुणहानिमें एक-एक अंकके प्रति प्राप्त जीवोंका जितना प्रमाण है उतना होकर प्राप्त होता है । पुनः यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त जीवोंका प्रमाण अनन्तर अधस्तन गुणहानिमें जिस विधिसे जीवोंका प्रमाण बढ़ाया गया उसके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर एक-एक जीवकी हानिके क्रमसे घटता जाता है । फिर भी इसीप्रकार तबतक हानि करते हुए ले जाना चाहिए जबतक साम्प्रतिक विरलनके अंकोंपर प्राप्त अर्धभागप्रमाण सब जीवोंके क्रमसे कम होनेपर यवमध्यके ऊपर प्रथम द्विगुणहानिस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इस विधिसे तत्प्रायोग्य गुणहानिस्थानोंके जानेपर जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणके अवस्थित होने तक ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अधस्तन गुणहानिमें एक जीवके परिहानिसम्बन्धी अध्वानसे उपरिम गुणहानिमें एक जीवसम्बन्धी परिहानिका अध्वान सर्वत्र द्विगुण-द्विगुण क्रमसे जाता है ऐसा कहना चाहिए ।

§ २८७. आगे जघन्य स्थानके जीवोंके इस प्रमाणको पहलेके अवस्थित भागहारका

समखंडं कादूण जोइज्जइ तो एगेगरूवस्स एगजीवद्वपमाणं होदूण पावइ । ण चेद-  
मिच्छिज्जदे, तहाविहवड्डीए अच्चंतासंभवेण पडिसिद्धत्तादो । एवं तरिहि एदं चेव  
उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमिदि गेणहामो त्ति भणिदे ण एवं पि घेतुं सकिज्जदे, जवमज्झस्स  
हेट्ठिमगाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमसंखेज्जगुणत्तोवएसस्स  
उवरिमसुत्तसिद्धस्स एत्थाणुववत्तीदो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमेदम्मि पक्खे  
सरिसत्तदंसणादो त्ति ।

§ २८८. पुणो संपहियविरलणाए अद्धं विरलेयूण जहण्णट्ठाणजीवपमाणं  
समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ विरलणरूवं पडि एगेगजीवपमाणं पावइ । पुणो एदिस्से  
विरलणाए अद्धमेत्तजीवेसु समयविरोहेण परिहाविदेसु तत्तो अण्णं दुगुणहाणिट्ठाण-  
मुप्पज्जइ । पुणो इमं विरलणमद्धं करिय जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो अद्धमेत्तणिरुद्धट्ठाण-  
जीवेसु समखंडं करिय दिण्णेषु विरलणरूवं पडि एगेगजीवपमाणं पावइ । एत्थ वि  
समयाविरोहेण असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणं गंतूणेगेगजीवपरिहाणिं कादूण आणिज्जमाणे  
संपहियविरलणाए अद्धमेत्तजीवेसु परिहीणेषु अण्णं दुगुणहाणिट्ठाणमुप्पज्जइ । एवमेदीए  
दिसाए गुणहाणिं पडि विरलणमद्धं कादूण णेदव्वं जाव जवमज्झछेदणयाणमसंखेज्ज-  
भागमेत्तगुणहाणीओ उवरि गंतूणुकस्सट्ठाणजीवपमाणमवट्ठिदं त्ति । णवरि उक्कस्सट्ठाणे  
वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा जहा होंति तहा कायव्वं, अण्णहा

विरलनकर और विरलित राशिके प्रत्येक एकपर समान खण्ड करके देयरूपसे देकर यदि  
देखते हैं तो एक-एकका एक जीवसम्बन्धी कालका प्रमाण होकर प्राप्त होता है । किन्तु यह  
प्रकृतमें विचक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रकारकी वृद्धि अत्यन्त असम्भव होनेसे प्रतिषिद्ध है ।  
यदि ऐसा है तो उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके इस प्रमाणको ही ग्रहण करते हैं ऐसा कथन करनेपर  
ऐसा ग्रहण करना भी शक्य नहीं है, क्योंकि यवमध्यकी अधस्तन ( पूर्ववर्ती ) नाना गुणहानि-  
शलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके असंख्यातगुणेरूप उपदेशकी यहाँ अनुवृत्ति  
है, जो उपदेश आगे कहे जानेवाले सूत्रसे सिद्ध है तथा अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-  
शलाकाओंके पक्षमें सदृश देखी जाती हैं ।

§ २८८. पुनः साम्प्रतिक विरलनसे आधेका विरलनकर विरलित राशिके प्रत्येक एक-  
पर जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर वहाँ प्रत्येक विर-  
लनके प्रति एक-एक जीवका प्रमाण प्राप्त होता है । पुनः इस विरलनके अर्धभागप्रमाण  
जीवोंके आगमके अनुसार घटानेपर वहाँसे अन्य द्विगुणहानिस्थान उत्पन्न होता है । पुनः  
इस विरलनको आधा करके जघन्य स्थानके जीवोंसे अर्धभागमात्र रुके हुए स्थानके जीवोंको  
समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति एक-एक जीवका प्रमाण प्राप्त होता है । यहाँपर  
भी आगमानुसार असंख्यात लोकप्रमाण अध्वान जाकर एक-एक जीवकी परिहानि करके  
लानेपर साम्प्रतिक विरलनसे अर्धमात्र जीवोंके हीन होनेपर अन्य द्विगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न  
होता है । इस प्रकार इस विधिसे प्रत्येक गुणहानिके प्रति विरलनको आधा करके यवमध्यके  
अर्धच्छेदोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण गुणहानि ऊपर जाकर उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण  
अवस्थित होनेतक ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थानमें भी जिस प्रकार

पुव्वाइरियसंपदायविरोहप्पसंगादो । एवं संजादे एगो चैव जीवो सव्वत्थ अहिओ ऊणो वा होइ, हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ च असंखेज्जगुणाओ भवंति । गुणहाणिअद्धानं पि सव्वत्थ सरिसमेव संजादं, गुणहाणि-सलागाओ च सव्वसमासेणावलियासंखेज्जदिभागमेत्ताओ जादाओ । सव्वेसु ट्ठानेसु जीवा पादेकमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता च जादा त्ति सव्वमेदं घडदे । एत्तियं पुण ण संजादं सव्वत्थावट्ठिदो भागहारो होदि त्ति जहण्णट्ठानसरिसजीवपमाणादो उवरिम-भागहारस्स अद्दक्कमेण परिहाणिदंसणादो होदु णामेदमणवट्ठिदभागहारत्तं, इच्छिज्ज-माणत्तादो च । ण च सव्वत्थावट्ठिदो चैव भागहारो त्ति संपदायो अत्थि, तद्धानुव-लंभादो । तदो जवमज्झादो हेट्ठा सव्वत्थ जहण्णट्ठानजीवपमाणो अवट्ठिदभागहारो जवमज्झादो उवरि वि जाव जहण्णट्ठानजीवपमाणं पावइ ताव जहण्णट्ठानजीवपमाणादो दुगुणमेत्तो अवट्ठिदभागहारो । तत्तो परमणवट्ठिदो भागहारो अद्दक्कमेण हीयमाणो मच्छइ त्ति एसो एत्थ परमत्थो ।

§ २८९. अथवा जवमज्झादो हेट्ठा उवरि वि सव्वत्थ उक्कस्सट्ठानजीवमेत्तो अवट्ठिदभागहारो त्ति घेत्तण परंपरोवणिधा जाणिय णेदव्वा, तद्दा परूवणे कीरमाणे गुण-वट्ठि-हाणिअद्धानाणं हेट्ठिमोवरिमाणमवट्ठिदभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो सव्वत्था-वट्ठिदभागहारब्भुवगमस्स वि एदम्मि पक्खे अविस्वाददंसणादो । संपहि जवमज्झादो

आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं उस प्रकार करना चाहिए, अन्यथा पूर्वाचार्यों-का जो सम्प्रदाय चला आ रहा है उसके साथ विरोध होनेका प्रसंग प्राप्त होता है । ऐसा होनेपर सर्वत्र एक ही जीव अधिक या कम होता है और अधस्तन गुणहानिशलाकाओंकी अपेक्षा उपरिम गुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी बन जाती हैं, सर्वत्र गुणहानिअध्वान भी सदृश ही प्राप्त होता है, गुणहानिशलाकाएँ सब मिलाकर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाती हैं तथा सब स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानमें जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाते हैं । इस प्रकार यह सब विधि बन जाती है । किन्तु सर्वत्र अवस्थित भागहार ही होता है यह बात नहीं बनती, क्योंकि जघन्य स्थानके सदृश जीवोंके प्रमाणसे उपरिम भागहारकी अर्ध-अर्ध भागके क्रमसे हानि देखी जाती है तथा यह अनवस्थित भागहार होओ, क्योंकि यह इष्ट है । तथा सर्वत्र अवस्थित ही भागहार है ऐसा सम्प्रदाय नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता । इसलिए यवमध्यसे पूर्व सर्वत्र जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणवाला अवस्थित भागहार है तथा यवमध्यके ऊपर भी जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणके प्राप्त होने तक जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणसे दूना अवस्थित भागहार है । इसके आगे अनवस्थित भागहार आवे-आधेके क्रमसे हीन होता जाता है इस प्रकार यहाँपर परमार्थ है ।

§ २८९. अथवा यवमध्यसे पहले और आगे भी सर्वत्र उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाण-वाला अवस्थित भागहार है ऐसा ग्रहण करके परंपरोपनिधाको जानकर ले जाना चाहिए, क्योंकि उस प्रकार प्ररूपणा करनेपर अधस्तन और उपरिम गुणवृद्धिअध्वान और गुणहानि अध्वानकी अवस्थितरूपसे सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है तथा इस पक्षके स्वीकार करनेपर सर्वत्र अवस्थित भागहारका स्वीकार अविस्वादरूपसे देखा जाता है । अब यवमध्यसे

हेट्टिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमियत्तावहारणद्धं सुत्तमुत्तरमोइण्णं—

\* जवमज्झजीवाणं जत्तियाणि अद्धच्छेदणाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्टा जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि । तेसिमसंखेज्जभागमेत्ताणि उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि ।

§ २९०. एदेण सुत्तेण हेट्टिमणाणागुणहाणिसलागाहितो उवरिमणाणागुण-हाणिसलागाणमसंखेज्जगुणत्तं सूचिदं । संपहि एत्थ जवमज्झच्छेदणासु अणवगएसु तेहितो जवमज्झादो हेट्टिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणावहारणं कादुं ण सक्किज्झइ त्ति जवमज्झच्छेदणयाणमेव पमाणाणिण्णयं ताव कस्सामो । तं जहा—जवमज्झजीवपमाणमुक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति सुत्ते णिदिट्ठं, सो वुण आवलियाए असंखेज्जदिभागो जइ वि जिणदिट्ठभावेण घेत्तव्वो, तो वि जहण्णपरित्ता-संखेज्जेणावलियाए ओवट्ठिदाए तत्थ भागलद्धमेत्ता जवमज्झजीवा होंति त्ति सव्वुकस्स-मावलियाए असंखेज्जदिभागं घेत्तूण तच्छेदणएहितो जवमज्झहेट्टिमोवरिमणाणागुण-हाणिसलागाणं पमाणसाहणमेवमणुगंतव्वं । तं कथं ? जहण्णपरित्तासंखेज्जयं विरले-यूणावलियाए समखंडं कादूण दिण्णाए रूवं पडि जहण्णपरित्तासंखेज्जपमाणं पावइ ।

अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणको निश्चित करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* यवमध्यवर्ती जीवोंके जितने अर्धच्छेद होते हैं उनके असंख्यातवें भाग-प्रमाण यवमध्यके अधस्तन ( पूर्ववर्ती ) गुणहानिस्थानान्तर होते हैं तथा उनके ( अर्धच्छेदोंके ) असंख्यात बहुभागप्रमाण यवमध्यके उपरितन गुणहानिस्थानान्तर होते हैं ।

§ २९०. इस सूत्रद्वारा अधस्तन गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानि-शलाकाएँ असंख्यातगुणी सूचित की गई हैं । अब यहाँपर यवमध्यके अर्धच्छेदोंके अवगत न होनेपर उनसे यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका प्रमाण निश्चित करना शक्य नहीं है, इसलिए यवमध्यके अर्धच्छेदोंके ही प्रमाणका निर्णय सर्वप्रथम करेंगे । यथा—यवमध्यके जीवोंका प्रमाण उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है इस प्रकार सूत्रमें निर्देश किया है । परन्तु उस आवलिके असंख्यातवें भागको यद्यपि जैसा जिनदेवने देखा हो वैसा लेना चाहिए तो भी जघन्य परीतासंख्यातसे आवलिके भाजित करनेपर वहाँ जो भाग लब्ध आवे उतने यवमध्यके जीव होते हैं, इसलिए आवलिके सबसे उत्कृष्ट असंख्यातवें भागको ग्रहणकर उनके अर्धच्छेदोंके द्वारा यवमध्यके अधस्तन और उपरितन गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणकी सिद्धि होती है ऐसा जान लेना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—जघन्य परीतासंख्यातका विरलनकर उस विरलित राशिपर आवलिके असंख्यातवें भागको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर प्रत्येक एक विरलनके प्रति जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण प्राप्त होता है ।

कुदो एदं णव्वदे ? जहणपरित्तासंखेज्जयं विरलेदूण रूवं पडि तमेव दादूण वग्गिद-  
संवग्गिदकदे आवलिया समुप्पज्जति त्ति परियम्मवयणादो । पुणो एत्थेगुरूवधरिदं  
मोत्तूण सेससव्वरूवधरिदजहणपरित्तासंखेज्जेसु अण्णोण्णव्वत्थेसु जवमज्झजीवपमाणं  
होइ । एवं होदि त्ति कादूण एदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागस्स छेदणयाणि  
उकस्ससंखेज्जविरलणमेत्तजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणएसु समुदिदेसु भवंति । जहण-  
परित्तासंखेज्जच्छेदणहिं परिहीणावलियच्छेदणेषु गहिदेसु जवमज्झच्छेदणयाणि  
समुप्पज्जति त्ति भणिदं होइ ।

§ २९१. संपहि एत्थेव एगरूवधरिदजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीओ हेट्ठिम-  
णाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेत्तव्वं । सेसरूवणुकस्ससंखेज्जविरलणमेत्तरूवोवरि  
ट्ठिदजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयाणि च घेत्तूणुवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ हीति त्ति  
गहेयव्वं । एवं च घेत्तमाणे हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणि-  
सलागाओ संखेज्जगुणाओ चेव जादाओ, णासंखेज्जगुणाओ । ण चेदमिच्छिज्जदे, हेट्ठिम-  
णाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ त्ति  
पदुप्पायणपरेणेदेण सुत्तेण सह विरोहादो । तदो णेदं घडदि त्ति ? सच्चमेवेदं, जहण-  
परित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीसु हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागासु घेत्तमाणीसु उवरिमणाणा-

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि जघन्य परीतासंख्यातका विरलनकर विरलित राशिके प्रत्येक  
एकपर उसी राशिको देकर वर्गित-संवर्गित करनेपर आवलि उत्पन्न होती है इस परिकर्मके  
वचनसे जाना जाता है ।

पुनः यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त राशिको छोड़कर शेष सब अंकोंके प्रति प्राप्त जघन्य  
परीतासंख्यातोंके परस्पर गुणित करनेपर यवमध्यके जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है । इस  
प्रकार होता है ऐसा समझकर आवलिके इस असंख्यातवें भागके अर्धच्छेद उत्कृष्ट संख्यातके  
विरलनप्रमाण जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंमें मिलानेपर होते हैं । जघन्य परीता-  
संख्यातके अर्धच्छेदोंसे हीन आवलिके अर्धच्छेदोंके ग्रहण करनेपर यवमध्यके अर्धच्छेद  
उत्पन्न होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ २९१. अब इन्हींमेंसे एक अंकके प्रति प्राप्त जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण  
अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए तथा एक अंक कम  
करके शेष उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण विरलनोंके प्रति प्राप्त जघन्य परीतासंख्यातोंके अर्धच्छेदोंको  
ग्रहण कर उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए । और इस  
प्रकार ग्रहण करनेपर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ  
संख्यातगुणी ही होती हैं, असंख्यातगुणी नहीं ।

शंका—परन्तु यह इष्ट नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वीकार करनेपर इस कथनका अधस्तन  
नाना गुणहानिशलाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी होती हैं इस प्रकार  
कथन करवाले इस सूत्रके साथ विरोध आता है, इसलिए यह घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कहना सत्य है, क्योंकि जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण

गुणहाणिसलागाणं तत्तो संखेज्जगुणत्तं मोत्तूण णासंखेज्जगुणत्तसंभवो त्ति । किंतु रूवूणजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीओ हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेत्तूण पयदत्थसमत्थणा कायव्वा, तथा घेप्पमाणे उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमसंखेज्जगुणत्तसंभवदंसणादो । तं कथं ? उक्कस्ससंखेज्जयं विरलेयूण पुव्वुत्तपमाणजवमज्जच्छेदणएसु समखंडं कादूण दिण्णेषु रूवं पडि जहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयपमाणं होदूण पावइ । पुणो एत्थ सव्वरूवधरिदेसु एगेगरूवमवणिय पुध डुवेयव्वं । एवं ठविदे विरलणरूवं पडि अवणिदसेसाणि रूवूणजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तरूवाणि जादाणि । सव्वरूवधरिदेसु अवणिदरूवाणि वि एकदो मेलविदाणि उक्कस्ससंखेज्जमेत्ताणि जादाणि । पुणो एदाणि रूवूणजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणएहिं भागं घेत्तूण भागलद्धसंखेज्जरूवाणि पुव्विल्लुककस्ससंखेज्जविरलणाए पासे विरलिय तेसु रूवेसु समखंडं करिय दिण्णेषु संपहियविरलणाए वि रूवं पडि रूवूणजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्ताणि रूवाणि लद्धाणि । संपहि एत्थेगरूवधरिदरूवूणजहणपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीओ हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ संपहियरूवधरिदमेत्तीओ दुरुवूणादिविरलणरूवधरिदमेत्तीओ च उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति गहेयव्वं । एवं गहिदे हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहितो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ णिस्संसयमसंखेज्जगुणओ

अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंके ग्रहण करनेपर उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ उनसे संख्यातगुणी होती हैं इसे छोड़कर उनका असंख्यातगुणा होना सम्भव नहीं है । किन्तु एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर प्रकृत अर्थका समर्थन करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकारसे ग्रहण करनेपर उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका असंख्यातगुणा होना सम्भव देखा जाता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट संख्यातका विरलनकर पूर्वोक्त प्रमाण यवमध्यके अर्धच्छेदोंको समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर प्रत्येक एकके प्रति जघन्य परीतासंख्यात अर्धच्छेदोंका प्रमाण प्राप्त होता है । पुनः यहाँपर सब अंकोंके प्रति प्राप्त राशिमेंसे एक-एक अंकको निकालकर पृथक् स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार स्थापित करनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति निकालनेके बाद शेष संख्या एक कम जघन्य परीतासंख्यात अर्धच्छेदप्रमाण अंकवाली हो जाती है । सब अंकोंके प्रति प्राप्त निकाले गये अंक भी एकत्र मिलानेपर उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण हो जाते हैं । पुनः इन्हें एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंसे भाजितकर भाग करनेसे जो संख्यात अंक लब्ध आवें उनको पहलेके उत्कृष्ट संख्यातसम्बन्धी विरलनके पास विरलितकर उन अंकोंके समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर साम्प्रतिक विरलनके प्रत्येक एकके प्रति एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अंक प्राप्त होते हैं । अब यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अधस्तन नानागुणहानिशलाकाएँ होती हैं और साम्प्रतिक अंकोंके प्रति रखी गई संख्याप्रमाण और दो अंक कम आदि विरलनके अंकोंके प्रति प्राप्त संख्याप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । ऐसा ग्रहण करनेपर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे

जादाओ । किं कारणं ? संखेज्जरूवम्भहियजहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तरूवाणमेत्थ गुणगार-  
सरूवेण पउत्तिदंसणादो । एवमेदीए दिसाए जहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयाणि दुरूवूण-  
तिरूवूणादिक्रमेण परिहाविय हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणाणुगमो समयविरोहेण  
कायन्वा जाव तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ताओ जादाओ त्ति । तदो हेट्ठिमणाणागुणहाणि-  
सलागाओ संखेज्जाओ होदूण उवरिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो असंखेज्जगुणहीणाओ  
त्ति सिद्धं ।

§ २९२. एवं ताव जवमज्झच्छेदणयाणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ हेट्ठिमणाणा-  
गुणहाणिसलागाओ तेसिमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ च उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ  
त्ति एदमत्थं परूविय संपहि एवंविहणाणागुणहाणिसलागाओ धरेदूण जहण्णुकस्सट्ठाण-  
जीवपमाणिण्णयं कस्सामो । तं जहा—जवमज्झादो हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ  
विरलिय विगं करिय अण्णोण्णम्भत्थे कदे जहण्णपरित्तासंखेज्जस्स अट्ठमुप्पज्जइ ।  
पुणो एदेणण्णोण्णम्भत्थरासिणा जवमज्झजीवे ओवट्ठिदेसु रूवूणुकस्ससंखेज्जमेत्तजहण्ण-  
परित्तासंखेज्जयाणि अण्णोण्णम्भत्थाणि कादूण दुगुणमेत्तं लट्ठपमाणं होदि । एदं  
चेव जहण्णट्ठाणजीवपमाणमिदि घेत्तव्वं ।

§ २९३. संपहि उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणे आणिज्जमाणे तत्थ ता वपुञ्चुत्तविरलणाए  
दोरूवधरिदच्छेदणएहिं परिहीणजवमज्झच्छेदणयमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ

उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ निःशंसय असंख्यातगुणी हो जाती हैं, क्योंकि संख्यात अंक  
अधिक जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण अंकोंकी यहाँपर गुणकाररूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है ।  
इस प्रकार इस पद्धतिसे जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंको दो अंक कम, तीन अंक कम  
आदिके क्रमसे घटाकर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणका अनुगम तत्प्रायोग्य  
संख्यातप्रमाण संख्याके प्राप्त होने तक आगमानुसार करना चाहिए । अतः अधस्तन नाना  
गुणहानिशलाकाएँ संख्यात होकर वे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंसे असंख्यातगुणी हीन  
होती हैं यह सिद्ध हुआ ।

§ २९२. इस प्रकार सर्वप्रथम यवमध्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण  
अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ और उन्हीं अर्धच्छेदोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण उपरिम  
नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं इस प्रकार इस अर्थका कथनकर अब इस प्रकारसे नाना  
गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणका निर्णय करते  
हैं । यथा—यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंका विरलनकर और विरलित  
राशिके प्रत्येक एकको दूनाकर परस्पर गुणा करनेपर जघन्य परीतासंख्यातका अर्धभाग उत्पन्न  
होता है । पुनः इस अन्योन्य अभ्यस्त राशिद्वारा यवमध्यके जीवोंके भाजित करनेपर जो लब्ध  
आता है वह एक कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण जघन्य परीतासंख्यातको परस्पर गुणितकर जो  
लब्ध आवे उससे दूना होता है । यही जघन्य स्थानके जीवोंका प्रमाण है ऐसा ग्रहण करना  
चाहिए ।

§ २९३. अब उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको लानेपर वहाँ सर्व प्रथम पूर्वोक्त  
विरलनके दो अंकोंके प्रति प्राप्त अर्धच्छेदोंसे हीन यवमध्यके अर्धच्छेदप्रमाण उपरिम नाना

त्ति घेत्तूण तासिमण्णोण्णम्भत्थरासिणा जवमज्झजीवेसु पुव्वुत्तपमाणेसु ओवट्ठिदेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जवग्गस्स चउम्भागेत्तमुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमागच्छइ । अह जइ तिरूवूणविरलणरूवधरिदमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेप्पति तो तासिमण्णोण्णम्भत्थरासिणा जवमज्झट्ठाणजीवेसु भाजिदेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जघणस्स अट्टमभागमेत्तमुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमागच्छइ । एवं णेदव्वं जाव तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवधरिदच्छेदणएहिं परिहीणजवमज्झच्छेदणयमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ जादाओ त्ति एवमेदेसु वियप्पेसु जिणदिट्ठभावेणुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं गहेयव्वं । अदो चेय उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा त्ति एदं पि सुत्तं संदिट्ठिपमाणं कादूण वक्खाणिदमिदि ण किंचि विरुज्झदे । तदो जवमज्झ-जीवाणं जत्तियाणि अट्टच्छेदणयाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणि-ट्ठाणंतराणि तेसिमसंखेज्जाभागमेत्ताणि च उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि त्ति सिद्धं ।

§ २९४. एत्थ परूवणा पमाणमप्पावहुअं चेदि तीहिं अणियोगहारेहिं णाणेग-गुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरसलागाणमणुगमो कायव्वो । तत्थ परूवणदाए अत्थि एगजीव-दुगुणहाणिट्ठाणंतरं णाणाजीवदुगुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ च पमाणमेगगुणवट्ठि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जा लोगा, णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ आवलियाए असंखेज्जदि-

गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे पूर्वोक्त प्रमाण यवमध्य-सम्बन्धी जीवोंके भाजित करनेपर जघन्य परीतासंख्यातके वर्गके चौथे भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थानसम्बन्धी जीवोंका प्रमाण आता है । और यदि तीन अंक कम विरलनकी जितनी संख्या है तत्प्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ हैं ऐसा ग्रहण करते हैं तो उनकी अन्योन्या-भ्यस्त राशिद्वारा यवमध्यके जीवोंके भाजित करनेपर जघन्य परीतासंख्यातके घनके आठवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थानसम्बन्धी जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है । इस प्रकार विरलनके तत्प्रायोग्य संख्यात अंकोंके प्रति प्राप्त अर्धच्छेदोंसे हीन यवमध्यके अर्धच्छेदप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार इन विकल्पोंमें जिनेन्द्र देवने जैसा देखा हो उसके अनुसार उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ग्रहण करना चाहिए । और इसीलिए उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें दो जीव हैं इस प्रकार इस सूत्रका भी संदृष्टिका प्रमाण करके व्याख्यान किया है, इसलिए कुछ भी विरुद्ध नहीं है । अतः यवमध्यके जीवोंके जितने अर्धच्छेद होते हैं उनके असंख्यातवें भागप्रमाण यवमध्यके अधस्तन गुणहानिस्थानान्तर होते हैं और उनके असंख्यात बहुभागप्रमाण यवमध्यके उपरिम गुणहानिस्थानान्तर होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

§ २९४. यहाँपर प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारोंके आलम्बन-द्वारा नाना और एक गुणवृद्धिशलाकाओं और गुणहानिशलाकाओंका अनुगम करना चाहिए । उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा एक जीवद्विगुणहानिस्थानान्तर और नाना जीवद्विगुणहानि-स्थानान्तर शलाकाएँ हैं । प्रमाण—एक गुणवृद्धि और गुणहानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण है तथा नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अल्प-



भागो । अप्पावहुअं सव्वत्थोवा णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ । एयदुगुणवट्ठि-  
हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । एवं परंपरोवणिधा-  
संबंधेण जवमज्झादो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमियत्तावहारणं कादूण संपहि  
तसजीवविसयमेदं जवमज्झं पदुप्पणमिदि णिगमणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

\* एवं पदुप्पणं तसाणं जवमज्झं ।

§ २९५. जमेदमणंतरपरुविदं जवमज्झं तं तसाणं पदुप्पणं तसजीवे अहिकरिय  
परुविदमिदि वुत्तं होइ । एइदिएसु एसा जवमज्झपरुवणा किण्ण होइ ? ण, तत्थ  
थावरपाओग्गकसायुदयट्ठाणेसु एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे तेसिमणंतसंखावच्छिण्णाण-  
मण्णारिसेण जवमज्झसणिवेसेणावट्ठाणदंसणादो । तदो जत्थ विरहिदाविरहिदट्ठाणसंभवो  
तत्थेव तसजीवविसये जवमज्झमेदं पदुप्पणमिदि सुसंबद्धमभिहिदं । अथवा पुव्वसुत्तेण  
जवमज्झादो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणपरिच्छेददुवारेण जहण्णुकस्स-  
ट्ठाणजीवाणं पमाणं परुविदं ।

§ २९६. संपहि जहण्णुकस्सट्ठाणजीवेहितो जवमज्झजीवपमाणसाहणट्ठमिदं  
सुत्तमोइण्णमिदि वक्खाणेयव्वं । तं जहा—एदमणंतरपरुविदजहण्णुकस्सट्ठाण-  
जीवपमाणं जहाकमं हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा

बहुत्व—नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ सबसे थोड़ी हैं । उनसे एक द्विगुणवृद्धि और  
द्विगुणहानिस्थानान्तरशलाका असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार  
है । इस प्रकार परंपरोपनिधाके सम्बन्धसे यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-  
शलाकाओंकी संख्याका अवधारणकर अब यह यवमध्य त्रसजीवविषयक कहा गया है इस  
बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

\* इस प्रकार त्रसजीवोंके कषाय-उदयस्थान-सम्बन्धी यवमध्य उत्पन्न हो जाता है ।

§ २९५. जिस यवमध्यका पहले कथन कर आये हैं उसका त्रसजीवोंको अधिकृतकर  
'पदुप्पणं' अर्थात् कथन किया यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंमें यह यवमध्यप्ररूपणा क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ स्थावरोंके योग्य कषाय उदयस्थानोंमेंसे एक-एक  
कषाय-उदयस्थानमें उनकी संख्या अनन्त होती है, इसलिए उनके यवमध्यकी रचनाका  
अवस्थान विसदृशरूपसे देखा जाता है, इसलिए जहाँपर जीवोंसे रहित और जीवोंसे युक्त  
स्थान सम्भव हैं वहीं त्रसजीवविषयक यह यवमध्य उत्पन्न हुआ है यह सुसम्बद्ध कहा है ।  
अथवा पूर्व सूत्रद्वारा यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणका  
निर्णय करके उस द्वारा जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण कहा गया है ।

§ २९६. अब जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंसे यवमध्यके जीवोंके प्रमाणको सिद्ध  
करनेके लिये यह सूत्र आया है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए । यथा—यह अनन्तर कहा गया  
जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण क्रमसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-  
शलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे 'पदुप्पणं' अर्थात् गुणित होकर त्रसजीवोंका यवमध्य

पदुप्पण्णं गुणिदं संतं तसाणं जवमज्झं होइ । जहण्णुकस्सट्ठाणजीवपमाणं जहाकमं दोसु उद्देसेसु इविय तत्थ जहण्णट्ठाणजीवपमाणे हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागमेत्तवारं दुगुणगुणगारेण गुणिदे उवरिमणाणागुणहाणिसलागमेत्तवारं च उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणे दुगुणगुणगारेण गुणिदे जवमज्झट्ठाणजीवपमाणमुप्पज्जदि त्ति वुत्तं होइ । अह्वा एदं जवमज्झछेदणयपमाणमणूणाहियं घेत्तूण विरलिय विगं कादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे जवमज्झट्ठाणजीवपमाणमुप्पज्जदि त्ति एदस्स सुत्तस्सत्थो परूवेयव्वो, पदुप्पण्णसहस्स गुणगारपञ्जायत्तेण रूढस्स इह ग्गहणादो । एवमणंतर-परंपरोवणिधाभेयभिण्णसेट्ठि-परूवणा समत्ता ।

§ २९७. संपहि एदेणेव सुत्तपबंधेण सूचिदो अवहारो भागाभागो च जाणिय पेदव्वो । तदो अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवा उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जीवा । जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिं परिहीणुवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भ-रासिगुणगारो त्ति जमुत्तं होइ । जवमज्झजीवा संखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स अट्ठमेत्तो चउब्भागमेत्तो अट्ठभागमेत्तो तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवमेत्तो वा । कुदो एदं णव्वदे ? जहण्णट्ठाणादो उवरि रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्ज-

होता है । जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको क्रमसे दो स्थानोंमें स्थापितकर वहाँ जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणको अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंका जो प्रमाण है उतनी बार द्विगुण गुणकारसे गुणित करनेपर तथा उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका जो प्रमाण है उतनी बार उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको द्विगुणगुणकारसे गुणित करनेपर यवमध्यके जीवोंका प्रमाण उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा यवमध्यके अर्धच्छेदोंके इस प्रमाणको न्यूनाधिकतासे रहितरूपसे ग्रहणकर और उसका विरलनकर तथा विरलनके प्रत्येक एकको दूनाकर परस्पर गुणा करनेपर यवमध्यस्थानके जीवोंका प्रमाण उत्पन्न होता है इस प्रकार इस सूत्रके अर्थका कथन करना चाहिए, क्योंकि 'पदुप्पण्ण' शब्दको 'गुणकार' अर्थमें रूढरूपसे यहाँ ग्रहण किया है । इस प्रकार अनन्तरोपनिधा और परस्पररोपनिधाके भेदरूप श्रेणिप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ २९७ अब इसी सूत्र प्रबन्धद्वारा सूचित हुए अवहार और भागाभागका जानकर कथन करना चाहिए । उसके बाद अल्पबहुत्व है—उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे जघन्य कषाय उदयस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है । अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे हीन उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंको अन्योन्याभ्यस्त राशि गुणकार है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनसे यवमध्यके जीव संख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? जघन्य परीतासंख्यातका अर्धभागप्रमाण, चतुर्थभागप्रमाण, अष्टम भागप्रमाण अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात अंक-प्रयाण है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—जघन्य स्थानसे ऊपर एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंसे लेकर

छेदणयमादिं कादूण जाव तप्पाओग्गसंखेज्जरुवमेत्ताओ जवमज्झादो हेट्ठिमणाणागुणहाणि-  
सलागाओ जिणदिट्ठभावेण घेत्तव्वाओ त्ति परमगुरुवएसादो । जवमज्झादो हेट्ठिमजीवा  
असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो, किंचूणदिवट्ठ-  
गुणहाणिट्ठाणंतरमिदि वुत्तं होइ । जवमज्झादो उवरिमजीवा विसेसाहिया । सुगममेत्थ  
कारणं । सन्वेसु ट्ठाणेषु जीवा विसेसाहिया, हेट्ठिमट्ठाणजीवाणमेत्थ पवेसदंसणादो ।  
एवमप्पाब्रहुए परूविदे कसायुदयट्ठाणेषु तसाणमोषेण विरहिदाविरहिदट्ठाणपरूवणाणुगया  
जवमज्जपरूवणा समत्ता भवदि । एत्तो णिरयादिगदीणं पादेक्कं णिरुभणं कादूण  
तसाणमादेसपरूवणा च जहागममणुगंतव्वा ।

\* एसा सुत्तविहासा ।

§ २९८. सत्तमीए गाहाए पुरिमद्वसुत्तस्स एसा अत्थविहासा कया त्ति  
वुत्तं होइ ।

\* सत्तमीए गाहाए पढमस्स अद्धस्स अत्थविहासा समत्ता भवदि ।

§ २९९. सुगमं ।

\* एत्तो विदियद्धस्स अत्थविहासा कायव्वा ।

§ ३००. सुगममेदं पइण्णावक्कं ।

तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ जितनी जिनेन्द्र-  
देवने देखी हों उस रूपसे ग्रहण करनी चाहिए ऐसा परमगुरुका उपदेश है ।

उनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवें  
भागप्रमाण गणकार है । कुछ कम डेढ़ गुणहानिस्थानान्तरप्रमाण गुणकार है यह उक्त कथन-  
का तात्पर्य है । उनसे यवमध्यसे उपरिम जीव विशेष अधिक हैं । यहाँपर कारणका कथन  
सुगम है । उनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं, क्योंकि इनमें अधस्तन स्थानोंके  
जीवोंका प्रवेश देखा जाता है । इस प्रकार अल्पबहुत्वका कथन करनेपर कषाय उदयस्थानोंमें  
ओघसे त्रसजीवोंसे रहित और सहित स्थानोंकी प्ररूपणासे अनुगत यवमध्यप्ररूपणा समाप्त  
होती है । आगे नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिको विवक्षित कर त्रसजीवोंकी आदेशप्ररूपणा  
भी आगमानुसार जान लेनी चाहिए ।

\* यह गाथासूत्रकी अर्थविभाषा है ।

§ २९८. सातवीं गाथासूत्रके पूर्वार्धकी यह अर्थविभाषा की यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

\* इस प्रकार सातवीं गाथाके प्रथम अर्धभागकी अर्थविभाषा समाप्त होती है ।

§ २९९. यह सुगम है ।

\* अब आगे दूसरे अर्धभागकी अर्थविभाषा करनी चाहिए ।

§ ३००. यह प्रतिज्ञावाक्य सुगम है ।

\* तं जहा ।

§ ३०१. एदं पि सुगमं ।

\* पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा त्ति एत्थ तिण्णि सेढीओ ।

§ ३०२ एदस्स गाहापच्छद्धस्स अत्थविहासणद्धमेत्थ तिण्णि सेढीओ अप्पाबहुअ-संबंधिणीओ णादव्वाओ त्ति भणिदं होइ । कथं पुण गाहापच्छद्धमेदं तिविहाए सेढीए अप्पाबहुअपरुवणम्मि पडिबद्धमिदि चे ? वुच्चदे, तं जहा—एत्थतणसमयसहो ण कालवाचओ, किंतु ववत्थावाचओ घेतव्वो । तेण पढमसमयोवजुत्तेहिं त्ति वुत्ते पढमादियाए सेढीए गहणं कायव्वं, पढमकसायादियाए ववत्थाए परिणदेहिं जीवेहिं एया अप्पाबहुअसेढी णायव्वा त्ति सुत्तत्थावलंबणादो । एवं चरिमसमये च बोद्धव्वा त्ति एदेण वि चरिमादियाए सेढीए संगहो कायव्वो, चरिमकसायादियाए ववत्थाए अण्णा अप्पाबहुअसेढी बोद्धव्वा त्ति तदत्थावलंबणादो । जेणेदाओ दो वि सेढीओ देसामासयभावेण पयद्वाओ तेण विदियादिया वि सेढी एत्थेवंतब्भूदा त्ति गहेयव्वा । अथवा सम्यगीयते प्राप्यते इति समयः संपरायः कसार्य इत्येकोऽर्थः । प्रथमश्चासौ समयश्च

\* वह जैसे ।

§ ३०१. यह सूत्रवचन भी सुगम है ।

\* प्रथमादिका श्रेणि या प्रथम आदि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके द्वारा और अन्तिमादिका श्रेणि या अन्तिमादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंकेद्वारा अल्पबहुत्व जानना चाहिए । इस प्रकार प्रकृतमें तीन श्रेणियाँ कही गई हैं ।

§ ३०२. गाथाके इस उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये यहाँपर अल्प-बहुत्वसे सम्बन्ध रखनेवाली तीन श्रेणियाँ जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—गाथाका यह उत्तरार्ध तीन प्रकारकी श्रेणियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अल्प-बहुत्वके कथनमें कैसे प्रतिबद्ध है ?

समाधान—कहते हैं, यथा—इसमें आया हुआ 'समय' शब्द कालवाचक नहीं है, किन्तु व्यवस्थावाचक ग्रहण करना चाहिए । इसलिये 'पढमसमयोवजुत्तेहिं' ऐसा कहनेपर प्रथमादिका श्रेणिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रथम कषाय आदिरूप व्यवस्थासे परिणत हुए जीवोंके द्वारा एक अल्पबहुत्व श्रेणि जाननी चाहिए, इस प्रकार प्रकृतमें सूत्रार्थका अवलम्बन लिया है । इसी प्रकार 'चरिमसमए च बोद्धव्वा' इस प्रकार इस वचनद्वारा भी चरमादिका श्रेणिका संग्रह करना चाहिए, क्योंकि अन्तिम कषाय आदिरूप व्यवस्थामें अन्य अल्पबहुत्व श्रेणि जाननी चाहिए इस प्रकार उक्त वचनके अर्थका अवलम्बन लिया है । यतः ये दोनों ही श्रेणियाँ देशामर्षकभावसे प्रवृत्त हुई हैं, इसलिए द्वितीयादिका श्रेणि भी यहाँपर अन्तर्भूत है, अतः उसे भी ग्रहण करना चाहिए । अथवा जो 'स' सम्यकरूपसे 'ईयते' अर्थात्

प्रथमसमयः प्रथमकषाय इत्यर्थः । एवं चरिमसमय इत्यत्रापि बोद्धव्यं । शेषं पूर्ववद्व्याख्येयं । तदो कसायोवजुत्ताणं तीहिं सेठीहिं अप्पाबहुअपरुवणड्डुमेदं गाहापच्छदु-  
मोइण्णमिदि सिद्धं । एवमेदस्स गाहापच्छदुस्स पडिबद्धत्थपरुवणं कादूण संपहि  
ताओ काओ तिण्णि सेठीओ त्ति आसंकाए पुच्छासुत्तमुत्तरं भणइ—

\* तं जहा ।

§ ३०३. सुगमं ।

\* विदियादिया पढमादिया चरिमादिया ३ ।

§ ३०४. एवमेदाओ तिण्णि सेठीओ त्ति भणिदं होइ । का सेठी णाम ? सेठी  
पंती अप्पाबहुअपरिवाडि त्ति एयत्थो । तत्थ जम्मि अप्पाबहुअपरिवाडिम्मि माण-  
सण्णिदविदियकसायोवजुत्ते आदिं कादूण थोवबहुत्तपरिक्खा कीरदे सा विदियादिया  
णाम । सा वुण तिरिक्ख-मणुसेसु होइ, तत्थ माणोवजुत्ताणं थोवभावेण सच्चहेट्टिमत्त-  
दंसणादो । तहा जम्मि अप्पाबहुअपरिवाडिम्मि कोहसण्णिदपढमकसायोवजुत्ताणं थोव-  
भावेण पढमणिदेसेण पढमादिया णाम । सा वुण देवगदीए होइ, तत्थ कोहोवजुत्ताणं  
सच्चहेट्टिमत्तदंसणादो । तहा जम्मि थोवबहुत्तपरिवाडीए लोभसण्णिदचरिमकसायोव-

प्राप्त होता है वह समय अर्थात् सम्पराय-कषाय कहलाता है इस प्रकार समय शब्दका यह  
एक अर्थ है । तथा प्रथम जो समय वह प्रथम समय है । प्रथम कषाय यह उसका अर्थ है ।  
इसी प्रकार 'चरिमसयय' इस पदमें भी जानना चाहिए । शेष व्याख्यान पहलेके समान करना  
चाहिए । इसलिए कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका तीन श्रेणियोंद्वारा अल्पबहुत्वका कथन  
करनेके लिये गाथाका उत्तरार्ध आया है यह सिद्ध हुआ । इस प्रकार गाथाके इस उत्तरार्धसे  
सम्बन्ध रखनेवाले अर्थका कथनकर अब वे तीन श्रेणियाँ कौनसी हैं ऐसी आशंका होनेपर  
आगेके पृच्छासूत्रको कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ ३०३. यह सूत्रवचन सुगम है ।

\* द्वितीयादिका श्रेणि, प्रथमादिका श्रेणि और चरमादिका श्रेणि ३ ।

§ ३०४. इस प्रकार ये तीन श्रेणियाँ हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—श्रेणि किसे कहते हैं ?

समाधान—श्रेणि, पंक्ति और अल्पबहुत्वपरिपाटी ये तीनों पद एकार्थक हैं ।

उनमेंसे मानसंज्ञावाली दूसरी कषायसे उपयुक्त जिस अल्पबहुत्व परिपाटीसे लेकर  
अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह द्वितीयादिका परिपाटी कहलाती है । परन्तु वह  
तिर्यञ्चो और मनुयोंमें होती है, क्योंकि उनमें मानकषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका स्तोकभावसे  
सबसे अधस्तनपना देखा जाता है । तथा जिस अल्पबहुत्वपरिपाटीमें क्रोध संज्ञावाली प्रथम  
कषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका स्तोकपनेकी अपेक्षा प्रथम पदका निर्देश किया गया है वह  
प्रथमादिका परिपाटी कहलाती है । परन्तु वह देवगतिमें होती है । तथा जिस अल्पबहुत्व-  
परिपाटीमें लोभसंज्ञावाली अन्तिम कषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका सबसे स्तोकपना है वह



थोवो ति भणिदं होदि । कथं पुनः प्रवेशनशब्देन प्रवेशकालो गृहीतुं शक्यत इति नाशंकनीयम्, प्रविशन्त्यस्मिन् काले इति प्रवेशनशब्दस्य व्युत्पादनात् ।

\* कोहोवजुत्ताणं पवेसणं विसेसाहियं ।

§ ३०७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो । एवं माया-लोभोवजुत्ताणं एत्तो जहाकमेण पवेसणकालाणं विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं, सुत्तस्सेदस्स देसामाप्तयभावेण पयट्टत्तादो । जदो एवं पवेसणकालाणं माणादिपरिवाडीए विसेसाहिय-भावो तिरिक्ख-मणुसेसु तदो त्कालसंचिदमाणादिकसायोवजुत्ताणं पि तहाभावसिद्धि ति परिप्फुडमेवेदं विदियादियाए साहणमिदि सिद्धं, पवेसणकालाणुसारेण संचयसिद्धीए णाहयत्तादो । एदम्मि पुण पक्खे अवलंबिज्जमाणे 'एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो' ति उवरिमाणंतरसुत्तं ण घडदे, पवेसण-कालम्मि पलिदोवमासंखेज्जदिभागपडिभागियस्स विसेसस्स सव्वप्पणा संभवाणुव-लंभादो । तदो णेदं पवेसणकालाणमप्पाबहुअपरूवयं सुत्तं । किंतु कसायोवजोगद्वासु समयं पडि दुक्कमाणजीवाणं पवेसणस्स थोववहुत्तपरिक्खणट्टमेदं सुत्तमोइण्णं इदि घेत्तव्वं ।

§ ३०८. तं जहा—माणोवजुत्ताणं पवेसणं थोवं, कोहोवजुत्ताणं पवेसणं

पदोंको देखते हुए सबसे थोड़ा है ।

शंका—प्रवेशन शब्दसे प्रवेशकालका ग्रहण कैसे शक्य है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जिस कालमें जीव प्रवेश करते हैं इस प्रकार प्रवेशन शब्द प्रवेशकालके अर्थमें व्युत्पादित किया गया है ।

\* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक है ।

§ ३०७. विशेषका प्रमाण कितना है ? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार आगे मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक जान लेना चाहिए, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षकभावसे प्रवृत्त हुआ है । यतः इस प्रकार मान-कषायसे लेकर परिपाटी क्रमसे तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें प्रवेशकालका विशेष अधिकपना है, इसलिये उस कालमें संचित हुए मानादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी विशेष अधिकपनेकी सिद्धि स्पष्टरूपसे बन जाती है यह 'विदियादियाए साहणं' इस सूत्रसे स्पष्टरूपसे सिद्ध है, क्योंकि प्रवेशकालके अनुसार संचयकी सिद्धि न्यायप्राप्त है । परन्तु इस पक्षके अबलम्बन करनेपर 'यह विशेष एक उपदेशके अनुसार पत्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप है' इस प्रकार यह उपरिम अनन्तर सूत्र नहीं बनता है, क्योंकि प्रवेशकालमें पत्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप विशेष सब प्रकारसे उत्पत्ति नहीं बन सकती । इसलिए यह प्रवेशकालोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेवाला सूत्र नहीं है, किन्तु कषायोंके उपयोगकालोंके भीतर प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले जीवोंके प्रवेशके अल्पबहुत्वकी रक्षा करनेके लिये यह सूत्र आया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

§ ३०८. यथा—मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश सबसे थोड़ा है । उससे

विसेसाहियमिदि वुत्ते पढमसमये माणोवजुत्तो होदूण पविसमाणजीवरासीदो तम्मि चैव पढमसमये कोहोवजुत्तो होदूण पविसमाणजीवरासी विसेसाहिओ होदि त्ति अत्थो घेत्तव्वो । एवं विदियादिसमएसु वि दोण्हं कसायोवजुत्तरासीणं सण्णियासं कादूण णेदव्वं जाव चरिमसमयोवजुत्ता त्ति । णवरि माणोवजुत्ताणं चरिमसमयादो उवरि विसेसाहियमद्दाणं गंतूण कोहोवजुत्ताणं चरिमसमयो होदि त्ति वत्तव्वं । एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं । जेणेवं समयं पडि दुक्कमाणमाणोवजुत्तरासीदो पडिसमय-मुवक्कममाणकोहोवजुत्तरासी विसेसाहिओ अद्दाणविसेसो च जेण अत्थि तेण कारणेण तदत्थासंगलिदजीवरासिसंचओ वि तदणुसारिओ चैव होदि त्ति सुव्वचमेवेदं विदियादिए साहणं । एदं वक्खाणमेत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वं, अवरुद्धसरुवत्तादो ।

\* एसो विसेसो एककेण उचदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-पडिभागो ।

§ ३०९. जो एसो अणंतरपरुविदो विसेसो माणोवजुत्ताणं पवेसणादो कोहोव-जुत्ताणं पवेसणयं विसेसाहियमिदि सो किं हेट्ठिमरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तो असंखेज्जदि-भागमेत्तो वा अणंतभागमेत्तो वा ? असंखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो किमावलियाए

क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक है ऐसा कहनेपर प्रथम समयमें मानकषायमें उपयुक्त होकर प्रवेश करनेवाली जीवराशिसे उसी समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त होकर प्रवेश करनेवाली जीवराशि विशेष अधिक होती है यह अर्थ प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी दोनों कषायोंमें उपयुक्त हुई जीवराशिका सन्निकर्ष करके अन्तिम समयमें उपयुक्त हुई जीवराशिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके अन्तिम समयसे ऊपर विशेष अधिक काल जाकर क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका अन्तिम समय होता है ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकार मायाकषाय और लोभकषायकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिए । यतः इस प्रकार प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिसे प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि विशेष अधिक होती है और यतः अध्वान विशेष होता है इस कारणसे वहाँपर संकलित जीवराशिका संचय भी उसीके अनुसार ही होता है इस प्रकार यह द्वितीयादिका श्रेणिका साधन सुव्यक्त ही है । इस व्याख्यानका यहाँपर प्रधानरूपसे अबलम्बन करना चाहिए, क्योंकि यह व्याख्यान अवरुद्धस्वरूप है ।

\* यह विशेष एक उपदेशके अनुसार पन्थोपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभाग-स्वरूप है ।

§ ३०९. मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके प्रवेशसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश विशेष अधिक है इस बातको बतलानेवाला जो यह अनन्तर कहा गया विशेष है वह क्या अधस्तन राशिके संख्यातवें भागप्रमाण है या असंख्यातवें भागप्रमाण है या अनन्तवें भाग-प्रमाण है ? असंख्यातवें भागप्रमाण होता हुआ भी क्या आवलिके असंख्यातवें भागके



असंखेज्जदिभागपडिभागिओ आहो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागिओ, किं वा अण्णपडिभागिओ त्ति संपहारणाए तन्विसयणिण्णयजणणट्ठमेदं सुत्तमोइण्णं ।

§ ३१०. तं जहा—एत्थ वे उवएसा—पवाइज्जंतओ अपवाइज्जंतओ चेदि । तत्थ ताव एक्केण अपवाइज्जंतएण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागिओ एसो विसेसो घेत्तव्वो, समयं पडि भाणोवजुत्ताणं पवेसणरासिं जहावुत्तेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण खंडेयूणेयखंडमेत्तेण कोहोवजुत्ताणं पवेसणस्स तत्तो विसेसाहियत्तब्भुवगमादो संचयस्स वि एसो चेव पडिभागो एदम्मि उवएसे वत्तव्वो, संचयस्स सव्वत्थ पवेसाणुसारित्तदंसणादो अद्दा विसेसस्स एदम्मि पक्खे अवि-  
वक्खियत्तादो । अधवा संचयस्स एसो पडिभागो ण जोजेयव्वो, अद्दाविसेसस्सेव तत्थ पहाणत्तोवलंभादो ।

\* पवाइज्जंतएण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ ३११. विसेसो त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्ठदे, पडिभागो त्ति च, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो—भाणोवजुत्ताणं पवेसणरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण भागं घेत्तूण तत्थ भागलद्धमेत्तेण कोहोवजुत्ताणं पवेसणरासी तत्तो विसेसाहिओ त्ति एसो चेव उवएसो एत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वो, पवाइज्जमाणत्तादो ।

प्रतिभागस्वरूप है या पत्त्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप है या क्या अन्य प्रति-  
भागस्वरूप है ऐसी आशंका होनेपर उस विषयका निर्णय करनेके लिए यह सूत्र आया है ।

§ ३१०. यथा—इस विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं—प्रवाह्यमान उपदेश और अप्रवाह्यमान उपदेश । उनमेंसे सर्वप्रथम एक अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार पत्त्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप इस विशेषको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंकी प्रवेशराशिको पूर्वोक्त पत्त्योपमके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाजितकर जो एक भाग प्राप्त हो उतना क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश मानकषायमें प्रवेश करनेवाली जीवराशिसे विशेष अधिक स्वीकार किया गया है तथा संचय-  
का भी यही प्रतिभाग इस उपदेशके अनुसार कहना चाहिए, क्योंकि सर्वत्र संचय प्रवेशके अनुसार देखा जाता है तथा इस पक्षमें कालविशेषकी विवक्षा नहीं की गई है । अथवा संचयका यह प्रतिभाग नहीं लेना चाहिए, क्योंकि कालविशेषकी ही वहाँ प्रधानता पाई जाती है ।

\* प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेष आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ३११. विशेष इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है और प्रतिभाग पदकी भी, इसलिए ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए कि मानकषायमें प्रवेश करनेवाली राशिको आवलिके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाजितकर वहाँ जो भाग लब्ध आवे उतनी क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंकी प्रवेशराशि उससे विशेष अधिक होती है इस प्रकार यही उपदेश यहाँपर प्रधानभावसे लेना चाहिए, क्योंकि यह प्रवाह्यमान उपदेश है ।

§ ३१२. संपहि एदेण पवेसणप्पाबहुएण साहिदसंचयप्पाबहुअमोघेण तिरक्ख-  
मणुसगईसु च एवमणुगंतव्वं—सव्वत्थोवा माणोवजुत्ता । कोहोवजुत्ता विसेसाहिया ।  
मायोवजुत्ता विसेसाहिया । लोभोवजुत्ता विसेसाहिया । सव्वत्थ विसेसपमाणमणंतर-  
परुविदत्तादो सुगमं । एवं विदियादिया सेठी समत्ता ।

§ ३१३. संपहि एदेण देसामसयसुत्तेण सूचिदपढम—चरिमादियाणं पि साहणं  
कादूण तदो संचयप्पाबहुअं कायव्वं । तं जहा—देवगदीए कोहोवजुत्ता थोवा ।  
माणोवजुत्ता संखेज्जगुणा । मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा । लोभोवजुत्ता संखेज्जगुणा,  
तदद्धानं तप्पवेसणस्स च तद्वाभावेणावट्टाणादो । एसा पढमादिया सेठी । एवं  
चरमादिया वि णेदच्चा । णवरि णिरयगइसंबंधेण देवगइविवज्जासेण तदुच्चारणं  
कायव्वं । जइ वि एदं जीवविसयमप्पाबहुअं पुव्वमइसु अणिओगदारेसु परुविज्जमाणेसु  
विहासिदं चेव तो वि पवेसणसंबंधेण विसेसपमाणावहारणमुहेण च विसेसयूणेत्थ  
परुवणादो ण पुणरुत्तदोसावयारो । एवमप्पाबहुए समत्ते सत्तमीए सुत्तगाहाए  
पच्छइस्स अत्थविहासा समत्ता । संपहि एवमेदेसु सत्तसु गाहासुत्तेसु विहासिय समत्तेसु  
एत्थेवुवजोगाणिओगदारपरिसमत्ती जायदि त्ति जाणावणइमुत्तरमुवसंहारवक्कं—

एवमुवजोगो त्ति समत्तमणिओगदारं ।

§ ३१२. अब इस प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्वसे साधा गया संचयसम्बन्धी अल्पबहुत्व  
ओघसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें इस प्रकार जानना चाहिए—मानकषायमें उपयुक्त हुए  
जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं । उनसे माया-  
कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं तथा उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष  
अधिक हैं । सर्वत्र विशेषका प्रमाण अनन्तर कहा गया होनेसे सुगम है । इस प्रकार द्वितीया-  
दिका श्रेणि समाप्त हुई ।

§ ३१३. अब इस देशामर्षक सूत्रसे सूचित हुई प्रथमादिका और चरमादिका श्रेणियों-  
का भी साधनकर उसके बाद संचयसम्बन्धी अल्पबहुत्व कर लेना चाहिए । यथा—देवगतिमें  
क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यात-  
गुणे हैं, उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं तथा उनसे लोभकषायमें उपयुक्त  
हुए जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका काल और उनका प्रत्येक समयमें प्रवेश उसी प्रकार  
देखा जाता है । यह प्रथमादिका श्रेणि है । इसी प्रकार चरमादिका श्रेणि भी जाननी चाहिए ।  
इतनी विशेषता है नरकगतिके सम्बन्धसे उसका कथन देवगतिके विपरीतरूपसे करना  
चाहिए । यद्यपि यह जीवविषयक अल्पबहुत्व पहले आठ अनुयोगद्वारोंके कथनके समय कह  
आये हैं तो भी प्रवेशके सम्बन्धसे विशेष प्रमाणके अवधारणद्वारा विशेषरूपसे यहाँपर कथन  
करनेसे पुनरुक्त दोषका अवतार नहीं होता है । इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर सातवीं  
सूत्रगाथाके उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ । अब इस प्रकार इन सात  
गाथासूत्रोंका व्याख्यान समाप्त होनेपर यहींपर उपयोग अनुयोगद्वारकी समाप्ति हो जाती है  
इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका उपसंहार वाक्य है—

इस प्रकार उपयोगसंज्ञक सातवाँ अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।



सिरि-अइवसहाइरियविरइय-चुण्णिमुत्तसप्रणिदं  
सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

**क सा य पा हु डं**

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका  
**जयधवला**

तत्थ

चउट्टाणमिदि अट्टमो अत्याहियारो

+❀:+

णमो अरहंताणं०

णिट्ठवियचउट्टाणं पणट्ठकम्मट्ठदुट्ठरिवुचेट्ठं ।

वोच्छामि चउट्टाणं जिणपरमेट्ठिं पणमियुण ॥ १ ॥

---

जिसने अनुभागसम्बन्धी चार स्थानोंको निष्ठापितकर लिया है और जिसने आठ कर्मरूपी दुष्ट शत्रुको चेष्टाको नष्ट कर दिया है ऐसे श्री जिन परमेष्ठीको प्रणामकर चतुःस्थान अनुयोगद्वारका कथन करता हूँ ॥ १ ॥

§ १. उवजोगपरुवणाणंतरं किमद्दुमेदं चउट्टाणसण्णिदमणिओगहारमोइण्णमिदि चे ? वुच्चदे—कोहादिकसायाणमुवजोगो एयवियप्पो ण होइ, किंतु एग-वि-ति-चउट्टाणभेयभिण्णकसायाणुभागोदयजणिदत्तादो पादेक्कं चउप्पयारो होदि त्ति एवं-विहस्स अत्थविसेसस्स णिदरिसणोवणयमुहेण पदुप्पायणद्दुमेदमणियोगहारमोइण्णं, तहाभूदत्थविसेसपदुप्पायणम्मि गाहासुत्ताणमुवरिमाणं पडिबद्धत्तदंसणादो । अदो चेव चउट्टाणसण्णा एदस्स सुसंबद्धा । लदासमाणादिभेयभिण्णाणं चदुण्हं ट्टाणाणं समाहारो चउट्टाणं तप्परुवयमणियोगहारं पि चउट्टाणमिदि, गोण्णपदणामावलंबणादो । एवमेदेण संबंघेणागदस्सेदस्स अणियोगहारस्स विहासणद्दुमेत्थ गाहासुत्तावयारो कीरदे—

\* चउट्टाणे त्ति अणियोगहारे पुब्बं गमणिज्जं सुत्तं ।

२. चउट्टाणे त्ति जमणिओगहारं कसायपाहुडस्स पण्हारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे अद्दमं तस्सेदाणिमत्थविहासणमहिकीरदे । तत्थ य पुब्बं पढममेव ताव गमणिज्ज-मणुगंतव्वं, सुत्तं गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयमणंतत्थगम्भं गाहासुत्तमिदि वुत्तं होइ । जइ वि एत्थ सोलस सुत्तगाहाओ उवरि मणिस्समाणाओ तो वि सुत्तत्थ-जाइदुवारेण तासिमेयत्तमत्थि त्ति एयवयणणिदेसो ण विरुज्झदे ।

§ १. शंका—उपयोग अनुयोगद्वारके कथन करनेके बाद चतुःस्थान संज्ञावाला यह अनुयोगद्वार किसलिये आया है ?

समाधान—कहते हैं, क्रोधादि कषायोंका उपयोग एक प्रकारका नहीं होता, किन्तु कषायोंका अनुभाग एक, दो, तीन और चार प्रकारके भेदोंमें विभक्त है, अतः उसके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण कषायोंका उपयोग प्रत्येक चार प्रकारका है इसप्रकार इसप्रकारके अर्थ-विशेषका दृष्टान्तोंद्वारा कथन करनेके लिये यह अनुयोगद्वार आया है, क्योंकि आगेके गाथा-सूत्रोंका उस प्रकारके अर्थविशेषके कथनके रूपमें सम्बन्ध देखा जाता है और इसीलिये इस अनुयोगद्वारकी चतुःस्थान संज्ञा सुसम्बद्ध है ।

लतासमान आदि भेदोंमें विभक्त चार स्थानोंका समाहार चतुःस्थान है और उसका कथन करनेवाला अनुयोगद्वार भी चतुःस्थान है, क्योंकि इस संज्ञाके करनेमें गौण्यपदका अवलम्बन लिया है । इस प्रकार इस सम्बन्धसे प्राप्त हुए इस अनुयोगद्वारका कथन करनेके लिये यहाँ गाथासूत्रोंका अवतार करते हैं—

\* चतुःस्थान नामक अनुयोगद्वारमें सर्वप्रथम गाथासूत्र जानना चाहिए ।

§ २. कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे चतुःस्थान नामका जो आठवाँ अनुयोग-द्वार है, उसका इस समय अर्थ सहित व्याख्यान करते हैं । उसमें 'पुब्बं' अर्थात् प्रथम ही गाथासूत्र 'गमणिज्जं' अर्थात् जानना चाहिए । यहाँपर सूत्रपदसे तात्पर्य गुणधर आचार्यके मुख-कमलसे निकला हुआ अनन्त अर्थ गर्भित गाथासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यद्यपि यहाँपर आगे १६ सोलह सूत्रगाथाएँ कही जायगीं तो भी सूत्ररूप अर्थकी एक जाति है इस अपेक्षा उनमें एकपना है, इसलिये एकवचन निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता ।

\* तं जहा ।

§ ३. सुगममेदं पुच्छावक्कं । एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिहेसो—

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे ।

माया चउव्विहा वुत्ता लोहो वि य चउव्विहो ॥१-७०॥

§ ४. एसा ताव पढमा सुत्तगाहा । एदीए कोह-माण-माया-लोहाणं पादेक्कं चउव्विहत्तमेत्तं पइण्णादं । एत्थ कोहो चउव्विहो त्ति वुत्ते किमणंताणुबंधि-पक्खखाणापक्खखाण-संजलणमेएण कोहस्स चउव्विहत्तमहिप्पेदं, आहो पयारंतरेणे त्ति ? ण ताव अणंताणुबंधिकोहादिभेएण चउव्विहत्तमेत्थ विवक्खियं, तहाविहस्स मेद-णिहेसस्स पयडिविहत्तिआदिसु पुव्वमेव सुणिण्णीदत्तादो उवरिमपरूवणाए तप्पडिबद्धत्त-दंसणादो च । किंतु एग-वि-त्ति-चउट्ठाणमेयभिण्ण-कसायाणुभागोदयजणिदणग-पुट्ठवि-बालुगोदगरायिसरिसपरिणामभेदेण कोहस्स चउप्पयारत्तमेत्थ विवक्खियं, तहाविहमेद-परूवणाए चेव उवरिमाणं गाहासुत्ताणं पडिबद्धत्तदंसणादो । एवं माण-माया-लोभाणं पि अपयदमेदचउकणिवारणमुहेण पयदचउमेदपरूवणं कायव्वं ।

\* वे जैसे ।

§ ३. यह पृच्छावाक्य सुगम है । इसप्रकार पृच्छाके विषयको प्राप्त हुई गाथासूत्रोंका यह क्रमसे स्वरूपनिर्देश है—

\* क्रोध चार प्रकारका कहा गया है, मान भी चार प्रकारका है, माया चार प्रकारकी कही गई है और लोभ भी चार प्रकारका है ॥१-७०॥

§ ४. सर्वप्रथम यह पहली सूत्रगाथा है । इस द्वारा क्रोध, मान, माया और लोभ इनमेंसे प्रत्येककी चार प्रकारके होनेकी प्रतिज्ञा की गई है ।

शंका—यहाँपर क्रोध चार प्रकारका है ऐसा कहनेपर क्या अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और संज्वलनके भेदसे चार प्रकारका क्रोध अभिप्रेत है या प्रकारान्तरसे वह चार प्रकारका अभिप्रेत है ?

समाधान—यहाँ अनन्तानुबन्धी क्रोध आदिके भेदसे वह चार प्रकारका विवक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रकारके भेदोंका निर्देश प्रकृतिविभक्ति आदिमें पहले ही अच्छी तरहसे निर्णीत कर आये हैं तथा आगेकी प्ररूपणामें उनका सम्बन्ध देखा जाता है । किन्तु कषायोंका अनुभाग एक, दो, तीन और चार स्थानोंके भेदसे विभक्त है, अतः उसके उदयसे नगराजि, पृथिवीराजि, बालुकाराजि, उदकराजिके समान परिणामोंके भेदसे क्रोधके चार प्रकार यहाँ विवक्षित हैं, क्योंकि उस प्रकारके भेदोंके कथनमें ही उपरिम गाथासूत्रोंका सम्बन्ध देखा जाता है । इसी प्रकार मान, माया और लोभके भी अप्रकृत भेदचतुष्कके निवारणद्वारा प्रकृत भेदचतुष्कका कथन करना चाहिए ।

§ ५. एत्थ कोहो दुविहो—सामण्णकोहो विसेसकोहो चेदि । तत्थाणंताणुबंधि-  
आदिविसेसविक्खाए विणा जं सव्वविसेससाहारणं कोहसामण्णं तं सामण्णकोहो  
णाम, तच्चिवरीदसरूवो विसेसकोहो त्ति भण्णदे, अणंताणुबंधिआदिविसेसविक्खा-  
णिबंधत्तादो । एत्थ नुण सामण्णकोहावेक्खाए चउच्चिहत्तमेदं परूविदं, अणंताणुबंधि-  
आदिविसेसप्पणाए पादेक्कं तेसिं चउच्चिहत्ताणुवलंभादो । किं कारणं ? अणंताणुबंधि-  
पच्चक्खाणापच्चक्खाणकोहाणमेगट्ठाणपरिहारेण वि-ति-चउट्ठाणाणं चैव संभवदंसणादो ।  
ततः संगृहीताशेषविशेषलक्षणं क्रोधसामान्यमाश्रित्य चातुर्विध्यमेतद्व्यवस्थितमिति सूक्तं ।  
एवं मानादीनामपि वाच्यम् ।

(१८) णग-पुढवि-वालुगोदयराईसरिसो चउच्चिहो कोहो ।

सेलघण-अट्टि-दारुअ-लदासमाणो हवदि माणो ॥२-७१॥

§ ६. एसा विदियगाहा । एदीए कोह-माणकसायाणं णिदरिसणोवणयणमुहेणं  
पादेक्कं चउण्हं मेदाणं णामणिहेसो कओ । तं जहा—‘णग-पुढवि०’ एवं भणिदे  
राइसइस्स सरिससइस्स च पादेक्कमहिसंबंधं कादूण णगराइसरिसो पुढविराइसरिसो  
वालुअराइसरिसो उदयराइसरिसो चेदि कोहो चउच्चिहो होदि त्ति सुत्तत्थसमत्थणा

§ ५. यहाँपर क्रोध दो प्रकारका है—सामान्य क्रोध और विशेष क्रोध । उनमेंसे  
अनन्तानुबन्धी आदि विशेषकी विवक्षा विना जो सब विशेषोंमें साधारण क्रोध सामान्य है  
वह क्रोध सामान्य कहलाता है और उससे विपरीत स्वरूपवाला विशेष क्रोध कहा जाता है,  
क्योंकि यह संज्ञा अनन्तानुबन्धी आदि विशेषकी विवक्षानिमित्तक है, परन्तु यहाँपर सामान्य  
क्रोधकी अपेक्षासे यह चार प्रकारका कहा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी आदि विशेषको मुख्यतासे  
प्रत्येक उनकी चार प्रकारसे उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान और  
अप्रत्याख्यान क्रोधोंके एक स्थानका परिहारकर द्विस्थान, त्रिस्थान और चतुःस्थानरूप अनु-  
भागकी ही उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिये जिसने अपने समस्त विशेषोंका संग्रह किया है  
ऐसे लक्षणवाले क्रोधसामान्यका आश्रयकर क्रोधकी चतुर्विधता व्यवस्थित है यह ठीक ही कहा  
है । इसी प्रकार मानादिकके विषयमें भी कथन करना चाहिए ।

\* क्रोध चार प्रकारका है—नगराजिसदृश, पृथिवीराजिसदृश, वालुकाराजि-  
सदृश और उदकराजिसदृश । मान भी चार प्रकारका है—शैलघनसमान, अस्थिसमान,  
दारुसमान और लतासमान ॥२-७१॥

§ ६. यह दूसरी गाथा है । इसमें क्रोधकषाय और मानकषायके उदाहरणद्वारा प्रत्येक-  
के चार भेदोंका नामनिर्देश किया गया है । यथा—‘णग-पुढवि०’ ऐसा कहनेपर ‘राजि’  
शब्दका और ‘सदृश’ शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करके नगराजिसदृश, पृथिवीराजिसदृश,  
वालुकाराजिसदृश और उदकराजिसदृश क्रोध चार प्रकारका है इस प्रकार सूत्रके अर्थका समर्थन

कायव्वा । तत्थ णगराइसरिसो त्ति वुत्ते पव्वदसिलाभेदसरिसो कोहपरिणामो वेत्तव्वो । एदं सव्वकालमविणाससाधम्मं पेक्खियूण णिदरिसणं भणिदं । जहा पव्वदसिलाभेदो केण वि कारणंतरेण समुब्भूदसरूवो पुणो ण कदाइं पयोगंतरेण संधाणमागच्छइ, तदवत्थो चैव चिट्ठदि । एवं जो कोहपरिणामो कस्स वि जीवस्स कम्मिह वि पुरिसविसेसे समुप्पण्णो ण केण वि पयोगंतरेणुवसमं गच्छइ, णिप्पडिकारो होदूण तम्मि भवे तहा चेवावचिट्ठदे, जम्मंतरं पि तज्जणिदसंसकारो अणुबंधदि, सो तारिसो तिच्चयरो कोहपरिणामो णगराइसरिसो त्ति भण्णदे ।

§ ७. एवं पुढविराइसरिसो वि वत्तव्वो । णवरि पुच्चिल्लादो एसो मंदाणुभागो, चिरकालमवट्ठिदस्स वि एदस्स पुणो पयोगंतरेण संधाणुवलंभादो । तं जहा— गिम्हकाले पुढविभेदो पुढवीए रसक्खयेण फुड्ढंतीए पयट्ठो । पुणो पाउसकाले जलप्पवाहेणावूरिज्जमाणो तक्खणमेव संधाणमागच्छइ । एवं जो कोहपरिणामो चिरकालमवट्ठिदो वि संतो पुणो वि कारणंतरेण गुरुवदेसादिणा उवसमभावं पडिवज्जदि सो तारिसो तिच्चपरिणामभेदो पुढविराइसरिसो त्ति विण्णायदे । एत्थ उभयत्थ वि राइसदो अवयवविसरणप्पयभेदपञ्जायवाचओ वेत्तव्वो ।

§ ८. तहा वालुगराइसरिसो त्ति वुत्ते णदीपुलिणादिसु वालुगरासिमज्झ-

करना चाहिये । उनमेंसे नागराजिसदृश ऐसा कहनेपर पर्वतशिलाभेदसदृश क्रोधपरिणाम लेना चाहिए । सर्व कालोंमें अविनाशरूप साधर्म्यको देखकर यह उदाहरण कहा है । जैसे पर्वतशिलाभेद किसी भी दूसरे कारणसे उत्पन्न होकर पुनः कभी भी दूसरे उपायद्वारा सन्धानको प्राप्त नहीं होता, तदवस्थ ही बना रहता है । इसी प्रकार जो क्रोधपरिणाम किसी भी जीवके किसी भी पुरुषविशेषमें उत्पन्न होकर किसी भी दूसरे उपायसे उपशमको नहीं प्राप्त होता है, प्रतीकार रहित होकर उस भवमें उसी प्रकार बना रहता है, जन्मान्तरमें भी उससे उत्पन्न हुआ संस्कार बना रहता है, वह उस प्रकारका तीव्रतर क्रोधपरिणाम नगराजिसदृश कहा जाता है ।

§ ७. इसीप्रकार पृथिवीराजिसदृश क्रोधका भी व्याख्यान करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पूर्वके क्रोधसे यह मन्द अनुभागवाला है, क्योंकि चिरकाल तक अवस्थित होने पर भी इसका पुनः दूसरे उपायसे सन्धान हो जाता है । यथा—ग्रीष्मकालमें पृथिवीका भेद हुआ अर्थात् पृथिवीके रसका क्षय होनेसे वह भेदरूपसे परिणत हो गई । पुनः वर्षाकालमें जलके प्रवाहसे वह दरार भरकर उसी समय संधानको प्राप्त हो गई । इसीप्रकार जो क्रोधपरिणाम चिरकाल तक अवस्थित रहकर भी पुनः दूसरे कारणसे तथा गुरुके उपदेश आदिसे उपशमभावको प्राप्त होता है वह उस प्रकारका तीव्र परिणामभेद पृथिवीराजिसदृश जाना जाता है । यहाँ दोनों स्थलोंपर भी 'राजि' शब्द अवयवके विच्छिन्न होनेरूप भेद पर्यायका वाचक लेना चाहिए ।

§ ८. उसीप्रकार 'वालुकाराजिसदृश' ऐसा कहनेपर नदीके पुलिन आदिमें वालुका-



समुद्रिदरेहासमाणो कोहो ति घेत्तव्वो । एदमप्ययरकालावट्टाणं पेक्खियूण भणिदं । तं जहा—णदीपुलिणादिसु वालुअरासिमज्झे पुरिसप्पयोगेणणदरेण वा केणचि कारणजादेण समुट्टिदा रेहा जहा पवणाभिघादादिणा कारणंतरेण लहुमेव पुणो<sup>१</sup> समभावं गच्छदि एवं कोहपरिणामो वि मंदुत्थाणो गुरुवएसपवणपेल्लिदो संतो सव्वलहुमेवोवसमं गच्छमाणो वालुगराइसरिसो ति भण्णदे ।

§ ९. एवमुदयराइसरिसो वि कोहो अणुगंतव्वो । णवरि एदम्हादो वि मंदयरानु-भागो थोवयरकालावट्टाणो च सो गहेयव्वो, पाणीयमज्झसमुट्टिदाए रेहाए पयोगंतरेण विणा तक्खणमेव विणासदंसणादो । एत्थ उहयत्थ वि राइसदो रेहापञ्जाय-वाचओ घेत्तव्वो । एवं कोहस्स चउण्हं ट्टाणाणमवट्टाणकालस्स थोववहुत्तमस्सियूण णिदरिसणोवणयणं कदं । एवं माणस्स वि चउण्हं ठाणाणं गाहापच्छट्टाणु-सारेणाणुगमो कायव्वो । णवरि 'सेलघण' एवं भणिदे सिल्लार्थंभसमाणो माणो ति घेत्तव्वो, समाणसइस्स पादेकमभिसंबंधावलंबणादो । अतिस्तब्धभावापेक्षया चैतत् प्रतिपादितम् । एवमस्थि-दारु-लतासमानानामप्यर्थो वाच्यः । सर्वत्र च स्तब्धता-लक्षणस्य भावस्य प्रकर्षप्रकर्षभावापेक्षया निदर्शनोपनयः कृत इति प्रतिपत्तव्यम् ।

राशिके मध्य उत्पन्न हुई रेखाके समान क्रोध ऐसा ग्रहण करना चाहिए । यह अल्पतर काल तक रहता है इसे देखकर कहा है । यथा—नदीके पुलिन आदिमें वालुकाराशिके मध्य पुरुषके प्रयोगसे या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुई रेखा जैसे हवाके अभिघात आदि दूसरे कारण-द्वारा शीघ्र ही पुनः समान हो जाती है अर्थात् रेखा मिट जाती है । इसीप्रकार क्रोधपरिणाम भी मन्दरूपसे उत्पन्न होकर गुरुके उपदेशरूपी पवनसे प्रेरित होता हुआ अतिशीघ्र उपशमको प्राप्त हो जाता है । वह क्रोध वालुकाराजिके समान कहा जाता है ।

§ ९. इसी प्रकार उदकराजिके सदृश भी क्रोध जान लेना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इससे भी मन्दतर अनुभागवाला और स्तोकतर काल तक रहनेवाला वह जानना चाहिए, क्योंकि पानीके भीतर उत्पन्न हुई रेखाका विना दूसरे उपायके उसी समय ही विनाश देखा जाता है । यहाँ उभयत्र 'राजि' शब्द रेखाका पर्यायवाची लेना चाहिए । इस प्रकार क्रोधके चारों स्थानोंके अवस्थानकालके अल्पबहुत्वका आश्रयकर उदाहरणका उपनयन किया । इसी प्रकार मानके भी चारों स्थानोंका गाथाके उत्तरार्धके अनुसार अनुगम करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि 'सेलघण' ऐसा कहनेपर शिला स्तम्भके समान मान लेना चाहिए, क्योंकि समान शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करनेका अवलम्बन लिया है । अतिस्तब्धभावकी अपेक्षा यह उदाहरण कहा गया है । इसी प्रकार अस्थि, दारु और लताके समान मानकषाय-का भी अर्थ कहना चाहिए । सर्वत्र स्तब्धतालक्षणभावके प्रकर्ष-अप्रकर्षपनेकी अपेक्षा उदाह-रणोंका उपनय किया है ऐसा जानना चाहिए ।

(१८) वंसीजणहुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती ।

अवलेहणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥३-७२॥

§ १०. एसा तदियगाहा मायासंबंधीणं चउण्हं ठाणाणं णिदरिसणोवणयदुवारेण पदुप्पायणहुमागया । तं जहा—‘वंसीजणहुगसरिसि’ त्ति वुत्ते वेलुवमूल-जरढवंकंकुरगंठि-सरिसी पढमा माया त्ति घेत्तव्वं । एदं च वंक्रभावस्स णिप्पड्डियारत्तमस्सियूण परूविदं । यथैव हि वेणुमूलग्रन्थिर्मृत्वा शीत्वापि नर्जुकर्तुं पार्यते एवं मायापरिणामोऽप्यतितीव्र-वक्रभावपरिणतो निरुपक्रम इति । तथा ‘मेंढविसाणसरिसि’ त्ति विदिया मायावत्था । एसा पुव्विन्ल्लादो मंदाणुभागा, मेषविषाणस्यातिवलितवक्रतराकारेण परिणतस्याप्यग्नि-तापादिभिरुपायान्तरैः प्रगुणीकर्तुं शक्यत्वात् । तथा गोमूत्रसदृशी अवलेहनीसमाना च माया यथाक्रमं वक्रभावस्य हानितारतम्ययोगाद्वक्तव्येति । तत्रावलेहनी नाम दन्त-धावनकाष्ठयष्टिर्जिह्वामलशोधनी वा गृहीतव्या ।

(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो ।

हालिद्वत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥४-७३॥

§ ११. एसा चउत्थगाहा लोभस्स चउण्हं ठाणाणं<sup>१</sup> णिदरिसणपरूवणहुमागया ।

\* माया भी चार प्रकारकी कही गई है—बाँसकी जड़के सदृश, मेढ़के सींगके सदृश, गोमूत्रके सदृश और अवलेखनीके सदृश ॥३-७२॥

§ १०. यह तीसरी गाथा मायासम्बन्धी चार स्थानोंके उदाहरणके निर्देश द्वारा कथन करनेके लिये आई है । यथा—‘वंसीजणहुगसरिसी’ ऐसा कहनेपर बाँसकी जड़की पुरानी कठोर देदी-मेढ़ी अंकुरयुक्त गाँठके सदृश पहली माया होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । इसके देदापनके निष्प्रतीकारपनेका आश्रयकर उक्त उदाहरण दिया है । जैसे बाँसके जड़की गाँठ नष्ट होकर तथा शीर्ण होकर भी सरल नहीं की जा सकती है इसी प्रकार अति तीव्र वक्रभावसे परिणत मायापरिणाम भी निरुपक्रम होता है । उसी प्रकार ‘मेंढविसाणसरिसी’ अर्थात् मेढ़के सींगके सदृश मायाकी दूसरी अवस्था है । यह पूर्वकी मायासे मन्द अनुभागवाली होती है, क्योंकि अतिवलित वक्रतररूपसे परिणत हुए भी मेढ़के सींगको अग्निके ताप आदि दूसरे उपायोंद्वारा सरल करना शक्य है । तथा गोमूत्रसदृश और अवलेखनीसदृश मायाका क्रमसे वक्रभावके हानिके तारतम्यके सम्बन्धसे कथन करना चाहिए । यहाँपर अवलेखनी पदसे दाँतोंको साफ करनेवाला लकड़ीका टुकड़ा विशेष अर्थात् दातुन या जीभके मलका शोधन करनेवाली जीभी लेना चाहिए ।

\* लोभ भी चार प्रकारका कहा गया है—कृमिरागके सदृश, अक्षमलके सदृश, पांसुलेपके सदृश और हारिद्वस्त्रके सदृश ॥४-७३॥

§ ११. यह चौथी गाथा लोभके चार स्थानोंके उदाहरणोंके कथन करनेके लिये आई

१. ता०प्रती चउट्टाणाणं इति पाठः ।

तं जहा—कृमिरागो नाम कीटविशेषः । स किल यद्वर्णमाहारविशेषमभ्यवहार्यते तद्वर्ण-  
मेव सूत्रमतिश्लक्ष्णमात्मनो मलोत्सर्गद्वारेणोत्सृजति, तत्स्वाभाव्यात् । तेन च सूत्रेण  
वस्त्रान्तराण्यनेकवर्णानि महार्घाणि च तंतुवायै रूयन्ते । तेषां स वर्णरागो यद्यपि  
जलकलशसद्वस्त्रेणाव्यवच्छिन्नधारेण प्रक्षाल्यते, क्षारोदकैर्वहुविधैः क्षार्यते तथापि न  
शक्यते विश्लेषयितुं मनागपि, अतिनिकाचितस्वरूपत्वात् । किं बहुना, अग्निना  
दह्यमानस्यापि तदनुरक्तस्य वस्त्रस्य भस्मसाद्भावमापन्नस्य स वर्णरागोऽप्रहेयत्वात्तथै-  
वावतिष्ठते । एवं लोभपरिणामोऽपि यस्तीव्रतरो जीवस्य हृदयवर्ती न शक्यते परासद्वत्तुं  
स उच्यते कृमिरागरक्तसमक इति ।

§ १२. तथान्यो लोभपर्यायोऽस्मान्निष्कृष्टवीर्यस्तीव्रावस्थापरिणतोऽक्षमलसमयि-  
तव्यः.....रथचक्रस्य शकटतुम्बस्य वा धारणं काष्ठमक्षमित्युच्यते । तस्य मलमक्षमलं ।  
अक्षांजनस्नेहाद्रितमपीमलं इति यावत् । तद्यथैवातिचिक्कणत्वान्न शक्यते सुखेन  
विश्लेषयितुं तथैवायमपि लोभपरिणामो निधत्तरूपेण जीवहृदयमवगाढो न विश्लेषयितुं  
शक्य इति ।

§ १३. तृतीयो लोभप्रकारः पांशुलेपसम इत्यभिधीयते । यथैव पांशुलेपः पाद-  
लग्नः सुखेनापसार्यते सलिलप्रक्षालनादिभिर्न चिरमवतिष्ठते तद्वदयमपि लोभभेदो

है । यथा—कृमिराग कीटविशेषको कहते हैं । वह नियमसे जिस वर्णके आहारको ग्रहण  
करता है वह उसी वर्णके अति चिक्कण डोरेको अपने मलके त्यागनेके द्वारसे निकालता है,  
क्योंकि उसका वैसा ही स्वभाव है । और उस सूत्रद्वारा जुलाहे अति कीमती अनेक वर्णवाले  
नाना वस्त्र बनाते हैं । उनके उस वर्णके रंगको यद्यपि हजार कलशोंकी सतत धारा द्वारा  
प्रक्षालित किया जाता है, नाना प्रकारके क्षारयुक्त जलों द्वारा धोया जाता है तो भी उसे थोड़ा  
भी दूर करना शक्य नहीं है, क्योंकि वह अति निकाचितस्वरूप होता है । बहुत कहनेसे क्या,  
अग्निसे जलाये जानेपर भी भस्मपनेको प्राप्त हुए उस कृमिरागसे अनुरक्त हुए वस्त्रके उस  
वर्णका रंग कभी भी छूटने योग्य न होनेसे वैसा ही बना रहता है । इसी प्रकार जीवके  
हृदयमें स्थित अतितीव्र जो लोभपरिणाम भी कृश नहीं किया जा सकता वह कृमिरागके  
रंगके सदृश कहा जाता है ।

§ १२. तथा अन्य लोभ निष्कृष्ट वीर्यवाला और तीव्र अवस्थापरिणत होता है, वह  
अक्षमलके सदृश कहा जाता है ।.....रथके चकेको या गाड़ीके तुम्बको धारण करनेवाली  
लकड़ी अक्ष कहलाती है और उसका मल अक्षमल है । अक्षांजनके स्नेहसे गीला हुआ  
मपीमल यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसे जैसे अति चिक्कण होनेसे सुखपूर्वक दूर करना  
शक्य नहीं है उसी प्रकार यह भी लोभपरिणाम निधत्तस्वरूप होनेसे जीवके हृदयमें अवगाढ  
होता है, इसलिए उसे दूर करना शक्य नहीं है ।

§ १३. तीसरा लोभका प्रकार धूलके लेपके सदृश कहा जाता है । जिस प्रकार पैरमें  
लगा हुआ धूलिका लेप पानीके द्वारा धोने आदि उपायोंद्वारा सुखपूर्वक दूर कर दिया जाता

मन्दायमानस्वभावो न चिरतरकालमवतिष्ठते । पूर्वस्मादनन्तगुणहीनसामर्थ्यः सन् कियन्मात्रादपि कालादल्पेनापि यत्नेनापैतीति ।

§ १४. मन्दतरस्तु लोभस्य तुरीयोऽवस्थाविशेषो हरिद्रवस्त्रसमक इति व्यपदिश्यते । हरिद्रया रक्तं वस्त्रं हरिद्रं, तेन समो हरिद्रवस्त्रसमकः । यथैव हरिद्राद्रव-रंजितस्य वस्त्रस्य स वर्णरंगो न चिरं तत्रावतिष्ठते, वातातपादिभिरभिहन्यमानमात्र एवोद्गीयते । एवमयं लोभप्रकारो मन्दतमानुभागपरिणतत्वान्न चिरमात्मन्यवतिष्ठते, क्षणमात्रादेव विश्लेषमियतीति । तदेवं प्रकर्षाप्रकर्षवत्तीव्र-मन्दावस्थाभेदभिन्नत्वान्नोभोऽपि चतुर्विधो भणित इति गाथार्थः ।

(२१) एदेसिं ट्टाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि ।

कं केण होइ अहियं ट्टिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥५-७४॥

§ १५. समनंतरनिर्दिष्टानामेषां स्थानानां षोडशभेदभिन्नानां स्थित्यनुभव-प्रदेशैरल्पबहुत्वनिर्धारणार्थमिदं सूत्रमारभ्यते । तथा—‘एदेसिं ट्टाणाणं’ एतेषा-मनन्तरनिर्दिष्टानां स्थानानामित्यर्थः । ‘चदुसु कसाएसु’ चतुर्षु कषायेषु प्रत्येकं चतुर्भेद-भिन्नत्वात् षोडशसंख्यावच्छिन्नानामित्यर्थः । ‘कं केण होइ अहियं’ कं ट्टाणं केण ट्टाणेण सह सण्णियासिञ्जमाणं ट्टिदि-अणुभाग-पदेसेहिं हीणमहियं वा होदि त्ति पुच्छा-

है, वह चिरकाल तक नहीं ठहरता है, उसीके समान उत्तरोत्तर मन्दस्वभाववाला यह लोभका भेद भी चिरकाल तक नहीं ठहरता है । पिछले लोभसे अनन्तगुणी हीन सामर्थ्यवाला होता हुआ कुछ ही कालमें थोड़ेसे भी यत्नसे दूर हो जाता है ।

§ १४. तथा लोभकी मन्दतर चौथी अवस्थाविशेष है । वह हरिद्रावस्त्रके समान कहा गया है । हल्लिदीसे रंगा गया वस्त्र हरिद्र कहलाता है । उसके समान हरिद्रवस्त्रसदृश कहलाता है । जैसे हल्लिदीके द्रवसे रंगे गये वस्त्रका वह वर्णरंग चिरकाल तक नहीं ठहरता, वायु और आतप आदिके निमित्तसे ही उड़ जाता है । इसी प्रकार यह लोभका भेद मन्दतम अनुभागसे परिणत होनेके कारण चिरकाल तक आत्मामें नहीं ठहरता, क्षणमात्रमें ही दूर हो जाता है । इस प्रकार प्रकर्ष और अप्रकर्षवाले तीव्र और मन्द अवस्थाके भेदसे विभक्त होनेके कारण लोभ भी चार प्रकारका कहा गया है यह इस गाथाका अर्थ है ।

\* चारों कषायोंके इन सोलह स्थानोंमें स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा कौन स्थान किस स्थानसे अधिक होता है और कौन स्थान हीन होता है ॥५-७४॥

§ १५. समनन्तर कहे गये सोलह स्थानोंमें विभक्त इन स्थानोंके स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए इस सूत्रका आरम्भ करते हैं । यथा—‘एदेसिं ट्टाणाणं’ इन समनन्तर पूर्व कहे हुए स्थानोंके यह उक्त कथनका तात्पर्य है । ‘चदुसु कसाएसु’ चार कषायोंमेंसे प्रत्येकके चार भेदोंमें विभक्त होनेके कारण सोलह संख्यारूप यह उक्त कथनका तात्पर्य है । ‘कं केण होइ अहियं’ कौन स्थान किस स्थानके साथ सन्निकर्ष-को प्राप्त होता हुआ ‘स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होता है या अधिक होता

णिद्देशो कदो होइ । तत्थ द्विदिं पडुच्च सञ्चेसिं ट्टाणाणं हीणाहियभावगवेसणा णत्थि । किं कारणं ? सञ्चेसु द्विदिविसेसेसु अप्पप्पणो चउण्हं ट्टाणाणमविसेसेण समुवलंभादो । तं जहा—चालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तकसायुकस्सद्विदिं बंधमाणस्स चरिमद्विदि-एग-वि-ति-चउट्टाणविसेसिददेससञ्चघादिपरमाणू सञ्चे चैव लब्भंति, आवाहा-बाहिराणंतरजहण्णद्विदीए वि तेसिमविसेसेण संभवो । एदेण कारणेण सुत्ते द्विदिमस्सियूण पयदत्थपरिमग्गणा ण कया । एगट्टाणाणुभागो उक्कस्सद्विदीए वि लब्भइ, चउट्टाणाणु-भागो जहण्णद्विदीए वि लब्भइ त्ति एसो तहा ण षरूवेंतस्स सुत्तयारस्साहिप्पायो त्ति भणिदं होइ । संपहि अणुभाग-पदेसे समस्सियूण सत्थाण-परत्थाणकमेण पयदट्टाणाण-मप्पाबहुअपरूवणट्टं गाहासुत्तपबंधमणुसरामो—

(२२) माणे लदासमाणे उक्कस्सा वर्गणा जहण्णादो ।

हीणा च पदेसमो गुणेण णियमा अणंतेण ॥६-७५॥

§ १६. एसा सुत्तगाहा माणस्स लदासमाणट्टाणं घेत्तूण पदेसमो ग सत्थाणप्पा-बहुअपरिक्खणट्टमोइण्णा । तं कथं ? 'माणे' माणकसाए । किंविधे ? 'लदासमाणे'

है' इस प्रकार यहाँ पृच्छाका निर्देश किया गया है । उनमेंसे स्थितिकी अपेक्षा सभी स्थानोंके हीन-अधिकपनेका अनुसन्धान नहीं है, क्योंकि सभी स्थितिविशेषोंमें अपने-अपने चारों स्थान बिना विशेषताके पाये जाते हैं । यथा—कषायोंकी चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिको बाँधनेवाले जीवके अन्तिम स्थितिमें एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय विशेषताको लिये हुए देशघाति और सर्वघाति सब प्रकारके परमाणु पाये जाते हैं तथा आबाधाके बादकी समनन्तर जघन्य स्थितिमें भी वे अविशेषरूपसे सम्भव हैं । इस कारणसे सूत्रमें स्थितिकी अपेक्षा प्रकृत अर्थकी गवेषणा नहीं की गई है । एकस्थानीय अनुभाग उत्कृष्ट स्थितिमें भी प्राप्त होता है और चतुःस्थानीय अनुभाग जघन्य स्थितिमें भी प्राप्त होता है यह उस प्रकार कथन नहीं करनेवाले सूत्रकारका अभिप्राय है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब अनुभाग और प्रदेशोंका आलम्बनकर स्वस्थान और परस्थानके क्रमसे प्रकृत स्थानोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये गाथासूत्रके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

लताके समान मानमें उत्कृष्ट वर्गणा अर्थात् अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा जघन्य वर्गणासे अर्थात् प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणासे प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणी हीन है । किन्तु अनुभागकी अपेक्षा जघन्य वर्गणासे उत्कृष्ट वर्गणा नियमसे अनन्तगुणी अधिक है ॥६-७५॥

§ १६. यह सूत्रगाथा मानके लतासमान स्थानको ग्रहणकर स्वस्थान अल्पबहुत्वकी परीक्षा करनेके लिए आई है ।

शंका—वह कैसे ?

लदासमाणट्टाणावट्टिदे जाव 'उक्कस्सा वर्गणा' चरिमफइयचरिमवग्गणा त्ति वुत्तं होइ । 'जहण्णादो हीणा च पदेसग्गे' अणुभागं पेक्खियूण जा जहणवग्गणा पढमफइयादि-वग्गणा तत्तो णिरुद्धुकस्सवग्गणा पदेसग्गेण हीणा होदि त्ति वुत्तं होइ । केत्तियमेत्तेण हीणा त्ति वुत्ते 'गुणेण णियमा अणंतेण' णिच्छएणाणंतगुणहीणा होदि त्ति गहेयव्वा । किं कारणं ? लदासमाणजहणवग्गणादो अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणंतभाग-मेत्तफइयाणि उवरि गंतूण एगं पदेसगुणहाणिट्टाणंतरमुप्पज्जइ । पुणो अणेण विहिणा अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तगुणहीणाओ गंतूण तस्सेवप्पणो उक्कस्सवग्गणा होदि । एवं होदि त्ति कादूणुकस्सवग्गणा जहणवग्गणादो पदेसग्गं पेक्खियूणाणंतगुणहीणा होदि त्ति णत्थि संदेहो । अणुभागेण पुण पयदजहण-वग्गणादो उक्कस्सवग्गणा णिच्छएणाणंतगुणा त्ति धेत्तव्वा । कथमेदं सुत्तेणाणुवइट्ट-मुवलब्भदे ? ण, 'हीणा च पदेसग्गे' त्ति एत्थतण 'च' सहेण पदेसग्गं पेक्खियूण जहा-उत्तेण गुणगारेण हीणा होदि अहिया च अणुभागेणे त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । एवं सेसपण्णारसण्हं पि ट्टाणाणमप्पप्पणो जहणुकस्सवग्गणाओ धेत्तूण सत्थाणेण सण्णियासो कायव्वो ।

**समाधान—**'माणे' अर्थात् मानकषायमें । किस प्रकारके मानकषायमें ? लताके समान स्थानसे युक्त मानकषायमें । 'उक्कस्सा वर्गणा' उत्कृष्ट वर्गणा अर्थात् अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक यह उक्त कथनका तात्पर्य है । 'जहण्णादो हीणा च पदेसग्गे'—अनुभागकी अपेक्षा जो जघन्य वर्गणा है अर्थात् प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणा है उससे विवक्षित उत्कृष्ट वर्गणा प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । कितने प्रमाणमें हीन होती है ऐसी आशंका होनेपर 'गुणेण णियमा अणंतेण' अर्थात् नियमसे अनन्तगुणी हीन होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि लताके समान जघन्य वर्गणासे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धक ऊपर जाकर एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर उत्पन्न होता है । पुनः इस विधिसे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र गुणहीन स्थान जाकर उसीकी अपनी उत्कृष्ट वर्गणा उत्पन्न होती है । इस प्रकार होती है ऐसा समझकर उत्कृष्ट वर्गणा जघन्य वर्गणासे प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है इसमें सन्देह नहीं है । अनुभागकी अपेक्षा तो प्रकृत जघन्य वर्गणासे उत्कृष्ट वर्गणा निश्चयसे अनन्तगुणी है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

**शंका—**सूत्रद्वारा नहीं उपदिष्ट की गई यह बात कैसे उपलब्ध होती है ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि 'हीणा च पदेसग्गे' इस प्रकार यहाँ आये हुए 'च' शब्दसे प्रदेशोंकी अपेक्षा पूर्वोक्त गुणकारके क्रमसे हीन होती है, परन्तु अनुभागकी अपेक्षा उसी गुणकारके क्रमसे अधिक होती है इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवम्बन लिया गया है । इसी प्रकार शेष पन्द्रह स्थानोंकी अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट वर्गणाओंको ग्रहणकर स्वस्थानकी अपेक्षा सन्निकर्ष करना चाहिए ।

**विशेषार्थ—**मानकषायमें चार प्रकारका अनुभाग पाया जाता है । उसमेंसे लताके

§ १७. संपहि माणस्स चउण्हं द्वाणाणं परत्थाणप्पाबहुअपरूवणइमुवरिमगाहा-  
सुत्तमोइण्णं—

(२३) णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो ।

सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७-७६॥

१८. पुव्वसुत्तादो माणग्गहणमिहाणुवट्टदे, पदेसग्गेणे त्ति च, तेणेवमहिसंबंधो  
कायच्चो । णियमा णिच्छएण लदासमाणादो माणादो दारुअसमाणो माणो पदेसग्गे-  
णाणंतगुणहीणो होदि त्ति । एसो वुण एत्थ भावत्थो—लदासमाणसव्वपदेसपिंडादो  
दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडो अणंतगुणहीणो त्ति । किं कारणं ? लदासमाणजहण-  
वग्गणादो दारुअसमाणजहणवग्गणा पदेसग्गावेक्खाए अणंतगुणहीणा । पुणो लदा-  
समाणविदियवग्गणादो दारुअसमाणविदियवग्गणा अणंतगुणहीणा । एवमणेण  
विधिणा गंतूण लदासमाणुककस्सवग्गणादो दारुअसमाणुककस्सवग्गणा अणंतगुणहीणा  
भयदि । एवं होदि त्ति कादूण लदासमाणसव्वपदेसपिंडादो दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडो  
अणंतगुणहीणो त्ति सिद्धं । ण च तत्थतणफइयाणं बहुत्तमवलंबिय पयदविवज्जासणं

समान अनुभागमें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा स्वस्थान अल्पबहुत्वकी क्या व्यवस्था है  
इसका यहाँ सूत्र गाथा द्वारा स्पष्ट विवेचन किया गया है । इसी प्रकार मानकषायके शेष तीन  
प्रकारके अनुभागमें तथा क्रोधकषाय, मायाकषाय और लोभकषायके प्रत्येक चार-चार प्रकारके  
अनुभागमें इस प्रकार सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके अनुभागमें प्रदेशों और अनुभागकी  
अपेक्षा स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए ।

§ १७. अब मानकषायके चारों स्थानोंके परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये  
आगेका गाथासूत्र आया है—

लता समान मानसे दारु समान मान प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्त-  
गुणा हीन है । शेष मान अर्थात् अस्थिसमान और शैलसमान मान भी क्रमसे  
अर्थात् पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा आगे-आगेका मान प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणा  
हीन है ॥७-७६॥

§ १८. पिछले गाथासूत्रसे प्रकृतमें 'मान' पदकी अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए और  
'पदेसग्गेण' पदकी भी अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए, उसके अनुसार इस प्रकार सम्बन्ध करना  
चाहिए—'णियमा' अर्थात् निश्चयसे लतासमान मानसे दारुसमान मान प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्त-  
गुणा हीन होता है । इसका प्रकृतमें यह भावार्थ है कि लताके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे दारुके  
समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि लताके समान जघन्य वर्गणासे दारुके  
समान जघन्य वर्गणा प्रदेशपिण्डकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है । तथा लताके समान  
दूसरी वर्गणासे दारुके समान दूसरी वर्गणा अनन्तगुणी हीन होती है । इस प्रकार इस  
विधिसे जाकर लताके समान उत्कृष्ट वर्गणासे दारुके समान उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी हीन  
होती है । इस प्रकार होनेकी व्यवस्था है, इसलिये लताके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे दारुके  
समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणाहीन है यह सिद्ध हुआ । किन्तु वहाँके स्पर्धकोंके बहुतपने-

जुत्तं, दोसु वि द्वाणेषु अप्पप्पणो आदिवग्गणपमाणेण दिवड्ढगुणहाणिमेत्तेसु संतेसु तत्थ फद्दयगुणगारस्स पयदविवज्जासणं पडि सामर्थ्याभावादो ।

§ १९. संपहि जहा लदासमाणादो दारुअसमाणो अणंतगुणहीणो जादो, एवं दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडादो अत्थिसमाणसव्वपदेसपिंडो अणंतगुणहीणो । तत्तो वि सेलसमाणसव्वपदेसपुंजो अणंतगुणहीणो ति एदस्सत्थविसेसस्स पडुप्पायणडुं गाहा-पच्छद्वणिद्देसो, 'सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेणे' ति वुत्ते<sup>१</sup> सेसाणमणुभाग-द्वाणाणं जहाकमं पदेसग्गेणाणंतगुणहीणत्तसिद्धीए जहावुत्तेण णाएण णिव्वाह-सुवलंभादो ।

(२४) णियमा लदासमादो अणुभागग्गेण वग्गणग्गेण ।

सेसा कमेण अहिया<sup>२</sup> गुणेण णियमा<sup>३</sup> अणंतेण ॥७७॥

§ २०. एदेण सुत्तेण लदासमाणाणुभागद्वाणादो सेसद्वाणाणमणुभागस्स जहा-कमणंतगुणत्तं परुविदं । तं जहा—'णियमा' णिच्छएण 'लदासमादो'<sup>४</sup> लदासमाण-सण्णिदमाणाणुभागद्वाणादो सेसा दारुअसमाणादयो कमेण जहाकममहिया<sup>५</sup> होंति ति सुत्तसंबंधो कायव्वो । केण ते तत्तो अहिया ति पुच्छिदे 'अणुभागग्गेण वग्गणग्गेणे'

का अवलम्बन लेकर प्रकृत विषयका विपर्यास करना युक्त नहीं है, क्योंकि दोनों ही स्थानोंमें अपनी-अपनी आदि वर्गणाके प्रमाणसे डेढ़ गुणहानि मात्र होनेपर वहाँ स्पर्धकरूप गुणकारमें प्रकृत विषयके विपर्यास करनेकी सामर्थ्य नहीं है ।

§ १९. अब जैसे लताके समान प्रदेशपिण्डसे दारुके समान प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है इसी प्रकार दारुके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे अस्थिके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्त-गुणा हीन है तथा उससे भी शैलके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है । इस प्रकार इस अर्थविशेषके कथन करनेके लिये गाथाके उत्तरार्धका निर्देश किया है, क्योंकि 'सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण' ऐसा कहने पर शेष अनुभागस्थानोंके क्रमसे प्रदेशसमूहकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीनपनेकी सिद्धि पूर्वोक्त न्यायके अनुसार निर्वाह बन जाती है ।

लताके समान मानसे शेष स्थानीय मान अनुभागसमूहकी अपेक्षा और वर्गणा-समूहकी अपेक्षा क्रमशः नियमसे अनन्तगुणित अधिक होते हैं ॥७७॥

§ २०. इस सूत्र द्वारा लताके समान अनुभागस्थानसे शेष स्थानोंका अनुभाग क्रमसे अनन्तगुणा कहा गया है । यथा—'णियमा' अर्थात् निश्चयसे 'लदासमादो' अर्थात् लताके समान संज्ञावाले मानके अनुभागस्थानसे 'सेसा' अर्थात् दारु आदिके समान अनुभागस्थान 'कमेण' यथाक्रम अधिक होते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । किसकी अपेक्षा वे उससे अधिक होते हैं ऐसा पूछने पर 'अणुभागग्गेण' वग्गणग्गेण' यह

१. ता०प्रती सुत्ते इति पाठः । २. ता०प्रती णियमा इति पाठः । ३. ता०प्रती अहिया इति पाठः । ४. ता०प्रती समाणादो इति पाठः ।



त्ति वुत्तं । एत्थ अग्गसदो समुदायत्थवाचओ, अणुभागसमूहो अणुभागग्गं वर्गणा-  
समूहो वर्गणाग्गमिदि । अधवा अणुभागो चैव अणुभागग्गं, वर्गणाओ चैव वर्गणाग्ग-  
मिदि वेत्तव्वं । तेण लदासमाणमाणस्स सव्वाविभागपलिच्छेदपिण्डादो दारुअसमाणसव्वा-  
विभागपलिच्छेदकलावो अहिओ होदि । लदासमाणसव्ववर्गणसमूहादो वि दारुअ-  
समाणसव्ववर्गणसमूहो अहिओ होइ । एवमट्ठि-सेलसमाणणं पि वत्तव्वमिदि सुत्तत्थ-  
सम्भावो । संपहि केत्तिएण ते अहिया, किं गुणेण, आहो विसेसेणे त्ति आसंकाए इदमाह  
'गुणेणे त्ति' । एदेण विसेसाहियत्तं पडिसिद्धं दट्ठव्वं । तत्थ किं संखेज्जगुणेण,  
किमसंखेज्जगुणेण, किं वा अणंतगुणेणे त्ति आसंकाए णिराकरणमिदं वुत्तं 'णियमा'  
णिच्छेएणाणंतगुणाअहिया एदे जहाकमं होति त्ति । एत्थ दोवारं नियमसदुच्चारणं  
किं फलमिदि चे वुच्चदे—लदासमाणद्वाणादो सेमाणं जहाकममणुभागवर्गणग्गोहिं  
अहियत्तमेत्तावहारणफलो पढसो नियमसदो । विदियो वि त्तेसिमणंतगुणाअहियत्तमेव,  
ण विसेसाहियत्तं, णावि संखेज्जासंखेज्जगुणाअहियत्तमिदि अवहारणफलो । एवं  
पुव्विन्लदो-सुत्तेसु उवरिमाणंतरे सुत्ते च नियमसदुच्चारणाए सहलत्तं वक्खणोपव्वं ।

§ २१. अयं पुनरत्र वाक्यार्थः—लदासमाणजहणवर्गणाविभागपलिच्छेदेहितो  
दारुअसमाणजहणवर्गणाविभागपलिच्छेदा अणंतगुणा । लदासमाणविदियवर्गणा-

कहा है । यहाँपर 'अग्र' शब्द समुदायरूप अर्थका वाचक है । तदनुसार अनुभागसमूहका  
नाम अनुभागग्र और वर्गणासमूहका नाम वर्गणाग्र हुआ । अथवा अनुभागका ही नाम  
अनुभागग्र है और वर्गणाओंका नाम ही वर्गणाग्र है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । तदनुसार  
लताके समान लताके समस्त अविभागप्रतिच्छेदपिण्डसे दारुके समान सब अविभागप्रतिच्छेद-  
पिण्ड अधिक है । इसीप्रकार लताके समान सब वर्गणासमूहसे भी दारुके समान सब वर्गणा-  
समूह अधिक है । इसी प्रकार अस्थि और शैलसमान अनुभागस्थानों और वर्गणासमूहोंके  
विषयमें भी कथन करना चाहिये । इस प्रकार यह इस सूत्रका अर्थ है । अब वे अनुभाग-  
स्थान कितनी मात्रामें अधिक हैं, क्या गुणकाररूपसे अधिक हैं या विशेषरूपसे अधिक हैं  
ऐसी आशंका होनेपर 'गुणेण' यह वचन कहा है । इससे विशेष अधिक है इसका निषेध  
जानना चाहिए । वहाँ क्या वे संख्यातगुणे अधिक हैं, क्या असंख्यातगुणे अधिक हैं या क्या  
अनन्तगुणे अधिक हैं ऐसी आशंका होनेपर निराकरण करनेके लिए 'णियमा' निश्चयसे वे  
यथाक्रम अनन्तगुणे अधिक हैं यह कहा है ।

शंका—यहाँपर सूत्रमें दोवार 'नियम' शब्दके उच्चारणका क्या फल है ?

समाधान—कहते हैं—लताके समान स्थानसे शेष दारु आदिके अनुभागसमूह  
और वर्गणासमूह इन दोनोंकी अपेक्षा यथाक्रम अधिक होते हैं इस बातका अवधारण  
करना प्रथम नियम शब्दके इनेका फल है । दूसरे भी 'नियम' शब्दका वे स्थान अनन्तगुणे  
ही है, विशेष अधिक नहीं है और न संख्यातगुणे या असंख्यातगुणे अधिक है इस बातका  
निश्चय करना फल है । इस प्रकार थिले दो सूत्रोंमें और आगेके समनन्तर सूत्रमें 'नियम'  
शब्दके उच्चारणकी सफलताका व्याख्यान करना चाहिए ।

§ २१. यहाँपर पूरे कथनका यह तात्पर्य है—लताके समान जघन्य वर्गणाके अविभाग-  
प्रतिच्छेदोंसे दारुके समान जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । लताके समान

विभागपलिच्छेदेहितो दारुअसमाणविदियवग्गणाविभागपलिच्छेदा अणंतगुणा । एवं पेद्व्वं जाव लदासमाणुकस्सवग्गणाविभागपलिच्छेदेहितो दारुअसमाणुकस्सवग्गणा-विभागपलिच्छेदा अणंतगुणा जादा त्ति । एवं होदि त्ति कादू ण लदासमाणसव्वाणुभागावि-भागपलिच्छेदेहितो दारुअसमाणसव्वाणुभागाविभागपलिच्छेदा अणंतगुणा भवंति । एवं दारुअसमाणादो अट्टिसमाणाणुभागो अणंतगुणो । तत्तो वि सेलसमाणाणुभागो अणंतगुणो ।

§ २२. वग्गणाणं पुण भण्णमाणे लदासमाणाविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वट्ठिदसव्ववग्गणदीहत्तादो दारुअसमाणाविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वट्ठिदसव्ववग्गणा-दीहत्तमणंतगुणं । तत्तो अट्टिसमाणाणुभागसव्ववग्गण दीहत्तमणंतगुणं । तत्तो सेलसमाण-सव्वाणुभागवग्गणदीहत्तमणंतगुणं होदि त्ति । एत्थ सव्वत्थाविभागपलिच्छेदगुणगारो सव्वजीवेहितो अणंतगुणो । वग्गणागुणगारो च अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाण-मणंतभागमेत्तो । संपहि लदासमाणचरिमसंधीदो दारुअसमाणपढमसंधी अणुभागगेण पदेसग्गेण च कथं होदि, एवं सेससंधीओ कथं होंति त्ति एवंविहासंकाणिरायरणड्डमुत्तरं गाहासुत्तमोइण्णं—

(२५) संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे ।

हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥

दूसरी वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान दूसरी वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार लताके समान उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार उत्तरोत्तर अनुभागकी व्यवस्थाके अनुसार यह क्रम निश्चित होता है कि लताके समान समस्त अनुभाग-अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान समस्त अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार दारुके समान अनुभागसे अस्थिके समान अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे भी शैलके समान अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ २२. परन्तु वर्गणाओंकी अपेक्षा कथन करनेपर लताके समान अविभागप्रतिच्छेदोंके उत्तरोत्तर क्रमसे बढ़ी हुई सब वर्गणाओंके आयामसे दारुके समान अविभागप्रतिच्छेदोंके उत्तरोत्तर क्रमसे बढ़ा हुआ सब वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । उससे अस्थिके समान अनुभागसम्बन्धी सब वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । तथा उससे शैलके समान अनु-भागसम्बन्धी समस्त वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । यहाँपर सर्वत्र अविभागप्रतिच्छेदों-का गुणकार सब जीवोंसे अनन्तगुणा है और वर्गणाओंका गुणकार अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण है । अब लताके समान अन्तिम सन्धिसे दारुके समान प्रथम सन्धि अनुभागसमूह और प्रदेशसमूहकी अपेक्षा कैसी होती है तथा इसी प्रकार शेष सन्धियाँ कैसी होती हैं इस प्रकार इस तरहकी आशंकाका निराकरण करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

उत्तरोत्तर अन्तिम सन्धिसे आगेकी प्रथम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा तो नियमसे विशेष अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे विशेष हीन होती है । इस

§ २३. लदासमाणचरिमवग्गणा दारुअसमाणपढमवग्गणा च दो वि संधि ति वुच्चंति । एवं सेससंधीणं पि अत्थो वत्तव्वो । तम्हा विवक्खियचरिमसंधीदो विवक्खिय-पढमसंधी अणुभागावेक्खाए णियमा अहिया होइ, पदेसावेक्खाए च हीणा होइ । होंती वि दो वि य अणुभाग-पदेसे पेक्खियूण णियमा विसेसेण अणंतभागेग हीणा अहिया च होइ ति सुत्तथसंबंधो । एत्थ 'विसेसेणे' ति सामण्णणिदेसेण संखेज्जासंखेज्जभाग-परिहारेणाणंतभागो चेव वेप्पइ ति कधमवग्गम्मदे ? ण, वक्खाणादो तहाविहविसेस-पडिवत्तीदो । एवं ताव माणसंधीणं चउण्हं ट्टाणाणमणुभाग-पदेसे अस्सियूण सत्थाण-परत्थाणेहिं थोववहुत्तमुहेण सण्णियासं कादूण संपहि तेसिं चेव चदुण्हं ट्टाणाणं ट्टाण-सण्णाए णिण्णीदसरूवाणं घादिसण्णागुहेण देस-सव्वघाइभावगवेसणट्टुमुवरिं गाहासुत्तमोइण्णं—

(२६) सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे ।

हेट्टा देसावरणं सव्वावरणं च उवरित्तलं ॥७८॥

§ २४. संपहि एदं सुत्तमस्सियूण माणस्स लदासमाणादिट्टाणाणं घादिसण्णाए

प्रकार सर्वत्र दोनों सन्धियोंमें जानना चाहिए ॥७८॥

§ २३. लताके समान अन्तिम वर्णणा और दारुके समान प्रथम वर्णणा ये दोनों भी सन्धि कहलाती हैं । इसी प्रकार शेष सन्धियोंका भी अर्थ कहना चाहिये । इसलिये विवक्षित अन्तिम सन्धिसे विवक्षित प्रथम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा नियमसे अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होती है । ऐसी होती हुई भी दोनों ही सन्धियाँ अनुभाग और प्रदेशों की अपेक्षा क्रमशः नियमसे अनन्तर्वे भाग अधिक और अनन्तर्वे भाग हीन होती हैं इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है ।

शंका—प्रकृतमें 'विसेसेणे' ऐसा सामान्य निर्देश होनेसे संख्यातर्वे भाग और असंख्यातर्वे भागके परिहार द्वारा अनन्तर्वे भाग ही ग्रहण किया जाता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानसे उस प्रकारके विशेषका ज्ञान होता है । इस प्रकार सर्व प्रथम मानकषायकी सन्धियोंके चारों स्थानोंका अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा स्वस्थान और परस्थान दोनों प्रकारसे अल्पबहुत्वद्वारा सन्निकर्ष करके अब स्थान संज्ञा-रूपसे निर्णीतस्वरूप उन्हीं चारों स्थानोंकी धातिसंज्ञाद्वारा देशधातिपने और सर्वधातिपनेका अनुसन्धान करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

दारुके समान मानमें प्रारम्भके एक भाग अनुभागको छोड़कर शेष सब अनन्त बहुभाग तथा उत्कृष्ट अनुभाग सर्वावरणीय है । उससे पूर्वका लता समान अनुभाग और दारुका अनन्तर्वे भाग अनुभाग देशावरण है तथा दारुसमान अनुभागसे आगेका सब अनुभाग सर्वावरण है ॥७९॥

§ २४. अब इस सूत्रका आलम्बन लेकर मानकषायके लतासमान आदि स्थानोंकी

अणुगमं कस्सामो । तं जहा—सञ्चावरणीयं पुण सञ्चावरणीयमेव होइ । किं तमिदि वुत्ते ‘उक्कस्सं दारुअसमाणे’ जमुक्कस्समणुभागट्ठाणं तं णियमा सञ्चघाइ त्ति वुत्तं होइ । ण केवलं दारुअसमाणे उक्कस्साणुभागो चैव सञ्चघादी, किंतु दारुअसमाणस्स हेट्ठिमाणंतिमभागं मोत्तूण सेसाणमणंताणं भागाणं सञ्चघादित्तमेदेण सुत्तेण णिदिट्ठमिदि घेत्तव्वं, पुण सहस्स समुच्चयट्ठे पवुत्तिअवलंबणादो । अथवा दारुअसमाणे उक्कस्सं सञ्चावरणमिदि वुत्ते दारुअसमाणस्स अणंता भागा सञ्चावरणं होति त्ति अत्थो घेत्तव्वो, अणंताणं भागाणमुक्कस्सत्तसिद्धीए विरोहाभावादो । तदो दारुअसमाणस्स अणंता भागा सञ्चघादि त्ति सिद्धं । ‘हेट्ठा देसावरणं’ एदेण वयणेण दारुअसमाणस्स हेट्ठिमाणंतिमभागो लदासमाणभागो च सञ्चो देसघादि त्ति घेत्तव्वो, तस्स सञ्चघायणसत्तीए अभावादो । ‘सञ्चावरणं च उवरिळ्ळं । एदेण वि दारुअसमाणादो उवरिळ्ळमट्ठिसमाणं सेलसमाणं च सञ्चमेव णियमा सञ्चघादि त्ति जाणावियं, तिच्च-तिच्चयरभावेणावट्ठिदस्स तदुभयस्स तद्दाभावविरोहाभावादो ।

(२७) एसो कमो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि ।

सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेसु बोद्धव्वं ॥८०॥

§ २५. जो एसो कमो अणंतरमेव ‘माणे लदासमाणे’ इच्चेदं गाहासुत्तादिं

घातिसंज्ञाका अनुगम करेंगे । यथा—‘सञ्चावरणीयं पुण’ अर्थात् सर्वावरणीय ही है । वह सर्वावरणीय कौन है ऐसा पूछने पर ‘उक्कस्सं दारुसमाणे’ अर्थात् दारुके समान मानमें जो उत्कृष्ट अनुभागस्थान है वह नियमसे सर्वघाति है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । केवल दारुके समान मानमें उत्कृष्ट अनुभाग ही सर्वघाति नहीं है, किन्तु दारुके समान मानके सबसे प्रारम्भके अनन्तर्वे भागप्रमाण अनुभागको छोड़कर शेष अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग सर्वघाति है यह इस सूत्र द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सूत्रमें आये हुए पुनः शब्दकी समुच्चयरूप अर्थमें प्रवृत्तिका अबलम्बन लिया गया है । अथवा दारुके समान मानमें उत्कृष्ट सर्वावरण ऐसा कहनेपर दारुके समान मानका अनन्त बहुभाग अनुभाग सर्वावरण है यह अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अनन्त बहुभाग अनुभागके उत्कृष्टपनेकी सिद्धि होनेमें विरोधका अभाव है । इसलिये दारुके समान मानका अनन्त बहुभाग अनुभाग सर्वघाति है यह सिद्ध हुआ । ‘हेट्ठा देसावरणं’ इस वचनसे दारुके समान मानका अधस्तन अर्थात् सबसे प्रारम्भका अनन्तवाँ भाग अनुभाग और लताके समान अनुभाग सब देशघाति है ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उसमें सर्वघाति-पनेरूप शक्तिका अभाव है । ‘सञ्चावरणं च उवरिळ्ळं’ इस वचनसे भी दारुके समान अनुभागसे आगेका अस्थिके समान और शैलके समान सब अनुभाग नियमसे सर्वघाति है ऐसा ज्ञान कराया गया है, क्योंकि यह दोनों प्रकारका अनुभाग तीव्र और तीव्रतर भावसे अवस्थित है, इसलिये उसके वैसा होनेमें विरोध नहीं आता ।

जो यह क्रम पिछली सूत्र गाथाओंमें कह आये हैं वह सब मान, माया, लोभ तथा क्रोधसम्बन्धी चारों स्थानोंमें निरवशेषरूपसे नियमसे जानना चाहिए ॥८०॥

§ २५. जो यह क्रम अनन्तर पूर्व ही ‘माणे लदासमाणे’ इत्यादि गाथासूत्रसे लेकर

कादूण जाव 'सव्वावरणीयं पुण' एसा गाहा ति माणकसायमहिकिच्च परूविदो सो चैव कमो अपरिसेसो मायाए वि चउण्हं ट्टाणाणं जहाकमं जोजेयव्वो । ण केवलं मायाए, किंतु णियमसा दु णिच्छएणेव लोभे वि परूवणिज्जो । ण केवलं माया-लोभाणं चैव एसो कमो, किंतु सव्वं पि कोहकम्मं जं चदुसु ट्टाणेसु णग-पुढावि-समाणादिभेयभिण्णेसु ट्टिदं तं पि एदेणेव कमेण बोद्धव्वमिदि भणिदं होइ । एवमोधेण चउण्हं कसायाणं पादेक्कं चउब्भेयभिण्णेसु ट्टाणेसु पयदपरूवणं कादूण संपहि गदियादिमग्गणासु एदेसिं ट्टाणाणं बंध-संतादिविसेसिदाणं गवेसणदुमुवरिमं गाहासुत्त-पबंधमाह—

(२८) एदेसिं ट्टाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से ।

बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥

§ २६. एदेसिमणंतरणिदिट्टाणं सोलसण्हं ट्टाणाणमादेसपरूवणाए कीरमाणाए कदमिस्से गदीए कदमं ठाणं होइ । किमविसेसेण सव्वासु गदीसु सव्वेसिं ट्टाणाणं संभवो आहो अत्थि को विसेसो ति पुच्छियं होइ । एदेसिं ट्टाणाणं बंध-संत-उदयोव-समेहिं विसेसिदाणं पादेक्कं गदीसु अणुगमो कायव्वो ति जाणावणदुमेदं वुत्तं 'बद्धं च बज्झमाणं' इच्चादि । 'बद्धं च' णिव्वत्तिदबंधं होदूण बंधविदियादिसमएसु संतकम्म-भावेणावट्टिदं कदमं ट्टाणं कदमिस्से गदीए होदि ? 'बज्झमाणं' तत्कालियबंधपरिणामेण

'सव्वावरणीयं पुण' इस गाथा पर्यन्तकी गाथासूत्रोंमें मानकषायको अधिकृत कर कह आये हैं वही सब क्रम मायाकषायमें भी चारों स्थानोंमें क्रमसे योजित कर लेना चाहिए । केवल मायामें ही नहीं, किन्तु 'णियमसा' अर्थात् निश्चयसे लोभकषायमें भी कहना चाहिए । केवल लोभ-कषाय और मायाकषायमें ही यह क्रम नहीं है, किन्तु जो समस्त क्रोधकर्म नगसमान और पृथिवीसमान आदि भेदोंमें विभक्त चार स्थानोंमें स्थित है उसे भी इसी क्रमसे जान लेना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार ओघसे चारों कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायके चार भेदोंमें विभक्त स्थानोंमें प्रकृत कथन करके अब गति आदि मार्गणाओंमें बन्ध और सत्त्व आदिकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए स्थानोंकी गवेषणा करनेके लिये आगेके गाथासूत्र प्रबन्धको कहते हैं—

इन पूर्वोक्त चारों स्थानोंमेंसे किस गतिमें कौन स्थान बद्ध है, कौन स्थान बध्यमान है, कौन स्थान उपशान्त है और कौन स्थान उदीर्ण है ॥८१॥

§ २६. अनन्तर पूर्व कहे गये इन सोलह स्थानोंकी आदेश प्ररूपणा करनेपर किस गतिमें कौन स्थान है ? क्या विशेषता किये विना सब गतियोंमें सब स्थान सम्भव हैं या कोई विशेषता है यह इस गाथासूत्रद्वारा पूछा गया है । बन्ध, सत्त्व, उदय और उपशम-भावसे विशेषताको प्राप्त हुए इन स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानका गतियोंमें अनुगम करना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह वचन कहा है—'बद्धं च बज्झमाणं' इत्यादि । 'बद्धं च' अर्थात् निवृत्त बन्ध होकर बन्धके बाद द्वितीयादि समयोंमें सत्त्व कर्मरूपसे अवस्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? इसी प्रकार 'बज्झमाणं' अर्थात् तत्काल बन्धरूप

विसेसियं होदूण णवकबंधसरूवेणावट्टिदं वा कदमं ठाणं कदमिस्से गदीए होदि ? 'उवसंतं वा' एत्थाणुदयलक्खणो उवसमो विवक्खिओ, तेणाणुदयसरूवं होदूणुवसंत-भावेण ट्टिदं कदमं ठाणं कम्मिह गदीए होइ ? 'उदिण्णं वा' एदेण वि सुत्तावयवेण उदयावत्थाविसेसिदं होदूण कं ठाणं कदमिस्से गदीए होदि त्ति पुच्छाणिहेसो कदो होदि । तदो एदं सव्वं पुच्छासुत्तमेव । एदिस्से पुच्छाए विसेसणिण्णयमुवरि चरिमगाहा-सुत्तसंबंधेण कस्सामो—

(२८) सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते ।

सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥

§ २७. एत्थ 'सण्णीसु असण्णीसु य' इच्चेदेण सुत्तावयवेण सण्णिमग्गणा पयदपरूवणाविसेसिदा गहिया । 'पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते । एदेण वि सुत्तावयवेण काइंदियमग्गणाणं संगहो कायव्वो । 'सम्मत्ते मिच्छत्ते' एदेण वि गाहापच्छद्वेण सम्मत्तमग्गणा सूचिदा, तब्भेदाणं मुत्तकंठमिहोवएसादो । तदो एदेसु मग्गणाविसेसेसु कदमं ठाणं बंधोदयादिविसेसिदं होइ ति पुच्छाण संबंधो एत्थ वि कायव्वो ।

(३०) विरदीय अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे ।

सागारे जोगम्मिह य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥

परिणामसे विशेषताको प्राप्त होकर नवक बन्धस्वरूपसे अवस्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? इसी प्रकार 'उवसंतं वा' इस वचनसे यहाँपर अनुदय लक्षणरूप उपशम विवक्षित है, इसलिये अनुदयस्वरूप होकर उपशान्तभावसे स्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? तथा इसी प्रकार 'उदिण्णं वा' सूत्रके इस वचन द्वारा भी उदय अवस्थासे विशेषताको प्राप्त होकर कौन स्थान किस गतिमें होता है इस प्रकार पृच्छानिर्देश किया है, इसलिये यह सब पृच्छासूत्र ही है । इस पृच्छाका विशेष निर्णय आगेके अन्तिम गाथासूत्रके सम्बन्धसे करेंगे—

पूर्वोक्त बद्ध आदि विशेषताओंसे युक्त ये सोलह स्थान यथासम्भव संज्ञियोंमें, असंज्ञियोंमें, पर्याप्तमें, अपर्याप्तमें, सम्यक्त्वमें, मिथ्यात्वमें और मिश्र ( सम्यग्मिथ्यात्व ) में जानना चाहिए ॥८२॥

§ २७. इस गाथासूत्रमें 'सण्णीसु य' इस सूत्र वचन द्वारा प्रकृत प्ररूपणासे विशेषताको प्राप्त हुई संज्ञी मार्गणा ग्रहण की गई है । 'पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते' इस सूत्रवचन द्वारा भी काय और इन्द्रिय मार्गणाका संग्रह करना चाहिए । 'सम्मत्ते मिच्छत्ते' इत्यादि गाथाके उत्तरार्ध द्वारा भी सम्यक्त्व मार्गणा सूचित की गई है, उसके भेदोंका यहाँ पर मुक्तकण्ठ होकर उपदेश दिया गया है । इसलिये मार्गणाके इन भेदोंमें बन्ध और उदय आदिसे विशेषताको प्राप्त हुआ कौन स्थान होता है इस प्रकार पृच्छाओंका सम्बन्ध यहाँ पर भी करना चाहिए ।

पूर्वोक्त बद्ध आदि विशेषताओंसे युक्त वे ही सोलह स्थान विरतिमें, अविरतिमें, विरताविरतमें, अनाकार उपयोगमें, साकार उपयोगमें, योगमें और लेश्यामें तथा गाथासूत्रमें आये हुए 'चेव' पदसे अनुक्त शेष मार्गणाओंमें भी जानना चाहिए ॥८३॥

§ २८. एसा गाहा वुत्तसेसासु संजमादिमग्गणासु पयदट्टाणाणं मग्गणाए बीजपदभूदा । तं जहा—‘विरदीय अविरदीए’ इच्चेदेण पढमावयवेण संजममग्गणा णिरवसेसा गहेयव्वा । ‘तहा अणागारे’ त्ति भणिदे दंसणमग्गणा घेत्तव्वा । ‘सागारे’ त्ति भणिदे णाणमग्गणा गहेयव्वा । ‘जोगम्हि य’ एवं भणिदे जोगमग्गणा घेत्तव्वा । ‘लेस्साए’ त्ति वयणेण लेस्समग्गणाए गहणं कायव्वं । एत्थतण ‘चेव’ सहेणानुत्त-समुच्चयट्टेण वुत्तसेससव्वमग्गणाणं संगहो कायव्वो । तदो एदेसु मग्गणाभेदेसु कदमं ठाणं होइ त्ति पुव्वं व पुच्छाहिसंबंधो एत्थ वि कायव्वो । एदस्स णिण्णयमुवरिं कस्सामो । (३१) कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्टाणस्स बंधगो होइ ।

कं ठाणमवेदंतो अबंधगो कस्स ट्टाणस्स ॥८४॥

§ २९. एदं गाहासुत्तमोषेणादेसेण च चउण्हं कसायाणं सोलसण्हं ट्टाणाणं बंधोदएहिं सण्णियासपरूवणट्टुमागयं । तं कथं ? ‘कं ठाणं वेदंतो’ एदेसिं सोलसण्हं ट्टाणाणं मज्जे कदमं ट्टाणमणुभवंतो ‘कस्स ट्टाणस्स बंधगो होइ’, किमविसेसेण सव्वेसि-माहो अत्थि को विसेसो त्ति पुच्छा कदा होइ । ‘कं ठाणमवेदंतो’ कदमं ट्टाणमणुभवंतो कस्स वा ट्टाणस्स अबंधगो होइ त्ति एसो वि पुच्छाणिहेसो चेव । एदस्स भावत्थो—

§ २८. यह गाथा पूर्वमें कही गई मार्गणाओंसे शेष रही संयम आदि मागणाओंमें प्रकृत स्थानोंकी मार्गणाके लिये बीज पदभूत है । यथा—‘विरदीय अविरदीए’ इत्यादि प्रथम वचन द्वारा समस्त संयम मार्गणाको ग्रहण करना चाहिए । ‘तहा अणागारे’ ऐसा कहने पर दर्शनमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए । ‘सागारे’ ऐसा कहने पर ज्ञानमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए । ‘जोगम्हि य’ ऐसा कहने पर योगमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए । तथा ‘लेस्साए’ इस वचनसे लेश्यामार्गणाको ग्रहण करना चाहिए । यहाँ गाथा सूत्रमें आया हुआ ‘चेव’ शब्द अनुक्त मार्गणाओंका समुच्चय करनेवाला होनेसे कही गई मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाओंका संग्रह करना चाहिए । इसलिये इन मार्गणाके भेदोंमें कौन स्थान होता है इस प्रकार यहाँ भी पृच्छाका सम्बन्ध कर लेना चाहिए । इस विषयका निर्णय आगे करेंगे ।

किस स्थानका वेदन करनेवाला कौन जीव किस स्थानका बन्धक होता है और किस स्थानका वेदन नहीं करनेवाला कौन जीव किस स्थानका अबन्धक होता है ॥८४॥

§ २९. यह गाथासूत्र ओघ और आदेशसे चार कषायोंके सोलह स्थानोंसम्बन्धी बन्ध और उदयके सन्निकर्षका कथन करनेके लिए आया है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—‘कं ठाणं वेदंतो’ इस वचन द्वारा इन सोलह स्थानोंमेंसे किस स्थानका अनुभव करनेवाला जीव किस स्थानका बन्धक होता है, क्या अविशेषरूपसे सब स्थानोंका बन्धक होता है या कोई विशेष है यह पृच्छा की गई है । ‘कं ठाणमवेदंतो’ अर्थात् किस स्थानका अनुभव नहीं करनेवाला जीव ‘कस्स वा ट्टाणस्स अबंधगो’ अर्थात् किस स्थानका

कोहादिकसायाणं एगट्टाण-विट्टाण-तिट्टाण-चउट्टाणाणि वेदयमाणो णिरुद्धट्टाणोदएणं काणि ट्टाणाणि बंधइ, काणि वा ण बंधइ ? अवेदयमाणो वा केसिं ट्टाणाणमबंधगो होदिति एसो अत्थविसेसो बंधोदयाणं सण्णियाससरूवो एण्ह परूवेयव्वो त्ति एदस्स विसेसण्णियमुवरिमगाहासुत्तसंबंधेण कस्सामो—

(३२) असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च ।

सण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं ॥(१६)८५॥

§ ३०. एसा सोलसमी गाहा । संपहि एदं गाहासुत्तमस्सियूण पुव्वणिदिट्टाणं सव्वासिमेव पुच्छाणं णिरारेगीकरणट्टमत्थमग्गणा कीरदे । तत्थ ताव सण्णिमग्गणाए पयदत्थमग्गणं सुत्ताणुसारेण कस्सामो । तं जहा—‘असण्णी खलु बंधइ’ एवं भणिदे जो असण्णी जीवो सो बंधइ त्ति पदसंबंधो कायव्वो । किं बंधदि त्ति भणिदे लदासमाणं च दारुसमगं च एदाणि दोसु वि ट्टाणाणि बंधदि त्ति वुत्तं होइ । एदेण सेसाणं दोण्हं ट्टाणाणं तत्थ सव्वत्थ बंधाभावो पदुप्पाइदो, तत्थ तव्वंधकारणसव्वसंकिलेसाभावादो । तदभावो वि कुदो ? जादिविसेसादो । तदो लदासमाण-दारुअसमाणसण्णिदाणं दोण्हमेवाणुभाग-

अबन्धक है इस प्रकार यह भी पृच्छा निर्देश है । इसका भावार्थ—क्रोधादि कषार्थोंके एक स्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करनेवाला जीव विवक्षित स्थानके उदयके साथ किन स्थानोंका बन्ध करता है और किन स्थानोंका बन्ध नहीं करता । अथवा किस स्थानको वेदन नहीं करनेवाला जीव किन स्थानोंका बन्ध नहीं करता इस प्रकार बन्ध और उदयके सन्निकर्षस्वरूप इस अर्थ विशेषका यहाँ कथन करना चाहिए इस विशेषका निर्णय आगेके गाथासूत्रके सम्बन्धसे करेंगे—

असंज्ञी जीव नियमसे लतासमान और दारुसमान इन दो अनुभागस्थानोंको बाँधता है । बन्धकी अपेक्षा संज्ञी जीव चारों स्थानोंमें भजनीय है । इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें स्थानोंका अनुगम करना चाहिए ॥(१६)८५॥

§ ३०. यह सोलहवीं गाथा है । अब इस गाथासूत्रका अवलम्बन लेकर पूर्वमें निर्दिष्ट की गई सभी पृच्छाओंका निराकरण करनेके लिये अर्थविषयक मार्गणा करते हैं । उसमें सर्वप्रथम संज्ञी मार्गणामें प्रकृत अर्थकी मार्गणा सूत्रके अनुसार करेंगे । यथा—‘असण्णी खलु बंधइ’ ऐसा कहने पर जो असंज्ञी जीव है वह बाँधता है इन पदोंका परस्पर सम्बन्ध करना चाहिए । ‘किं बंधदि’ ऐसा कहने पर लतासमान और दारुसमान इन दोनों ही स्थानोंको बाँधता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इससे शेष दो स्थानोंका उन सबमें बन्धका अभाव है यह कहा गया है, क्योंकि उनमें उन दो स्थानोंके बन्धके कारणरूप सब प्रकारके संक्लेशपरिणामोंका अभाव है ।

शंका—उनका अभाव किस कारणसे है ?

समाधान—जातिविशेषके कारण उनका अभाव है । अर्थात् असंज्ञी जीवोंके स्वभावसे ही ऐसे संक्लेश परिणाम नहीं होते जिनको निमित्तकर अस्थिसमान और शैलसमान स्थानोंका उनके बन्ध होवे ।



ट्टाणाणमसण्णीसु बंधो होइ, णाण्णेसिमिदि सिद्धं । एदेसिं च दोण्हं ट्टाणाणमविभत्त-  
सरूवाणमेवासण्णीसु बंधो होदि त्ति धेत्तव्वं, विभत्तसरूवेण तत्थ तेसिं बंधासंभावादो ।

§ ३१. संपहि सण्णीसु कथं होइ त्ति आसंकाए इदमाह—‘सण्णी चदुसु  
धिभज्जो’ सण्णी खलु चदुसु वि अणुभागट्टाणेसु बंधेण भयणिज्जो—सिया एगट्टाणियं,  
सिया विट्टाणियं, सिया तिट्टाणियं, सिया चउट्टाणियमणुभागं बंधदि त्ति । किं  
कारणं ? चउण्हं ट्टाणाणं बंधकारणविसुद्धि-संकिलेसाणं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो ।  
एदेण बंधमस्सिगूण सण्णिमग्गणाविसयपुव्विन्लपुच्छाए अत्थणिण्णओ दरिसिदो ।  
एदीए दिसाए उदयोवसंत-संतानं पि तत्थ णिण्णयो मग्गियव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामा-  
सियत्तादो । तं कथं ? असण्णीसु उदयो विट्टाणं चैव, सेसोदयपरिणामाणमेत्थ अच्चंता-  
भावेण पडिसिद्धत्तादो । उवसंतं संतं च एगट्टाण-विट्टाण-तिट्टाण-चउट्टाणं भवदि ।  
णवरि एगट्टाणस्स सुद्धस्स संभवो णत्थि त्ति पुठ्वं व वत्तव्वं । सण्णीणं पुण संतमुवसंत-  
मुदयो च सव्वाणि चैव ट्टाणाणि होति त्ति धेत्तव्वं ।

§ ३२. संपहि ‘कं टाणं वेदंतो कस्स व ट्टाणस्स बंधगो होदि’ त्ति एदिस्से

इसलिए लतासमान और दारुसमान संज्ञावाले दोनों ही अनुभागस्थानोंका असंज्ञियोंके  
बन्ध होता है, अन्य दो स्थानोंका बन्ध नहीं होता यह सिद्ध हुआ । अविभक्तस्वरूप इन दोनों  
ही स्थानोंका असंज्ञियोंमें बन्ध होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विभक्तरूपसे  
उन स्थानोंका उनमें बन्ध होना असम्भव है ।

§ ३१. अब संज्ञी जीवोंमें किस प्रकारका बन्ध होता है ऐसी आशंका होनेपर यह  
वचन कहते हैं—‘सण्णी चदुसु विभज्जो’ संज्ञी जीव चारों ही अनुभागस्थानोंमें नियमसे  
बन्धकी अपेक्षा भजनीय है—कदाचित् एकस्थानीय, कदाचित् द्विस्थानीय, कदाचित् त्रि-  
स्थानीय और कदाचित् चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है, क्योंकि उनमें चारों ही स्थानोंके  
बन्धके कारण विशुद्धि और संकलेशरूप परिणाम सम्भव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है ।  
इस प्रकार इस वचन द्वारा बन्धका अवलम्बन लेकर संज्ञीमार्गणाविषयक पिछली पृच्छाके  
अर्थका निर्णय दिखलाया । इसी दिशाद्वारा उदय, उपशम और सत्त्वका भी संज्ञी मार्गणमें  
निर्णय कर लेना चाहिए, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—असंज्ञियोंमें उदय द्विस्थानीय ही होता है, क्योंकि शेष उदयरूप परि-  
णामोंका उनमें अत्यन्त अभाव होनेसे उनका वहाँ निषेध किया है । असंज्ञियोंमें उपशम  
और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होता है । इतनी विशेषता  
है कि इनमें शुद्ध एकस्थानीय उपशमस्थान और सत्त्वस्थान नहीं होता यह कथन यहाँ  
पूर्वके समान करना चाहिए । परन्तु संज्ञियोंमें सत्त्व, उपशम और उदयरूप सभी स्थान  
होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

§ ३२. अब ‘कं टाणं वेदंतो कस्स व ट्टाणस्स बंधगो होदि’ इस प्रकार इस पृच्छाका

पुच्छाए णिण्णयमेदं चेव देसामासियसुत्तमस्सियूण सण्णिमग्गणाए कस्सामो । तं कथं ? असण्णी विट्ठाणमणुभागं वेदंतो णियमा विट्ठाणमणुभागं बंधइ, तत्थ पयारंतरा-संभवादो । सण्णिपंचिदियो एगट्ठाणमणुभागं वेदंतो णियमा एगट्ठाणमेव बंधइ, ण सेसाणि । विट्ठाणं वेदंतो विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणाणि बंधइ । तिट्ठाणं वेदंतो तिट्ठाण-चउट्ठाणाणि बंधइ । चउट्ठाणं वेदंतो णियमा चउट्ठाणं बंधइ, सेसाणमबंधगो त्ति एदेण 'कं ठाणमवेदंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्से' त्ति एदं पि वक्खणिदं दट्ठव्वं । किं कारणं ? एगट्ठाणमवेदंतो एगट्ठाणस्स अबंधगो इच्चादिवदिरेगपरूवणाए एदेणेव गयत्थत्तदंसणादो ।

§ ३३. संपहि एदेणेव गयत्थाणं सेसमग्गणाणं पि एदीए दिसाए अणुगमो कायव्वो त्ति जाणावणट्टमुत्तरो सुत्तावयवो 'एवं सव्वत्थ कायव्वं' । जहा सण्णि-मग्गणाए ट्ठाणाणमेसा अत्थमग्गणा कया, तहा चेव सेसगदियादितेरसमग्गणासु विट्ठाणाणमणुमग्गणा समयविरोहेण कायव्वा त्ति भणिदं होइ । तं जहा—तिरिक्ख-गदीए सण्णि-असण्णिभंगं जाणियूण वत्तव्वं । णिरय-मणुस-देवगदीसु वि सण्णिभंगं जाणियूण णेदव्वं । णवरि मणुसगदीदो अण्णत्थ एगट्ठाणस्स बंधोदया सुद्धा ण

निर्णय इसी देशामर्षक सूत्रका अवलम्बन लेकर संज्ञीमार्गणामें करेंगे ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—असंज्ञी जीव द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे द्विस्थानीय अनुभागको बाँधता है, क्योंकि उनमें प्रकारान्तर सम्भव नहीं है । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव एकस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे एकस्थानीय अनुभागको ही बाँधता है, शेष अनुभागोंको नहीं बाँधता । द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । त्रिस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । तथा चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । 'वह शेष स्थानोंका अबन्धक होता है ।' यहाँ इस कथन द्वारा 'कं ठाणमवेदंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्स' इस प्रकार इस वचनका भी व्याख्यान कर दिया ऐसा यहाँ जानना चाहिए, क्योंकि एकस्थानीय अनुभागका वेदन नहीं करनेवाला जीव एकस्थानीय अनुभागका बन्धक नहीं होता इत्यादि व्यतिरेकमुखसे की गई प्ररूपणाका इसी कथनद्वारा ही सम्यक् प्रकारसे अर्थबोध देखा जाता है ।

§ ३३. अब इसी कथन द्वारा ही जिनके अर्थका ज्ञान हो गया है ऐसी शेष मार्ग-णाओंका भी इसी दिशा द्वारा अनुगम कर लेना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगे-का यह सूत्रवचन आया है—'एवं सव्वत्थ कायव्वं' । जिस प्रकार संज्ञीमार्गणामें स्थानोंकी अर्थविषयक मार्गणा की उसी प्रकार शेष गति आदि तेरह मार्गणाओंमें भी स्थानोंकी मार्गणा परमागमके अविरोध पूर्वक करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—तिर्यञ्चगतिमें संज्ञी और असंज्ञीके भंगको जानकर कथन करना चाहिए । नरकगति, मनुष्यगति और देव-गतिमें भी संज्ञीमार्गणाके भंगको जानकर कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि

लभन्ति । एवमिंदियादिमग्गणासु वि जाणियूण पयदपरूवणा कायव्वा । तदो सोलसण्हं गाहासुत्ताणं समुक्कितणा समत्ता भवदि ।

\* एदं सुत्तं ।

§ ३४. एवमेदं सोलससंखाविसेसिदं गाहासुत्तं समुक्कित्तिदमिदि वुत्तं होइ ।

\* एत्थ अत्थविहासा ।

§ ३५. एवं समुक्कित्तिदाणं गाहासुत्ताणमेत्तो अत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ । तत्थ ताव पुव्वमेव चउट्टाणे त्ति पदस्स णिक्खेवपरूवणट्टमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

\* चउट्टाणे त्ति एकगणिक्खेवो च ट्टाणणिक्खेवो च ।

§ ३६. 'चउट्टाणस्से' त्ति पदस्स अत्थविसयणिण्णयजणणट्टमेत्थ णिक्खेवो कीरदे । सो च णिक्खेवो एदम्मि विसए दुविहो होइ—'णिक्खेवो ट्टाणणिक्खेवो' इदि । तत्थ एकगणिक्खेवो णाम चदुसहस्स अत्थभावेण विवक्खियाणं लदासमाणादिट्टाणाणं कोहादिकसायाणं वा एककेक्कं घेत्तूण णाम-ट्टवणादिभेदेण णिक्खेवपरूवणा । ट्टाण-णिक्खेवो णाम तेसिं अब्बोगाठसरूवेण विवक्खियाणं वाचओ जो ट्टाणसहो तस्स अत्थविसयणिण्णयजणणट्टं णाम-ट्टवणादिभेदेण परूवणा । एवमेदेषु दोसु णिक्खेवेषु एकगणिक्खेवो पुव्वमेव गयत्थो त्ति जाणावेमाणो इदमाह—

मनुष्यगतिके सिचाय अन्य उक्त दो गतियोंमें केवल एकस्थानीय अनुभागका बन्ध और उदय नहीं प्राप्त होता । इसी प्रकार इन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें भी जानकर प्रकृत प्ररूपणा करनी चाहिए । इस प्रकार इतने कथनके बाद सोलह गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना समाप्त होती है ।

\* यह गाथासूत्र है ।

§ ३४. इस प्रकार सोलह संख्याविशिष्ट इस गाथासूत्रका समुत्कीर्तन किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* अब इसकी ( सोलह संख्याविशिष्ट इस गाथासूत्रकी ) अर्थविभाषा करते हैं ।

§ ३५. इस प्रकार उल्लिखित किये गये इन गाथासूत्रोंकी आगे अर्थविभाषा करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसमें सर्व प्रथम पहले ही 'चतुःस्थान' इस पदविषयक निक्षेपका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'चतुःस्थान' इस पदका एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप करना चाहिए ।

§ ३६. चतुःस्थान इस पदका अर्थविषयक निर्णय उत्पन्न करनेके लिये यहाँपर निक्षेप करते हैं और वह निक्षेप इस विषयमें दो प्रकारका है—एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप । उनमेंसे 'चतुः' शब्दके अर्थरूपसे विवक्षित लतासमान और दारुसमान आदि स्थानोंकी अथवा क्रोधादि कषायोंकी, एक-एकको ग्रहणकर नाम और स्थापना आदिके भेदसे निक्षेपरूप प्ररूपणा करना एकैकनिक्षेप है । तथा परस्पर मिलितरूपसे विवक्षित उन्हींका वाचक जो 'स्थान' शब्द है उसके अर्थविषयक निर्णयका ज्ञान करनेके लिये नाम और स्थापना आदिके भेदसे प्ररूपणा करना स्थाननिक्षेप है । इस प्रकार इन दो निक्षेपोंमेंसे एकैकनिक्षेप पूर्वमें ही गतार्थ है इस बातका ज्ञान कराते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

\* एकगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं च ।

§ ३७. एत्थ एकगसद्देण कोहादीणमेकेकस्स कसायस्स वा गहणं लदासमाणादीणं वा द्वाणाणमेगेगस्स णिरुद्धद्वाणस्स गहणमिदि । तत्थ जइ ताव कोहादीणमेगेगस्स कसायस्स गहणमिह विवक्खियं तो एकगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं चेदि, जेदाणि तण्णिक्खेवो परूवणा वा अहिकीरदे । किं कारणं ? गंथस्सादीए कसायणिकखेवावसरे कोहादिकसायाणं पादेक्कं णाम-डुवणादिभेदेण बहुवित्थरेण णिक्खित्तत्तादो, पेज्जदोसादिअणियोगदारेसु तेसिं पबंधेण परूविदत्तादो च । अह जइ लदासमाणादि-द्वाणाणं पादेक्कं गहणं विवक्खियं तो वि एकगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं चेव भवदि । तं कथं ? लदासमाणादिभेयभिण्णस्स माणस्स णिकखेवो कीरमाणो सामण्णमाणाणिकखेवेणेव गयत्थो होइ, सामणादो एयंतेण पुधभूदविसेसाणुवलंभादो । एवं कोहादीणं पि णग-पुढविआदीहिं विसेसिदाणमेण्हि कीरमाणो णिकखेवो सामण्णकोहादिणिकखेवेणेव पुव्वपरूविदेण गयत्थो त्ति एवमेकगणिकखेवं पुव्वपरूविदत्तादो समुज्झयूण द्वाणाणिकखेवं करेमाणो इदमाह—

\* द्वाणं णिक्खित्तविदत्तं ।

§ ३८. द्वाणमिदाणि णिक्खित्तवियत्तं, पुव्वपरूवियत्तादो त्ति भणिदं होइ ।

\* एकैकनिक्षेप पूर्व-निक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित है ।

§ ३७. प्रकृतमें एकैक शब्दसे क्रोधादिमेंसे एक-एक कषायका ग्रहण किया है अथवा लतासमान आदि स्थानोंमेंसे एक-एक विवक्षित स्थानका ग्रहण किया है । उनमेंसे यदि सर्वप्रथम क्रोधादिमेंसे एक-एक कषायका ग्रहण यहाँपर विवक्षित है तो एक-एक कषाय पूर्व-निक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित है, इसलिये इस समय उनका निक्षेप और प्ररूपणा अधिकृत नहीं है, क्योंकि ग्रन्थके आदिमें कषायोंके निक्षेपके समय क्रोधादि कषायोंका पृथक्-पृथक् नाम और स्थापना आदिके भेदसे बहुत विस्तारके साथ निक्षेप कर आये हैं तथा पेज्ज-दोस आदि अनुयोगद्वारोंमें उनका प्रबन्धरूपसे कथन कर आये हैं । और यदि लतासमान आदि स्थानोंका पृथक्-पृथक् ग्रहण विवक्षित है तो भी एक-एक स्थान पूर्वनिक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित ही है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—लतासमान आदिके भेदसे भेदको प्राप्त हुए मानकषायका निक्षेप करते हुए सामान्य मानके निक्षेपसे ही वह गतार्थ है, क्योंकि सामान्यसे विशेष एकान्तसे पृथक् नहीं उपलब्ध होता । इसी प्रकार नग, पृथिवी आदिकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए क्रोधादिकका भी इस समय किया जानेवाला निक्षेप पूर्वमें कहे गये सामान्य क्रोधादिके निक्षेपसे ही गतार्थ है, इसलिए पूर्वमें कहा गया होनेसे एकैक निक्षेपको छोड़कर स्थानविषयक निक्षेपको करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

\* स्थान पदका निक्षेप करना चाहिए ।

§ ३८. इस समय स्थान पदका निक्षेप करना चाहिए, क्योंकि इसका पहले कथन नहीं किया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* तं जहा ।

§ ३९. सुगमं ।

\* णामद्वाणं ढ्वणद्वाणं दव्वद्वाणं खेत्तद्वाणं अद्दद्वाणं पलिवीचिद्वाणं उच्चद्वाणं संजमद्वाणं पयोगद्वाणं भावद्वाणं च ।

§ ४०. तत्थ जीवाजीवमिस्सभेयभिण्णणामद्वुभंगाणं णिमित्तंतरणिरवेवखा ढ्वाणसण्णा णामद्वाणमिदि भण्णदे । 'निमित्तांतरानपेक्षं संज्ञाकर्म नामेति' वचनात् । सवभावमसवभावसरूवेणेदं ठाणमिदि ठविज्जमाणं ठवणाद्वाणं णाम । दव्वद्वाणमागम-णोआगमभेदेण दुविहं । तत्थागमदव्वद्वाणं णोआगमजाणुगसरीर-भवियदव्वद्वाणं च सुगमं । तव्वदिरित्तणोआगमदव्वद्वाणं हिरण्ण-सुवण्णादिदव्व्वाणं भूमियादिसु ठविज्ज-माण्णं अवद्वाणं । खेत्तद्वाणं णाम उद्ध-मज्झ-तिरियलोगाणमप्पणो संठाणविसेसेणा-किट्टिमसरूवेणावद्वाणं । अद्दद्वाणं णाम समयावलिय-खण-लव-मुहुत्तादिकालवियप्पा । पलिवीचिद्वाणं णाम द्विदिबंधवीचारद्वाणाणि सोवाणद्वाणाणि वा भण्णंति । उच्चद्वाणं णाम पव्वदादयमुच्चपदेसो । एत्थेव णीचद्वाणस्स वि अंतव्भावो वत्तव्वो । मान्यस्थानं वोच्चस्थानमिति व्याख्येयं । संजमद्वाणमिदि वुत्ते सामाइयच्छेदोवद्वावणादिसंजम-लद्विद्वाणाणि पडिवादादिभेयभिण्णणणि खेत्तव्व्वाणि । संजमविसेसिदपमत्तादिगुणद्वाणाणि

\* वह जैसे ।

§ ३९. सुगम है ।

\* नामस्थान, स्थापनास्थान, द्रव्यस्थान, क्षेत्रस्थान, अद्वास्थान, पलिवीचि-स्थान, उच्चस्थान, संयमस्थान, प्रयोगस्थान और भावस्थान ।

§ ४०. उनमेंसे जीव, अजीव और मिश्रके भेदसे भेदको प्राप्त हुए आठ भंगोंकी अन्य निमित्तकी अपेक्षा किये बिना स्थान संज्ञा रखना नामस्थान ऐसा कहा जाता है, क्योंकि 'दूसरे निमित्तकी अपेक्षा किये बिना संज्ञाकर्मको नाम कहते हैं' ऐसा वचन है। 'यह स्थान है' इस प्रकार सद्भाव और असद्भावरूपसे स्थापना करनेको स्थापनास्थान कहते हैं। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्थान दो प्रकारका है। उनमेंसे आगमद्रव्यस्थान सुगम है तथा नोआगम द्रव्यस्थानके ज्ञायकशरीर और भावी ये भेद सुगम हैं। तथा भूमि आदिमें रखे जानेवाले चाँदी-सोना आदिके अवस्थानको तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यस्थान कहते हैं। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और तिर्यग्लोकका अपने-अपने अकृत्रिमस्वरूप संस्थान विशेषरूपसे अवस्थानका नाम क्षेत्रस्थान है। समय, आवलि, क्षण, लव और मुहूर्त आदि कालके भेदोंका नाम अद्वास्थान है। स्थितिवन्धसम्बन्धी वीचारस्थानोंको अथवा सोपानस्थानोंको पलिवीचिस्थान कहते हैं। पर्वत आदि उच्चप्रदेशका नाम उच्चस्थान है। यहींपर नीचस्थानका भी अन्तर्भाव कहना चाहिए। अथवा मान्यस्थानका नाम उच्चस्थान है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए। संयम-स्थान ऐसा कहनेपर प्रतिपात्तादि भेदसे अनेक प्रकारके सामायिक और छेदोपस्थापना आदि संयमलब्धिस्थानोंको ग्रहण करना चाहिए। अथवा संयमकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए प्रमत्त आदि गुणस्थानोंको ग्रहण करना चाहिए। मन, वचन और कायका प्रयोगलक्षण योग-

वा । पयोमट्टाणं णाम भण-वचि-कायपयोगलक्खणजोगट्टाणमिदि घेत्तव्वं । भावट्टाणं दुविहं आगम-णोआगमभेदेण । आगमदो भावट्टाणं सुगमं । णोआगमभावट्टाणं णाम असंखेज्जलोगमेत्तकसायुदयट्टाणाणि ओदइयादिभाववियप्पा वा । एवं णिक्खेव-परूवणं कादूण संपहि एदेसिं णिक्खेवाणं णयविभागपरूवणडुमुवरिमपचंधमाह—

\* णेगमो सच्चवाणि ट्टाणाणि इच्छइ ।

§ ४१. किं कारणं ? तच्चिसए सामण्ण-विसेसप्ये वत्थुम्मि सच्चवेसिं णिक्खेवाणं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

\* संगंह-ववहारा पलिवीचिट्टाणं उच्चट्टाणं च अवणोति ।

§ ४२. संगहो ताव संखित्तत्थग्गहणलक्खणो<sup>१</sup> पलिवीचिट्टाणमट्टट्टाणे पविसदि त्ति पुध तं णेच्छदि । किं कारणं ? ट्टिदिवंधवीचारट्टाणाणमट्टाविसेसत्तादो । सोवाणट्टाणेषु वि घेप्पमाणेषु तेसिं खेत्तट्टाणे पवेसदंसणादो । तथा उच्चट्टाणं पि खेत्तट्टाणे पविसदि त्ति पुध णेच्छदि, तस्स खेत्तभेदत्तादो । एवं ववहारो वि, तस्स एदम्मि विसए संगहेण समाणाहिप्पायत्तादो ।

\* उजुसुदो एदाणि च ठवणं च अट्टट्टाणं च अवणेइ ।

स्थानका नाम प्रयोगस्थान है। ऐसा ग्रहण करना चाहिए। आगम और नोआगमके भेदसे भावस्थान दो प्रकारका है। आगमकी अपेक्षा भावस्थान सुगम है। असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानों अथवा औदयिक आदि भावोंके भेदोंका नाम भावस्थान है। इसप्रकार निक्षेपका कथन कर अब इन निक्षेपोंका नयविभागसे कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* नैगमनय सव स्थानोंको स्वीकार करता है ।

§ ४१. क्योंकि उसके विषयरूप सामान्य-विशेषात्मक वस्तुमें सभी निक्षेपोंके सम्भव होनेके प्रति विरोधका अभाव है ।

\* संग्रहनय और व्यवहारनय पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानका अपनयन करते हैं ।

§ ४२. संग्रहनय संग्रहरूप अर्थका ग्रहण लक्षणवाला है। इस नयकी अपेक्षा पलिवीचि-स्थानका अट्टास्थानमें अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये उसे पृथक्से नहीं स्वीकारता, क्योंकि स्थितिवन्धसम्बन्धी वीचारस्थान अट्टाविशेषरूप हैं। सोपानस्थानरूप भी ग्रहण करनेपर उनका क्षेत्रस्थानमें प्रवेश देखा जाता है। तथा उच्चस्थानका भी क्षेत्रस्थानमें प्रवेश हो जाता है, इसलिए उसे पृथक् स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह क्षेत्रका एक भेद है। इसी प्रकार व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी जानना चाहिए, क्योंकि उसका इस विषयमें संग्रहनयके समान अभिप्राय है ।

\* ऋजुसूत्रनय उक्त दोनोंका तथा स्थापनास्थान और अट्टास्थानका अपनयन

§ ४३. किं कारणं ? वडुमाणसमयमेत्तविसयत्तादो । ण च वडुमाणसमयप्पणाए डुवणद्वट्टाणाणं संभवो अत्थि, कालभेदेण विणा तेसिमसंभवादो । तदो वडुमाणमेत्तुज्जु-  
वत्थग्गाहिणो एदस्स विसये डुवणट्टाणमद्वट्टाणं पुव्वुत्तण्णाएण पलिवीचि-उच्चट्टाणाणि  
च ण संभवन्ति सिद्धं ।

\* सहणयो णामट्टाणं संजमट्टाणं खेत्तट्टाणं भावट्टाणं च इच्छदि ।

§ ४४. होउ णाम पलिवीचि-उच्चट्टाणाणमेत्थासंभवो, संगह-ववहारेहिं चैव  
तेसिमोसारियत्तादो ! तहा अद्वट्टाण-डुवणट्टाणाणं पि असंभवो, उजुसुदविसए चैव तेसि-  
मवत्थुत्तमुवगयाणमेत्थ संभवविरोहादो । कथं पुण दव्व-पयोगट्टाणाणमुजुसुदे संभवंताण-  
मेत्थावत्थुत्तमिदि ? बुच्चदे—ण ताव दव्वट्टाणस्सेत्थ संभवो, सुद्धपज्जवट्टिये एदम्मि  
णये पडिसमयविणासिपज्जायं मोत्तूण दव्वस्स संभावाणब्भुवगमादो । ण उजुसुदेण  
वियहिचारो, एदम्हादो तस्स थूलविसयत्तब्भुवगमादो । तहा पयोगट्टाणं पि एत्थ ण  
संभवइ । किं कारणं ? पयोगो हि णाम मण-वचि-कायाणं परिप्फंदलक्खणो किरिया-  
भेदो । ण च सो एत्थ संभवइ, खणक्खयिणो भावस्स समयमणवट्टिंदस्स किरियापज्जाय-

करता है ।

§ ४३. क्योंकि ऋजुसूत्रका विषय वर्तमान समयमात्र है । और वर्तमान समयकी  
विवक्षामें स्थापनास्थान और अद्धास्थान सम्भव नहीं हैं, क्योंकि कालभेदको स्वीकार किये बिना  
उनको स्वीकार करना असम्भव है । इसलिये वर्तमानमात्र ऋजु अर्थको ग्रहण करनेवाले इस  
नयके विषयमें स्थापनास्थान और अद्धास्थान तथा पूर्वोक्त न्यायसे पलिवीचिस्थान और  
उच्चस्थान सम्भव नहीं हैं यह सिद्ध हुआ ।

\* शब्दनय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थानको स्वीकार  
करता है ।

§ ४४. शंका—इस नयके विषयरूपसे पलिवीचिस्थान और उच्चस्थान सम्भव मत  
होओ, क्योंकि संग्रहनय और व्यवहारनयके द्वारा ही उनका अपसरण कर दिया गया है ।  
तथा अद्धास्थान और स्थापनास्थान भी सम्भव मत होओ, क्योंकि ऋजुसूत्रके विषयरूपसे ही  
अवस्तुपनेको प्राप्त हुए उनका इस नयके विषयरूपसे सम्भव होनेमें विरोध है । परन्तु ऋजु-  
सूत्रनयमें द्रव्यस्थान और प्रयोगस्थान सम्भव हैं, उनका इस नयमें अवस्तुपना कैसे बनता है ?

समाधान—द्रव्यस्थान तो इस नयमें सम्भव नहीं है, क्योंकि शुद्ध पर्यायार्थिकरूप  
इस नयमें प्रति समय विनाशको प्राप्त होनेवाली पर्यायको छोड़कर द्रव्य इस नयके विषयरूपसे  
नहीं स्वीकार किया गया है ।

ऋजुसूत्रके साथ व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि इसकी अपेक्षा उसका स्थूल विषय  
स्वीकार किया गया है । उसी प्रकार प्रयोगस्थान भी इस नयमें सम्भव नहीं हैं, क्योंकि मन,  
वचन और कायके परिस्पन्दलक्षण क्रियाभेदका नाम प्रयोग है, परन्तु वह इस नयमें सम्भव  
नहीं है, क्योंकि क्षणक्षयी और एक समयके बाद अनवस्थित रहनेवाले भावमें क्रियापर्यायरूप

परिणामाणुववत्तीदो । तथा चोक्तं—

क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थितानां कुतः क्रिया ।

भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं चैव सोच्यते ॥ इति॥

तम्हा एदेण सुद्धपञ्जवणयाहिप्पाएण पयोगट्टाणस्स वि एत्थासंभवो चेवे त्ति । एवमेदेसिं पि परिहारेण णाम-संजम-खेत्त-भावट्टाणाणि चेव एतो इच्छदि त्ति सुत्ते वुत्तं । तं कथं ? णामट्टाणमेसो ताव पडिवज्जइ, बज्झत्थणिरवेक्खट्टाणसण्णा-मेत्तस्स तव्विसए पच्चक्खमुवलंभादो । संजमट्टाणं वि इमो इच्छदि, तस्स भावसरूवत्तादो । खेत्त-भावट्टाणाणि पुण एतो पडिवज्जइ चेव, ण तत्थ विसंवादो अत्थि, बट्टमाणो-गाहणलक्खणस्स खेत्तस्स कसायोदयसरूवभावस्स च तव्विसए परिप्फुडमुवलंभादो । तदो सिद्धमेदेसिं णिक्खेवाणमेत्थ संभवो त्ति । एवं एदेसु णिक्खेवेसु केणेत्थ पयद-मिच्चासंकाए इदमाह—

\* एत्थ भावट्टाणे पयदं ।

§ ४५. एदेसु णिक्खेवेसु अणंतरमेव पवंचिदेसु णोआगमदो भावणिक्खेवेण पयदं, लदासमाणादिट्टाणाणं णिक्खेवंतरपरिहारेण तत्थेवावट्टाणदंसणादो । एवं ताव

परिणामकी उत्पत्ति नहीं बनती । कहा भी है—

सब संस्कार क्षणिक हैं, अस्थित उनमें क्रिया कैसे बन सकती है ? जिनकी उत्पत्ति है वही क्रिया है और वही कारक कहा जाता है ॥ १ ॥

इसलिये इस शुद्ध पर्यायार्थिक नयके अभिप्रायसे प्रयोगस्थान भी इसमें असम्भव ही है । इस प्रकार इन स्थानोंके परिहारद्वारा यह नय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थान इनको ही स्वीकार करता है ऐसा सूत्रमें कहा है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—नामस्थानको तो यह स्वीकार करता है, क्योंकि बाह्य अर्थकी अपेक्षा किये विना स्थानसंज्ञामात्र उसके विषयरूपसे प्रत्यक्ष उपलब्ध होती है । संयमस्थानको भी यह स्वीकार करता है, क्योंकि वह ( संयमस्थान ) भावस्वरूप है । क्षेत्रस्थान और भाव-स्थानको तो यह स्वीकार करता ही है, उसमें विसंवाद नहीं है, क्योंकि वर्तमान अवगाहना-लक्षण क्षेत्रकी और कषायके उदयस्वरूप भावकी उसके विषयरूपसे स्पष्ट उपलब्धि होती है । इसलिए इन निक्षेपोंका इसमें सम्भव है यह सिद्ध हुआ ।

इस प्रकार इन निक्षेपोंमेंसे किस निक्षेपसे यहाँ ( इस अनुयोगद्वारमें ) प्रयोजन है इस प्रकारकी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

\* प्रकृतमें भावस्थानसे प्रयोजन है ।

§ ४५. अनन्तर पूर्व कहे गये इन निक्षेपोंमेंसे नोआगमभावनिक्षेपसे प्रयोजन है, क्योंकि लतासमान आदि स्थानोंका दूसरे निक्षेपोंके परिहारद्वारा नोआगम भावनिक्षेपमें



सुत्तविहासावसरे चैय द्वाणणिक्खेवं णयपरूवणाणुगयं कादूण संपहि गाहासुत्ताणमत्थ-  
विहासणं कुणमाणो चुण्णिमुत्तयारो इदमाह—

\* एत्तो सुत्तविहासा ।

§ ४६. पुव्वं सुत्तविहासं पइण्णाय तमपरूविय णिक्खेवो काउमाढत्तो<sup>१</sup> । तदो  
तेणंतरिदाये तिस्से पुणो वि अणुसंधाणं कादूण तप्परूवणडुमिदं सुत्तमारद्धं ।

\* तं जहा ।

§ ४७. सुगमं ।

\* आदीदो चत्तारि सुत्तगाहाओ एदेसिं सोलसण्हं द्वाणाणं णिदरि-  
सणउवणये ।

§ ४८. तत्थ ताव आदीदो प्पहुडि चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिज्जंते । ताओ  
पुण कम्मिह अत्थविसेसे पडिबद्धाओ त्ति आसंकाए इदमुत्तरं 'एदेसिं सोलसण्हं द्वाणाणं  
णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ त्ति' पढमगाहाए<sup>२</sup> कयभेदणिहेसाणं सोलसण्हं द्वाणाणं  
सेसगाहाहिं तीहिं णिदरिसणोवणयस्स परिप्फुडमुवलंभादो । जइ एवं चत्तारि सुत्त-  
गाहाओ णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ त्ति कथमिदं घडदे, तिण्हमेव सुत्तगाहाणं तत्थ

अवस्थान देखा जाता है । इस प्रकार सर्वप्रथम गाथासूत्रोंके विशेष व्याख्यानके अवसरपर  
ही नयप्ररूपणासे अनुगत स्थानविषयक निक्षेपप्ररूपणा करके अब गाथासूत्रोंका विशेष  
व्याख्यान करते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

\* इससे आगे गाथासूत्रोंकी विभाषा करते हैं ।

§ ४६. पूर्वमें गाथासूत्रोंके विशेष व्याख्यानकी प्रतिज्ञा करके उसकी प्ररूपणा किये  
बिना निक्षेप करनेके लिये आरम्भ किया । इसलिये उसके बाद उसका फिर भी अनुसन्धान  
करके उसका कथन करनेके लिये इस सूत्रका आरम्भ किया है ।

\* वह जैसे ?

§ ४७. यह सूत्र सुगम है ।

\* आदिसे लेकर चार सूत्र गाथाएँ इन सोलह स्थानोंके उदाहरणपूर्वक अर्थ  
साधन करनेमें आई हैं ।

§ ४८. उनमेंसे सर्वप्रथम आदिसे लेकर चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करते  
हैं । परन्तु वे चारों सूत्रगाथाएँ किस अर्थमें प्रतिबद्ध हैं ऐसी आशंका होनेपर यह उत्तर दिया  
है—इन सोलह स्थानोंके उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध हैं, क्योंकि प्रथम गाथाद्वारा  
जिन भेदोंका निर्देश किया गया है ऐसे सोलह स्थानोंका शेष तीन गाथाओंद्वारा उदाहरण-  
पूर्वक अर्थसाधन स्पष्टरूपसे उपलब्ध होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो चार सूत्रगाथाएँ उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध हैं

१. ता०प्रतो काल (किमट्ट) माढत्तो इति पाठः । २. ता०प्रतो त्ति पढमगाहा पढमगाहाए इति पाठः ।

पडिबद्धत्तदंसणादो त्ति णासंक्रणिज्जं, णिदरिसणोवणयट्ठं कीरमाणमेदणिहेसस्स वि तच्चिसयत्तेण तहाभावोवयारादो । को णिदरिसणोवणयो णाम ? णिदरिसणं दिट्ठंतो उदाहरणमिदि एयट्ठो । णिदरिसणस्स उवणओ णिदरिसणोवणओ, दिट्ठंतमुहेणत्थ साधणमिदि भणिदं होइ । तत्थ ताव कदमेण साधम्मेण केसिं ट्ठाणाणं णिदरिसणोवणओ एत्थ विवक्खिओ त्ति एदस्स जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तइयमोइण्णं—

\* कोहट्ठाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणउवणओ कओ ।

§ ४९. कोहकसायस्स ताव चउण्हं पि ट्ठाणाणं णग-पुढविसमाणादिभेदेण जो णिदरिसणोवणओ कओ सो कालेण कालसाहम्ममासेज्ज कओ त्ति वुत्तं होइ, चिराचिर-तदवट्ठाणकालसाहम्मावेक्खाए तत्थ तहाभूदणिदरिसणस्स उवणीदत्तादो । एदस्स पुण णिण्णयमुवरिमच्चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो ।

\* सेसाणं कसायाणं बारसण्हं ट्ठाणाणं भावओ णिदरिसणउवणओ कओ ।

यह कैसे बन सकता है, क्योंकि तीन सूत्रगाथाएँ ही उक्त अर्थमें प्रतिबद्ध देखी जाती हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उदाहरणोंद्वारा साधन करनेके लिये जो भेदोंका निर्देश किया गया है वह भी प्रकृत अर्थको विषय करता है, इसलिये उस प्रकारके भावका उपचार किया गया है ।

शंका—निदर्शनोपनय किसे कहते हैं ?

समाधान—निदर्शन, दृष्टान्त और उदाहरण ये एकार्थवाची शब्द हैं । निदर्शनके उपनयको निदर्शनोपनय कहते हैं, अर्थात् दृष्टान्तोंद्वारा अर्थका साधन करना यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

उनमेंसे सर्वप्रथम किस साधर्म्यद्वारा किन स्थानोंका उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन यहाँ किया गया है, इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके दो सूत्र अवतीर्ण हुए हैं—

\* चारों ही क्रोध-स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है ।

§ ४९. क्रोधकषायके तो चारों ही स्थानोंका नगसमान और पृथिवीसमान आदि भेदरूपसे जो उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है वह 'कालेण' अर्थात् कालविषयक साधर्म्यका आश्रय लेकर किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि चिरकाल और अचिरकाल तक जो क्रोधका अवस्थान होता है उसका इस प्रकारके कालके साथ साधर्म्य बन जानेसे इस अपेक्षासे क्रोधकषायके भेदोंमें उस प्रकारके उदाहरण संग्रह किये गये हैं । परन्तु इसका निर्णय आगे आनेवाले चूर्णिसूत्रोंके सम्बन्धसे करेंगे ।

\* शेष कषायोंके बारह स्थानोंका भावकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है ।

§ ५०. सेसाणं माणादीणं तिण्हं कसायाणं जाणि ट्टाणाणि लदासमाणादिभेदेण बारससंखावच्छिण्णाणि तेसिं भावदो भावमासेज्ज णिदरिसणोवणओ कदो । तं जहा—माणस्स भावो थद्धत्तं, तस्स सेलघणादिणिदरिसणभेदेण पयरिसापयरिसजुत्तस्स तहा चेय ट्टाणसण्णा अणुमग्गिया । मायाए भावो वक्कंतमणुज्जुगदा, तस्स वि वंसिजण्हु-आदिणिदरिसणोवणयमुहेण तब्भावस्स तारतम्मसंभवो णिदरिसिदो । लोभभावो असंतोसजणिदा संकिलिट्टदा, तस्स वि क्रिमिरागरत्तादिणिदरिसणोवण्णासमुहेण जहा-भावमेव समत्थणा कया त्ति । संपहि कोहट्टाणाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणो-वणओ कओ त्ति जं पुव्वसुत्ते पइण्णादं तस्स वित्थारत्थपरूवणट्टुवरिमं पबंधमाह—

\* जो अंतोमुहुत्तिगं णिधाय कोहं वेदयदि सो उदयराइसमाणं कोहं वेदयदि ।

§ ५१. जो जीवो अंतोमुहुत्तियं भावं णिधाय धरेयूण कोधं वेदयदि सो उदय-राइसमाणं चेव कोहं वेदयदि । किं कारणं ? उदयराईए व्व तस्स चिरतरकालावट्टाणेण विणा त्कालमेव विलयदंसणादो । एसो च कोहकसायवेदो वेदिज्जमाणो जीवस्स ण किंचि संजमघादं कुणइ, मंदाणुभागत्तादो । किन्तु संजमस्स अच्चंतसुद्धिं पडिबंधइ, तत्थ पमादादिमलुप्पायणे वावदत्तादो ।

§ ५०. शेष मानादि तीन कषायोंके लतासमान आदि भेदसे बारह संख्यारूप जो स्थान हैं उनका 'भावदो' भावका आश्रय लेकर उदाहरण पूर्वक अर्थसाधन किया गया है । यथा—मानका भाव स्तब्धता है ! शैलघन आदि जितने उदाहरणभेद हैं उनके समान प्रकर्ष और अप्रकर्षयुक्त उस मानकी उसी प्रकार स्थानसंज्ञा योजित की गई है । मायाका भाव अनर्जुगत वक्रता है, इसलिये वासकी जड आदि उदाहरणोंके ग्रहणद्वारा मायाके भी उस भावका तारतम्य बन जाता है यह दिखलाया गया है । लोभभाव असन्तोषजनित संक्लेशपना है, अतः क्रमिराग आदि उदाहरणोंके उपन्यासद्वारा लोभका भी जैसा भाव है उसका समर्थन किया गया है । अब क्रोधके चारों ही स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है ऐसा जो पूर्वसूत्रमें प्रतिज्ञा कर आये हैं उसके अर्थका विस्तारपूर्वक कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* जो अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रोधभावको धारण कर उसका वेदन करता है वह उदकराजिके समान क्रोधका वेदन करता है ।

§ ५१. जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक होनेवाले भावको धारण कर क्रोधका वेदन करता है वह उदकराजिके समान ही क्रोधका वेदन करता है, क्योंकि उदकराजिके समान उसका चिरकाल तक अवस्थानके बिना उसी समय विलय देखा जाता है । वेदनमें आता हुआ यह क्रोधकषायरूप वेद जीवके कुछ भी संयमघातको नहीं करता, क्योंकि यह मन्द अनुभाग-स्वरूप होता है । किन्तु संयमकी अत्यन्त शुद्धिका प्रतिबन्ध करता है, क्योंकि उसका प्रमादादि-रूप मलके उत्पन्न करने में व्यापार होता है ।

\* जो अंतोमुहुत्तादीदमंतो अद्धमासस्स कोधं वेदयदि सो वालुव-  
राइसमाणं कोहं वेदयदि ।

§ ५२. जो वुण अंतोमुहुत्तकालमुल्लंघिय अंतो अद्धमासस्स कोहं वेदयदि सो  
णियमा वालुवराइसमाणं कोहमणुइवदि त्ति घेत्तच्चं । कुदो ? वालुअराईए च्च तस्स  
कोहपरिमाणस्स अंतोमुहुत्तमुल्लंघिय अद्धमासस्स अंतो अवट्टाणदंसणादो । एदं च  
कसायोदयजणिदकलुसपरिणामस्स सल्लभावेण परिणदस्स तेतियमेत्तकालावट्टाणं  
पेक्खियूण भणिदं, अण्णहा कोहोवजोगावट्टाणकालस्स उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तमेत्तपमाण-  
परूवयसुत्तेण सह विरोहप्पसंगादो । एसो च कोहपरिणामभेदो वेदिज्जमाणो जीवस्स  
संजमघादं करिय संजमासंजमे जीवं ठवेइ त्ति णिच्छओ कायच्चो ।

\* जो अद्धमासादीदमंतो छण्हं मासाणं कोधं वेययदि सो पुढवि-  
राइसमाणं कोहं वेदयदि ।

§ ५३. जो खलु जीवो अद्धमासं वोलिय छण्हं मासाणमंतो कोहं वेदयदि सो  
पुढविराइसमाणं तदियं कोधं वेदयदि, तज्जणिदसंसकारस्स पुढविमेदस्सेव अंतो छण्हं

विशेषार्थ—यहाँ यह बतलाया है कि जो उदकराजिके समान मन्द अनुभागस्वरूप  
क्रोधका वेदन करता है उसका अनुभवमें आनेवाला वह क्रोध परिणाम संयमका घात  
करनेमें तो समर्थ नहीं है, किन्तु संयमकी अत्यन्त शुद्धिका प्रतिबन्ध कर मलको उत्पन्न करता  
है । इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बुद्धिपूर्वक मात्र संज्वलनकषायका सद्भाव जहाँ तक  
सम्भव है जीवके वहीं तक प्रमाद दशा होती है । सातवें आदि चार गुणस्थानोंमें संज्वलन  
कषाय है पर अबुद्धिपूर्वक है, इसलिये इनमें अप्रमाद दशा कही गई है । अन्यत्र (श्रीधवलामें)  
जो पाँच महाव्रत आदिरूप परिणामोंको भी अप्रमाद कहा है उसका भी आशय यही है ।

\* जो अन्तर्मुहूर्तके बाद अर्धमासके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह  
वालुकाराजिके समान क्रोधका वेदन करता है ।

§ ५२. परन्तु जो जीव अन्तर्मुहूर्त कालको उल्लंघन कर अर्धमासके भीतर तक क्रोधका  
वेदन करता है वह नियमसे वालुकाराजिके समान क्रोधका अनुभव करता है ऐसा यहाँ पर  
ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वालुकाराजिके समान उस क्रोधपरिणामका अन्तर्मुहूर्तको  
उल्लंघन कर अर्धमासके भीतर तक अवस्थान देखा जाता है । और यह, कषायके उदयसे  
उत्पन्न हुए श्लयरूपसे परिणत कलुषपरिणामके उतने काल तक अवस्थानको देखकर, कहा  
है । अन्यथा क्रोधोपयोगके अवस्थान कालके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कथन करनेवाले सूत्रके साथ  
विरोधका प्रसंग आता है । यह क्रोध परिणामका भेद अनुभवमें आता हुआ संयमका घात  
करके जीवको संममासंयममें स्थापित करता है ऐसा निश्चय करना चाहिए ।

\* जो अर्धमासके बाद छहमाहके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह पृथिवी-  
राजिके समान क्रोधका वेदन करता है ।

§ ५३. जो जीव नियमसे अर्धमासको बिताकर छह माहके भीतर तक क्रोधका वेदन करता  
है वह पृथिवीराजिके समान तृतीय क्रोधका वेदन करता है क्योंकि उससे उत्पन्न हुआ संस्कार

भासागमवट्टाणदंसणादो । एत्थ वि पुच्चं व कसायपरिणामस्स सन्लीभूदस्स एत्तिय-  
मेत्तकालावट्टाणं समत्थेयच्चं, अण्णहा सुत्तविरोहादो । एसो च कोहपरिणामो वेदिज्ज-  
माणो जीवस्स संजमासंजमं घादिय सम्मत्तमेत्ते जीवं ठवेदि त्ति । एसो तदिओ  
कोहभेदो पुच्चिन्लादो तिच्चाणुभागो दट्टुच्चो ।

\* जो सच्च्वेसिं भवेहिं उवसमं ण गच्छइ सो पच्चदराइसमाणं कोहं  
वेदयदि ।

§ ५४. तं जहा—एकस्स जीवस्स कम्हि वि जीवे समुप्पण्णो कोहो सन्लीभूदो  
होदूण हियये ट्टिदो, पुणो संखेज्जासंखेज्जाणंतेहि भवेहिं तं चेव जीवं दट्टूण पकोधं  
गच्छइ, तज्जणिदसंसकारस्स णिकाचिदभावेण तेत्तियमेत्तकालावट्टाणे विरोहाभावादो ।  
सो तारिसो कोहपरिणामो पच्चयराइसमाणो त्ति भण्णदे, पच्चयसिलामेदस्सेव तस्सा-  
णंतेण वि कालेण पुणो संधाणाणुवलंभादो । एसो वुण कोहपरिणामो वेदिज्जमाणो  
जीवस्स सम्मत्तं पि घादिय मिच्छत्तभावे ठवेइ त्ति । सच्च्वत्तिच्चाणुभागो एसो चउत्थो  
कोहभेदो त्ति जाणावणट्टुमेत्थ सुत्तपरिसमत्तीए चउण्हमंकविण्णासो कओ । एवं ताव  
कोहस्स चउण्हं ठाणाणं कालेण णिदरिसणोवणयं कादूण संपहि एदीए दिसाए सेसाणं  
कसायाणं ठाणमेदेसु भावदो णिदरिसणोवणओ गाहासुत्ताणुसारेण अणुगंतच्चो त्ति

पृथिवीभेदके समान छह माहके भीतर तक अवस्थित देखा जाता है । यहाँपर भी कषाय-  
परिणाम शल्यरूपसे मात्र इतने काल तक अवस्थित रहता है इसका पहलेके समान समर्थन  
करना चाहिए । अन्यथा सूत्रके साथ विरोध आता है । और यह क्रोध परिणाम अनुभवमें  
आता हुआ जीवमें संयमासंयमका घात कर जीवको सम्यक्त्वमें स्थापित करता है । यह  
तीसरा क्रोधभेद पूर्वके क्रोधसे तीव्र अनुभागवाला जानना चाहिए ।

\* जो सब भवोंके द्वारा उपशमको नहीं प्राप्त होता है वह पर्वतराजिके समान  
क्रोधका वेदन करता है ।

§ ५४. यथा—एक जीवके किसी भी जीवमें उत्पन्न हुआ क्रोध शल्य होकर हृदयमें  
स्थित हुआ, पुनः संख्यात, असंख्यात और अनन्त भवोंके द्वारा उसी जीवको देखकर प्रकृष्ट  
क्रोधको प्राप्त होता है, क्योंकि उससे उत्पन्न हुए संस्कारके निकाचितरूपसे इतने कालतक  
अवस्थित रहनेमें विरोधका अभाव है । वह उक्त प्रकारका क्रोधपरिणाम पर्वतराजिके समान  
कहा जाता है, क्योंकि पर्वत-शिलाभेदके समान उसका अनन्त कालके द्वारा भी पुनः सन्धान  
नहीं उपलब्ध होता । वेदनमें आता हुआ यह क्रोधपरिणाम जीवके सम्यक्त्वका भी घात कर  
उसे मिथ्यात्वभावमें स्थापित करता है । सबसे तीव्र अनुभागवाला यह चौथा क्रोधभेद है  
इस बातका ज्ञान करानेके लिये यहाँ सूत्रके अन्तमें चार अंकका विन्यास किया है । इस प्रकार  
सर्वप्रथम क्रोधके चारों स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन करके अब  
इसी दिशाद्वारा शेष कषायोंके स्थानभेदोंमें भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन

जाणावणाद्धमुवरिमं सुत्तमाह—

\* एदाणुमाणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं ।

§ ५५. एदीए दिसाए सेसकसायाणं पि भावेण णिदरिसणोवणओ गाहा-  
सुत्ताणुसारेण णेदव्वो त्ति भणिदं होइ । एवं चउण्हं सुत्तगाहाणमत्थविहासणं कादूण  
पयदत्थमुवसंहरेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

\* एवं चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिदाओ भवंति ।

§ ५६. एवं ताव आदीदो प्पहुडि चत्तारि सुत्तगाहाओ सोलसण्हं द्वाणाणं  
काल-भावेहिं णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ विहासियाओ । एदीए दिसाए सेसवारस-  
गाहाओ वि जाणियूण विहासियव्वाओ त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

एवं चउट्टाणे त्ति समत्तमणिओगहारं ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोषर्त्तनम् ।

जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

गाथासूत्रोंके अनुसार जानना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इस प्रकार उदाहरणों द्वारा अनुमान करके शेष कषायोंका भी अर्थसाधन  
करना चाहिए ।

§ ५५. इस दिशाद्वारा शेष कषायोंका भी भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन  
गाथासूत्रोंके अनुसार कर लेना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार चार सूत्र-  
गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए आगेके  
सूत्रको कहते हैं—

\* इस प्रकार चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान किया ।

§ ५६. इस प्रकार सर्वप्रथम आदिसे लेकर जो चार सूत्रगाथाएँ सोलह स्थानोंके काल  
और भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध हैं उनका विशेष व्याख्यान  
किया । इसी पद्धतिसे शेष बारह गाथाओंका भी जानकर विशेष व्याख्यान करना चाहिए  
यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

इस प्रकार चतुःस्थान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुणिसुत्तसमण्णिदं  
सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

# क सा य पा हु ड

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

## जयधवला

तत्थ

वंजणे त्ति अणियोगहारं

—:❀:—

णमो अरहंताणं

वंजण-रुक्खणभूसियमणंजणं तं जिणं णमंसित्ता ।

वंजणसुत्तत्थमहं समासदो वण्णइस्सामि ॥

\* वंजणे त्ति अणिओगहारस्स सुत्तां ।

जो व्यञ्जन और लक्षण चिन्होंसे विभूषित हैं और जो विगत अञ्जन हैं अर्थात् द्रव्यमल और भावमलसे रहित हैं उन जिनदेवको नमस्कारकर मैं व्यञ्जनसूत्रोंके अर्थका संक्षेपमें वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

\* अब व्यञ्जन अनुयोद्धारके गाथासूत्रोंका विशेष व्याख्यान करते हैं ।

१. ता०प्रती वण्णइस्सामो ( मि ) इति पाठः ।



§ १. चउण्हं कसायाणमेयट्टपरूवणट्टमोइण्णस्स<sup>१</sup> वंजणे त्ति अणिओगहारस्स विहासणट्टं गाहासुत्तसमुक्कित्तणं कस्सामो त्ति भणिदं होइ । णवरि एदम्मि अणियोगहारे पंचसुत्तगाहाओ पडिबद्धाओ 'वियंजणे पंच गाहाओ' त्ति भणिदत्तादो । तासिं जाइदुवारेणेयवयणणिहेसो एत्थ कओ त्ति दट्टव्वो । एवं गाहासुत्तसमुक्कित्तणं पइण्णाय तण्णिहेसं कुणमाणो पुच्छावक्कमिदमाह—

\* तं जहा ।

§ २. सुगममेदं पुच्छावक्कं । एवं पुच्छाविमईकयाणं गाहासुत्ताणं पयदत्थाहियारपडिबद्धाणं जहाकममेसो सरूवणिहेसो—

(३३) कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलह वड्ढी य ।

झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥१-८६॥

§ ३. एसा पढमसुत्तगाहा कोहकसायस्स एगट्टपरूवणट्टमागया । तं जहा—  
क्रोधः कोपो रोषः अक्षमा संज्वलनः कलहो वृद्धिः झंझा द्वेषो विवाद इत्येते दश क्रोधपर्यायशब्दाः एकार्थाः प्रतिपत्तव्याः । तत्र क्रोध-कोप-रोषाः धात्वर्थसिद्धत्वात्

§ १. चारों कषायोंके पर्यायवाची नामोंका कथन करनेके लिये उपस्थित हुए व्यञ्जन इस अनुयोगद्वारका विशेष व्याख्यान करनेके लिये गाथासूत्रोंका समुत्कीर्तन करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इतनी विशेषता है कि इस अनुयोगद्वारमें पाँच सूत्रगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं, क्योंकि पहले 'वियंजणे पंच गाहाओ' इस प्रकारका वचन कह आये हैं । उनका जातिद्वारा यहाँ एकवचन निर्देश किया है ऐसा जानना चाहिए । इस प्रकार गाथासूत्रोंके उल्लेखकी प्रतिज्ञा करके उनका निर्देश करते हुए इस पृच्छासूत्रको कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ २. यह पृच्छावाक्य सुगम है । इस प्रकार पृच्छाके विषय किये गये तथा प्रकृत अर्थाधिकारमें प्रतिबद्ध गाथासूत्रोंका यथाक्रम यह स्वरूपनिर्देश है—

\* क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद क्रोधके ये दश एकार्थक नाम हैं ॥१-८६॥

§ ३. यह प्रथम सूत्रगाथा क्रोधकषायके एकार्थक नामोंके कथन करनेके लिये आई है । यथा—क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद ये दश क्रोधके पर्यायवाची शब्द एकार्थक जानने चाहिए । उनमेंसे क्रोध, कोप और रोष शब्द धात्वर्थनिष्पन्न होनेसे सुबोध हैं । अर्थात् उक्त तीनों शब्द क्रमसे कृष्, कुप् और कृष् धातुओंसे बने हैं, अतः जिस-जिस अर्थमें ये धातुएँ प्रसिद्ध हैं वही इन शब्दोंका अर्थ है ऐसा यहाँ समझना चाहिए । क्षमारूप परिणामका न होना अक्षमा है । इसीका दूसरा नाम

सुबोधाः । न क्षमा अक्षमा अमर्ष इत्यर्थः । सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनः स्व-परोप-  
तापित्वमेतेन क्रोधाग्नेः प्रतिपादितम् । कलहः प्रतीत एव । वर्धन्ते अस्मात् पापायशः-  
कलह-वैरादय इति वृद्धिः क्रोधकषायः, सर्वेषामनर्थानां तन्मूलत्वात् । झंझा नाम  
तीव्रतरसंक्लेशपरिणामः, तद्धेतुत्वात् क्रोधकषायोऽपि तथा व्यपदिश्यते । द्वेषः अप्रीति-  
रन्तःकालुष्यमित्यर्थः । विरुद्धो वादः विवादः स्पर्द्धः संघर्ष इत्यनर्थान्तरम् । एवमेते दश  
पर्यायशब्दाः क्रोधकषायस्य भवन्तीति गाथार्थः ।

क्रोधः कोपो रोषः संज्वलनमथाक्षमा तथा कलहः ।

झंझा-द्वेष-विवादो वृद्धिरिति क्रोधपर्यायाः ॥ १ ॥

(३४) माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तथ समुक्कत्सो ।

अत्तुक्करिसो परिभव उत्सिद दसलक्खणो माणो ॥२-८७॥

§ ४. एषा द्वितीयगाथा क्रोधानन्तरनिर्देशार्हस्य मानकषायस्यैकार्थनिरूपणार्थ-  
मांगता । तद्यथा—मानो मदो दर्प्यः स्तम्भः उत्कर्षः प्रकर्षः समुत्कर्षः आत्मोत्कर्षः  
परिभव उत्सिक्त इत्येवं दशलक्षणो मानः प्रत्येतन्व्यः, दशास्य पर्यायशब्दा इत्युक्तं  
भवति । तत्र जात्यादिभिरात्मानं आधिक्येन मननं मानः । तैरेवाविष्टस्य सुरापीतस्येव

अमर्ष है यह इसका तात्पर्य है । जो भले प्रकार जलता है, इसलिये क्रोधका एक नाम संज्वलन  
है, क्योंकि यह स्व और परको संतप्त करनेवाला है । इससे क्रोध एक प्रकारकी अग्नि है  
यह कहा गया है । कलहका अर्थ प्रतीत ही है । इससे पाप, अयश, कलह और वैर आदि  
वृद्धिको प्राप्त होते हैं, इसलिए क्रोधकषायका एक नाम वृद्धि है, क्योंकि सभी अनर्थोंकी जड़  
क्रोध है । तीव्रतर संक्लेश परिणामका नाम झंझा है, उसका हेतु होनेसे क्रोधकषाय भी उस  
नामसे व्यपदिष्ट की जाती है । द्वेषका अर्थ अप्रीति है, आन्तरिक कलुषता यह इसका तात्पर्य  
है । विरुद्ध वादका नाम विवाद है । स्पर्धा और संघर्ष ये इसके नामान्तर हैं । इस प्रकार ये  
दश क्रोधकषायके पर्यायवाची शब्द हैं यह इस गाथाका अर्थ है ।

क्रोध, कोप, रोष, संज्वलन, अक्षमा, कलह, झंझा, द्वेष, विवाद और वृद्धि ये क्रोधके  
पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १ ॥

\* मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और  
उत्सिक्त इन दश लक्षणवाला मान है ॥२-८७॥

§ ४. यह दूसरी गाथा क्रोधके बाद निर्देशके योग्य मानकषायके एकार्थवाची शब्दोंके  
कथन करनेके लिये आई है । यथा—मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष आत्मो-  
त्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त इस प्रकार दश लक्षणवाला मान जानना चाहिए । मानके ये दश  
पर्यायवाची शब्द हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे जाति आदिके द्वारा अपनेको

मदनं मदः । तदुद्बृंहिताहंकारस्य दर्पणं दर्पः । तदुत्थापितगर्वस्खलद्गद्गदालापस्य सन्निपातावस्थस्येव स्तब्धीभवतः स्तम्भनं स्तम्भः । तथोत्कर्ष-प्रकर्ष-समुत्कर्षाः विज्ञेयाः, तेषामप्यभिमानपर्यायत्वेन रूढत्वात् । आत्मन उत्कर्षः आत्मोत्कर्षः । आत्मोत्कर्षः अहमेव जात्यादिभिरुत्कृष्टो न मत्तः परतरोऽन्योस्तीत्यध्यवसायः । परिभवनं परिभवः परावमान इत्यर्थः । आत्मोत्कर्ष-परपरिभवाभ्यामुद्गत सन्नुत्सिचति गर्वितो भवतीत्युत्सिक्तः । एवमेते दश मानकषायस्य पर्यायशब्दाः ।

स्तम्भ-मद-मान-दर्प-समुत्कर्ष-प्रकर्षश्च ।

आत्मोत्कर्ष-परिभवा उत्सिक्तश्चेति मानपर्यायाः ॥ २ ॥

(३५) माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा ।

गहणं मणुण्णमगण कक्क कुहक गूहण च्छण्णो ॥३-८८॥

§ ५. माया सातिप्रयोगो निकृतिर्वचना अनृजुता ग्रहणं मनोज्ञमार्गणं कक्कः कुहकं निगूहनं छन्नमित्येते मायापर्यायाः । एतैः शब्दैर्वाच्यो योऽर्थः स मायाकषाय इत्युक्तं भवति । तत्र माया कपटप्रयोगः । सातियोगः कूटव्यवहारित्वं । निकृतिर्वचना-

अधिक मानना मान है । उन्हीं जाति आदिके द्वारा आविष्ट हुए जीवका मदिरा पान किये हुए जीवके समान उन्मत्त होना मद है । उससे अर्थात् मदसे बढ़े हुए अहंकारका दर्प होना दर्प है । सन्निपात अवस्थामें जिस प्रकार मनुष्य स्वलितरूपसे यद्वा-तद्वा बोलता है उसी प्रकार मदबश उत्पन्न हुए दर्पसे स्वलित यद्वा-तद्वा बोलते हुए स्तब्ध हो जाना स्तम्भ है । उसी प्रकार उत्कर्ष, प्रकर्ष और समुत्कर्ष ये तीनों मानके पर्यायवाची नाम घटित कर लेने चाहिए, क्योंकि ये तीनों शब्द भी अभिमानके पर्यायवाचीरूपसे रूढ़ हैं । अपने उत्कर्षका नाम आत्मोत्कर्ष है । मैं ही जाति आदिरूपसे उत्कृष्ट हूँ, मुझसे अन्य कोई दूसरा उत्कृष्ट नहीं है इस प्रकारके अध्यवसायका नाम आत्मोत्कर्ष है । दूसरेको परिभवनं अर्थात् नीचा दिखाना परिभव है, दूसरेका अपमान करना यह इसका तात्पर्य है । अपने उत्कर्ष और दूसरेके परिभवके द्वारा उद्गत ( उद्धत ) होता हुआ उत्सिचति अर्थात् गर्वित होना उत्सिक्त कहलाता है । इस प्रकार ये दश मानकषायके पर्यायवाची नाम हैं ।

स्तम्भ, मद, मान, दर्प, समुत्कर्ष, उत्कर्ष, प्रकर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त ये मानके पर्यायवाची शब्द हैं ॥ २ ॥

\* माया, सातियोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कक्क, कुहक, गूहन और छन्न ये ग्यारह मायाकषायके पर्यायवाची नाम हैं ॥३-८८॥

§ ५. माया, सातिप्रयोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कक्क, कुहक, निगूहन और छन्न ये मायाके पर्याय हैं । इन शब्दोंके द्वारा जो अर्थ कहा जाता है वह मायाकषाय है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे कपटप्रयोगका नाम माया है । कूटिल व्यवहारका नाम सातियोग है । वञ्चना-ठगनेके अभिप्रायका नाम निकृति है ।

मिप्रायः । वंचना विप्रलम्भनं । अनुजुता योगवक्रता । ग्रहणं मनोज्ञार्थं परकीय-  
मुपादाय निन्हवनं । गहनं चान्तर्गतवंचनाभिप्रायस्य निभृताकारेण गूढमंत्रता ।  
मनोज्ञमार्गणं मनोज्ञस्यार्थस्य परतो मिथ्याविनयादिभिरुपचारैः स्वीकरणाभिप्रायः ।  
कल्को दम्भः । कुहकमसद्भूत-मंत्र-तंत्रोपदेशादिभिर्लोकोपजीवनम् । निगूहनं अन्तर्गत-  
दुराशयस्य बहिराकारसंवरणम् । छन्नं छन्नप्रयोगोऽतिसन्धानं विश्रम्भघातादिरित्यर्थः ।  
त एते मायापर्याया एकादश प्रतिपत्तव्याः ।

मायाय सातियोगो निकृतिरथो वंचना तथानुजुता ।

ग्रहणं मनोज्ञमार्गण-कल्क-कुहक-गूहनच्छन्नम् ॥ ३ ॥

(३६) कामो राग निदानो छन्दो य सुतो य पेज्ज दोसो य ।

णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥४-८८॥

(३७) सासद् पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा य ।

लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्टिया भणिदा ॥५-८०॥

§ ६. काम-राग-निदान-छन्द-सुत-प्रेय-दोषप्रभृतयः त एते लोभस्य नामधेयत्वेन  
रूढा विंशतिरेकार्थाः शब्दाः पूर्वस्वरिभिरुपवर्णिताः प्रत्येतव्याः इति संक्षेपतः सूत्रार्थः ।  
तत्र कमनं कामः इष्टदारापत्यादिपरिग्रहाभिलाष इति प्रथमो लोभपर्यायः । रंजनं रागो

विप्रलम्भनका नाम वंचना है । योगकी कुटिलताका नाम अनुजुता है । दूसरेके मनोज्ञ अर्थको प्राप्त कर उसका अपलाप करनेका नाम ग्रहण है । और इसका अर्थ गहन करने पर उसका तात्पर्य है—भीतरी वंचनाके अभिप्रायका निभृताकाररूपसे गूढ मंत्र करना । मिथ्या विनय आदि उपचारों द्वारा दूसरेसे मनोज्ञ अर्थके स्वीकार करनेके अभिप्रायका नाम मनोज्ञमार्गण है । दम्भका नाम कल्क है । झूठे मन्त्र, तन्त्र और उपदेश आदि द्वारा लोकका उपजीवन करना कुहक है । भीतरी दुराशयका बाह्यमें संवरण करना ( छिपाना ) निगूहन है । छन्न-प्रयोग करना छन्न है । अतिसन्धान और विश्रम्भघात आदि छन्न कहलाता है यह इसका तात्पर्य है । ये सब ग्यारह शब्द मायाके पर्यायवाची जानने चाहिए ।

माया, सातियोग, निकृति, वंचना, अनुजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये मायाके पर्यायनाम हैं ॥ ३ ॥

\* काम, राग, निदान, छन्द, सुत या स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूच्छा, गृद्धि, साशता या शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा ये वीस लोभके एकार्थक नाम कहे गये हैं ॥४, ५-८९, ९१॥

§ ६. काम, राग, निदान, छन्द, सुत, प्रेय और दोष आदि ये सब लोभके नामधेय-रूपसे रूढ़ वीस एकार्थक शब्द पूर्वाचार्योंद्वारा कहे गये जानने चाहिए यह संक्षेपमें गाथा-सूत्रोंका अर्थ है । उनमेंसे काम शब्दकी व्युत्पत्ति है—कमनं कामः । इष्ट स्त्री और इष्ट पति या पुत्र

मनोज्ञविषयाभिष्वंग इति द्वितीयः । जन्मान्तरसम्बन्धेण निधीयते संकल्प्यत इति निदानम् । परोपभोगसमृद्धिदर्शनात् संक्लिष्टतरस्यात्मनो जन्मान्तरेऽपि कथं नामैवं भोगसम्पन्नता मे स्यादित्यनागतप्रार्थनायामभिसन्धानमित्यर्थः । छन्दं छन्दो मनोऽनुकूलविषयानुबुभूषार्या<sup>१</sup> मनःप्रणिधानमिति यावत् । सूयतेऽभिषिच्यते विविधविषयाभिलाषकलुषसलिलपरिषेकैरिति सुतो लोभः । अथवा स्वशब्दः आत्मीयपर्यायवाची, स्वस्य भावः स्वता ममता ममकार इत्यर्थः । सास्मिन्नस्तीति स्वतो लोभः । प्रिय व इति प्रेयः । प्रेयश्चासौ दोषश्च प्रेयदोषो<sup>२</sup> लोभः । कथं पुनरस्य प्रेयत्वे सति दोषत्वम्, विप्रतिषेधादिति चेत्, ? न, आह्लादनमात्रहेतुत्वापेक्षया परिग्रहाभिलाषस्य प्रेयत्वे सत्यपि संसारप्रवर्धनकारणत्वादोषतोपपत्तेः<sup>३</sup> । स्नेहनं स्नेहः, इष्टे वस्तुनि सानुरागं मनसः प्रणिधानमित्यर्थः । एवमनुरागोऽपि व्याख्येयः । अविद्यमानस्यार्थस्याशासनमाप्तेत्यपरो लोभपर्यायः । अथवा आशयति तनूकरोत्यैत्मानमित्याशा लोभ इति

आदि परिग्रहकी अभिलाषाका नाम काम है । यह लोभका प्रथम पर्यायनाम है । रागशब्दकी व्युत्पत्ति है—रंजनं रागः । मनोज्ञ विषयके अभिष्वंगका नाम राग है । यह लोभका दूसरा पर्यायनाम है । जन्मान्तरके सम्बन्धसे निधीयते अर्थात् संकल्प करनेका नाम निदान है । दूसरेके उपभोगकी समृद्धिके देखनेसे जो अत्यन्त संक्लेशको प्राप्त होता है तथा ऐसा विचार करता है कि मेरे जन्मान्तरमें भी इस प्रकारकी भोगसम्पन्नता कैसे होगी इस प्रकार अनागत विषयको प्रार्थनामें अभिसन्धानका होना निदान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । छन्द शब्दकी व्युत्पत्ति है—छन्दनं छन्दः । मनके अनुकूल विषयके बार-बार भोगनेमें मनके प्रणिधानका नाम छन्द है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । नाना प्रकारके विषयोंके अभिलाषरूप कलुषित जलके सिंचनोंद्वारा सूयते अर्थात् परिसिंचित करना सुत नामका लोभ है । अथवा 'स्व' शब्द आत्मीय पर्यायका वाची है । 'स्व' का जो भाव वह स्वता कहलाता है । इससे ममता या ममकार लिया गया है । वह जिसमें है वह स्वत नामका लोभ है । जो प्रिय के समान है वह प्रेय कहलाता है । प्रेय जो दोष वह प्रेय-दोष नामका लोभ है ।

शंका—इसके प्रेयरूप होनेपर दोषपना कैसे बन सकता है, क्योंकि दोनोंके एक होनेका निषेध है ?

समाधान—नहीं, आह्लादन मात्र हेतुपनेकी अपेक्षा परिग्रहकी अभिलाषाके प्रेयरूप होनेपर भी संसारके बढ़ानेका कारणपना होनेसे उसमें दोषपना बन जाता है ।

स्नेह शब्दकी व्युत्पत्ति है—स्नेहनं स्नेहः । इष्ट वस्तुमें अनुराग सहित मनका प्रणिधान होना स्नेह है यह इसका तात्पर्य है । इसी प्रकार अनुरागका भी व्याख्यान करना चाहिए । अविद्यमान अर्थकी आकांक्षा करना आशा नामका दूसरा लोभका पर्यायवाची नाम है । अथवा जो आशयति अर्थात् आत्माको कृश करता है वह आशा नामका लोभ है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए । इच्छा पदकी व्युत्पत्ति है—एषणं इच्छा । बाह्य और आभ्यन्तर

१. ता०प्रती —याननुभूषार्या इति पाठः । २. ता०प्रती प्रेयो दोषो इति पाठः । ३. ता०प्रती —दोषोपपत्तेः इति पाठः । ४. ता०प्रती तनूकरोत्या— इति पाठः ।

व्याख्येयम् । एषणमिच्छा, बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहामिलाष इत्यर्थः । मूर्च्छनं मूर्च्छा, तीव्रतरः परिग्रहामिष्वंग इत्यर्थः । गर्द्धनं गृद्धिः, परिग्रहेषूपात्तानुपात्तेष्वतितृष्णेत्यर्थः ।

§ ७. साम्प्रतं द्वितीयगाथार्थं उच्यते । 'सासण-पत्थण-लालसेत्यादि—सद्दाशया वर्तत इति शासस्तस्य भावः साशता, सस्पृहता सतृष्णतेत्ययमपरो लोभपर्यायः । अथवा शश्वद्भवः शाश्वतो लोभः । कथं पुनरस्य शाश्वतिकत्वमिति चेदुच्यते—परिग्रहोपादानात्प्राक्पश्चाच्च सर्वकालमनपायात् शाश्वतो लोभः । प्रकर्षेणार्थनं प्रार्थना धनोपलिप्सेत्यर्थः । लालसा गृद्धिरित्यनर्थान्तरम् । विरमणं विरतिः । न विद्यते विरतिरस्येति अविरतिः । अथवा अविरमणमविरतिरसंयम इत्यनर्थभेदः । तद्वेतुत्वाद-विरतिलोभपरिणामः, सर्वेषामेव हिंसानामविरमणभेदानां लोभकषायनिबन्धनत्वादिति । तर्षणं तृष्णा विषयपिपासेत्यर्थः । 'विज्ज जिम्भा य' विद्या जिह्वेत्यपि तस्यैव पर्याय-द्वयमवगन्तव्यम् । यथा—वेदनं विद्या लोभ इत्यर्थः, तदधीनजन्मत्वाल्लोभोऽपि तथोपचर्यते, 'लोभो लाभेन वर्धते' इति वचनात् । अथवा विद्येव विद्या । क इहोप-

परिग्रहकी अभिलाषाका नाम इच्छा है यह इसका तात्पर्य है । मूर्च्छा पदकी व्युत्पत्ति है—मूर्च्छनं मूर्च्छा । परिग्रहसम्बन्धी अति तीव्र अभिष्वंगका नाम मूर्च्छा है यह इसका तात्पर्य है । गृद्धि पदकी व्युत्पत्ति है—गर्द्धनं गृद्धिः । उपात्त और अनुपात्त परिग्रहोंमें अत्यधिक तृष्णाका नाम गृद्धि है यह इसका अर्थ है ।

§ ७. अब सासण-पत्थण-लालसा इत्यादि दूसरी गाथाका अर्थ कहते हैं—आशाके साथ जो रहता है वह शास कहलाता है और उसके भावका नाम शासता है । स्पृहा सहितपना और तृष्णा सहितपना इसका तात्पर्य है । यह लोभका दूसरा पर्यायनाम है । अथवा जो शश्वत हो वह शाश्वत कहलाता है । यह भी लोभका एक नाम है ।

शंका—इसका शाश्वतिकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—परिग्रहके ग्रहण करनेके पहले और बादमें सदा बना रहनेके कारण लोभ शाश्वत कहलाता है ।

प्रकृष्टरूपसे अर्थन अर्थात् चाहना प्रार्थना है, प्रकृष्टरूपसे धनकी चाह करना यह इसका अर्थ है । लालसा और गृद्धि ये एकार्थवाची शब्द हैं । विरति शब्दकी व्युत्पत्ति है—विरमणं विरतिः । जिसमें विरति नहीं है उसका नाम अविरति है । अथवा अविरति शब्दकी व्युत्पत्ति है—अविरमणं अविरतिः । अविरति और असंयम इनमें अर्थभेद नहीं है । उसका हेतु होनेसे अविरति लोभपरिणामस्वरूप है, क्योंकि हिंसासम्बन्धी अविरमण अर्थात् अविरतिके सभी भेद लोभकषायनिमित्तक होते हैं । तृष्णा शब्दकी व्युत्पत्ति है—तर्षणं तृष्णा । विषयसम्बन्धी पिपासाका नाम तृष्णा है यह इसका तात्पर्य है । विद्या और जिह्वा ये दोनों भी लोभके ही दो पर्याय नाम जानने चाहिए । यथा—विद्याकी व्युत्पत्ति है—वेदनं विद्या । यहाँ पर विद्या पदसे लोभ लिया गया है यह इसका अर्थ है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति वेदनके अधीन है, इसलिये लोभ भी विद्यारूपसे उपचरित किया गया है । लोभ लाभसे बढ़ता है

मार्थः ? दुराराधत्वम् । एवं जिह्वेव जिह्वेत्यसंतोषसाधर्म्यमाश्रित्य लोभपर्यायत्वं वक्तव्यम् ।  
एवमेते लोभकषायस्य विंशतिरेकार्थाः पर्यायाः शब्दाः व्याख्याताः ।

कामो रागनिदाने छन्द सुता प्रेय दोषनामानः ।

स्नेहानुराग आशा मूर्च्छेच्छागृद्धिसंज्ञाश्च ॥ ४ ॥

साशता प्रार्थना तृष्णा लालसाविरतिस्तथा ।

विद्या जिह्वा च लोभस्य पर्यायाः विंशतिः स्मृताः ॥ ५ ॥

एवं वंजणे चि समत्तमणिओगहारं ।

ऐसा वचन भी है । अथवा विद्याके समान होनेसे लोभका नाम विद्या है ।

शंका—प्रकृतमें उपमारूप अर्थ क्या है ?

समाधान—दुराराधना प्रकृतमें उपमार्थ है । अर्थात् जिस प्रकार विद्याकी आराधना कष्टसाध्य होती है उसी प्रकार लोभका आलम्बनभूत भोगोपभोग कष्टसाध्य होनेसे प्रकृतमें लोभको कष्टसाध्य कहा गया है ।

इसी प्रकार लोभ जिह्वाके समान होनेसे जिह्वास्वरूप है, यहाँ असंतोषरूप साधर्म्यका आश्रयकर जिह्वा लोभका पर्यायवाची नाम है ऐसा कहना चाहिए । इस प्रकार लोभके इन एकार्थवाची शब्दोंका व्याख्यान किया ।

काम, राग, निदान, छन्द, सुत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, मूर्च्छा, इच्छा, गृद्धि, साशता, प्रार्थना, तृष्णा, लालसा, अविरति, विद्या और जिह्वा ये बीस लोभके पर्यायवाची नाम स्मृत किये गये हैं ।

इस प्रकार व्यंजन नामका अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

३०

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-त्रुणिसुत्तसमण्णिदं  
सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

**क सा य पा हु डं**

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

**जयधवला**

तत्थ

सम्मत्तमणिओगहारं

—+\*~\*~\*+—

णमो अरहंताणं

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं ।  
दुसइपरीसहविसहं जइवसहं धम्मसुत्तपाठरवसहं ॥१॥  
इय पणमिय जिणणाहे गणणाहे तह य वेव मुणिणाहे ।  
सम्मत्तसुद्धिहेउं वोच्छं सम्मत्तमहियारं ॥२॥

जिनवरवृषभ, गणधरवृषभ, गुणधरवृषभ और दुःसह परीषहोंको जीतनेवाले तथा धर्मसूत्रके पाठकोंमें श्रेष्ठ ऐसे यतिवृषभको तुम सब प्रणाम करो ॥१॥

इस प्रकार जिननाथ, गणनाथ और मुनिनाथको प्रणाम कर सम्यक्त्वशुद्धिके निमित्त-रूप सम्यक्त्व अधिकारका मैं कथन करता हूँ ॥ २ ॥

१. ता०प्रती पाठरवसहं इति पाठः ।



\* कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगहारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ ।

§ १. एदस्स सम्मत्तसण्णिदमहाहियारस्स उवक्कमादिभेयभिण्णचउविहावयार-परूवणट्ठमेदं सुत्तमागयं । तं जहा, चउव्विहो एत्थावयारो—उवक्कमो णिक्खेवो णयो अणुगमो चेदि । तत्थ उवक्कमो पंचविहो—आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्था-हियारो चेदि । तत्थाणुपुव्वी तिविहा पुव्वाणुपुव्वीआदिभेदेण । एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए दसमो एसो अत्थाहियारो । पच्छाणुपुव्वीए छट्ठो । जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अणिद्वारिद-संखाविसेसो एसो अत्थाहियारो त्ति वत्तव्वं । णामं पमाणं च सुगमं । वत्तव्वदा ससमयो तदुभयं वा, सम्मत्तपरूवणाए तप्पडिवक्खपरूवणाविणाभावित्तादो । अत्था-हियारो दुविहो—दंसणमोहस्सुवसामणा खवणा चेदि, दोण्हमेदेसिं सम्मत्ताहियार-जोणित्तादो । णिक्खेव-णयोवक्कमपरूवणा जाणिय कायव्वा ।

§ २. इदाणिमणुगमं वत्तइस्सामो । को अणुगमो णाम ? पयदाहियारस्स वित्थारपरूवणट्ठं तदवलंबणीभूदगाहासुत्ताणुसरणमणुगमो त्ति इह विवक्खिओ । यदाह—‘अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ’ त्ति । एतदुक्तं भवति—सम्मत्ते त्ति अणियोगहारस्स अत्थविहासणे कीरमाणे दंसणमोहस्सुवसामणा पुव्वमेव

\* कषायप्राभृतके सम्यक्त्व नामक अनुयोगद्वारके अन्तर्गत अधःप्रवृत्तकरण-सम्बन्धी इन चार सूत्रगाथाओंका कथन करना चाहिए ।

§ १. इस सम्यक्त्वसंज्ञक महाधिकारके उपक्रम आदि भेदरूप चार प्रकारके अवतारका कथन करनेके लिये यह सूत्र आया है । यथा—प्रकृतमें अवतार चार प्रकारका है—उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम । उनमेंसे उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार । उनमेंसे पूर्वानुपूर्वी आदिके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है । प्रकृतमें पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा यह दसवाँ अर्थाधिकार है, पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा यह छटा अर्थाधिकार है और यत्र-तत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा अनिर्धारित संख्यावाला यह अर्थाधिकार है ऐसा यहाँ कथन करना चाहिए । नाम और प्रमाण ये दोनों सुगम हैं । वक्तव्यता स्वसमयवक्तव्यता और तदुभयवक्तव्यता जानना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्वकी प्ररूपणा उसकी प्रतिपक्ष प्ररूपणाके अविनाभावस्वरूप है । अर्थाधिकार दो प्रकारका है—दर्शन-मोहोपशामना और दर्शनमोहक्षपणा, क्योंकि ये दोनों अर्थाधिकार सम्यक्त्व अधिकारके योनिस्वरूप हैं । निक्षेप, नय और उपक्रमका विशेष कथन जानकर करना चाहिए ।

§ २. अब अनुगमको बतलाते हैं ।

शंका—अनुगम किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रकृत अधिकारका विस्तारपूर्वक कथन करनेके लिये उसके अवलम्बन-स्वरूप गाथासूत्रोंके अनुसरण करनेको अनुगम कहते हैं ऐसा अर्थ प्रकृतमें विवक्षित है । जैसा कि कहा है—‘अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें इन चार सूत्र गाथाओंका कथन करना चाहिए ।’ इसका यह तात्पर्य है—सम्यक्त्व इस अधिकारके अर्थका विशेष व्याख्यान करने पर दर्शन-

परूवेयव्वा, तत्थेव सम्मत्तुप्पत्तिववहारस्स रूढत्तादो । तत्थ य पण्णारस सुत्तगाहाओ गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयाओ पडिबद्धाओ । तत्थ वि तिण्णि करणाणि अधापवत्त-करणादिभेदेण । तेसिं लक्खणं पुरदो भणिस्सामो ।

§ ३. तत्थ ताव अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ पण्णारस-मूल-गाहावहिब्भूदाओ । तस्सेव दंसणमोहोवसामगस्स तदहिमुहावत्थापरूवणप्पियाओ पुव्वमेत्थ परूवेयव्वाओ, तप्परूवणाए विणा पण्णारसमूलगाहाणमत्थविहासाए अण-वयारादो त्ति एत्थ जइ वि सामण्णेण अधापवत्तकरणे इमाओ सुत्तगाहाओ परूवे-यव्वाओ त्ति वुत्तं तो वि अधापवत्तकरणपढमसमए इमाओ परूवेयव्वाओ त्ति वक्खाणेयव्वं । कुदो ? एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणपढमसमए परू-विदाओ त्ति पुरदो भणिस्समाण्णुणिसुत्तणिबंधोवसंहारवक्कादो तारिसविसेसणिण्णयोव-लद्धीए । संपहि काओ ताओ गाहाओ त्ति आसंकाए पुच्छापुव्वमुत्तरं पबंधमाह—

\* तं जहा ।

§ ४. सुगममेदं गाहासुत्तावयारावेक्खं पुच्छावक्कं । एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिहेसो—

(३८) दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे ।

जोगे कसायउवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥८१॥

मोहोपशामनाका सर्वप्रथम कथन करना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप व्यवहार उसीमें रूढ है । उसमें गुणधर आचार्यके मुखकमलसे निकली हुई पन्द्रह सूत्रगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं । उसमें भी अधःप्रवृत्तकरण आदिके भेदसे ये तीन करण होते हैं । उनके लक्षणोंका कथन आगे करेंगे ।

§ ३. उनमें सर्वप्रथम अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें ये चार सूत्रगाथाएँ हैं जो पन्द्रह मूल गाथाओंसे बहिर्भूत हैं । वे दर्शनमोहका उपशम करनेवाले उसी जीवके उसके अभिमुख होनेरूप अवस्थाका प्ररूपण करती हैं, उनका सर्वप्रथम यहाँ प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि उनका प्ररूपण किये विना पन्द्रह मूलगाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान नहीं हो सकता । इस प्रकार यहाँपर यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें इन सूत्रगाथाओंका कथन करना चाहिए ऐसा सामान्यरूपसे कहा है तो भी अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें इनका कथन करना चाहिए ऐसा व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि ये चार सूत्रगाथाएँ अधः-प्रवृत्तकरणके प्रथम समयके विषयमें कही गई हैं ऐसा आगे कहे जानेवाले चूर्णिसूत्रसम्बन्धी उपसंहार वाक्यसे उक्त प्रकारके विशेष निर्णयकी उपलब्धि होती है । अब वे कौन-सी गाथाएँ हैं ऐसी आशंका होनेपर पृच्छापूर्वक उत्तर प्रबन्धको कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ ४. गाथासूत्रोंके अवतारकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छावाक्य सुगम है । इस प्रकार पृच्छाके विषयरूपसे विवक्षित गाथासूत्रोंका क्रमसे यह स्वरूपनिर्देश है ।

\* दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके कौनसी लेश्या और वेद होता है ॥९१॥

५. एसा गाहा दंसणमोहउवसामगस्स तदुम्मुहावत्थाए पयट्टमाणस्स परिणाम-  
विसेसपरूवणङ्गं तस्सेव जोग-कसायोवजोग-लेस्सा-वेदभेदाणं च परूवणट्टमोहण्णा ।  
तत्थ ताव पुव्वद्वेण 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे', किं विमुद्धो  
विमुद्धयरो संकिलिद्धो संकिलिद्धयरो वा त्ति विसोहि-संकिलेसावेक्खो पुच्छाणिदेसो  
कओ दट्टव्वो । पच्छद्वेण वि 'जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे'  
किमविसेसेण सव्वेसिमेव जोगकसायोवजोगादिभेदाणमेदस्स संभवो, आहो अत्थि को  
विसेसो त्ति तच्चिसयविसेसणिण्णयावेक्खो पुच्छाणिदेसो कओ होइ । एवं पुच्छिदत्थ-  
विसयविसेसणिण्णयमुवारि चुण्णिमुत्तसंबंधेण कस्सामो, सुत्तसिद्धस्स अत्थस्स पुध  
परूवणाए फलविसेसाणुवलंभादो । एवं ताव पढमगाहाए संखेवेणुत्थाणत्थपरूवणं कादण  
संपहि विदियगाहाए अवयारं कस्सामो—

(३६) काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिवंधदि ।

कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥८२॥

§ ६. एसा विदिया गाहा दंसणमोहउवसामगस्स णाणावरणादिकम्माणं संतकम्म-  
बंधोदयावलियपवेसोदीरणणं पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसविसयाणं पुच्छामुहेण परूवणं  
ओइणं । तं जहा—'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति एसो सुत्तस्स पढमावयवो, सव्वेसिं

§ ५. दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख हुई अवस्थामें प्रवृत्त हुए दर्शनमोहके उपशामक जीवके परिणामविशेषका कथन करनेके लिये तथा उसीके योग, कषाय, उपयोग, लेख्या और वेदके भेदोंका कथन करनेके लिये यह गाथा आई है । उनमेंसे सर्व प्रथम पूर्वार्धके 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है' इस वचन द्वारा क्या विशुद्ध होता है, या विशुद्धतर होता है, संकिलिष्ट होता है या संकिलिष्टतर होता है ? इस प्रकार विशुद्धि और संकलेशकी अपेक्षा पृच्छाका निर्देश किया हुआ जानना चाहिए । तथा उत्तरार्धके 'किस योग, कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके लेख्या और वेद कौनसा होता है' इस वचनद्वारा क्या सामान्यसे सभी योग, कषाय, और उपयोगादिके भेद इसके सम्भव हैं या कोई विशेषता है इस प्रकार उक्त पृच्छाविषयक विशेष निर्णयकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छाका निर्देश किया है । इस प्रकार पूछे गये अर्थका विशेष निर्णय आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे, क्योंकि सूत्रसिद्ध अर्थकी पृथक् प्ररूपणामें फलविशेष नहीं पाया जाता । इस प्रकार सर्व प्रथम प्रथम गाथा द्वारा संक्षेपसे उत्थानिकारूप अर्थका कथन करके अब दूसरी गाथाका अवतार करते हैं—

\* दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके पूर्ववद् कर्म कौन-कौन हैं, वर्तमानमें किन कर्मांशोंको बाँधता है, कितने कर्म उदयावलिमें प्रवेश करते हैं और यह किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ॥९२॥

§ ६. यह दूसरी गाथा दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि कर्म-सम्बन्धी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविषयक सत्कर्म, बन्ध, उदयावलिप्रवेश और उदीरणाका पृच्छामुखसे कथन करनेके लिये आई है । यथा—'काणि वा पुव्वबद्धाणि' यह

कम्माणं पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्मपरूवणाए पडिबद्धो । कथं पुण 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति सामण्णणिहेसेण पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसविसेसोवलद्धी होदि त्ति ? णेदमेत्थासंकणिज्जं, सामण्णणिहेसे सव्वेसिं विसेसाणं संगहे विरोहाभावादो । 'के वा अंसे णिवंधदि' त्ति एसो सुत्तस्स विदियावयवो तेसिं चेव पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेस-विसेसियणवगबंधसरूवणिरूवद्धमोइण्णो, अंससइस्स पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसविसेस-वाचिणो इह ग्गहणादो । 'कदि आवलियं पविसंति' त्ति एसो सुत्तस्स तदियावयवो सव्वेसिमेव कम्माणं मूलुत्तरपयडिमेयभिण्णाणं ट्टिदिक्खयजणिदोदयावलियपवेसगवेसणद्ध-मुयणिवद्धो । उदयाणुदयसरूवेण उदयावलियं पविसमाणपयडिगवेसणे एसो सुत्तावयवो पडिबद्धो त्ति भावत्थो । 'कदिण्हं वा पवेसगो' एसो चउत्थो गाहासुत्तावयवो सव्वेसिं कम्माणमुदीरणाग्गहेण उदयावलियं पवेसिज्जमाणपयडिणं परूवणाए पडिबद्धो । एदं च सव्वं पुच्छासुत्तं । एदिस्से पुच्छाए णिण्णयमुवरि चुण्णिमुत्तसंबंधेण कस्सामो । संपहि तदियगाहाए अवयारं कस्सामो ।

(४०) के अंसे झीयदे पुव्वं वंधेण उदएण वा ।

अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं ॥८३॥

गाथासूत्रका प्रथम अवयव सभी कर्मोंके प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मके कथन करनेमें प्रतिबद्ध है ।

शंका—'पूर्वबद्ध कर्म कौन हैं' इस प्रकार सामान्य निर्देश द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषकी उपलब्धि कैसे होती है ?

समाधान—यहाँ ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, सामान्य निर्देशमें सभी विशेषोंका संग्रह होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

'के वा अंसे णिवंधदि' यह गाथासूत्रका दूसरा अवयव उन्हीं कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषरूप नवकबन्धके स्वरूपके निरूपणके लिये आया है, क्योंकि यहाँ पर अंश शब्द प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषका वाची ग्रहण किया गया है । 'कदि आवलियं पविसंति' यह गाथासूत्रका तीसरा अवयव मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारके सभी कर्मोंके स्थितिक्षयजन्य उदयावलिप्रवेशके अनुसंधानके लिये निबद्ध किया गया है । उदय और अनुदयरूपसे उदयावलिमें प्रवेश करनेवाली प्रकृतियोंके अनुसंधानमें गाथासूत्रका यह अवयव प्रतिबद्ध है यह इसका भावार्थ है । 'कदिण्हं वा पवेसगो' गाथासूत्रका यह चौथा अवयव सभी कर्मोंकी उदीरणा द्वारा उदयावलिमें प्रविष्ट कराई जानेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणामें प्रतिबद्ध है । यह सब पृच्छासूत्र है । इस पृच्छाका निर्णय आगे चूणि-सूत्रके सम्बन्धसे करेंगे । अब तीसरी गाथाका अवतार करते हैं—

दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख होनेपर पूर्व ही बन्ध और उदयरूपसे कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं ? आगे चलकर अन्तरको कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका

§ ७. एसा तदियसुत्तगाहा पुव्वद्वेण सव्वेसिं कम्माणं पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसविसेसिदबन्धोदएहिं झीणाझीणत्तगवेसणडुमागया । के कर्माशाः प्रकृति-स्थित्यनु-भव-प्रदेशविशेषिताः दर्शनमोहोपशमनोन्मुख्यावस्थायां पूर्वमेव क्षीयन्ते, के वा न क्षीयन्त इति सूत्रे पदसम्बन्धावलंबनात् । तथा पच्छद्वेण वि पुरदो भविस्समाणमंतरं कम्हि उद्देसे होइ, केसिं वा कम्माणं कम्हि उद्देसे एसो उवसामगो होदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स पुच्छामुहेण परूवणाए पडिवद्दा । एवंविहाणं च पुच्छाणिहेसाणं गिरारेगीकरणमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो । संपहि जहावसरपत्ताए चउत्थगाहाए एसो अवयारो—

(४१) किं ट्टिदियाणि कम्माणि अणुभागेषु केसु वा ।

ओवट्टिदूण सेसाणि कं ट्टाणं पडिवज्जदि ॥८४॥

§ ८. एदिस्से चउत्थगाहाए पुव्वद्वेण विदियगाहाए परूविदट्टिदि-अणुभागसंत-कम्माणं पुच्छामुहेणाणुवादं कादूण तदो पच्छद्वेण ट्टिदि-अणुभागखंडयपरूवणाए बीजपद-मुवइडं । दंसणमोहउवसामगो कम्हि उद्देसे काणि ट्टिदि-अणुभागविसेसिदाणि कम्माणि ओवट्टेयूण कं ठाणमवसेसं पडिवज्जइ, ट्टिदीए केत्तिए भागे विणासेयूण कइत्थं भागं

उपशामक होता है ? ॥९३॥

§ ७. यह तीसरी गाथा पूर्वार्ध द्वारा सभी कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशिष्ट बन्ध और उदयरूपसे क्षीण-अक्षीणपनेके अनुसन्धान करनेके लिए आई है । प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशिष्ट कौनसे कर्मांश दर्शनमोहके उपशमनके सन्मुख होनेकी अवस्थामें पहले ही क्षीण हो जाते हैं और कौनसे कर्म क्षीण नहीं होते हैं इस प्रकार सूत्रमें पदोंके सम्बन्धका अवलम्बन लिया है । तथा उत्तरार्धद्वारा भी आगे होनेवाला अन्तर किस स्थान पर होता है और किन कर्मोंका किस स्थानपर यह उपशामक होता है इस तरह इस प्रकारका अर्थविशेष पृच्छाद्वारा प्ररूपणामें प्रतिबद्ध है । तथा इस प्रकारके पृच्छानिर्देशोंका खुलासा आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे । अब क्रमसे अवसर प्राप्त चौथी गाथाका यह निर्देश है—

\* दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका तथा किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके शेष रहे उनके किस स्थानको प्राप्त होता है ॥९४॥

§ ८. इस चौथी गाथाके पूर्वार्धद्वारा दूसरी गाथामें कहे गये स्थितिस्तकर्मों और अनुभाग सत्कर्मोंका पृच्छाद्वारा अनुवाद करके अनन्तर उत्तरार्ध द्वारा स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकसम्बन्धी प्ररूपणाके बीजपदका निर्देश किया है । दर्शनमोहका उपशामक जीव किस स्थानपर स्थितिविशेष और अनुभागविशेषसे युक्त किन कर्मोंका अपवर्तन कर अवशिष्ट किस स्थानको प्राप्त होता है, क्योंकि स्थितिके कितने भागोंका विनाश कर कितने

परिसेसेइ, अणुभागस्स वा केत्तिये भागे ओवट्टेदूण केवडियं भागमुवसेसेदि त्ति सुत्तत्थ-  
संबंधावलंबणादो । एवमेदेसिं गाहासुत्ताणमुत्थाणत्थपरूवणं कादूण संपहि एदेसिं  
वित्थारत्थपरूवणदुमुत्तरं चुण्णिणसुत्तपबंधमणुसरामो ।

\* एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए  
परूविदव्वाओ ।

§ ९. एवं भणंतस्सायमहिप्पाओ—एदाओ सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणपढम-  
समयादो हेट्ठिमोवरिमावत्थासु पडिबद्धत्थपरूवणाए णिवद्धाओ । तम्हा दोण्हमवट्ठाणं  
साहारणभावेण मज्झावत्थाए मज्झदीवयसरूवेणेदासिं परूवणं कायव्वमिदि जाणावणदु-  
मेदाओ गाहाओ अधापवत्तकरणपढमसमए परूवेयव्वाओ त्ति भणिदं होइ । संपहि  
'जहा उदेसो तहा णिदेसो' त्ति णायमवलंबिय पढमं ताव पढमगाहासुत्तत्थं विहासिदु-  
कामो इदमाह—

\* तं जहा ।

§ १०. सुगमं ।

\* 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति विहासा ।

§ ११. एदस्स ताव पढमगाहापुव्वद्वस्स अत्थविहासा एण्हिमहिकीरदि त्ति  
वुत्तं होइ ।

भागको शेष बचाता है तथा अनुभागके कितने भागोंका अपवर्तन कर कितने भागको शेष  
बचाता है इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है । इस प्रकार  
इन गाथासूत्रोंके उत्थानिकारूप अर्थका कथन कर अब इनके विस्तारपूर्वक अर्थका कथन  
करनेके लिए आगेके चूर्णिसूत्रके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

\* ये चार सूत्रगाथाएँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कहनी चाहिए ।

§ ९. ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है—ये सूत्रगाथाएँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे  
पूर्वकी और बादकी अवस्थाओंमें प्रतिबद्ध अर्थकी प्ररूपणा करनेमें निबद्ध हैं, इसलिये दोनों  
अवस्थाओंके लिये साधारण ऐसी मध्यकी अवस्थामें मध्यदीपकरूपसे इनका कथन करना  
चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये ये गाथाएँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कथन  
योग्य हैं यह कहा है । अब 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायका अवलम्बन  
लेकर सर्वप्रथम प्रथम गाथासूत्रके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेकी इच्छासे इसे कहते हैं—

\* वह जैसे ।

§ १०. यह सूत्र सुगम है ।

\* 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है ?' इसकी विभाषा ।

§ ११. सर्वप्रथम प्रथम गाथाके इस पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय  
अधिकृत करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* तं जहा ।

§ १२. सुगमोऽयं यथाप्रतिज्ञातार्थविषयः प्रश्नोपन्यासः ।

\* परिणामो विसुद्धो ।

§ १३. दंशणमोहउवसामगस्स परिणामो विसुद्धो चेव होइ, णाविसुद्धो त्ति सुत्तत्थसंबंधो । विसुद्धतरोऽस्य परिणाम इत्युक्तं भवति । अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसयमधिकृत्यैतत्प्रतिपादितं भवति । न केवलमधःप्रवृत्तकरणप्रारंभसमय एवास्य परिणामो विशुद्धिकोटिमवगाढः, अपि तु प्रागप्यन्तर्मुहूर्त्तात्प्रभृति विशुध्यन्नेवायमागत इति प्रदर्शनार्थमुत्तरसूत्रमासूत्रयत् सूत्रकारः—

\* पुढवं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो ।

§ १४. कुत एवमिति चेत् ? मिथ्यात्वगर्तादितिदुस्तरादात्मानमुद्धर्त्तुमनसोऽस्य सम्यक्त्वरत्नमलब्धपूर्वमासिसादयिषोः प्रतिक्षणं क्षयोपशमोपदेशलब्ध्यादिभिरुपबृंहितसामर्थ्यस्य संवेग-निर्वेदाभ्यामुपर्युपरि उपचीयमानहर्षस्य समयं प्रत्यनन्तगुणविशुद्धि-प्रतिपत्तेरविप्रतिषेधात् ।

\* वह जैसे ।

§ १२. यथा प्रतिज्ञात अर्थको विषय करनेवाला यह प्रश्नका उपन्यास सुगम है ।

\* परिणाम विशुद्ध होता है ।

§ १३. दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम विशुद्ध ही होता है, अविशुद्ध नहीं होता इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । इसका परिणाम विशुद्धतर होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयको अधिकृत कर यह कहा है । केवल अधःप्रवृत्तकरणके प्रारम्भके समयमें ही इसका परिणाम विशुद्धिरूप कोटिको स्पर्श नहीं करता, किन्तु इसके पूर्व ही अन्तर्मुहूर्त्तसे लेकर विशुद्ध होता हुआ वह आया है इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकारने इस सूत्रकी रचना की है—

\* अधःप्रवृत्तकरणके पूर्व ही अन्तर्मुहूर्त्तसे लेकर अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ वह आया है ।

§ १४. शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि जो अति दुस्तर मिथ्यात्वरूपी गर्तसे उद्धार पानेके मनवाला है, जो अलब्धपूर्व सम्यक्त्वरूपी रत्नको प्राप्त करनेको तीव्र इच्छावाला है, जो प्रति समय क्षयोपशमलब्धि और देशनालब्धि आदिके बलसे वृद्धिगत सामर्थ्यवाला है और जिसके संवेग और निर्वेदके द्वारा उत्तरोत्तर हर्षमें वृद्धि हो रही है उसके प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिकी प्राप्ति होनेका निषेध नहीं है ।

विशेषार्थ—संसार जीवके मिथ्यात्वकी भूमिकामें सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेके सन्मुख होनेकी पूर्व तैयारी किस प्रकारकी होती है यह यहाँ स्पष्टरूपसे बतलाया गया है । संसार

§ १५. एवं ताव गाहापुव्वद्धमस्सियूण परिणामस्स विसुद्धभावं पदुप्पाइय संपहि गाहापच्छद्दावलंबणेण जोगादिविसेसपरूवणट्ठं सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* जोगे त्ति विहासा ।

§ १६. जोगे त्ति' पदस्स एण्ह अत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ ।

\* अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा ओरोल्लियकायजोगो वा वेउट्ठियकायजोगो वा ।

और संसारके कारणोंके प्रति जिसके चित्तमें उदासीनता आई है वही जीव सम्यग्दर्शनका प्राप्त करनेका अधिकारी है। इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए यहाँ सर्व प्रथम यह बतलाया गया है कि जो अति दुस्तर मिथ्यात्वरूपी गर्तमेंसे निकलना चाहता है। किन्तु इतना विचार करने-मात्रसे कि संसार और संसारके कारण हितकर नहीं, इस जीवको संसारसे छुटकारा नहीं मिल सकता। इसके लिये उसके चित्तमें निरन्तर मोक्ष और मोक्षके कारणोंके प्रति उत्तरोत्तर भीतरसे आदरभाव होना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब कि यह जीव मिथ्यात्वसेवनके कारणरूप बाह्य साधन कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रोंकी सेवा-अध्ययन आदि छोड़कर परमार्थ-स्वरूप देव, गुरु और परमागमकी सेवा-स्वाध्याय आदिमें सावधान बने। जब भीतरसे यह जीव हर्षातिरेकसे आपूरित होकर परमार्थस्वरूप देव और गुरुकी उपासना तथा परमागमके श्रवण-मननमें निरन्तर सावधान रहता है तब उसके उत्तरोत्तर परिणामोंमें विशुद्धि होकर भीतर क्रिया-परिणाम द्वारा जो बाह्य लाभ होता है उस लाभको ही परमागममें चार लब्धियोंकी प्राप्ति कहा है। वे चार लब्धियाँ ये हैं—क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि। उनका स्वरूप इस प्रकार है—परिणामोंकी विशुद्धिवश पूर्वमें संचित हुए कर्मोंके अनुभागस्पर्धकोंके प्रति समय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरित होनेका नाम क्षयोप-शमलब्धि है। प्रतिसमय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरणाको प्राप्त हुए अनुभाग स्पर्धकोंके निमित्तसे ऐसे परिणामोंका होना जो साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धके निमित्त हैं और असाता आदि अशुभ कर्मोंके बन्धके विरुद्ध हैं, विशुद्धिलब्धि है। छह द्रव्य और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी उपलब्धि तथा उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण और विचार करनेरूप शक्तिकी प्राप्ति नाम देशनालब्धि है। तथा सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागका घात कर उन्हें क्रमसे अन्तःकोडाकोडी सागरोपमप्रमाण स्थितिके भीतर और द्विस्थानीय अनुभागमें स्थापित करना प्रायोग्यलब्धि है। जो जीव उक्त चार लब्धियोंके सद्भावमें अन्तस्तत्त्वके मननपूर्वक उत्तरोत्तर परिणामोंकी विशुद्धिद्वारा सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख हो वह अधःकरण परिणामोंको प्राप्त होता है, उसके इन चार लब्धियोंका सद्भाव नियमसे होता है यह समग्र कथनका तात्पर्य है।

§ १५. इस प्रकार सर्व प्रथम गाथाके पूर्वार्धका आश्रय कर परिणामकी विशुद्धिका कथन कर अब गाथाके उत्तरार्धके अवलम्बन द्वारा योग आदि विशेषोंका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'योग' इस पदकी विभाषा ।

§ १६. इस समय 'योग' इस पदका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

\* अन्यतर मनोयोग, अन्यतर वचनयोग, औदारिक काययोग या वैक्रियिक काययोगहोता है।



§ १७. जोगो णाम जीवपदेसाणं कम्मादाणणिवंधणो परिण्फंदपज्जाओ । सो च तिविहो—मणजोगो वच्चिजोगो कायजोगो चेदि । तत्थ मणजोगो चउच्चिहो सच्च-  
मोस-सच्चमोसासच्चमोसमेदेण । एवं वच्चिजोगो वि चउच्चिहो वत्तव्वो । कायजोगो  
वि सत्तविहो होइ । एवमेदेसु जोगमेदेसु दंसणमोहोवसामगस्स कदमो जोगो होदि त्ति  
भणिदे मणजोगमेदेसु ताव अण्णदरो मणजोगो होइ, 'चउण्हं' पि त्तिसिमेत्थ संभवे  
विरोहाणुवलंभादो । एवं वच्चिजोगमेदाणं पि वत्तव्वं । कायजोगो पुण ओरालियकाय-  
जोगो वेउच्चियकायजोगो वा होइ, अण्णेसिभिहासंभवादो । एदेसिं दसण्हं पज्जत्त-  
जोगाणमण्णदरेण जोगेण परिणदो पढमसम्मत्तुप्पायणस्स जोगो होइ, ण सेसजोग-  
परिणदो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थणिण्णओ ।

\* कसाये त्ति विहासा ।

§ १८. सुगमं ।

\* अण्णदरो कसायो ।

§ १९. दंसणमोहोवसामगस्स कोहादीणं चउण्हं कसायाणं मज्झे अण्णदरो

§ १७. जीवप्रदेशोंकी कर्मोंके ग्रहणमें कारणभूत परिस्पन्दरूप पर्यायका नाम योग है । वह योग तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग । उनमेंसे सत्यमनोयोग, मृषामनोयोग, सत्य-मृषामनोयोग और असत्य-मृषामनोयोगके भेदसे मनोयोग चार प्रकारका है । इसी प्रकार वचनयोग भी चार प्रकारका कहना चाहिए । काययोग भी सात प्रकारका है । इस प्रकार योगके इन भेदोंमेंसे दर्शनमोहके उपशामकके कौनसा योग होता है ऐसा कहने पर उसका यह समाधान है कि मनोयोगके भेदोंमेंसे तो अन्यतर मनोयोग होता है, क्योंकि उन चारोंके ही यहाँ प्राप्त होनेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं पाया जाता । इसी प्रकार वचनयोगके भेदोंका भी कथन करना चाहिए । परन्तु काययोग औदारिककाययोग या वैक्रियिककाययोग होता है, क्योंकि अन्य काययोगोंका प्राप्त होना असम्भव है । इन दस पर्याय योगोंमेंसे अन्यतर योगसे परिणत हुआ जीव प्रथम सम्यक्त्वके प्राप्त करनेके योग्य होता है, शेष योगोंसे परिणत हुआ जीव नहीं इस प्रकार यहाँ पर सूत्रार्थका निर्णय है ।

विशेषार्थ—जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है वह संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेके साथ पर्याप्त भी होना चाहिए यह इस कथनसे स्पष्ट ज्ञात होता है, क्योंकि उक्त दश प्रकारके योग पर्याप्त अवस्थामें ही पाये जाते हैं ।

\* 'कषाय' इस पदकी विभाषा ।

§ १८. यह सूत्र सुगम है ।

\* अन्यतर कषाय होती है ।

§ १९. दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके क्रोधादि चार कषायोंमेंसे अन्यतर

कसायपरिणामो होदि त्ति भणिदं होइ, तेसिमैककस्स वि पयदविसए विरोहाणुवलंभादो । तत्थ किमैसो वड्डमाणकसायपरिणामो आहो हायमाणकसायपरिणामो त्ति एदिस्से आसंकाए णिरारेगीकरणद्वमुत्तरसुत्तं भणइ—

\* किं सो वड्डमाणो हायमाणो त्ति ? णियमा हायमाणकसायो ।

§ २०. किं कारणं ? विसुद्धीए वड्डमाणस्सेदस्स वड्डमाणकसायत्तेण सह विरोहादो । तदो कोहादिकसायाणं विट्ठणाणुभागोदयजणिदं तप्पाओग्गं मंदयरकसायपरिणाम मणुभवतो एसो सम्मत्तमुप्पाएदुमाढवेइ त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो ।

\* उवजोगे त्ति विहासा ।

§ २१. कः पुनरुपयोगो नाम ? उपयुक्तेऽनेनेत्युपयोगः, आत्मनोऽर्थग्रहणपरिणाम इत्यर्थः । स पुनर्द्वेधा व्यवतिष्ठते साकारेतरमेदात् । तत्र साकारो ज्ञानोपयोगः । अनाकारो दर्शनोपयोगः । तद्भेदाश्च मतिज्ञानादयश्चक्षुर्दर्शनादयश्च । तत्रायं कतरेणोपयोगेन परिणतः सन् प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयतीत्यत्रोत्तरमाह—

कषायपरिणाम होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि उनमेंसे एकका भी प्रकृत विषयमें विरोध नहीं पाया जाता । उनमेंसे यह क्या वर्धमान कषाय परिणामवाला होता है या हीयमान कषाय परिणामवाला होता है । इस प्रकार इस आशंकाका निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* क्या वह वर्धमान कषायवाला होता है या हीयमान कषायवाला होता है ? नियमसे हीयमान कषायवाला होता है ।

§ २०. क्योंकि विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले इसके वर्धमान कषायके साथ रहनेका विरोध है, इसलिए क्रोधादि कषायोंके द्विस्थानीय अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुए तात्प्रायोग्य मन्दतर कषाय परिणामका अनुभवन करता हुआ सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके लिये आरम्भ करता है इस प्रकार इस सूत्रका समुदायरूप अर्थ सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—पहले क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंके स्वरूप निर्देशके प्रसंगसे प्रायोग्य लब्धिका स्वरूप निर्देश कर आये हैं । उसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो जीव सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख होता है उसके अन्य कर्मोंके समान मोहनीय कर्मका अनुभाग विशुद्धिवश द्विस्थानीय हो जाता है । उसमें भी प्रति समय उसमें अनन्तगुणी हानि होती जाती है, इसलिये इस जीवके हीयमान कषायपरिणामका ही उदय रहता है यह सिद्ध होता है ।

\* 'उपयोग' इस पदकी विभाषा ।

§ २१. शंका—उपयोग किसका नाम है ?

समाधान—जिसके द्वारा उपयुक्त होता है उसका नाम उपयोग है । आत्माके अर्थके ग्रहणरूप परिणामका नाम उपयोग है यह उक्त कथनका अर्थ है ।

वह उपयोग साकार और अनाकारके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे साकार ज्ञानोपयोग है और अनाकार दर्शनोपयोग है । तथा उनके क्रमसे भेद मतिज्ञानादि और चक्षुर्दर्शनादिक हैं । उनमेंसे यह दर्शन मोहका उपशामक जीव किस उपयोगसे परिणत होता हुआ प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ऐसा प्रश्न होनेपर यहाँ उसका उत्तर देते हुए कहते हैं—

### \* गियमा सागारूपजोगो ।

§ २२. कुतोऽयं नियमश्चेत् ? अनाकारोपयोगेनाविमर्शकेन सामान्यमात्राव-  
ग्राहिणा विमर्शात्मकतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिं प्रत्यभिमुखीभावानुपपत्तेः ।  
मदि-सुदअण्णाणेहिं विभंगणाणेण वा परिणदो होदूण एसो पढमसम्मसुप्पायणं पडि  
तेण पयडूइ ति सिद्धं ।

### \* लेस्सा त्ति विहासा ।

§ २३. सुगमं ।

### \* तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं गियमा वडूहमाणलेस्सा ।

### \* नियमसे साकार उपयोग होता है ।

§ २२. शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि अविमर्शक और सामान्यमात्रग्राही चेतनाकार उपयोगके द्वारा  
विमर्शकस्वरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके प्रति अभिमुखपना नहीं बन  
सकता । इसलिए मति-श्रुत अज्ञानरूपसे या विभंगज्ञानरूपसे परिणत होकर यह जीव प्रथम-  
सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके प्रति उस उपयोगद्वारा प्रवृत्त होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—सर्व प्रथम यहाँ दर्शनके स्वरूपका निर्देश करके यह बतलाया गया है कि  
सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके प्रति सन्मुखपना ज्ञानोपयोग कालमें ही सम्भव है दर्शनोपयोग कालमें  
नहीं, क्योंकि जब यह जीव जीवादि नौ पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय करनेके साथ अपने  
साकार उपयोग परिणामके द्वारा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाळी आत्माके सन्मुख होता है तभी उसके  
सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिकी सन्मुखता कही जा सकती है । ऐसे जीवके उस समय मति-श्रुताज्ञान  
होने पर भी वह कारण विपर्यास, भेदाभेदविपर्यास और स्वरूपविपर्यासरूप न होकर आगम,  
गुरुउपदेश और तत्त्वको स्पर्श करनेवाली युक्तिके बलसे यथावस्थित जीवके स्वरूपको अनु-  
गमन करनेवाला ही होता है । ऐसे जीवके चार लब्धियोंमें देशनालब्धिके स्वीकार करनेका  
प्रयोजन भी यही है । यहाँ टीकाकारने मति-श्रुत साकार उपयोगके साथ विभंगज्ञानका  
भी उल्लेख किया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि टीकाकार मति-श्रुत साकार उपयोगके  
समान विभंगज्ञानके द्वारा भी सम्यग्दर्शनके सन्मुख होनेकी पात्रता मानते हैं । किन्तु धवळामें  
इसी प्रसंगसे 'मदि-सुदसागारुवजुत्तो' पद द्वारा उसे मति-श्रुतसाकार उपयोगवाला ही  
बतलाया है । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अविनाभावी हैं और नय विकल्प श्रुतज्ञानमें ही सम्भव  
हैं, इसलिए ऐसे जीवको मति-श्रुत साकार उपयोगवाला कहना तो युक्तियुक्त है, परन्तु विभंग  
उपयोगवाला क्यों कहा यह विचारणीय है । मालूम पड़ता है कि जो नारकी आदि जीव  
विभंगज्ञानसे पूर्वभव आदिको जान कर पश्चात् मति-श्रुत साकार उपयोगके बलसे आत्माके  
सन्मुख होता है उसकी अपेक्षा टीकाकारने यह कथन किया है ।

### \* लेश्या इस पदकी विभाषा ।

§ २३. यह सूत्र सुगम है ।

\* पीत, पत्र और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे कोई एक वर्धमान लेश्या होती है ।

§ २४. तेउ-पम्म-सुकलेस्साणमण्णदरा णियमा वड्डमाणलेस्सा एदस्स होदि, ण हायमाणा त्ति वुत्तं होइ । एदेण किण्ह-णील-काउलेस्साणं हाममाण-तेउ-पम्म-सुक-लेस्साणं च पडिसेहो कओ दडुव्वो । एत्थ चोदगो भणइ—ण एस वड्डमाणसुहति-लेस्साणियमो एत्थ घड्ढे, णेरइएसु सम्मत्तुप्पायणे वावदेसु असुहतिलेस्साणं पि संभवो-लंभादो ? ण एस दोसो, तिरिक्ख-मणुस्से अस्सियुणेदस्स सुत्तस्स पयडुत्तादो । ण च तिरिक्ख-मणुस्सेसु सम्मत्तं पडिवज्जमाणेसु सुह-तिलेस्साओ मोत्तूणणलेस्साणं संभवो अत्थि, सुट्ठ वि मंदविसोहीए सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स तत्थ जहण्णतेउलेस्साणियम-दंसणादो । कुदो वुण देव-णेरइयाणमिह विवक्खा ण कया त्ति चे ? ण, तेसिमवड्ढिद-लेस्सभावपदुप्पायणडुमेत्थ परियट्टमाणसव्वलेस्साणं तिरिक्ख-मणुस्साणं चैव पहाणसेण विवक्खियत्तादो ।

\* वेदो य को भवे त्ति विहासा ।

§ २४. पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे कोई एक वर्धमान लेश्या इसके होती है, इनमेंसे कोई भी लेश्या होयमान नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस बचन द्वारा इस जीवके कृष्ण, नील और कपोत लेश्याका तथा हीयमान पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याका प्रतिषेध किया गया जान लेना चाहिए ।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि यह जो वर्धमान शुभ तीन लेश्याओंका नियम यहाँ पर किया है वह नहीं बनता, क्योंकि नारकियोंके सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करनेमें व्यापृत होने पर अशुभ तीन लेश्याएँ भी सम्भव पाई जाती हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है । और तिर्यञ्चों तथा मनुष्योंके सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय शुभ तीन लेश्याओं को छोड़कर अन्य लेश्याएँ सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अत्यन्त मन्द विशुद्धि द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके वहाँ पर अधन्य पीत लेश्याका नियम देखा जाता है ।

शंका—परन्तु यहाँपर देव और नारकियोंकी विवक्षा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके अवस्थित लेश्याभावका कथन करनेके लिये यहाँपर परिवर्तमान सब लेश्यावाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी ही प्रधानरूपसे विवक्षा की गई है ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें उपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके वर्धमान मात्र पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएँ ही क्यों स्वीकार की गई हैं, जब कि नारकियोंके इस अवस्थामें एक भी शुभ लेश्या नहीं होती । यह एक प्रश्न है । समाधान यह है कि नारकियों और देवोंमें जिसके जो लेश्या होती है वह अवस्थितस्वरूप होती है, इसलिये उल्लेख न करनेपर भी उसका ज्ञान हो जाता है । यहाँ प्रश्न तो यह है कि तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें एक ही जीवके परिवर्तनक्रमसे छहों लेश्याएँ सम्भव हैं क्या ? अतः यहाँ यह बतलाया गया है कि तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख होनेपर तीन शुभ लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या होती है ।

\* वेद कौन होता है इस पदकी विभाषा ।

§ २५. 'वेदो य को भवे' त्ति जं गाहासुत्तस्स चरिमं पदं तस्सेदाणिमत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ ।

\* अण्णदरो वेदो ।

§ २६. तिण्हं वेदाणमण्णदरो वेदपरिणामो सम्मत्तुप्पत्तीए वावदस्स होइ, दव्व-भावेहिं तिण्हं वेदाणमण्णदरपज्जाएण विसेसियस्स तदुप्पायणे विरोहाभावादो । 'दंसण-मोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति एत्तिण्णेव सुत्तेण पज्जत्तं जोग-कसायोव-जोग-लेस्सा-वेदाणं पि परिणामभेदाणं तत्थेवंतब्भावो त्ति णासंकाणिज्जं, संकलेस-विसोहिभेदाणं चैव परिणामग्गहणेण तत्थ विवक्खियत्तादो । एदं च सुत्तं देसामासयं, तेष गदि-इंदियादिविसया च विहासा एत्थ कायव्वा । एवमेदीए पढमगाहाए दंसणमोह-उवसामगस्स विसोहिलक्खणो परिणामो जोग-कसायोवजोगादिविसेसा च परूविदा । एदेणेव गाहासुत्तेणेदस्स खओवसम-विसोहि-देसण-पाओग्गसण्णिदाओ चत्तारि लद्धीओ करणलद्धिसव्वपेक्खाओ सूचिदाओ, ताहिं विणा दंसणमोहोवसामणाए पवुत्तिविरोहादो ।

§ २५. 'वेदो य को भवे' यह जो गाथासूत्रका अन्तिम पद है उसके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* कोई एक वेद होता है ।

§ २६. सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें व्यापृत हुए जीवके तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेदपरिणाम होता है, क्योंकि द्रव्य और भावकी अपेक्षा तीन वेदोंमेंसे अन्यतर वेदपर्यायसे युक्त जीवके सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें व्यापृत होनेमें विरोधका अभाव है ।

शंका—'दर्शनमोहके उपशामकके परिणाम कैसा होता है।' इतना मात्र सूत्र पर्याप्त है, क्योंकि योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद ये जितने भी परिणामभेद हैं इनका उसीमें अन्तर्भाव हो जाता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उक्त सूत्रमें संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामभेद ही परिणामपदके ग्रहण करनेसे विवक्षित किये गये हैं । यह सूत्र देशामर्षक है, 'इसलिये गति, इन्द्रिय आदि विषयक विशेष व्याख्यान यहाँ पर करना चाहिए ।

इस प्रकार इस प्रथम गाथा द्वारा दर्शनमोहके उपशामकके विशुद्धिलक्षण परिणाम तथा योग, कषाय, उपयोग आदि भेदोंका व्याख्यान किया । तथा इसी गाथासूत्रद्वारा इस जीवके करणलब्धि सव्यपेक्ष क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्यसंज्ञक चार लब्धियाँ सूचित की गई हैं, क्योंकि उनके विना दर्शनमोहके उपशम करनेरूप क्रियामें प्रवृत्ति नहीं हो सकती ।

विशेषार्थ—वेद निरूपणके प्रसंगसे यहाँ पर टीकाकारने द्रव्य और भावरूप दोनों प्रकारके वेदोंका निर्देश किया है । यह ठीक है कि जो द्रव्यसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक संज्ञो पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव है वह भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है और जो भावसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव है वह भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है । परन्तु मूल गाथासूत्रमें और उसका विशेष व्याख्यान करनेवाले चूर्णिसूत्रमें मात्र भाववेदकी अपेक्षा

\* काणि वा पुव्वबद्धाणि त्ति विहासा ।

§ २७. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति जं विदियगाहाए पढमं बीजपदं तस्सेदाणि-  
मत्थविहासा पत्तावसरा त्ति वुत्तं होइ ।

\* एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्टिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंत-  
कम्मं च मग्गियव्वं ।

§ २८. एदम्मि पदे सव्वकम्मविसयाणं पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्माणं  
मग्गणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदं बीजपदं णिवंधणं कादूण चउण्हमेदेसि  
संतकम्माणं मग्गणं कस्सामो । तं जहा—तत्थ ताव पयडिसंतकम्ममणुमग्गिज्जदे ।  
मूलपयडीणमदुण्हं पि संतकम्मसरूवेणेत्य संभवो अत्थि । उत्तरपयडीणं पि

ही कथन किया गया है इतना यहाँ विशेष समझना चाहिए । यहाँ एक यह प्रश्न भी उठाया गया है कि गाथासूत्रके 'परिणामो केरिसो ह्वे' इस वचनमें जो परिणाम पद आया है उसीसे योग, कषाय, उपयोग, लेइया और वेदका ग्रहण हो जाता है, ऐसी अवस्थामें इन सब भेदोंका अलगसे उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं थी । इसका समाधान यहकर किया गया है कि उक्त वचनमें परिणाम पद केवल संक्लेश और विशुद्धिको सूचित करनेके लिये आया है, इसलिये उक्त भेदोंका अलगसे निर्देश किया गया है । इसके बाद टीकामें यह बतलाया गया है कि यह सूत्र देशामर्षक है, इसलिए जो अनुक्त मार्गणाएँ यहाँ सम्भव हों उन्हें भी जान लेना चाहिए । यथा—गतिमार्गणाकी अपेक्षा तिर्यञ्च, नारकी, मनुष्य और देव चारों गतियोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति सम्भव है । इन्द्रिय मार्गणाकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय, काय-मार्गणाकी अपेक्षा त्रसकायिक, संयम मार्गणाकी अपेक्षा असंयमी, भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य, सम्यक्त्व मार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि, संज्ञीमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी और आहार मार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है, अन्य नहीं । अन्तमें यह सूचित किया गया है कि जो करणलब्धि द्वारा प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होता है उसके क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंका सद्भाव नियमसे होता है । इसका आशय यह है कि जिसने परमार्थ स्वरूप देव, गुरु और आगमके प्रति श्रद्धाबन्त हो गुरुमुखसे तत्त्वार्थका उपदेश ग्रहण किया है और जो तत्प्रायोग्य विशुद्धि सम्पन्न हो क्षयोपशम आदि लब्धियोंसे वर्तमानमें युक्त है वही आत्मसन्मुख हो अधःकरण आदि परिणाम प्राप्त करनेका अधिकारी है, अन्य नहीं ।

\* 'पूर्वमें बंधे हुए कर्म कौन-कौन हैं' इस पदकी विभाषा ।

§ २७. काणि वा पुव्वबद्धाणि' यह जो दूसरी गाथाका प्रथम बीजपद है उसके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय अवसर प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* यहाँ पर प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका मार्गण करना चाहिए ।

§ २८. इस पदमें सभी कर्मविषयक प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसत्कर्मोंका मार्गण करना चाहिए यह कथन किया गया है । अब इस बीजपदको निमित्त कर इन चारों प्रकारके सत्कर्मोंका मार्गण करेंगे । यथा—उनमेंसे सर्वप्रथम प्रकृति सत्कर्मका मार्गण करते हैं । आठों ही मूलप्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे यहाँ पर सम्भव हैं । उत्तर प्रकृतियोंमें भी ज्ञानावरणकी

णाणावरणपंचपयडीओ, दंसणावरणणवपयडीओ, वेदणीयस्स दुवे पयडीओ, मोहणी-  
यस्स मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाया त्ति छवीसं पयडीओ संतकम्मं, अणादिय-  
मिच्छादिट्ठिस्स सादिमिच्छादिट्ठिस्स छवीससंतकम्मियस्स वा तदुवलंभादो । अहवा  
सम्मत्तेण विणा मोहणीयस्स सत्तावीसं पयडीओ संतकम्मं होइ, सम्मत्तमुव्वेलिय  
उवसमसम्मत्ताहिमुहम्मि तदविरोहादो । अथवा सम्मत्तेण सह अट्टवीससंतकम्मं  
होइ, वेदगपाओग्गकालं वोलिय सम्मत्तमणिन्लेवियुणं उवसमसम्मत्ताहि-  
मुहम्मि तहाविहसंभवदंसणादो । आउअस्स एक्का वा दो वा पयडीओ संतकम्मं ।  
तं कथं ? जइ बद्धपरभवियाउओ उवसमसम्मत्तं पडिवज्जइ तदो दो पयडीओ । अध  
अबद्धपरभवियाउओ तदा एया पयडी अण्णदरा जा भुंजमाणिया त्ति । णामस्स चहु  
गदि-पंचजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजाकम्मइयसरीर-तेसिं चैव बंधण-संघाद-छसंठाणा-  
हारवज्ज-दोण्णिअंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-चदुआणुपुव्वि-अगुरुअलहुअ-  
उवघाद-परघादुस्सास-आदावुज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावरादिदसजुअल-णिमिणं चेदि  
एदासिं पयडीणं संतकम्ममत्थि । गोदस्स दुवे पयडीओ णीचुच्चाओदमिदि । अंतरा-  
इयस्स पंच पयडीओ । एदासिं पयडीणं पयडिसंतकम्ममत्थि, सेसाणं णत्थि । पुव्वु-

पाँच प्रकृतियाँ, दर्शनावरणकी नौ प्रकृतियाँ, वेदनीयकी दो प्रकृतियाँ तथा मोहनीयकी मिथ्यात्व,  
सोलह कषाय और नौ नोकषाय ये छवीस प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे होती हैं, क्योंकि अनादि  
मिथ्यादृष्टिके तथा छवीस प्रकृतियाँ सत्कर्मवाले सादि मिथ्यादृष्टिके इनका सद्भाव पाया जाता  
है । अथवा सादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्प्रकृतिके विना मोहनीयकी सत्ताईस प्रकृतियाँ सत्कर्म-  
रूपसे होती हैं, क्योंकि सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके  
उनके होनेमें कोई विरोध नहीं है । अथवा सम्यक्त्वके साथ अट्टाईस प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे  
होती हैं, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालको उल्लंघन कर जिसने सम्यक्त्व प्रकृतिकी  
उद्वेलना नहीं की है ऐसे उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उक्त प्रकारसे अट्टाईस  
प्रकृतियोंका सद्भाव देखा जाता है । उक्त जीवके आयुर्कर्मकी एक या दो प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे  
होती हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—यदि जिसने परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध किया है ऐसा जीव उपशम-  
सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो दो प्रकृतियाँ होती हैं । और जिसने परभवसम्बन्धी आयुका  
बन्ध नहीं किया है ऐसा वह जीव है तो मुख्यमान अन्यतर एक प्रकृति होती है ।

नामकर्मकी चार गति, पाँच जाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मण शरीर, उन्हींके  
बन्धन और संघात, छह संस्थान, आहारक आंगोपांगको छोड़कर दो आंगोपांग, छह संहनन,  
वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप,  
उद्योत, दो विहायौगति, त्रस-स्थावर आदि दश युगल और निर्माण ये प्रकृतियाँ सत्कर्मरूप हैं ।  
गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियाँ नीचगोत्र और उच्चगोत्र सत्कर्मरूप हैं । तथा अन्तराय कर्मकी पाँच  
प्रकृतियाँ सत्कर्मरूप हैं । इन प्रकृतियोंका प्रकृतिसत्कर्म है, शेष प्रकृतियोंका नहीं है ।

प्पाइदेण सम्मत्तेण आहारसरीरं बंधिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण तप्पाओग्गेण पल्लिदोव-  
मस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेणुवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणस्साहारदुगसंतकम्ममेत्थ  
किण्ण लब्भदे ? ण, आहारसरीरमणुव्वेन्लिय तस्स उवसमसम्मत्तपाओग्गत्ताणुव-  
लंभादो । कुदो एवं ? वेदगपाओग्गकालादो आहारसरीरुव्वेन्लणकालस्स थोवभावोव  
एसादो । एदासिं चेव पयडीणमाउअवज्जाणं द्विदिसंतकम्ममतोकोडाकोडीए, आउआणं  
च तप्पाओग्गमणुगंतव्वं ।

§ २९. अणुभागसंतकम्मं पि अप्पसत्थाणं कम्माणं पंचणाणावरणीय-णव-  
दंसणावरणीय - असादवेदणीय - मिच्छत्त - सोलसकसाय - णवणोकसाय - सम्मत्त - सम्मा-  
मिच्छत्त - णिरयगइ - तिरिक्खगइ - एइंदियादिचदुजादि - पंचसंठाण - पंचसंघडण - अप्पसत्थ-  
वण्ण - गंध - रस - फास - णिरयगइ - तिरिक्खगइ पाओग्गाणुपुव्वि - उवघाद - अप्पसत्थविहायगइ -  
थावर - सुडुम - अपज्जत्त - साहारणसरीर - अथिर - असुभ - दूभग - दुस्सर - अणादेज्ज - अजसगित्ति -  
णीचागोद - पंचंतराइयाणं विट्ठाणियाणुभागसंतकम्मिओ ।

शंका—पहले उत्पन्न किये गये सम्यक्त्वके साथ आहारकशरीरका बन्धकर पुनः  
मिथ्यात्वमें जाकर तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा उपशमसम्यक्त्वको  
प्राप्त होनेवाले जीवके आहारकद्विक सत्कर्म यहाँ क्यों उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आहारकशरीरकी उद्वेलना किये बिना उसके उपशम-  
सम्यक्त्वकी प्राप्तिकी योग्यता नहीं बनती ।

शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालसे आहारकशरीरके उद्वेलनाका  
काल स्तोक है ऐसा परमागमका उपदेश पाया जाता है । आयुकर्मके अतिरिक्त इन्हीं प्रकृतियोंका  
स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकाड़ीके भीतर होता है । आयुकर्मोंका तत्प्रायोग्य स्थितिसत्कर्म  
जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके आहारकचतुष्क और तीर्थ-  
कर इन्हीं प्रकृतियोंका सत्त्व सम्भव नहीं है । आहारकचतुष्कका सत्त्व क्यों नहीं पाया  
जाता इसका स्पष्टीकरण तो टीकामें किया ही है । ऐसे जीवके तीर्थकर प्रकृतिका इसके पूर्व  
बन्ध ही नहीं होता, इसलिये उसका सत्त्व भी सम्भव नहीं है । शेष सब कथन सुगम है ।

§ २९. अब अनुभागसत्कर्मको बतलाते हैं—जो अप्रशस्त कर्म पाँच ज्ञानावरण, नौ  
दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त  
वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति,  
स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशः-  
कीर्ति, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनका द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता है ।

विशेषार्थ—पहले प्रायोग्यलब्धिके कालमें ही अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग द्विस्थानीय  
हो जाता है यह स्पष्ट कर आये हैं और उपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ जीव प्रायोग्यलब्धि  
सम्पन्न होता ही है, अतः इसके भी सत्तामें स्थित अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग द्विस्थानीय



§ ३०. पसत्थाणं पि पयडीणं सादावेदणीय-मणुसग्गइ-देवग्गइ-पंचिदियजादि-ओरालियसरीर-वेउच्चिय०-तेजा-कम्मइयसरीर-तैसिं चैव बंधण-संघाद-समचउरससंङ्गाण-ओरालिय - वेउच्चियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-पसत्थवण्णादिचउक्क - मणुस० - देवग्गइ-पाओग्गाणुपुच्चि-अगुरुअलहुअ - परघादुस्सास - आदावुज्जोव - पसत्थविहायग्गइ - तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर - सुभ - सुभग - सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिण - उच्चगोदाण-मेदेसिं चउङ्गाणाणुभागसंतकम्मिओ । पदेससंतकम्मं पि जासिं पयडीणं पयडिसंतकम्म-मत्थि तासिमजहण्णाणुक्कस्सयं पदेससंतकम्मं भाणियव्वं ।

§ ३१. एवं ताव विदियगाहाए पढमावयवमस्सिगूण पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेस-संतकम्मणिरूवणं कादूण संपहि पयडियादिवंधसरूवावहारणडुं गाहाए विदियावयव-मवलच्चिय परूवणं कुणमाणो चुणिसुत्तयारो इदमाह—

\* के वा अंसे णिवंधदि त्ति विहासा ।

§ ३२. सुगममेदं ।

जानना चाहिए । विशुद्धिवश इसके त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका घात हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ३० सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तथा उन्हींके बन्धन और संघात, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आगोपांग, वैक्रियिक शरीर आगोपांग, वज्रच्छेषभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णादि चार, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्र इन प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता है । प्रदेशसत्कर्म भी जिन प्रकृतियोंका इसके प्रकृतिसत्कर्म है उनका अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके सत्तामें स्थित प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग चतुःस्थानीय बतलाया है । इसका कारण यह है कि इन प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका विशुद्धिवश घात नहीं होता, किन्तु प्रति समय विशुद्धिकी वृद्धि होनेसे उक्त प्रकृतियोंके अनुभागकी प्रति समय अनन्तनुणी वृद्धि देखी जाती है । ऐसा जीव न तो उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका स्वामी है और न ही जघन्य प्रदेशसत्कर्मका स्वामी है, इसलिये इसके जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता है उनका अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है यह स्पष्ट ही है ।

§ ३१. इस प्रकार सर्व प्रथम दूसरी गाथाके प्रथम अवयवके आश्रयसे प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका कथन कर अब प्रकृतिबन्ध आदि बन्ध-स्वरूपका निश्चय करनेके लिये गाथाके दूसरे अवयवका अवलम्बन लेकर कथन करते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

\* प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ जीव किन कर्मांशोंका बन्ध करता है इस पदकी विभाषा ।

§ ३२. यह सूत्र सुगम है ।

\* एत्थ पयडिबंधो द्विदिवंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो ।

§ ३३. एदम्मि समणंतरणिद्विद्वीजपदे चउण्हमेदेसिं बंधाणमणुमग्गणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेण बीजपदेण सूचिदत्थविहासणं कस्सामो । तत्थ ताव पयडिबंधणिदेसे तिण्णि महादंडया परूवेयव्वा । तं जहा—पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछ-देव-गदि—पंचिंदियजादि - वेउव्विय-तेजा - कम्मइयसरीर-समचउरससंड्ढाण - वेउव्वियअंगोवंग-वण्णादिचउक्क-देवगदिपाओग्गणुपुव्वि-अगुरुअलहुआदिचउक्क-पसत्थविहायगदि—तसादि-चउक्क—थिरादिछक्क—णिमिण—उच्चागोद—पंचंतराइयाणं बंधगो अण्णदरो मणुसो वा मणुसिणी वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ वा । एसो पढमो महादंडओ ।

§ ३४. संपहि विदिओ वुच्चदे । तं जहा—पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदिय-

\* प्रकृतमें प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका मार्गण करना चाहिए ।

§ ३३. समनन्तर पूर्व कहे गये इस बीजपदमें इन चार बन्धोंका अनुमार्गण करना चाहिए यह कहा गया है । अब इस बीजपद द्वारा सूचित किये गये अर्थका विशेष व्याख्यान करेंगे । उनमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतिबन्धका निर्देश करते हुए तीन महादण्डकोंका कथन करना चाहिए । यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वर्णादिचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनका अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी जीव बन्धक होता है । यह प्रथम महादण्डक है ।

विद्वे— जो मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिवाला या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी जीव प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होता है उसके नामकर्मकी परावर्तमान अप्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, केवल देवगतिके साथ बंधनेके योग्य प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है ऐसा यहाँ समझना चाहिए । इसी प्रकार वेदनीय कर्मकी अपेक्षा भी जानना चाहिए, क्योंकि ऐसा जीव असातावेदनीयका बन्ध नहीं करता । मोहनीयकी अपेक्षा न स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका ही बन्ध करता है और न अरति और शोकका ही बन्ध करता है । यहाँ टीकामें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि पद छूटा हुआ प्रतीत होता है, अतः उसमें आये हुए 'पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ' पदसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त गर्भोत्पन्न तीनों वेदवाले तिर्यञ्चोंका ग्रहण करना चाहिए । इन सब जीवोंके ऐसी अवस्थामें आयुर्कर्मका बन्ध नहीं होता ।

§ ३४. अब दूसरे दण्डकका कथन करते हैं । यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति,

जादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वज्जरिसह०संघडण-ओरालियअंगो-  
वंग-वण्ण-गंध-रस-फास-भणुसगइपाओग्गाणुपुच्चि-अगुरुअलहुआदिचउक०-पसत्थविहाय-  
गदि-तसादि४-थिरादि६-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराहयाणमेदासि पयडीणं बंधगो  
अण्णदरो देवो वा छप्पुढविणेरहओ वा । एसो विदिओ महादंडओ ।

§ ३५. संपहि तदिओ महादंडओ वुच्चदे । तं जहा—पंचणाणावरण-णवदंसणा-  
वरण-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुछ०-तिरिक्खगइ-  
पंचिदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण—ओरालियअंगोवंग-वज्ज-  
रिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुच्चि-अगुरुअलहुआदि४-उज्जीवं  
सिया पसत्थविहायगइ-तसादिचउक-थिरादिछक-णिमिण-णीचागोद-पंचंतराहयाणमेदासि  
पयडीणं बंधओ अण्णदरो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरहओ । एवमेसो पयडिबंधो  
परुविदो ।

पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभ-  
नाराचसंहनन, औदारिकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,  
अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र  
और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका अन्यतर देव तथा छह पृथिवियोंका नारकी जीव बन्धक  
होता है । यह दूसरा महादण्डक है ।

विशेषार्थ—जिन विशेषताओंका प्रथम महादण्डकके समय निरूपण कर आये हैं वे सब  
यहाँ भी यथासम्भव जान लेनी चाहिए । इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए कि मनुष्यगति  
नामकर्मके बन्धके साथ संहनन नामकर्मका भी बन्ध होने लगता है, इसलिए प्रथम सम्यक्त्व  
के सन्मुख हुए किसी भी देव और छह पृथिवियोंके नारकीके प्रशस्त स्वरूप वज्रर्षभनाराच-  
संहननका भी बन्ध होता है ।

§ ३५. अब तीसरे महादण्डकका कथन करते हैं । यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ  
दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा,  
तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान,  
औदारिकशरीर आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानु-  
पूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, कदाचित् उद्योत ( का बन्धक होता है ), प्रशस्त विहायोगति,  
त्रसादि चार, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका  
सातवीं पृथिवीका अन्यतर नारकी बन्धक होता है । इस प्रकार यह प्रकृतिबन्ध कहा गया है ।

विशेषार्थ—प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ सातवीं पृथिवीका नारकी जीव  
नामकर्मको यद्यपि अन्य सब प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध करता है । परन्तु वह एकान्तसे  
भवसम्बन्धी परिणामवश तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्रका बन्धक  
होनेसे प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होने पर भी मात्र इन्हींका बन्ध करता है । तथा तिर्यञ्च-  
गतिके साथ उद्योत प्रकृतिका भी बन्ध सम्भव होनेसे कदाचित् इसका भी बन्ध करता है ।  
शेष कथन सुगम है ।

§ ३६. द्विदिबंधो वि एदासिं चैव पयडीणमंतोकोडाकोडीमेत्तो चैव होदि, विसुद्धयरस्सेदस्स तत्तो अब्भहियद्विदिबंधासंभवादो । अणुभागबंधो वि एदेसु महा-दंडएसु जाओ अप्पसत्थाओ पयडीओ तासिं वेट्टाणिओ, सेसाणं पसत्थाणं चउट्टाणिओ ।

§ ३७. पदेसबंधो वि पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-बारस-कसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ - तिरिक्खगइ-मणुसगइ - पंचिदियजादि - ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्ख - मणुसगइपाओ-ग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुआदि४—उज्जोव-तस-वादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर - थिर-सुभ-जसगित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणमेदासिं पयडीणमणुकस्सओ । णिहाणिहा-पयलापयला-थीणगिद्धी - मिच्छत्त - अणंताणुबंधो४—देवगइ - वेउव्वियसरीर - समचउरससंठाण - वेउ-व्वियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसह०संघडण - देवगइपाओग्गाणुपुव्वी - पसत्थविहायगइ - सुभग-सुस्सरादेज्ज-णीचागोदाणमेदासिं पयडीणमणुकस्सगो अणुकस्सगो वा पदेसबंधो । एवं विदियगाहासुत्तस्स विदियावयवमस्सियूण बंधमग्गणं कादूण संपहि पयडीणमुदयाव-लियपवेसापवेसगवेसणदं सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

\* कदि आवलियं पविसंति त्ति विहासा ।

§ ३८. दंसणमोहउवसामगस्स उदयावलियमुदयाणुदयसरूवेण पविसमाणीओ

§ ३६. स्थितिवन्ध भी इन्हीं अर्थात् तीनों महादण्डकोंमें कही गईं प्रकृतियोंका अन्तः-कोडाकोडीप्रमाण ही होता है, क्योंकि यह विशुद्धतर परिणामोंसे युक्त होता है, इसलिए इसके उससे अधिक स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है । अनुभागबन्ध भी इन तीनों महादण्डकोंमें जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका द्विस्थानीय होता है तथा शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका चतुःस्थानीय होता है ।

§ ३७. प्रदेशबन्ध भी पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चन्द्रियजाति औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीरआंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, उद्योत, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट होता है । निदानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग, वज्रर्षभनाराच-संहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आवेय और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है । इस प्रकार दूसरे गाथासूत्रके दूसरे अवयवका आश्रय कर बन्धका अनुमार्गण कर अब प्रकृतियोंके उदयावलिमें प्रवेश और अप्रवेशका अनुसन्धान करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* 'कितनी प्रकृतियाँ आवलिमें प्रवेश करती हैं' इस पदकी विभाषा ।

§ ३८. दर्शनमोहके उपशामक जीवके उदय और अनुदयरूपसे उदयावलिमें प्रवेश

पयडीओ मूलुत्तरमेयभिण्णाओ कदि होंति त्ति एदस्स पुच्छाणिदेसस्स णिण्णयविहाणड्ड-  
मिदाणिमत्थविहासा कीरदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो ।

\* मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति ।

§ ३९. किं कारणं ? सव्वासिमेव मूलपयडीणमेत्थुदयदंसणादो ।

\* उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति ।

§ ४०. विज्जमाणणमुत्तरपयडीणमेत्थुदयाणुदयसरूवेणुदयावलियाणुप्पवेसे पडि-  
बंधाभावादो । णवरि आउअस्स कम्मस्स एया पयडी विज्जमाणिया अब्बपरभवि-  
याउअस्स सा णियमा उदयावलियं पविसदि । अब्बपरभवियाउअस्स पुण दो पयडीओ  
विज्जमाणओ होंति, तत्थ भुंजमाणस्सेव परभवियाउअस्स वि विज्जमाणत्तं पडि विसेसा-  
भावादो उदयावलियप्पवेसे अइप्पसंते तण्णिवारणड्डमिदमाह—

\* णवरि ज्जह परभवियाउअमत्थि तं ण पविसदि ।

§ ४१. किं कारणं ? जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तमेवसेसभुंजमाणउअस्सेव सम्मत्त-  
ग्गहणपाओग्गत्तादो ।

करनेवाली मूल और उत्तरके भेदसे अनेक प्रकारकी प्रकृतियाँ कितनी होती हैं इस प्रकार इस  
पृच्छानिर्देशका निर्णय करनेके लिये इस समय अर्थविभाषा करते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थके  
साथ सम्बन्ध है ।

\* मूल प्रकृतियाँ सब प्रवेश करती हैं ।

§ ३९ क्योंकि सभी मूल प्रकृतियोंका प्रकृतमें उदय देखा जाता है ।

\* उत्तर प्रकृतियाँ भी जो सत्स्वरूप हैं वे प्रवेश करती हैं ।

§ ४०. विद्यमान उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतमें उदय-अनुदयरूपसे उदयावलिमें प्रवेश  
होनेमें रुकावटका अभाव है । इतनी विशेषता है कि जिसने परभवसम्बन्धी आयुर्कर्मका बन्ध  
नहीं किया है उसके आयुर्कर्मकी एक प्रकृति सत्तामें विद्यमान है और वह नियमसे उदयावलिमें  
प्रवेश करती है । तथा जिसने परभवसम्बन्धी आयुर्कर्मका बन्ध कर लिया है उसके सत्कर्म-  
रूपसे दो प्रकृतियाँ पाई जाती हैं । इसलिये मुख्यमान परभवसम्बन्धी आयुके समान उसके  
भी विद्यमानपनेकी अपेक्षा विशेषताका अभाव होनेसे उदयावलिमें प्रवेश करनेरूप अतिप्रसंग  
होनेपर उसका निवारण करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* इतनी विशेषता है कि यदि परभवसम्बन्धी आयु है तो वह उदयावलिमें प्रवेश  
नहीं करती ।

§ ४१. क्योंकि जिसके जघन्यरूपसे भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही मुख्यमान आयु शेष है  
उसके प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणकी योग्यता होती है ।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि जो जीव परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध करता है उसके  
बध्यमान आयुका आबाधाकाल बन्धके समय जितनी मुख्यमान आयु शेष हो उतना होता है ।  
तथा जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसका प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके

§ ४२. एवं विदियगाहाए तदियावयवस्स अत्थविहासं समाणिय संपहि चउत्थावयवमस्सियूण मूलुत्तरपयडीणमुदीरणाणुदीरणगवेसणट्टुमुत्तरं पबंधमाह—

\* कदिण्हं वा पवेसगो त्ति विहासा ।

§ ४३. कदिण्हं वा पयडीणं मूलुत्तरभेयभिण्णाणमेसो पवेसगो होइ उदीरणा-सरूवेणे त्ति एवं पयट्टस्सेदस्स पुच्छावक्कस्स अत्थविहासा एण्हं कीरदि त्ति वुत्तं होइ ।

\* मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो ।

§ ४४. मूलपयडीणं ताव सव्वासिमेव एसो पवेसगो होइ, सव्वासिमेव तासिं उदीरणाए पवेसिज्जमाणाणं णिप्पडिबंधमुवलंभादो ।

\* उत्तरपयडीणं पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्त-पंचि-दियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस - फास - अगुरगलहुग - उवघाद-परघादुस्सास-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर - थिराथिर - सुभासुभ - णिमिण-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो ।

§ ४५. किं कारणं ? एदासिं पयडीणमेत्थ धुवोदयत्तदंसणादो ।

कालमें तथा प्रथम सम्यक्त्वके कालमें मरण नहीं होता । यही कारण है कि यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके पर भवसम्बन्धी आयुका उदयावलिमें प्रवेशका निषेध किया है ।

§ ४२. इसप्रकार दूसरी गाथाके तीसरे अवयवके अर्थका विशेष व्याख्यान करके अब चौथे अवयवका आश्रयकर मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी उदीरणा और अनुदीरणाके अनुसन्धान करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* वह कितनी प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है ।

§ ४३. मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारकी कितनी प्रकृतियोंका यहजीव उदीरणारूपसे प्रवेशक होता है इस प्रकार इस रूपसे प्रवृत्त हुए पृच्छावाक्यके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* मूल प्रकृतियोंका सबका प्रवेशक होता है ।

§ ४४. मूल प्रकृतियोंका तो सबका ही यह जीव प्रवेशक होता है, क्योंकि सभी मूल प्रकृतियाँ विना रुकावटके उदीरणारूपसे प्रवेश करती हुईं पाई जाती हैं ।

\* उत्तर प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका नियमसे प्रवेशक होता है ।

§ ४५. क्योंकि ये प्रकृतियाँ प्रकृतमें ध्रुवोदय देखी जाती हैं ।

विशेषार्थ—प्रथम सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख हुए किसी भी गतिके जीवके अधःकरणके प्रथम समयमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका नियमसे उदय होता है और इनका यहाँ उदय होनेका नियम है, इसलिये इनकी यहाँ उदीरणा होनेमें कोई रुकावट नहीं पाई जाती ।

\* सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४६. किं कारणं ? एदासिं दोण्हं पयडीणं परावत्तमाणोदयाणमकमेण पवेसणे संभवाणुवलंभादो ।

\* चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४७. किं कारणं ? परोप्परविरुद्धाणमेदेसिं जुगवं पवेसेदुमसक्कियत्तादो ।

\* भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो ।

§ ४८. किं कारणं ? तदुदयविरुद्धिदावत्थाए वि संभवदंसणादो । पवेसगो वि सिया अण्णदरस्स पवेसगो, सिया दोण्हं पि पवेसगो ति वेत्तव्वं ।

\* चउण्हमाउआणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४९. किं कारणं ? चउण्हमेदेसिं पडिणियदगइविसेसपडिबद्धाणं कम्मोदय-णियमदंसणादो ।

\* चदुण्हं गइणामाणं दोण्हं सररीरणं छण्हं संठाणाणं दोण्हमंगो-वंगणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ५०. एत्थ अण्णदरगहणस्स गदि-आदीहिं पादेक्कमहिसंबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

\* साता और असाता इनमेंसे किसी एकका प्रवेशक होता है ।

§ ४६. क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ परावर्तमान उदयस्वरूप हैं, इसलिये इनका युगपत् प्रवेशक होना सम्भव नहीं है ।

\* चार कषाय, तीन वेद और दो युगलोंमेंसे अन्यतर एक-एकका प्रवेशक होता है ।

§ ४७. क्योंकि ये प्रकृतियाँ परस्पर विरुद्ध हैं, इसलिये इनका युगपत् प्रवेश करना शक्य नहीं है ।

\* भय और जुगुप्साका कदाचित् प्रवेशक होता है ।

§ ४८. क्योंकि उनकी उदयसे रहित अवस्था भी देखी जाती है । यदि प्रवेशक होता भी है तो कदाचित् किसी एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है और कदाचित् दोनों ही प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए ।

\* चारों आयुओंमेंसे किसी एक आयुर्कर्मका प्रवेशक होता है ।

§ ४९. क्योंकि ये चारों आयु पृथक्-पृथक् प्रतिनियत गतिविशेषसे प्रतिबद्ध हैं, इसलिये तदनुसार ही उस उस आयुर्कर्मके उदयका नियम देखा जाता है ।

\* चार गतिनाम, दो शरीर, छह संस्थान और दो आंगोपांग इनमेंसे अन्यतर एक-एकका प्रवेशक होता है ।

§ ५०. यहाँ पर अन्यतर पदका गति आदि प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

\* छुण्हं संघडणाणं अण्णदरस्स सिया ।

§ ५१. पवेसगो त्ति एत्थ अहियारसंबंधो, तेण छुण्हं संघडणाणमण्णदरस्स सिया एसो पवेसगो, सिया च ण पवेसगो त्ति सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । जइ तिरिक्खो मणुस्सो वा पढमसम्मत्तं पडिवज्जइ तो एदेसिमण्णदरस्स णियमा पवेसगो होइ । अइ देवो णेरइओ वा उवसमसम्मत्ताहिण्हो होइ तो णियमा एदेसिमपवेसगो। त्ति वेत्तव्वं ।

\* उज्जोवस्स सिया ।

§ ५२. पवेसगो त्ति पुव्वं व अहियारसंबंधो एत्थ कायव्वो । कुदो वुण उज्जोवस्स सिया पवेसगत्तमिदि चे ? ण, पंचिदियतिरिक्खेसु चेव केसिं पि जीवाणं तदुदइन्लाणं तप्पवेसयत्तदंसणादो ।

\* दो विहायगइ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति० अण्णदरस्स पवेसगो ।

\* छह संहननोंमेंसे कदाचित् किसी एकका प्रवेशक होता है ।

§ ५१. 'पवेसगो' इस पदका यहाँ पर अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिए, इसलिये छह संहननोंमेंसे यह जीव किसी एकका कदाचित् प्रवेशक होता है और कदाचित् प्रवेशक नहीं होता इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिए । यदि तिर्यञ्च अथवा मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो इनमेंसे किसी एकका नियमसे प्रवेशक होता है । और यदि देव अथवा नारकी उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख होता है तो नियमसे इनका अप्रवेशक होता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकशरीरका संस्थान तो होता है पर संहनन नहीं होता, अतः यहाँ देव और नारकियोंको छहों संहननोंमेंसे किसी एक भी प्रकृतिका प्रवेशक नहीं कहा है ।

\* उद्योतका कदाचित् प्रवेशक होता है ।

§ ५२. 'पवेसगो' इस पदका पहलेके समान अधिकारवश सम्बन्ध करना चाहिए ।

शंका—परन्तु उद्योतका कदाचित् प्रवेशकपना कैसे बनता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें ही उद्योतके उदयसे युक्त किन्हीं जीवोंके उद्योतका प्रवेशकपना देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ नारकी, मनुष्य और देवोंमें उद्योतका उदय-उदीरणा सम्भव नहीं है, केवल तिर्यञ्चोंमें ही, उनमें भी किन्हीं तिर्यञ्चोंमें ही उसका उदय-उदीरणा सम्भव है । इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर 'उद्योतका कदाचित् प्रवेशक होता है, यह सूत्र वचन कहा है ।

\* दो विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन युगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है ।



§ ५३. एदेसि पंचणहं जुगलाणं पादेक्कमण्णदरस्स पवेसगो एसो होदि त्ति सुत्तत्थसमुच्चयो । सुगममण्णं ।

\* उच्च-णीचागोदाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ५४. सुगममेदं । एवमोघेण पयडिउदीरणा परूविदा । एवं चेव पयडि-उदयस्स वि मग्गणा कायन्वा, विसेसाभावादो ।

§ ५५. संपहि सुत्तणिद्धिद्वस्सेवत्थस्स पवंचीकरणद्वुमादेससंबंधि किंचि परूवणं कस्सामो । तं जहा—आदेसेण चदुसु वि गदीसु गाणावरणीयस्स पंच वि पयडीओ उदयं पविसंति पवेसिज्जंति च । दंसणावरणीयस्स चत्तारि पयडीओ वेदणीयस्स सादासादाण-मण्णदरस्स चदुसु वि गदीसु उदयोदीरणाओ हवंति । मोहणीयस्स दस णव अट्ठ वा पयडीओ चदुसु गदीसु उदयोदीरणारूवेण वेदिज्जंति । चदुपहमाउआणं जत्थ गदीए जं वेदिज्जदि तस्स तत्थ वेदगो उदीरगो च ।

§ ५६. णामस्स जइ पेरइओ तो णिरयगइ-पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-सरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघादुस्सास-

§ ५३. यह जीव इन पाँच प्रत्येक युगलमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है, इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

विशेषार्थ—देवोंमें सूत्रोक्त सभी शुभ और नारकियोंमें अशुभ प्रकृतियोंका उदय-उदीरणा होती है । किन्तु इनको छोड़कर अन्य दो गतिके जीवोंमें उक्त युगलोंमेंसे प्रत्येक युगलसम्बन्धी प्रशस्त या अप्रशस्त किसी एक-एक प्रकृतिका उदय-उदीरणा सम्भव है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* उच्चगोत्र और नीचगोत्र इनमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है ।

§ ५४. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार ओषसे प्रकृति-उदीरणाका कथन किया । इसी प्रकार प्रकृत-उदयका भी अनुमार्गण कर लेना चाहिए, क्योंकि इससे उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—प्रकृतमें ऐसा समझना चाहिए कि दर्शनमोहकी उपशमनाके सन्मुख हुए जीवके चारों गतियोंमें यथासम्भव अधःकरणके प्रथम समयमें जिन प्रकृतियोंका उदय है उन्हींकी उदीरणा भी है, यही कारण है कि यहाँ उदय और उदीरणामें विशेषता न होनेका विधान किया है ।

§ ५५. अब सूत्रनिर्दिष्ट ही अर्थका विस्तारसे कथन करनेके लिये आदेशसम्बन्धी कुछ प्ररूपणा करेंगे । यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें ज्ञानावरणकी पाँचों ही प्रकृतियाँ उदय रूपसे प्रविष्ट होती हैं और प्रविष्ट कराई जाती हैं । दर्शनावरणकी चारों ही प्रकृतियोंका तथा सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे किसी एकका चारों ही गतियोंमें उदय और उदीरणा होती है । मोहनीयकी दस, नौ या आठ प्रकृतियाँ चारों गतियोंमें उदय और उदीरणारूपसे वेदी जाती हैं । चारों आयुओंमेंसे जिस गतिमें जो आयु वेदी जाती है उसका उस गतिमें वेदक और उदीरक होता है ।

§ ५६. नामकर्मकी अपेक्षा यदि नारकी है तो नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस,

अप्पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणा-  
देज्ज-अजसगित्ति-णिमिणमिदि एदासि उणत्तीसण्हं पयडीणं वेदगो उदीरगो च । तथा  
णीचागोद-पंचंतराइयाणं च णेरइओ वेदगो होइ ।

§ ५७. अह जइ तिरिक्खो तिरिक्खगइ-पंचिदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय-  
सरीर० छण्हं संठाणाणमेकदरं ओरालियअंगोवंग० छसंघडणाणं एकदरं वण्णादि४-  
अगुरुअलहुआदि४० उज्जोवं सिथा दोण्हं विहायगदीणमेकदरं तसादि४-थिराथिर-सुभासुभ-  
सुभग-दूभगाणमेकदरं सुस्सर-दुस्सराणमेकदरं आदेज्जणादेज्जाणमेकदरं जसगित्ति-  
अजसगित्तीणमेकदरं णिमिणं चेदि एदासि पयडीणं तीसेक्कीससंखाविसेसिदाणं पवेसगो  
होइ । पुणो णीचागोद-पंचंतराइयाणं च पवेसगो होइ ।

§ ५८. अह जइ मणुसो तदो एदाओ चैव पयडीओ उज्जोववज्जाओ मणुसगइ-  
सहगदाओ वेदयदि । णवरि णीचुचागोदाणमेकदरमिह वत्तव्वं ।

§ ५९. जइ देवो देवगइ-पंचिदियजादि-वेउच्चिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-  
संठाण-वेउच्चियसरीरअंगोवंग-वण्णादि४ - अगुरु०४ - पसत्थविहायगदि - तसादि४ - थिरा-

स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त,  
प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति और निर्माण  
इन उततीस प्रकृतियोंका वेदक और उदीरक होता है ।

§ ५७. और यदि तिर्यञ्च है तो तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर,  
कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीर आंगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक,  
वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, कदाचित् उद्योत, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रसादि  
चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग-दुर्भगमेंसे कोई एक, सुस्वर-दुःस्वरमेंसे कोई एक,  
आदेय-अनादेयमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमेंसे कोई एक और निर्माण इन तीस  
और इकतीस संख्याविशिष्ट प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है । तथा नीचगोत्र और पाँच अन्तराय  
प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है ।

**विशेषार्थ**—जिन संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंके उद्योतका उदय और उदीरणा  
होती है वे इकतीस प्रकृतियोंके प्रवेशक होते हैं और जिनके उद्योत प्रकृतिका उदय और  
उदीरणा नहीं होती वे तीस प्रकृतियोंके प्रवेशक होते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ ५८. और यदि मनुष्य है तो उद्योतको छोड़कर मनुष्यगतिके साथ इन्हीं प्रकृतियोंका  
वेदन करता है । इतनी विशेषता है कि यहाँ पर नीचगोत्र और उच्चगोत्रमेंसे किसी एक  
प्रकृतिका कथन करना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—मनुष्योंमें तिर्यञ्चगतिका उदय न होकर मनुष्यगति नामकर्मका उदय  
होता है, इसलिये यहाँ टीकामें 'मणुसगइसहगदाओ' ऐसे पाठका उल्लेख किया है । शेष  
कथन सुगम है ।

§ ५९. और यदि देव है तो देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर  
कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि

थिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सरादेज्ज-जसगित्ति-णिमिणणामाणमुच्चागोद - पंचंतराइएहिं सह पवेसगो वेदगो च होइ ।

§ ६०. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदद्विदि-अणुभाग-पदेसोदयोदीरणणं पि किंचि अणुगमं कस्सामो । तं जहा—एदासिं चैव पयडीणमाउअवजाणं अंतोकोडाकोडिमेत्त-द्विदीओ आउआणं च तप्पाओग्गाओ द्विदीओ ओकड्डियुणुदए देदि एसा द्विदिउदीरण ।

§ ६१. अणुभागुदीरण वि पसत्थाणं पयडीणमेत्थ णिदिट्ठाणं चउट्ठाणिया बंधट्ठाणादो अणंतगुणहीणा, अप्पसत्थाणं विट्ठाणिया संतट्ठाणादो अणंतगुणहीणा । पदेसुदीरण वि एदासिं चैव पयडीणमजहण्णाणुकस्सिया होइ । एवमुदयो वि अणुगंतव्वो । एवं विदियाए सुत्तगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माणका उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके साथ प्रवेशक और वेदक होता है ।

§ ६० अब इस सूत्रद्वारा सूचित हुए स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन तीनोंके उदय और उदीरणाका कुछ अनुगम करेंगे । यथा आयुर्कर्मको छोड़कर इन्हीं प्रकृतियोंकी अन्तः-कोडाकोड़ीप्रमाण स्थितियाँ और आयुर्कर्मकी तत्प्रायोग्य स्थितियाँ अपकर्षित कर उदयमें दी जाती हैं । यह स्थिति उदीरणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ चारों आयुओंकी स्थितिकी अपकर्षण द्वारा उदीरणा कही गई है । इसपर यह प्रश्न होता है कि क्या नारकी, भोगभूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य तथा देवोंकी आयुकी भी अपकर्षणद्वारा उदीरणा होती है ? यदि होती है तो परमाणुमें इन जीवोंको अनपवर्त्य आयुवाला क्यों कहा गया है ? समाधान यह है कि इन जीवोंकी मुख्यमान आयुका भोग तो पूरा होता है । परन्तु इन आयुओंके यथा सम्भव प्रत्येक निषेकमें कुछ ऐसे परमाणु होते हैं जो उपशम, निधत्त और निकाचितरूप नहीं होते, उनकी भोगकालमें उदीरणा सम्भव होनेसे यहाँ चारों आयुओंकी अपकर्षण द्वारा उदीरणा कही गई है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६१. अनुभाग उदीरणा भी यहाँ निर्दिष्ट की गई प्रशस्त प्रकृतियोंकी चतुःस्थानीय होती है जो बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है । अप्रशस्त प्रकृतियोंकी द्विस्थानीय होती है, जो सत्त्वस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है । प्रदेश उदीरणा भी इन्हीं प्रकृतियोंकी अजघन्य अनुत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार उदय भी जानना चाहिए । इस प्रकार दूसरी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंके होता है, इसलिये यहाँ प्रशस्त प्रकृतियोंकी अनुभाग उदीरणा चतुःस्थानीय होकर भी वह बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन बतलाई है । यहाँ उदयको भी उदीरणाके समान जाननेकी सूचना की है । उसका आशय यह है कि जिन प्रकृतियोंकी यहाँ उदीरणा है उन्हींका उदय भी है । जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षण आदि प्रयोगके विना स्थिति क्षयको प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं उन कर्मस्कन्धोंकी उदय संज्ञा है और जो बड़ी स्थितिमें स्थित कर्म अपकर्षण द्वारा फल देनेके सन्मुख किये जाते हैं उनकी उदीरणा संज्ञा है । प्रकृतमें ऐसा समझना चाहिए कि जिस गतिमें दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख हुए जीवके जिन कर्मोंका उदय है उनकी उदीरणा अवश्य होती है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६२. संपहि तदियसुत्तगाहाए जहावसरपत्तमवयारं कस्सामो । तं जहा—

\* 'के अंसे भीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा ।

§ ६३. एदस्स तदियगाहासुत्तपुव्वद्वस्स अत्थविहासा इदाणि कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । एसो च तदियगाहापुव्वद्वो दंसणमोहोवसामगस्स सव्वेसिं कम्माणं पयडि-  
ट्टिदि-अणुभाग-पदेसे अस्मिण्ण बंधोदएहिं झीणभावगवेसणट्टमागओ । तत्थ ताव  
पयडीणं बंधवोच्छेदकमपदंसणट्टमिदमाह—

\* असादावेदणीय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोग-चदुआउ० - णिरय-  
गदि-चदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंधडण - णिरयगहपाओग्गाणुपुव्वि - आदाव-  
अप्पसत्थविहायगइ - थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुभ-दुभग-  
दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्तिणामाणि एदाणि बंधेण वोच्छिण्णाणि ।

§ ६४. एदासिं सुत्तणिदिट्ठाणं पयडीणं दंसणमोहोवसामगस्स पुव्वमेव जहाकमं  
बंधवोच्छेदो जायदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेसिं कम्माणं बंधवोच्छेदकमं वत्तइस्सामो ।  
तं जहा—तत्थ ताव अभवसिद्वियपाओग्गविसोहीए विसुज्झमाणस्स तप्पाओग्गअंतो-  
कोडाकोडिमेत्तट्टिदिबंधावत्थाए णत्थि एकस्स वि कम्मस्स पयडिबंधवोच्छेदो । एत्तो  
उवरिमंतोमुहुत्तं गंतूण सागरोवमपुधत्तमेत्तमोसरिण्ण अण्णं ट्टिदिं बंधमाणस्स तक्काले

§ ६२. अब तीसरी गाथाके अवसर प्राप्त अवतारको करेंगे । यथा—

\* 'दर्शनमोहके उपशमकालसे पूर्व बन्ध और उदयकी अपेक्षा कौन-कौनसे  
कर्मांश क्षीण होते हैं' इसकी विभाषा ।

§ ६३. इस तीसरे गाथासूत्रके पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय करना  
चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह तीसरी गाथाका पूर्वार्ध दर्शनमोहके उपशमकके  
सब कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका आश्रयकर बन्ध और उदयकी अपेक्षा  
क्षीणपनेका अनुसन्धान करनेके लिये आया है । उनमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतियोंकी बन्ध-  
व्युच्छित्तिके क्रमको दिखलानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* दर्शनमोहके उपशमकके असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक,  
चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानु-  
पूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर,  
अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति ये प्रकृतियाँ बन्धसे पहले ही  
व्युच्छिन्न हो जाती हैं ।

§ ६४. सूत्रमें निर्दिष्ट की गई इन प्रकृतियोंकी दर्शनमोहके उपशमक जीवके पहले ही  
क्रमसे बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन कर्मोंके बन्ध-  
व्युच्छित्तिके क्रमको बतलावेंगे । यथा—वहाँ जो अभव्योंके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो रहा  
है उसके तत्प्रायोग्य अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थितिवन्धकी अवस्थामें एक भी कर्मके  
प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्ति नहीं होती । इससे आगे अन्तर्मुहूर्त जाकर सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण

णिरयाउअबंधो वोच्छिज्जदे । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स तिरिक्खाउअ-  
बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स मणुस्साउअं बंधवोच्छेदो ।  
तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स देवाउअबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-  
पुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स णिरयगइ-णिरयगइपाओग्माणुपुव्वी एकदो बंधवोच्छेदो ।  
तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेकदो  
बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-अपज्ज०-पत्तेयसरीराणमण्णोण्णाणु-  
गयाणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं गंतूण बादर-अपज्ज०-साहारण-  
सरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण  
बादर-अपज्ज०-पत्तेयसरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-  
पुधत्तमोसरियूण वेइंदियजादि-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजोगेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरो-  
वमपुधत्तं ओसरियूण तीइंदिय-अपज्ज० अण्णोण्णसंजुत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-  
पुधत्तं ओसरियूण चउरिंदिय०-अपज्ज० अण्णोणसजुत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-  
पुधत्तं ओसरिऊण असण्णिणपंचिंदिय०-अपज्ज० अण्णोणसंजुत्त० बंधवोच्छेदो । तदो  
सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सण्णिणपंचिंदिय०-अपज्ज० अण्णोण्णसंजुत्त० बंधवोच्छेदो ।  
तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण सुहुम-पज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं परोप्परसंजोगेण

स्थिति घटाकर अन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उस समय नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति  
होती है । उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके  
तिर्यञ्चायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उसके आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर  
बन्ध करनेवाले जीवके मनुष्यायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्व-  
प्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे  
सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नरकगति और नरकगत्यानु-  
पूर्वीकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति  
घटाकर० अन्योन्य अनुगत सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीरकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती  
है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत सूक्ष्म, अपर्याप्त  
और प्रत्येक शरीरकी एकसाथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण  
स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत बादर, अपर्याप्त और साधारण शरीरकी एक साथ बन्ध-  
व्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत  
बादर, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीरकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे  
सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत द्वीन्द्रिय जाति और अपर्याप्त  
नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति  
घटाकर० अन्योन्य संयुक्त त्रीन्द्रिय और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती  
है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य संयुक्त चतुरिन्द्रिय जाति  
और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्व-  
प्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य संयुक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और अपर्याप्तनामकर्मकी एक साथ  
बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त  
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे

बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-पज्जत्त-पत्तेयसरीर० परोप्परसंजुत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण बादर-पज्जत्त-साहारणसरीराणं परोप्पर-संजोगविसेसिद० बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-एइंदिय-आदाव-थावरणामाणं छण्हं पयडीणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण बीइंदिय०-पज्जत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण तीइंदिय०-पज्जत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण चउरिंदिय०-पज्जत्त-बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण असण्णिपंचिंदिय०-पज्ज० बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोवसण्णि-दाणं तिण्हं पयडीणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवपुधत्तं ओसरिदूण णीचागोदस्स बंधवोच्छेदो । णवरि सत्तमपुढिधिणेइयमस्सियूण तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वी-उज्जोव-णीचागोदाणं बंधवोच्छेदो णत्थि । अदो चैव सुत्ते तेसिं बंधवोच्छेदो अप्णुवइट्ठो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणा-

सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर नामकर्मकी एक साथ बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त बादर, पर्याप्त और साधारण शरीर नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर नामकर्म इन छह प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त नाम-कर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके त्रीन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नीचगोत्रकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीके नारकीके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती और इसीलिये सूत्रमें इनकी बन्धव्युच्छित्तिका निर्देश नहीं किया । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, और अनादेय इन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर

१. ता०प्रती बंधवोच्छेदो । [ तदो सागरो० पुधत्त० ओसरि० सण्णिपज्ज० बंध० ] तदो इति पाठः ।

देज्ञणामाणमकमेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण हुंडसंठाण-असंपत्त-  
सेवट्टसंघडण० एदासिं दोण्हं पयडीणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं  
ओसरिदूण णवुंसं० बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण वामणसंठाण-  
कीलियसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेकदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण  
खुज्जसंठाण-अद्वणारायण० दोण्हमेदासिं पयडीणं एकदो बंधवोच्छेदो । तदो  
सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण इत्थिवेदबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण  
सादिसंठाण-णारायणसरीर० दोण्हं पि पयडीणं एकदो बंधवोच्छेदो । तदो  
सागरो० पुध० णग्गोधपरि०-वज्जणारायणसरीरसंघ० दोण्हं पि एकदो बंध० । तदो  
सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण मणुसगइ-ओरालियसरीर-तदंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुस-  
गइपाओग्गाणुपुच्चि० एदासिं पंचण्हं पयडीणं एकदो बंधवोच्छेदो । एदं तिरिक्ख-  
मणुस्से पडुच्च परुविदं, देव-णेरइएसु एदासिं बंधविच्छेदाणुवलंभादो । अदो चैव सुत्ते  
एदासिं बंधवोच्छेदो अणुवइदो, सुत्तस्स च चउगइसामण्णावेक्खाए पयट्टत्तादो । तदो  
सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसगित्ति-  
णामाणमेदासिं पयडीणं जुगवं बंधवोच्छेदो । जाव पमत्तसंजदो त्ति बंधपाओग्गाणं पि  
एदासिमेत्थ बंधवोच्छेदपरूवणा ण विरुज्झदे । किं कारणं ? सव्वविसुद्धस्सेदस्स

बन्ध करनेवाले जीवके हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नपुसकवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके वामनसंस्थान और कीलिक संहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्जनाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वज्रध-संहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । यह तिर्यञ्चो और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि देवों और नारकियोंमें इन पाँच प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं पाई जाती और इसीलिये सूत्रमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति-का निर्देश नहीं किया है, क्योंकि यह सूत्र चतुर्गति सामान्यकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है । उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है । यद्यपि ये प्रकृतियाँ प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक बन्धके योग्य हैं फिर भी यहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्तिका कथन विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उन प्रकृतियोंके बन्धके

तब्बन्धपाओग्गसंकिलेसविसयमुल्लंघियूण तप्पडिवक्खपयडिबन्धणिविसोहीए वड्ड-  
माणस्स तब्बन्धवोच्छेदे विरोहाणुवल्लंभादो । एवमोघेण पयडीणं बन्धवोच्छेदो सुत्ताणु-  
सारेण परूविदो ।

§ ६५. संपहि आदेसमुहेण पयडिबन्धणीणाङ्गीणत्तविसयं किंचि परूवणं  
कस्सामो । तं जहा—आदेसेण चदुसु वि गदीसु णाणावरणीयस्स णत्थि पयडिबन्ध-  
ङ्गीणदा । एवं दंसणावरणीयस्स वि वत्तब्बं । वेदणीयस्स असादं बन्धेण ङ्गीणं, णो  
सादं । मोहणीयस्स इत्थि-णवुंसय-अरदि-सोगा बन्धेण ङ्गीणा, सेसाओ मोहपयडीओ  
बन्धेण णो ङ्गीणाओ । आउअस्स चत्तारि वि पयडीओ बन्धेण ङ्गीणाओ । णामस्स जइ  
णेरह्यो पढमाए जाव छट्ठि पुढवि त्ति तस्स णिरयगइ-तिरिक्खगइ-देवगइ-एइंदिय-  
वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-वेउब्बिय-आहारसरीर-पंचसंठाण - दोण्णिअंगोवंग - पंच-  
संघडण-णिरय-तिरिक्ख-देवाणुपुब्बि-आदावुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्ज-  
साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगिति-तित्थयरणामा त्ति एदाओ-

योग्य संकलेशका उल्लंघन कर उनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियोंके बन्धके निमित्तरूप विशुद्धिसे  
वृद्धिको प्राप्त हुए सर्वविशुद्ध इस जीवके उन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होनेमें कोई विरोध  
नहीं पाया जाता । इस प्रकार ओषसे सूत्रके अनुसार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति कही ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यरूपसे चारों गतियोंमें घटित हों इस अपेक्षाको मुख्यकर  
ये चोतीस बन्धापसरण कहे गये हैं । जिन प्रकृतियोंके विषयमें कुछ अपवाद है उनका निर्देश  
यथास्थान टीकामें किया ही है । उदाहरणार्थ सातवें नरकका नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वके  
प्राप्त करनेके सन्मुख होनेके पूर्व भी तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही  
नियमसे बन्ध करता रहता है तथा ऐसी भूमिकामें भी उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है ।  
इसलिये इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति करनेवाले दो बन्धापसरण सातवें नरकमें नहीं  
बनते । इसी प्रकार प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होनेके पूर्व ही तिर्यञ्चों और मनुष्योंके मनुष्य-  
गति आदि पाँच प्रकृतियोंकी यथास्थान नियमसे बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिये यह  
बन्धापसरण केवल तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६५. अब आदेशद्वारा प्रकृतिबन्धसम्बन्धी क्षीण-अक्षीणपनेविषयक कुछ प्ररूपणा  
करते हैं । यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें ज्ञानावरणीयके प्रकृतिबन्धका विच्छेद नहीं  
है । इसी प्रकार दर्शनावरणकी अपेक्षा भी कहना चाहिए । वेदनीयकी असाताप्रकृति बन्धसे  
विच्छिन्न है, सातावेदनीय नहीं । मोहनीयकर्मकी स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक  
बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष मोह प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न नहीं होतीं । आयुर्कर्मकी चारों ही  
प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं । नामकर्मकी यदि प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकका  
नारकी है तो उसके नरकगति, तिर्यञ्चगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रिय-  
जाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, दो आंगोपांग, पाँच  
संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, बद्योत, अप्रशस्त  
विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय,  
अयशःकीर्ति और तीर्थकर ये प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष नहीं । गोत्रकर्मकी नीचगोत्र



पयडीओ बंधेण झीणाओ, ण सेसाओ । गोदस्स णीचागोदं बंधेण वोच्छिण्णं, णेदरं । अंतराइयस्स णत्थि एत्थ पयडिबंधस्स झीणदा । सत्तमाए एवं चेव । णवरि उज्जोवं सिया बंधेण झीणं सिया णोझीणं । तिरिक्खगइ-तप्पाओगाणु-णीचागोदाणि च बंधेण णोझीणाणि । मणुसगइ-तप्पाओगाणुपुव्वि-उच्चागोदाणि बंधेण झीणाणि ।

§ ६६. जइ तिरिक्खो मणुस्सो वा तो तस्स णामस्स देवगदि-पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्णादि४-देवगइपाओ-ग्गाणुपुव्वि - अगुरुलहुआदि४ - पसत्थविहायगदि - तसादि४ - धिरादि६ - णिमिणणामाणि मोत्तूण सेसाणि बंधेण झीणाणि । गोदस्स णीचागोदं बंधेण झीणं । सेसं पुव्वं व वत्तव्वं । देवगदीए पढमपुढविभंगो । एसा पयडिबंधझीणदा णाम ।

§ ६७. एदासिं चेव पयडीणं पयडिझीणदाए समुद्धिडाणं द्विदिवंधझीणदा च अणुमग्गियव्वा । अज्झीणबंधाणं पि पयडीणमतोकोडाकोडीदो उवरिमद्विदिवंधवियप्पाणं झीणदा समयाविरोहेणाणुगंतव्वा । एवमणुभाग-पदेसविसए वि एसो अत्थो जोजेयव्वो । एवं ताव पयडिबंधवोच्छेदं द्विदि-अणुभाग-पदेसबंधवोच्छेदगब्भं परूविय संपहि पयडि-विसयमुदयवोच्छेदं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

### \* पंचदंसणावरणीय-चतुर्जादिणामाणि

### चतुर्भाणुपुव्विणामाणि

प्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है, उच्चगोत्र नहीं । अन्तरायकर्मके प्रकृतिबन्धका विच्छेद यहाँ नहीं है । सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उद्योतप्रकृति कदाचित् बन्धसे विच्छिन्न है, कदाचित् विच्छिन्न नहीं है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र ये बन्धसे विच्छिन्न नहीं हैं । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र ये बन्धसे विच्छिन्न हैं ।

§ ६६. यदि तिर्यञ्च और मनुष्य है तो उसके नामकर्मकी देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति बैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, बैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णादिचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिरादि छह और निर्माण इन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं । गोत्रकर्मकी नीचगोत्र प्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है । शेष कथन पहलेके समान कहना चाहिए । देवगतिमें पहली पृथिवीके समान भंग है । यह प्रकृतिबन्धसम्बन्धी विच्छिन्नताका निर्देश है ।

§ ६७. प्रकृतिबन्धविच्छिन्नतारूपसे निर्दिष्ट इन्हीं प्रकृतियोंकी स्थितिबन्धकी अपेक्षा विच्छिन्नताका अनुमार्गण कर लेना चाहिए । तथा जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती उन प्रकृतियोंकी अन्तःकोडाकोडीसे उपरिम स्थितिबन्धविकल्पोंकी विच्छिन्नता समयके अविरोधरूपसे जान लेना चाहिए । इसीप्रकार अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके विषयमें भी यह अर्थ योजित करना चाहिए । इस प्रकार स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धकी बन्धव्युच्छित्ति जिसमें गर्भित है ऐसे प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्तिका कथन कर अब प्रकृति-विषयक उदयव्युच्छित्तिका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* पाँच दर्शनावरण, चार जाति नामकर्म, चारों आनुपूर्वी नामकर्म तथा

आदाव - थावर - सुहुम - अपज्जत्त - साहारणसररीणामाणि एदाणि उदएण  
वोच्छिण्णाणि ।

§ ६८. एत्थ पंचदंसणावरणीयणिदेसेण णिद्दामेदाणं पंचण्हं गहणं कायव्वं,  
तेसिमेत्थुदयवोच्छेदो । किं काणं ? दंसणमोहुवसामगस्स सागर-जागारावत्थस्स तदुदय-  
परिणामविरोहादो । एवं चदुजादिआदीणं पि सुत्तणिहिट्टपयडीणमुदयवोच्छेदो  
वत्तव्वो ।

§ ६९. एवमोघेण परूविदस्सेदस्सत्थस्स पुणो वि फुडीकरणट्टमादेसपरूवणा  
कीरदे । तं जहा—आदेसेण चदुसु गदीसु वि पंचणाणावरणीयाणं णत्थि उदयेण  
झीणदा । दंसणावरणीयस्स चत्तारि पयडीओ उदएण अज्झीणाओ । वेदणीयस्स  
सादासादाणं णत्थि उदएण झीणदा । मोहणीयस्स सव्वासिं पयडीणं णत्थि उदएण  
झीणदा । णवरि णेरहएसु इत्थि-पुरिसवेदाणमुदएण झीणदा । देवेषु णवुंसयवेदस्स  
उदएण झीणदा वत्तव्वा । आउस्स सव्वासिं पयडीणं णत्थि उदयवोच्छेदो । णवरि

आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नाकर्म ये प्रकृतियाँ उदयसे  
व्युच्छिन्न होती हैं ।

§ ६८. यहाँ सूत्रमें पाँच दर्शनावरण पदके निर्देशसे निद्रादि पाँच भेदोंका ग्रहण करना  
चाहिए, उनकी इसके उदय व्युच्छित्ति है, क्योंकि साकार उपयोग और जागृत अवस्था-  
विशिष्ट दर्शनमोह-उपशामकके इन पाँच निद्रादिके उदयरूप परिणामका विरोध है । इसी  
प्रकार सूत्रमें निर्दिष्ट की गई चार जाति आदि प्रकृतियोंकी उदयके अभावका भी कथन करना  
चाहिए ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहका उपशामक वही जीव हो सकता है जो संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय और  
पर्याप्त होकर जीवादि नौ पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके साथ अपने साकार उपयोग द्वारा जीवादि नौ  
पदार्थोंमें अनुस्यूत एकमात्र जीवपदार्थके अनुमननके सन्मुख हो । ऐसा जीव नियमसे जागृत  
होता है, इसलिये तो उसके निद्रादि पाँच दर्शनावरण प्रकृतियोंके उस कालमें उदयका निषेध  
किया है । साथ ही उसके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त एकमात्र यही जीवसमास होता है, इसलिये  
उसके एकेन्द्रिय आदि चार जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन  
प्रकृतियोंके उदयका निषेध किया है । यहाँ सूत्रमें पाँच दर्शनावरण आदिके मात्र उदयका  
निषेध किया है । परन्तु इससे इन प्रकृतियोंकी उदीरणाका भी निषेध जान लेना चाहिए,  
क्योंकि कुछ अपवादोंको छोड़कर सर्वत्र उदीरणा उदयकी अविनाभाविनी होती है ।

§ ६९. इस प्रकार ओघसे कहे गये इस अर्थका फिर भी स्पष्टीकरण करनेके लिये  
आदेशपरूपणा करते हैं । यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें पाँच ज्ञानावरण प्रकृतियोंका  
उदयविच्छेद नहीं है । दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है । वेदनीयकी  
साता और असाता इन दोनों प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है । मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका  
उदयविच्छेद नहीं है । इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदका उदय नहीं  
होता । तथा देवोंमें नपुंसकवेदका उदय नहीं होता ऐसा कहना चाहिए । आयुकी सभी

एकम्मि आउए गदिविसेससंबंधेण णिरुद्धे तत्थ सेसाणमुदएण झीणदा त्ति वत्तव्वं ।

§ ७०. णामस्स जइ णेरइओ, णिरयगइ-पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-सरीर-हुंडसंठाण०-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण४ - अगुरुअलहुअ४ - अप्पसत्थविहाय० - तस४-थिराथिर-सुहासुह-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-णिमिणणामाओ एदाओ पयडीओ उदएण अज्झीणाओ, सेसाओ झीणाओ ।

§ ७१. जइ तिरिक्खो, तिरिक्खगइ-पंचिदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर० छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियअंगोवंग० छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण४-अगुरुलहुअ४ उज्जोवं सिया० दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तसादिचउक्क० थिराथिर-सुभासुभ० सुभग-दूभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जस-अजसगित्तीण-मेक्कदरं णिमिणं च एदाओ पयडीओ तिरिक्खस्स उदएण अझीणाओ । सेसाओ पयडीओ उदएण झीणाओ । मणुस्सस्स वि मणुसगदि-पंचिदियजादि० एवं तिरिक्ख-भंगेण पेद्व्वं । णवरि उज्जोववज्जं ।

§ ७२. जइ देवो, देवगइ-पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण४ - अगुरुलहुअ४ - पसत्थविहायगइ - तस४ - थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिणमिदि एदाओ पयडीओ उदएण अज्झी-

प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है । इतनी विशेषता है कि गतिविशेषके सम्बन्धसे एक आयुके उदय रहनेपर उसके शेष आयुओंका उदय नहीं होता ऐसा कहना चाहिए ।

§ ७०. यदि नारकी है तो नामकर्मकी नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामवाली ये प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं अर्थात् शेष प्रकृतियोंका उसके उदय नहीं होता ।

§ ७१. यदि तिर्यञ्च है तो तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस-शरीर, कर्मणशरीर, ब्रह्म संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीर आंगोपांग, ब्रह्म संहननोंमेंसे कोई एक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, कदाचित् उद्योत, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रसादिचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग-दुर्भगमेंसे कोई एक, सुस्वर-दुःस्वरमेंसे कोई एक, आदेय-अनादेयमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमेंसे कोई एक और निर्माण ये प्रकृतियाँ तिर्यञ्चके उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं, अर्थात् शेष प्रकृतियोंका उसके उदय नहीं होता । मनुष्यके भी मनुष्यगति और पञ्चेन्द्रियजाति इत्यादि रूपसे तिर्यञ्चके समान जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके उद्योत प्रकृतिका उदय नहीं होता ।

§ ७२. यदि देव है तो देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः-कीर्ति और निर्माण नामवाली ये प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे

णाओ, सेसाओ झीणाओ ।

§ ७३. गोदस्स जइ णेरइओ तिरिक्खो वा णीचागोदमुदयादो अज्झीणमुच्चागोदं झीणं । जइ मणुसो, णीचुच्चागोदानमेक्कदरं झीणं । जइ देवो, उच्चगोदं उदएण अज्झीणं, णीचागोदं झीणं । चदुसु वि गदीसु पंचंतराइयाणि उदएण णो झीणाणि । एसा ताव पयडिउदयझीणदा सुत्ताणुसारेण मग्गिदा ।

§ ७४. जाओ पयडीओ जत्थ उदएण अज्झीणाओ तत्थ तासिमंतोकोडा-कोडिमेत्ता द्विदी उदएण अज्झीणा । सेसाणं पयडीणं सव्वाओ द्विदीओ उदएण झीणाओ । एसा द्विदिउदयझीणदा णाम । जाओ अप्पसत्थपयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं विट्ठाणिओ अणुभागो संतादो अणंतगुणहीणो उदएण अज्झीणो । जाओ पसत्थपयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं पयडीणं चउट्ठाणिओ अणुभागो बंधादो अणंतगुणहीणसरूवो उदयादो अज्झीणो, सेसाणं झीणत्तं । एसा अणुभाग-झीणदा णाम । पदेसझीणदा वि जाओ पयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं पयडीण-मणुक्कस्सयं पदेसग्गमुदयादो अज्झीणं, सेसाणि ज्झीणाणि । एत्थेव पयडिआदीण-मुदीरणादो वि झीणाझीणत्तमेदीए दिसाए अणुगंतव्वं । एवं तदियगाहापुव्वद्धस्स अत्थविहासा समत्ता ।

विच्छिन्न है, अर्थात् उनका उदय नहीं होता ।

§ ७३. यदि नारकी और तिर्यञ्च है तो गोत्रकर्मकी नीचगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न नहीं है, उच्चगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है । यदि मनुष्य है तो नीचगोत्र और उच्चगोत्र इनमेंसे कोई एक प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है । यदि देव है तो उच्चगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न नहीं है, नीचगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है । यह प्रकृति उदयविच्छिन्नता है जिसका सूत्रके अनुसार विचार किया ।

§ ७४. जो प्रकृतियाँ जहाँ पर उदयसे अविच्छिन्न हैं वहाँ उनकी अन्तःकोड़ाकोड़ी-प्रमाण स्थिति उदयसे अविच्छिन्न है । शेष प्रकृतियोंकी सब स्थितियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं । यह स्थितिउदयविच्छिन्नता है । जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न हैं उनका द्वि-स्थानीय अनुभाग सन्धसे अनन्तगुणा हीन होकर उदयसे अविच्छिन्न है । जो प्रशस्त प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न हैं उन प्रकृतियोंका चतुःस्थानीय अनुभाग बन्धसे अनन्तगुणा हीनस्वरूप होकर उदयसे अविच्छिन्न है, शेष प्रकृतियोंका अनुभाग उदयसे विच्छिन्न है । यह अनुभाग विच्छिन्नता है । प्रदेशविच्छिन्नता—जो प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न हैं उन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशपिण्ड उदयसे अविच्छिन्न है, शेष प्रकृतियाँ प्रदेशपिण्डकी अपेक्षा उदयसे विच्छिन्न हैं । यही पर प्रकृति आदिकी उदीरणाकी विच्छिन्नता और अविच्छिन्नताको भी इसी दिशासे जान लेना चाहिए । इस प्रकार तीसरी गाथाके पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—यहाँ चूर्णिसूत्रमें दर्शनभोहके उपशमके सन्मुख हुए जीवके निद्रादिक पाँचका अनुदय बतलाया है । उसका कारण देते हुए टीकामें बतलाया है कि ऐसा जीव नियमसे जागृत होता है । किन्तु धवला टीकामें ऐसे जीवको दर्शनावरणकी चार या निद्रा-

§ ७५. संपहि तप्पच्छद्वस्स अत्थविहासणट्टमिदमाह—

\* 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' ति विहासा ।

§ ७६. एदस्स गाहापच्छद्वस्स एण्हिमत्थविहासा अहिकीरदि ति भणिदं होइ ।

\* ण ताव अंतरं उवसामगो वा पुरदो होहिदि ति ।

§ ७७. ण ताव इदानीमंतरकरणमुपपन्नमकत्वं वा दर्शनमोहस्य विद्यते, किंतु तदुभयं पुरस्तादनिवृत्तिकरणं प्रविष्टस्य भविष्यतीत्ययमत्र सूत्रार्थसद्भावः । एवं तदिय-गाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

§ ७८. संपहि चउत्थगाहाए अत्थविहासणट्टमिदमाह—

प्रचला इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके साथ पाँच प्रकृतियोंका वेदक कहा है । धवला टीकाका वह उल्लेख इस प्रकार है—

चक्खुदंसणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयमोहिदंसणावरणीय-केवलदंसणावरणीयमिदि चटुण्हं दंसणावरणीयाणं वेदगो, णिहा-पयलाणं एक्कदरेण सह पंचण्हं वा वेदगो ।

२. मोहनीयकर्मके प्रसंगसे यहाँ मोहनीयकर्मकी सभी प्रकृतियोंका उदय बतलाया है । सो उसका यह आशय है कि उक्त जीवके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिको छोड़कर आगमानुसार सभी प्रकृतियोंका उदय सम्भव है । यथा—मिथ्यात्व, चारों क्रोध, या चारों मान, या चारों माया या चारों लोभ, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल तथा भय और जुगुप्सा इस प्रकार १० का, या भय-जुगुप्सामेंसे एकके बिना ९ का, या दोनोंके बिना ८ का उदय होता है ।

३. दूसरे यहाँ उदयागत प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका उदय बतलाया है, किन्तु धवला टीकामें उदयागत प्रकृतियोंके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वेदक बतलाया है । यथा—उदइल्लाणं पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सपदेसाणं वेदगो ।

§ ७९. अब उसके उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* उक्त जीव 'अन्तर कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका उप-शामक होता है' इस पदकी विभाषा ।

७६. तीसरी गाथाके इस उत्तरार्धके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान अधिकार प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें न तो अन्तरकरण होता है और न ही यहाँ पर वह उपशामक होता है, आगे जाकर ये दोनों कार्य होंगे ।

§ ७७. इस समय दर्शनमोहका न तो अन्तरकरण होता है और न ही उपशामकपना ही पाया जाता है, किन्तु ये दोनों आगे अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके होंगे यह यहाँ सूत्रके अर्थका तात्पर्य है । इस प्रकार तीसरी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

§ ७८. अब चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* किं ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेषु केषु वा । ओवट्टेयूण  
सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि त्ति विहासा ।

§ ७९. एदिस्से चउत्थगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणमिदाणि कस्सामो त्ति  
वुत्तं होइ ।

\* ट्टिदिघादो संखेज्जा भागे घादेदूण संखेज्जदिभागं पडिवज्जइ ।

§ ८०. अधापवत्तकरणचरिमसमयविसयादो ठिदिसंतकम्मादो अंतोकोडाकोडि-  
सागरोवमपमाणादो अपुव्वाणियट्टिकरणपरिणामेहिं संखेज्जे भागे जहाकमं संखेज्जसइस्सेहिं  
ठिदिसंखेज्जघादेहिं घादिदूण तदो पुव्वणिरुद्धिदीए संखेज्जदिभागमेसो पडिवज्जदि त्ति  
मणिदं होइ ।

\* अणुभागघादो अणते भागे घादिदूण अणंतभागं पडिवज्जइ ।

§ ८१. अप्पसत्थाणं कम्माणं अणुभागस्साणंते भागे अपुव्वाणियट्टिकरण-  
परिणामेहिं घादिय तदणंतिमभागमेसो पडिवज्जदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदे दो वि  
घादा अधापवत्तकरणं वोळिय अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि पयडंति त्ति जाणावणडु-  
मुत्तरसुत्तमाह—

\* 'उक्त जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका और किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका  
अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है' इसकी विभाषा ।

§ ७९. यथा अवसर प्राप्त इस चौथी गाथाके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान  
करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* स्थितिघात—संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितियोंका घातकर संख्यातवें भाग-  
को प्राप्त होता है ।

§ ८०. अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो स्थितिसत्कर्म अन्तःकोडाकोड़ी  
सागरोपमप्रमाण है उसमेंसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके बलसे यथाक्रम  
संख्यात हजार स्थिति काण्डकघातोंके द्वारा संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका घातकर पहलेकी  
विवक्षित स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको यह प्राप्त होता है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

\* अनुभागघात—अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागका घातकर अनन्तवें भाग-  
प्रमाण अनुभागको प्राप्त होता है ।

§ ८१. अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहुभागका अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-  
करणरूप परिणामोंके बलसे घातकर उसके अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागको यह प्राप्त होता  
है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब ये दोनों ही घात अधःप्रवृत्तकरणको उल्लंघन कर  
अपूर्वकरणके प्रथम समयसे प्रवृत्त होते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको  
कहते हैं—

१. ता०प्रती ट्टिदियादो संखेज्जे इति पाठोः ।

\* तदो इमस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि  
ट्टिदिघादो वा अणुभागघादो वा । से काले दो वि घादा पवत्तीहिंत्ति ।

§ ८२. यदि एसो पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए सुट्ठु वि विसुज्झमाणो संतो  
ट्टिदि-अणुभागखंडयघादपाओग्गविसोहीओ ण पावदि, हेट्ठा चेव वट्टदि, तदो इमस्स  
चरिमसमयाधापवत्तकरणभावे वट्टमाणस्स णत्थि ट्टिदिघादो अणुभागघादो वा । किंतु  
से काले अपुव्वकरणं पविट्ठुपढमसमए दो वि एदे ट्टिदि-अणुभागविसयघादा गुणसेट्ठि-  
णिक्खेवादिसहगदा पवत्तीहिंत्ति । तम्हा तत्थेव तप्परूवणं कस्सामो त्ति एसो एदस्स  
सुत्तस्स भावत्थो ।

\* अतः अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें विद्यमान इस जीवके स्थितिघात  
और अनुभागघात नहीं होता, किन्तु तदनन्तर समयमें दोनों ही घात प्रवृत्त होंगे ।

§ ८२. यद्यपि यह जीव प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे अत्यन्त विशुद्ध होता  
हुआ भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातके योग्य विशुद्धिको नहीं प्राप्त होता,  
नीचे ही रहता है, इसलिये अधःप्रवृत्तकरणभावमें विद्यमान इसके स्थितिकाण्डकघात और  
अनुभागकाण्डकघात नहीं होता । किन्तु तदनन्तर समयमें अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट  
होनेपर गुणश्रेणिनिक्षेप आदिके साथ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात प्रवृत्त  
होंगे, इसलिये वहीं पर उनका कथन करेंगे यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

विशेषार्थ—क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे संयुक्त जो जीव दर्शनमोहका उपशम  
करनेके सन्मुख होकर अधःप्रवृत्तकरणमें प्रविष्ट होता है उसके प्रथम समयसे लेकर इस  
करणके अन्तिम समय तक प्रत्येक समयके परिणामोंमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि  
होती जाती है । इस जीवके अपने कालके भीतर प्रत्येक समयमें अप्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुण  
हीन द्विस्थानीय और प्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा चतुःस्थानीय अनुभागबन्ध होता रहता है ।  
तथा एक स्थितिवन्धका समय पूर्ण होनेपर दूसरा स्थितिवन्ध पल्योपमके असंख्यातवें  
भागप्रमाण कम होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है । इसी क्रमसे तीसरा, चौथा आदि  
जानना चाहिए । इसप्रकार इस करणमें संख्यात हजार स्थितिवन्धापसरण होते हैं । किन्तु  
इन परिणामोंको निमित्तकर स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुण-श्रेणि रचना और  
गुणसंक्रम ये चार आवश्यक नहीं होते । यहाँ अपूर्वकरणमें स्थिति काण्डकघात, अनुभाग-  
काण्डकघात और गुणश्रेणि रचना होती है । यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उपरितन एक  
काण्डक—प्रमाण स्थितिका फालिक्रमसे अन्तर्मुहूर्तकालमें घात करना स्थितिकाण्डकघात  
कहलाता है, अप्रशस्त प्रकृतियोंके उपरितन एक काण्डक प्रमाण बहुभाग अनुभागका फालि-  
क्रमसे अन्तर्मुहूर्तकालमें घात करना अनुभागकाण्डकघात कहलाता है । आयुके सिवाय शेष  
कर्मोंके उपरितन स्थितियोंमें स्थित कर्मपुंजमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देनेपर जो  
एक भाग द्रव्य प्राप्त हो, उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर प्राप्त हुआ एक भागप्रमाण  
उदयवाली प्रकृतियोंका द्रव्य उदयावलिमें निक्षिप्त करना तथा उदयवाली व अनुदयवाली शेष  
प्रकृतियोंके द्रव्यको गुणितक्रमसे उदयावलिके अनन्तर समयवर्ती निषेकसे लेकर गुणश्रेणिशीर्ष  
तक निक्षिप्त करना गुणश्रेणि रचना कहलाती है । इन सबका विशेष विचार आगे किया ही  
है । यहाँ मात्र उनका स्वरूप बतलानेके लिये संक्षेपमें निर्देश किया है ।

\* एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदाओ ।

§ ८३. गयत्थमेदं सुत्तं । संपहि 'दंसणमोहोवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' इच्चेदं सुत्तपदमस्सियूण दंसणमोहोवसामगस्स करणलद्धिपरूवणडुमुवरिमो पबंधो ।

\* दंसणमोहोवसामगस्स तिविहं करणं ।

§ ८४. येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते । तं पुन करणमेत्थ तिविहं होइ त्ति एदेण सुत्तेण जाणाविदं । संपहि तेसिं तिण्हं करणाणं णामणिहेसं कुणमाणो पुच्छावक्कमाह—

\* तं जहा ।

§ ८५. सुगमं ।

\* अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टिकरणं च ।

§ ८६. एवमेदाणि तिण्णि करणाणि एत्थ होंति त्ति भणिदं होइ । संपहि एदेसिं तिण्हं करणाणं किंचि अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहो—जम्हि वट्टमाणस्स जीवस्स करणपरिणामा अधो हेट्ठा पवत्तंति तमधापवत्तकरणं णाम । एदम्मि करणे उवरिमसमयपरिणामा हेट्टिमसमयेसु त्ति वट्टंति त्ति भणिदं होइ । समयं पडि अपुब्बा

\* इन चार गाथाओंकी अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपणा करनी चाहिए ।

§ ८३. यह सूत्र गतार्थ है । अब 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है ?' इस प्रकार इस सूत्रपदका आलम्बन लेकर दर्शनमोहके उपशामककी करणलब्धिका कथन करनेके लिये आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

\* दर्शनमोहके उपशामकके तीन करण होते हैं ।

§ ८४. जिस परिणामविशेषके द्वारा दर्शनमोहका उपशमारूप विवक्षित भाव किया जाता है अर्थात् उत्पन्न किया जाता है वह परिणाम करण कहलाता है । वह करण यहाँपर तीन प्रकारका होता है यह इस सूत्र द्वारा ज्ञात कराया गया है । अब उन तीन करणोंका नामनिर्देश करते हुए पृच्छावाक्यको कहते हैं—

\* वे जैसे ।

§ ८५. यह सूत्र सुगम है ।

\* अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ।

§ ८६. इस प्रकार ये तीन करण यहाँपर होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन तीन करणोंके अर्थका किंचित् प्ररूपण करते हैं । यथा—जिस करणमें विद्यमान जीवके करणपरिणाम 'अधः' नीचे अर्थात् उपरितन ( आगेके ) समयके परिणाम नीचे ( पूर्व ) के समयके परिणामोंके समान प्रवृत्त होते हैं वह अधःप्रवृत्तकरण है । इस करणमें उपरिम समयके परिणाम नीचेके समयोंमें भी पाये जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । जिस

१. ता०प्रती तं जहा इति पाठो नास्ति ।



असमाना गियमा अर्णतगुणसरुषेण वट्टिदा' करणा परिणामा जग्हि तमपुव्वकरणं णाम । एत्थतणपरिणामा पडिसमयमसंखेजलोगमेत्ता होदूणणसमयट्टिदपरिणामेहिं सरिसा ण हीति ति भावत्थो । जग्हि वट्टुमाणं जीवाणमेगसमयग्हि परिणाममेदो णत्थि तमणियट्टिकरणं णाम । एदेसिं करणाणं विसेसणिण्णयमुवरि कस्सामो । एवमधापवत्तादिकरणाणं णामणिहेसं कादूण संपहि एदेसिं तिण्हमद्दाहिंतो उवरि उवसामणद्धा होइ ति जाणावणट्टुत्तरसुत्तमोहण्णं—

\* चउत्थी उवसामणद्धा ।

§ ८७. का उवसामणद्धा णाम ? जग्हि अद्दाविसेसे दंसणमोहणीयमुवसंतावण्णं होदूण चिड्डु सा उवसामणद्धा ति भण्णदे । उवसमसम्माइट्टिकालो ति भणिदं होइ ।

\* एदेसिं करणाणं लक्खणं ।

§ ८८. एदेसिं करणाणं लक्खणपरुवणं इदाणिं कस्सामो ति भणिदं होइ । तत्थ ताव जहा उहेसो तद्दा णिहेसो ति णायादो अधापवत्तकरणलक्खणं पढममेव परुविअदे । तत्थ दोण्णि अणिओगहारणि—अणुकट्टिपरुवणा अप्पाबहुअं वेदि । एत्थ ताव सुत्तणिबद्धस्स अप्पाबहुअस्स साहणट्टुमणुकट्टिपरुवणं कस्सामो । तं जहा— अधापवत्तकरणपढमसमयप्यहुडि जाव चरिमसमओ ति ताव पादेकमेकेकम्मि समये

करणमें प्रत्येक समयमें अपूर्व अर्थात् असमान नियमसे अनन्तगुणरूपसे वृद्धिगत करण अर्थात् परिणाम होते हैं वह अपूर्वकरण है । इस करणमें होनेवाले परिणाम प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण होकर अन्य समयमें स्थित परिणामोंके सदृश नहीं होते हैं यह उक्त कथनका भावार्थ है । जिस करणमें विद्यमान जीवोंके एक समयमें परिणामभेद नहीं है वह अनिवृत्तिकरण है । इन करणोंका विशेष निर्णय ऊपर करेंगे । इस प्रकार अधःप्रवृत्त आदि करणोंका नामनिर्देश करके अब इन तीनोंके कालसे ऊपर ( आगे ) उपशामनकाल होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* चौथी उपशामनाद्धा है ।

§ ८७. शंका—उपशामनाद्धा किसे कहते हैं ?

समाधान—जिस कालविशेषमें दर्शनमोहनीय उपशान्त होकर अवस्थित होता है उसे उपशामनाद्धा कहते हैं । उपशमसम्यग्दृष्टिका काल यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* अब इन करणोंका लक्षण कहते हैं ।

§ ८८. इन करणोंके लक्षणका कथन इस समय करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसमें भी सर्वप्रथम 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार प्रथम ही अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहते हैं । उसमें दो अनुयोगद्वार हैं—अनुकृष्टिप्ररूपाणा और अल्पबहुत्व । यहाँ सर्वप्रथम सूत्रमें निबद्ध किये गये अल्पबहुत्वका साधन करनेके लिये अनुकृष्टिका कथन करेंगे । यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक पृथक्

असंखेजलोगमेत्ताणि परिणामद्व्याणाणि छवद्विकमेणावद्विदाणि द्विदिबंधोसरणादीणं कारणभूदाणि अत्थि । तेसिं परिवाडीए विरचिदाणं पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा अणुकट्टी णाम । अनुकर्षणमनुकृष्टिरन्योन्येन समानत्वानुचितनमित्यनर्थान्तरम् । सा वुण संसारपाओग्गेषु द्विदिबंधज्झवसाणद्व्याणादिपरिणामेषु पल्लिदोवमस्म असंखेज्जदिभागमेत्तद्व्याणमुवरि गंतूण वोच्छिज्जदि, जहण्णद्विदिबंधपाओग्गपरिणामाणमुवरि पल्लिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तद्विदिविसेसेसु अणुवुत्तोए तत्थ दंसणादो । इह वुण तथा ण होइ, किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तमवद्विदमद्व्याणं सगद्व्याए संखेज्जदिभागं गंतूणाणुकट्टिवोच्छेदो होदि । तत्कथमिति चेत् ? उच्यते—अधापवत्तकरणपढमसमए असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणामद्व्याणाणि होति । पुणो विदियसमए ताणि चैव परिणामद्व्याणाणि अण्णेहिं अपुण्वेहिं परिणामद्व्याणेहिं विसेसाहियाणि । केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगपरिणामद्व्याणमेत्तो पढमसमयपरिणामद्व्याणाणमंतोमुहुत्तपडिभागिओ । एवमेदेण पडिभागेण समयं पडि विसेसाहियाणि कादूण णेद्व्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो ति ।

पृथक् एक-एक समयमें छह वृद्धियोंके क्रमसे अवस्थित और स्थितिबन्धापसरणादिकके कारण-भूत असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं । परिपाटीक्रमसे विरचित इन परिणामोंके पुनरुक्त और अपुनरुक्त भावका अनुसन्धान करना अनुकृष्टि है । 'अनुकर्षणमनुकृष्टिः' अर्थात् उन परिणामोंकी परस्पर समानताका विचार करना यह अनुकृष्टिका एकार्थ है । परन्तु वह संसारके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानादिरूप परिणामोंके रहते हुए पत्त्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल ऊपर जाकर व्युच्छिन्न होती है, क्योंकि जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणामोंके सद्भावमें पत्त्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविशेषोंकी अनुवृत्ति वहाँ देखी जाती है । परन्तु यहाँ पर वैसा नहीं होता, किन्तु अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित कालके, जो कि अपने अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है, न्यतीत होनेपर अनुकृष्टिका विच्छेद होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—कहते हैं—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं । पुनः दूसरे समयमें वे ही परिणामस्थान अन्य अपूर्व परिणामस्थानोंके साथ विशेष अधिक होते हैं ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—प्रथम समयके परिणामस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम प्राप्त होते हैं उतना है ।

इस प्रकार इस प्रतिभागके अनुसार प्रत्येक समयमें विशेष अधिक परिणामस्थान करके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक ऐसा ही जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिसमें आगेके समयोंमें होनेवाले परिणामोंकी पिछले समयके परिणामोंके साथ समानता दिखलाई जाती है उसका नाम अनुकृष्टि है । यह अनुकृष्टि संसार अवस्थाके

§ ८९. संपहि एदेसिं परिणामट्टाणाणं पढमसमयप्पहुडि उवरि जहाकमं विसेसा-  
हियकमेण ठवणा एवमणुगंतव्वा । तं जहा—पढमसमयअधापवत्तकरणस्य जाणि  
परिणामट्टाणाणि ताणि अंतोमुहुत्तस्स जत्तिया समया तत्तियमेत्ताणि खंडाणि कायव्वाणि ।  
किंपमाणमेदमतोमुहुत्तमिदि पुच्छिदे सगद्दाए संखेज्जदिभागमेत्तं । तमेव णिव्वग्गण-  
कंडयमिदि घेत्तव्वं । विव्विखयसमयपरिणामाणं जत्तो परमणुकट्टिवोच्छेदो तं  
णिव्वग्गणकंडयमिदि भण्णदे । संपहि एदाणि खंडाणि किमण्णोण्णं सरिसाणि, आहो  
विसरिसाणि त्ति पुच्छिदे सरिसाणि ण होंति, विसरिसाणि चेवे त्ति घेत्तव्वं, अण्णोण्णं  
पेक्खियूण जहाकममेदेसिं विसेसाहियकमेणावट्टाणदंसणादो । एसो विसेसो अंतोमुहुत्त-  
पडिभागिओ । पुणो एदाणि चैव परिणामट्टाणाणि पढमखंडवज्जाणि विदियसमए  
परिवाडिमुल्लंघिय ठवेयव्वाणि । णवरि अण्णाणि च अपुव्वाणि परिणामट्टाणाणि  
असंखेज्जलोगमेत्ताणि पढमसमयचरिमखंडपरिणामेहिंतो अंतोमुहुत्तपडिभागेण

परिणामोंमें भी पाई जाती है और अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंमें भी पाई जाती है । अन्तर इतना है कि संसार अवस्थामें इस अनुकृष्टिका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है क्योंकि जघन्य स्थितिवन्धके योग्य जो परिणाम होते हैं उनके सद्भावमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविशेषोंकी उपलब्धि देखी जाती है । परन्तु अधःप्रवृत्तकरणमें इस अनुकृष्टिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थितस्वरूप है, क्योंकि यह काल अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है । इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं, उनमेंसे प्रारम्भके एक खण्डप्रमाण परिणामोंको छोड़कर दूसरे समयमें भी अन्य अपूर्व परिणामस्थानोंके साथ वे परिणामस्थान पाये जाते हैं । इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए । इस विषयका विशेष खुलासा आगे करेंगे ।

§ ८९. अब प्रथम समयसे लेकर यथाक्रम विशेष अधिकके क्रमसे इन परिणामस्थानोंकी स्थापना इस प्रकार जाननी चाहिए । यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो परिणामस्थान होते हैं उन्हें अन्तर्मुहूर्त कालके जितने समय हैं मात्र उतने खण्डप्रमाण करना चाहिए ।  
शंका—इस अन्तर्मुहूर्तका क्या प्रमाण है ?

**समाधान**—अपने कालके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

वही निर्वर्गणाकाण्डक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । विवक्षित समयके परिणामोंका जिस स्थानसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद होता है वह निर्वर्गणाकाण्डक कहा जाता है । अब ये खण्ड परस्पर क्या सदृश होते हैं या विसदृश होते हैं ऐसा पूछने पर सदृश नहीं होते हैं, विसदृश ही होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि एक-दूसरेको देखते हुए ये यथाक्रम विशेष अधिकक्रमसे ही अवस्थित देखे जाते हैं । यह विशेष अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना है । पुनः प्रथम खण्डको छोड़कर इन्हीं परिणामस्थानोंको दूसरे समयमें परिपाटीको उल्लंघन कर स्थापित करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इस दूसरे समयमें असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणामस्थान होते हैं जो प्रथम समयके अन्तिम खण्डके

१. ता०प्रती प्रायः सर्वत्र 'कंडय' स्थाने 'खंडय' इति पाठः । २. ता०प्रती जत्तो परमाणुणुकट्टिवोच्छेदो इति पाठः ।

विसेसाहियाणि । एत्थ चरिमखंडभावेण ठवेयव्वाणि । एवं ठविदे विदियसमयए वि अंतोमुहुत्तमेत्ताणि चेव परिणामखंडाणि लद्धाणि हवंति । एवं तदियादिसमएसु वि परिणामट्टाणविण्णासो जहाकमं कायव्वो जाव अथापवत्तकरणचरिमसमयो ति ।

परिणामोंसे अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने विशेष अधिक होते हैं। उन्हें यहाँ अन्तिम खण्डरूपसे स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार स्थापित करने पर दूसरे समयमें भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण परिणामखण्ड प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमें भी परिणामस्थानोंकी रचना अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक क्रमसे करनी चाहिए।

**विशेषार्थ**—जिस कारणमें ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम पिछले समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश होते हैं, उस कारणको अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है और इस कारणमें होनेवाले परिणामोंका प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है। फिर भी इसके प्रथम समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं, दूसरे समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ये प्रत्येक समयके परिणाम उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिको लिये हुए विशेष अधिक हैं। यह अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपनिर्देशके साथ उसके काल और उसके प्रत्येक समयमें होनेवाले परिणामोंकी क्रमवृद्धिको लिये हुए किस प्रकार कहाँ कितने परिणाम होते हैं इसका सामान्य निर्देश है। आगे इस कारणके प्रत्येक समयमें परिणामस्थानोंकी व्यवस्था किस प्रकार है इसे स्पष्ट करके बतलाते हैं। ऐसा नियम है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जितने परिणाम होते हैं वे अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण खण्डोंमें विभाजित हो जाते हैं। जो उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाणको लिये हुए होते हैं। यहाँ पर उन परिणामोंके जितने खण्ड हुए, निर्वर्गणाकाण्डक भी उतने समयप्रमाण होता है, जिसकी समाप्तिके बाद दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसका स्वरूपनिर्देश टीकामें किया ही है। यहाँ जो प्रथम खण्डसे दूसरे खण्डको और दूसरे आदि खण्डोंसे तीसरे आदि खण्डोंको विशेष अधिक कहा है सो उस विशेषका प्रमाण तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर प्राप्त होता है। ये सब खण्ड परस्परमें समान न होकर विसदृश ही होते हैं, क्योंकि आगे-आगे प्रत्येक खण्ड विशेष अधिक प्रमाणको लिये हुए होता है। इन खण्डोंमेंसे प्रथम खण्डगत परिणाम तो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही पाये जाते हैं। शेष अनेक खण्ड और तद्गत परिणाम दूसरे समयमें स्थित जीवोंके भी होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे दूसरे समयमें होते हैं। ये अपूर्व परिणाम प्रथम समयके अन्तिम खण्डमें तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं। तीसरे समयमें दूसरे समयके जितने खण्ड और तद्गत परिणाम हैं उनमेंसे प्रथम खण्ड और तद्गत परिणामोंको छोड़कर वे सब प्राप्त होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोक-प्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी प्राप्त होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे तीसरे समयमें पाये जाते हैं। इसी प्रकार इसी प्रक्रियासे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक चौथे आदि समयोंमें भी परिणामस्थानोंकी व्यवस्था जान लेनी चाहिए। आगे इस विषयको उदाहरण देकर संदृष्टि द्वारा और भी स्पष्ट किया गया है। अतः यहाँ मात्र संक्षेपमें निर्देश किया है।

§ ९०. अथवा अधापवत्तकरणपढमसमयपरिणामट्टाणाणमेवं खंडणविहाणमणु-  
गंतुवं । तं जहा—विदियसमयजहण्णपरिणामेण सह जं समाणं पढमसमयपरिणामट्टाणं  
तत्तो हेट्टिमासेसपरिणामट्टाणाणि घेत्तूण पढमसमए पढमखंडं भवदि । पुणो तदिय-  
समयजहण्णपरिणामेण सह सरिसं जं पढमसमयपरिणामट्टाणं तत्तो हेट्टिमासेसपुव्वगहिद-  
सेसपरिणामट्टाणाणि घेत्तूण तत्थेव विदियखंडपमाणं होइ । एवमेदेण कमेण गंतूण  
पुणो पढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयजहण्णपरिणामेण सह पढमसमयपरिणामट्टाणेसु  
जं परिणामट्टाणं सरिसं भवदि तत्तो हेट्टिमासेसपुव्वगहिदसेसपरिणामट्टाणाणि घेत्तूण  
पढमसमए दुचरिमखंडपमाणं होइ । तत्तो उवरिमसेसासेसविसोहिट्टाणेहिं चरिमखंड-  
पमाणमुप्पज्जइ । एवं च कदे अधापवत्तकरणद्धं संखेज्जखंडे कादूण तत्थेयखंडमि  
जत्तिया समया तत्तियमेत्ताणि चेव खंडाणि जादाणि । एवं विदियादिसमएसु वि  
पादेकमंतोमुहुत्तमेत्तखंडाणि जहावुत्तेण विहाणेणानुगंतव्वाणि जाव अधापवत्तकरण-  
चरिमसमयो त्ति । संपहि एवं परुविदासेसपरिणामट्टाणाणमेसा संदिट्टी ।

१०००००००००००१००००००००००१०००००००००००  
१००००००००००००० ।

१००००००००००१००००००००००१००००००००००१००-  
००००००००००० ।

१०००००००००१०००००००००१०००००००००१००००-  
०००००००० ।

१००००००००१००००००००१००००००००१००००००००० ।

§ ९०. अथवा अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके परिणामस्थानोंकी खण्डविधिको  
इस प्रकार जानना चाहिए । यथा—दूसरे समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयका जो  
परिणामस्थान समान होता है उनसे भिन्न पूर्वके समस्त परिणामस्थानोंको ग्रहणकर प्रथम  
समयमें प्रथमखण्ड होता है । पुनः तीसरे समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयका जो  
परिणामस्थान समान होता है उससे पूर्वके पहले ग्रहण किये गये समस्त परिणामोंसे शेष बचे  
हुए परिणामस्थानोंको ग्रहण कर वहीं दूसरे खण्डका प्रमाण होता है । इस प्रकार इस क्रमसे  
जाकर पुनः प्रथम निर्वर्गणाकाण्डके अन्तिम समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयके  
परिणामस्थानोंमें जो परिणामस्थान सदृश होता है उससे पूर्वके पहले ग्रहण किये गये समस्त  
परिणामोंसे शेष बचे हुए परिणामस्थानोंको ग्रहणकर प्रथम समयमें द्विचरम खण्डका प्रमाण  
होता है तथा उससे आगेके शेष समस्त विशुद्धिस्थानोंके द्वारा अन्तिम खण्डका प्रमाण उत्पन्न  
होता है । और ऐसा करने पर अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यात भाग करके उनमेंसे एक  
भागमें जितने समय होते हैं उतने ही खण्ड हो जाते हैं । इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके  
अन्तिम समयके प्राप्त होने तक द्वितीयादि समयोंमें भी पृथक्-पृथक् पूर्वोक्त कही गई विधिसे  
अन्तमुद्धृतप्रमाण खंड जानने चाहिए । इस प्रकार कहे गये समस्त परिणामस्थानोंकी यह  
संवृष्टि है ।

( संदृष्टि मूलमें दी है )

१०००००००१००००००००१००००००००१००००००००० ।  
 १००००००१०००००००१००००००००१०००००००० ।  
 १०००००१००००००१००००००१००००००० ।  
 १००००१०००००१०००००१०००००० ।

**विशेषार्थ—**यहाँ संदृष्टिमें अधःप्रवृत्तकरणका काल आठ समयप्रमाण स्वीकार करके प्रत्येक समयके परिणामोंको खण्डरूपसे चार-चार भागोंमें विभाजित किया गया है। संदृष्टिमें १ यह संख्या प्रत्येक खण्डकी सूचक है और शून्य उस-उस खण्डमें कितने-कितने परिणामस्थान हैं इसके सूचक हैं। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कुल परिणामस्थान २२ हैं जो चार खंडोंमें विभाजित हैं। उनमेंसे प्रथम खण्डमें ४, द्वितीय खण्डमें ५, तृतीय खण्डमें ६ और चौथे खण्डमें ७ परिणामस्थान स्वीकार किये गये हैं। यद्यपि अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा प्रत्येक समयके परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं, अतः प्रत्येक खण्डमें भी वे परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होते हैं, परन्तु यहाँ अंक संदृष्टिकी अपेक्षा उक्त प्रकारसे खण्डों और परिणामस्थानोंकी स्थापना की गई है। अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयमें प्रथम समयके प्रथम खण्डमें विवक्षित परिणामस्थान तो नहीं होते, प्रथम समयके शेष तीनों खण्डोंमें विभाजित शेष सब परिणामस्थान होते हैं। तथा इनके सिवाय असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणामस्थान भी होते हैं, संदृष्टिमें जिनकी रचना अन्तिम खण्डरूपसे ८ स्वीकार की गई है। इस प्रकार दूसरे समयमें कुल परिणामस्थान २६ कल्पित किये हैं। प्रथम खण्डमें ५, द्वितीय खण्डमें ६, तृतीय खण्डमें ७ और चतुर्थ खण्डमें ८ इस प्रकार अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा कुल परिणामस्थान स्वीकार किये गये हैं। इनमेंसे दूसरे समयके प्रथम खण्डके ५ परिणामस्थान प्रथम समयके दूसरे खंडके ५ परिणामस्थानोंके समान हैं। दूसरे खण्डके ६ परिणामस्थान प्रथम समयके तीसरे खण्डके ६ परिणामस्थानोंके समान हैं। तथा तीसरे खण्डके ७ परिणामस्थान प्रथम समयके चौथे खण्डके ७ परिणामस्थानोंके समान हैं। यहाँ दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाले परिणामस्थान प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाले परिणामस्थानोंके समान होनेसे इसीका नाम अनुकृष्टि है। दूसरे समयके अन्तिम खण्डमें जो परिणामस्थान विवक्षित किये गये हैं वे प्रथम समयके सब परिणामस्थानोंसे विलक्षण हैं। प्रथम समयमें उनमेंसे एक भी परिणामस्थान नहीं पाया जाता। अधःप्रवृत्तकरणके तीसरे समयमें प्रथम समयके प्रथम और द्वितीय खण्डके तथा द्वितीय समयके प्रथम खण्डके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान तो नहीं पाये जाते, प्रथम और द्वितीय समयके शेष सब खण्डोंके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान पाये जाते हैं। कारण यह है कि प्रथम समयके दूसरे खण्डके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान तो दूसरे समय तक ही पाये जाते हैं, इसलिये इनका तीसरे समयमें न पाया जाना युक्तियुक्त ही है। किन्तु प्रथम समयके अन्तिम दो खण्डोंके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान द्वितीय समयके द्वितीय और तृतीय खण्डोंके समान होनेसे उनकी अनुवृत्ति तृतीय समयके प्रथम और द्वितीय खण्डरूपसे भी देखी जाती है। तृतीय समयके तीसरे खण्डमें तत्सदृश ही परिणामस्थान होते हैं जो द्वितीय समयके अन्तिम खण्डमें पाये जाते हैं। इस प्रकार तीसरे समयके प्रथम खण्डमें ६, दूसरे खण्डमें ७, तीसरे खण्डमें ८ और चौथे खण्ड में ९ परिणामस्थान होते हैं, जो सब मिलाकर ३० होते हैं। इसी प्रकार चौथे आदि समयोंमें भी परिणामस्थान और उनके खण्डोंकी व्यवस्था जान लेनी चाहिए। यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि प्रथम समयके चार खण्डोंमें विभाजित जो परिणामस्थान हैं उनमेंसे प्रथम

§ ९१. संपहि एदीए संदिद्वीए अणुकट्टिपरूवणं कस्सामो । तं जहा—अधा-  
पवत्तकरणपढमसमयपढमखंडपरिणामा उवरिमसमयपरिणामेसु केहिं मि समाणा ण  
होति । तत्थेव विदियखंडपरिणामा विदियसमयपढमखंडपरिणामेहिं सरिसा । एवमेत्थ-  
तणतदियादिखंडपरिणामाणं पि तदियादिसमयपढमखंडपरिणामेहिं जहाकमं पुणरुत्त-  
भावो अणुगंतव्वो जाव पढमसमयचरिमखंडपरिणामा पढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमय-  
पढमखंडपरिणामेहिं पुणरुत्ता होदूण णिद्विदा त्ति । एवं अधापवत्तकरणविदियादिसमय-  
परिणामखंडाणं पि पादेकं णिरुभणं कादूण तत्थतणविदियादिखंडपरिणामाणं णिरुद्ध-  
समयादो उवरिमसमयूणणिव्वग्गणकंडयमेत्तसमयपंतीणं पढमखंडपरिणामेहिं पुणरुत्त-  
भावो परूवेयव्वो । णवरि सव्वत्थ पढमखंडपरिणामा अपुणरुत्तभावेणावसिद्धा दड्डव्वा ।

खण्डके परिणामस्थान तो प्रथम समयमें ही होते हैं । द्वितीय खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान द्वितीय समयमें भी पाये जाते हैं । तीसरे खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान द्वितीय और तृतीय समयमें भी पाये जाते हैं तथा चौथे खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान दूसरे, तीसरे और चौथे समयमें भी पाये जाते हैं । इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए । यतः प्रथम समयके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान चौथे समय तक ही पाये जाते हैं, अतः उक्त विधिसे प्रथम समयके परिणामस्थानोंकी चौथे समय तकके परिणामस्थानोंके साथ सदृशता और विसदृशता होनेसे इन परिणामस्थानोंकी अनुकृष्टि चौथे समयसे लेकर प्रथम समय तक बनती है । निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी इतना ही है । इससे आगे दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है । विवक्षित समयके परिणामोंका जिस स्थानसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद होता है उनका नाम निर्वर्गणाकाण्डक है । जैसे अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा प्रथम समयके परिणामोंकी चौथे समयसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद है, इसलिये यहाँ निर्वर्गणाकाण्डक चार समय प्रमाण हुआ । इस अपेक्षासे इससे आगे दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है । इसी प्रकार अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जान लेना चाहिए ।

§ ९१. अब इस संदृष्टिका आलम्बन लेकर अनुकृष्टिका प्ररूपण करेगे । यथा—अधः-  
प्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी प्रथम खण्डके परिणाम उपरिम समयसम्बन्धी परिणामों  
मेंसे किन्हीं भी परिणामोंके समान नहीं होते हैं । वहीं पर दूसरे खण्डके परिणाम दूसरे  
समयके प्रथम खण्डके परिणामोंके समान होते हैं । इसी प्रकार यहाँके अर्थात् प्रथम समयके  
तीसरे आदि खण्डोंके परिणामोंका भी तृतीय आदि समयोंके प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ  
क्रमसे पुनरुक्तपना तब तक जानना चाहिए जब जाकर प्रथम समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डके  
परिणाम प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयके प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्त  
होकर समाप्त होते हैं । इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयादि समयोंके परिणामखंडोंकी  
भी पृथक्-पृथक् विवक्षित कर वहाँके द्वितीय आदि खण्डगत परिणामोंका विवक्षित समय  
( द्वितीय आदि समय ) से लेकर ऊपर एक समय कम निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण समयपंक्तियों  
के प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्तपनेका कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि  
सर्वत्र प्रथम खण्डके परिणाम अपुनरुक्तपनेसे अवशिष्ट जानने चाहिए । अर्थात् प्रत्येक समय

एवं चैव । विदियणिव्वग्गणकंडयपरिणामखंडाणं तदियणिव्वग्गणखंडयपरिणामखंडेहिं पुणरुत्तभावं कादूण णेदव्वं । एत्थ वि पढमखंडपरिणामा चैव अपुणरुत्तभावेण पडिसिद्धा त्ति । एदेणेव कमेण तदिय-चउत्थ-पंचमादिणिव्वग्गणकंडयाणं पि अणंतरो-वरिमणिव्वग्गणकंडएहिं पुणरुत्तभावं कादूण णेदव्वं जाव दुचरिमणिव्वग्गणकंडय-पढमादिसमयसव्वपरिणामखंडा पढमखंडवज्जा चरिमणिव्वग्गणकंडयपरिणामेहिं पुणरुत्ता होदूण णिद्धिदा त्ति । संपहिं चरिमणिव्वग्गणकंडयपरिणामाणं पि सत्थाणे पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा समयाविरोहेण कायव्वा ।

§ ९२. अथवा एवमेत्थ सण्णियासो कायव्वो । तं कथं ? पढमसमए जं पढमखंडं तमुवरि केण वि सरिसं ण होइ । पुणो पढमसमयविदियखंडं विदियसमय-पढमखंडं च दो वि सरिसाणि । पुणो पढमसमयतदियखंडं विदियसमयविदियखंडं च दो वि सरिसाणि । एवं गंतूण पुणो पढमसमयचरिमखंडं विदियसमयदुचरिमखंडं च

के प्रथम खण्डके परिणाम अगले समयके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं होते । इसी प्रकार दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामखण्डोंका तीसरे निर्वर्गणाकाण्डकके परिणाम-खण्डोंके साथ पुनरुक्तपना जानना चाहिए । किन्तु यहाँपर भी प्रथम खण्डके परिणाम ही अपुनरुक्तरूपसे अवशिष्ट रहते हैं । इसी क्रमसे तीसरे, चौथे और पाँचवें आदि निर्वर्गणा-काण्डकोंके भी अनन्तर उपरिम निर्वर्गणाकाण्डकोंके साथ पुनरुक्तपना वहाँ तक जानना चाहिए जब जाकर द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमादि समयोंके सब परिणामखण्ड प्रथम खण्डको छोड़कर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामोंके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं । अब अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामोंके स्वस्थानमें पुनरुक्त-अपुनरुक्तपनेका अनुसन्धान परमागमके अविरोधपूर्वक करना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ निर्वर्गणाकाण्डकके आश्रयसे पूर्व-पूर्व समयके परिणामोंकी उत्तरोत्तर आगे-आगेके परिणामोंके साथ किस प्रकार सदृशता और विसदृशता है यह बतलाया गया है । उदाहरणार्थ प्रथम समयके प्रथम खण्डके परिणाम अगले समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं हैं । इसी प्रकार दूसरे आदि समयोंके प्रथम खण्डके परिणामोंके विषयमें भी जान लेना चाहिए । वे भी उत्तरोत्तर आगे-आगेके समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं हैं । शेष परिणामोंके विषयमें ऐसा जानना चाहिए कि प्रथम समयके द्वितीय खण्डके परिणाम तथा दूसरे समयके प्रथम खण्डके परिणाम परस्पर सदृश हैं । इसीप्रकार आगे भी सदृशिके अनुसार जान लेना चाहिए ।

§ ९२. अथवा यहाँपर इस प्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—प्रथम समयमें जो प्रथम खण्ड है वह ऊपर किसीके साथ भी सदृश नहीं है । पुनः प्रथम समयका दूसरा खण्ड तथा दूसरे समयका प्रथम खण्ड दोनों ही सदृश हैं । पुनः प्रथम समयका तीसरा खण्ड और दूसरे समयका दूसरा खण्ड ये दोनों सदृश हैं । इसी प्रकार जाकर पुनः प्रथम समयका अन्तिम खण्ड तथा दूसरे समयका द्विचरम खण्ड ये



दो वि सरिसाणि । एवं विदियसमयपरिणामखंडाणं तदियसमयपरिणामखंडाणं च सण्णियासो कायच्चो । एवमुवरि वि अणंतराणंतरेण सण्णियासविहारणं जाणियूण णेदच्चं । एवमणुकट्टिपरूवणा गया ।

दोनों सदृश हैं । इसी प्रकार दूसरे समयके परिणामखण्डोंका और तीसरे समयके परिणाम-खण्डोंका सन्निकर्ष करना चाहिए । इसी प्रकार ऊपर भी पिछलेकी तदनन्तरके साथ सन्निकर्ष-विधि जानकर कथन करना चाहिए । इस प्रकार अनुकृष्टिपरूपणा समाप्त हुई ।

**विशेषार्थ**—यहाँपर आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्व तथा अनुकृष्टि रचनाका स्पष्ट ज्ञान करनेके लिये अंकसंदृष्टि दी जाती है । अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अंक-संदृष्टिमें यहाँ १६ स्वीकार किया गया है । कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, जो यहाँ ३०७२ स्वीकार किये गये हैं । ये सब परिणाम प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर समान वृद्धिको लिये हुए हैं । इस हिसाबसे यहाँ समान वृद्धि या चयका प्रमाण ४ है । प्रथम स्थानमें वृद्धिका अभाव है, इसलिये प्रथम समयको छोड़कर १५ समयोंमें क्रमशः चयकी वृद्धि हुई है, अतः एक कम सब समयोंके आवेको चय और समयोंकी संख्यासे गुणित करनेपर  $१६ - १ = १५$ ;  $१५ \div २ = \frac{१५}{२}$ ;  $\frac{१५}{२} \times ४ \times १६ = ४८०$  चयधनका प्रमाण होता है । इसे सर्वधन ३०७२ में से

घटाकर शेष २५९२ में सब समयोंका भाग देनेपर १६२ लब्ध आता है । यह प्रथम समयके परिणामोंका प्रमाण है । पुनः प्रथम समयके कुल परिणामोंकी संख्या १६२ में चयका प्रमाण ४ मिलानेपर दूसरे समयके सब परिणामोंकी संख्या १६६ होती है । इसमें चयका प्रमाण ४ मिलानेपर तीसरे समयके सब परिणामोंकी संख्या १७० होती है । इसी हिसाबसे प्रत्येक समयमें चयप्रमाण परिणामोंकी वृद्धि करते हुए अन्तिम समयमें सब परिणामोंकी संख्या २२२ होती है । इस प्रकार १६ समयोंमें विभाजित इन परिणामोंका कुल योग ३०७२ होता है । इसका आशय यह है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रथम समयमें कुल १६२ परिणाम होते हैं, दूसरे समयमें १६६ और तीसरे समयमें १७० परिणाम होते हैं । एक समयमें एक जीवके एक ही परिणाम होता है, इसलिये यहाँ प्रत्येक समयमें उस उस समयके ये परिणाम नाना जीवोंके होते हैं, ऐसा कहा गया है ।

यह तो अधःप्रवृत्तकरणके कालमें उसमें होनेवाले सब परिणामोंका विभागीकरण किस प्रकारसे है इसका विचार हुआ । अब ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंकी नीचेके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता और विसदृशता किस प्रकारसे है यह बतलानेके लिए अनुकृष्टि रचना करते हैं । अधःप्रवृत्तकरणके प्रत्येक समयके जितने परिणाम हैं उनके अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं उतने खण्ड करे । यह अन्तर्मुहूर्त अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातर्वे भागप्रमाण है । इस हिसाबसे संख्यातका प्रमाण ४ स्वीकार कर उसका भाग १६ में देने पर ४ लब्ध आये । निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी इतना ही है, अतः प्रत्येक समयके परिणामोंको चार-चार खण्डोंमें विभाजित करना चाहिए । उसमें भी प्रथम खण्डसे द्वितीय खण्ड, द्वितीय खण्डसे तृतीय खण्ड और तृतीय खण्डसे चतुर्थ खण्ड विशेष अधिक है । यहाँ विशेष या चयका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तका भाग निर्वर्गणाकाण्डकके प्रमाणमें देने पर जो लब्ध आवे उतना है । पहले अंकसंदृष्टिमें निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण ४ बतला आये हैं । अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण भी इतना ही है । अतः अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ४ का भाग निर्वर्गणाकाण्डक

के प्रमाण ४ में देने पर लब्ध १ आया। यही प्रकृतमें विशेषका प्रमाण है। इस हिसाबसे यहाँ प्रथम खण्डमें तो वृद्धिका प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे खण्डमें प्रथम खण्डसे १ संख्या की वृद्धि हुई है, तीसरे खण्डमें प्रथम खण्डसे २ संख्याकी और चौथे खण्डमें प्रथम खण्डसे ३ संख्याकी वृद्धि हुई है, क्योंकि प्रथम खण्डसे उत्तरोत्तर द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक अंककी वृद्धि स्वीकार करनेपर उन खण्डोंमें वृद्धिको प्राप्त हुई संख्या उक्तप्रमाण ही प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रकृतमें चय धनका कुल योग ६ होता है। इसे प्रथम समयके परिणाम १६२ मेंसे घटा देनेपर कुल १५६ परिणाम शेष रहे। इसमें खंडप्रमाण संख्या ४ का भाग देने पर ३९ प्रथम खण्डके परिणामोंका प्रमाण होता है। तथा द्वितीयादि खण्डोंका प्रमाण क्रमसे ४०, ४१ और ४२ होता है। यह प्रथम समयके परिणामोंकी खण्डोंमें रचना किस प्रकार है इसका क्रम है। इसी विधिसे द्वितीयादि समयोंके परिणामोंकी ४-४ खण्डोंमें रचना कर लेनी चाहिए। आगे इसीको अंकसंदृष्टिकी रचना द्वारा स्पष्ट करते हैं—

समयका क्रम नं०	परिणामोंका प्रमाण	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	तृतीय खण्ड	चतुर्थ खण्ड
१	१६२	३९	४०	४१	४२
२	१६६	४०	४१	४२	४३
३	१७०	४१	४२	४३	४४
४	१७४	४२	४३	४४	४५
५	१७८	४३	४४	४५	४६
६	१८२	४४	४५	४६	४७
७	१८६	४५	४६	४७	४८
८	१९०	४६	४७	४८	४९
९	१९४	४७	४८	४९	५०
१०	१९८	४८	४९	५०	५१
११	२०२	४९	५०	५१	५२
१२	२०६	५०	५१	५२	५३
१३	२१०	५१	५२	५३	५४
१४	२१४	५२	५३	५४	५५
१५	२१८	५३	५४	५५	५६
१६	२२२	५४	५५	५६	५७

अर्थसंदृष्टिको स्पष्ट करनेके लिये यह अंकसंदृष्टि कल्पित की गई है। इसे देखनेसे विदित होता है कि प्रथम समयके प्रथम खण्डके जो ३९ परिणाम हैं वे मात्र प्रथम समयमें ही किन्हीं जीवोंके पाये जाते हैं द्वितीयादि समयोंमें नहीं। प्रथम समयके द्वितीय खण्डके जो ४० परिणाम हैं वे किन्हीं जीवोंके प्रथम समयमें भी पाये जाते हैं और किन्हीं जीवोंके दूसरे समयमें भी पाये जाते हैं। इससे अगले समयोंमें नहीं। प्रथम समयके तृतीय खण्डके

§ ९३. संपहि अप्पावहुअपरूवणं कस्सामो । तं च दुविहमप्पावहुअं सत्थाण-  
परत्थाणभेदेण । तत्थ ताव सत्थाणप्पावहुअं कस्सामो । तं जहा—अधापवत्तकरण-  
पढमसमयम्मि पढमखंडजहण्णपरिणामो थोवो । तत्थेव विदियखंडजहण्णपरिणामो  
अणंतगुणो । तदियखंडजहण्णपरिणामो अणंतगुणो । एवं णेदव्वं जाव चरिमखंड-  
जहण्णपरिणामो अणंतगुणो त्ति । एवं पढमसमयपरिणामखंडाणं जहण्णपरिणाम-  
ट्टाणाणि चैव अस्सिऊण सत्थाणप्पावहुअं कदं । संपहि पढमसमयम्मि पढमखंडस्स  
उक्कस्सपरिणामो थोवो । तत्थेव विदियखंडउक्कस्सपरिणामो अणंतगुणो । तदियखंड-  
उक्कस्सपरिणामो अणंतगुणो । एवमुवरि वि णेदव्वं जाव चरिमखंडउक्कस्सपरिणामो  
अणंतगुणो त्ति । एवं पढमसमयसव्वखंडाणमुक्कस्सपरिणामे अस्सियूण सत्थाणप्पा-  
वहुअं भणिदं । एवं चैव विदियसमयप्पहुडि खंडं पडि ट्टिदजहण्णुक्कस्सपरिणामाणं  
सत्थाणप्पावहुअमणुगंतव्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति । तदो सत्थाणप्पा-  
वहुअं गदं । संपहि परत्थाणप्पावहुअपरूवणट्टमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

जो ४१ परिणाम हैं वे प्रथम समयके समान द्वितीय और तृतीय समयमें भी पाये जाते हैं, इससे अगले समयोंमें नहीं और इसी प्रकार प्रथम समयके चौथे खण्डके जो ४२ परिणाम हैं वे प्रथम समयसे लेकर चौथे समय तक ही पाये जाते हैं, इससे अगले समयोंमें नहीं । इस प्रकार प्रथम समयके परिणामोंकी अनुकृष्टि उक्त अंक संदृष्टिके अनुसार चौथे समय तक बनती है, इससे आगे नहीं । तथा चौथे समयसे आगे प्रथम समयमें पाये जानेवाले परिणामों की निर्वृत्ति हो जाती है, इसलिये इससे आगे प्रथम समयके परिणामोंकी व्युच्छित्ति हो जाने से निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी ४ समयप्रमाण ही प्राप्त होता है । यह प्रथम समयके परिणामोंकी व्यवस्था है । द्वितीयादि समयोंमें पाये जानेवाले परिणामोंकी व्यवस्था भी उक्त पद्धतिसे कर लेनी चाहिए, विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ पृथक्-पृथक् मीमांसा नहीं की है । शेष स्पष्टीकरण मूलसे ही हो जाता है ।

§ ९३. अब अल्पबहुत्वका कथन करेंगे । वह अल्पबहुत्व स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे सर्वप्रथम स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करेंगे । यथा—  
अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्रथम खण्डका जघन्य परिणाम सबसे स्तोक है । उससे वहीं पर द्वितीय खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है । उससे वहीं पर तीसरे खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है । इस प्रकार वहीं पर अन्तिम खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए । इस प्रकार मात्र प्रथम समयके परिणामखण्डोंके जघन्य परिणामस्थानोंका अवलम्बन लेकर स्वस्थान अल्पबहुत्व किया । अब प्रथम समयमें प्रथम खण्डका उत्कृष्ट परिणाम स्तोक है । उससे वहीं पर दूसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है । उससे वहीं पर तीसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है । इसी प्रकार आगे भी अन्तिम खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए । इस प्रकार प्रथम समयके सब खण्डोंके उत्कृष्ट परिणामोंका आलम्बन लेकर स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया । इसी प्रकार दूसरे समयसे लेकर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक प्रत्येक खण्डके प्रति प्राप्त जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंका स्वस्थान अल्पबहुत्व जानना चाहिए । इसके बाद स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन समाप्त

\* अधापवत्तकरणपढमसयए जहणिया विसोही थोवा ।

§ ९४. किं कारणं ? एत्तो अण्णस्स जहणविसोहिट्ठाणस्स अधापवत्तकरण-  
विसए अणुवलंभादो ।

\* विदियसमए जहणिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ९५. कुदो ? पढमसमयजहणविसोहिट्ठाणादो छट्ठाणकमेणासंखेज्जलोगमेत्त-  
विसोहिट्ठाणाणि समुत्तंघियूण द्विदिविदियखंडजहणविसोहिट्ठाणस्स विदियसमए  
जहणभाबदंसणादो ।

\* एवमंतोमुहुत्तां ।

§ ९६. एवमेदेण कमेण जहणविसोहीओ चैव पडिसमयमणंतगुणकमेण  
णेदव्वाओ जाव अंतोमुहुत्तमुवरिं चडिदूण द्विदपढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमओ ति  
भणिदं होदि ।

हुआ । अब परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है ।

§ ९४. क्योंकि इससे कम अन्य जघन्य विशुद्धिस्थान अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं  
पाया जाता ।

\* उससे दूसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ९५. क्योंकि प्रथम समयके जघन्य विशुद्धिस्थानसे षट्स्थानक्रमसे असंख्यात लोक-  
मात्र विशुद्धिस्थानोंको उल्लंघन कर स्थित हुए दूसरे खण्डके जघन्य विशुद्धिस्थानका दूसरे  
समयमें जघन्यपना देखा जाता है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयका जो दूसरा खण्ड है तत्सदृश ही दूसरे  
समयका प्रथम खण्ड है । जैसा कि पूर्वोक्त अंक संदृष्टिसे स्पष्ट ज्ञात होता है । इन दोनों  
स्थानोंकी जघन्य विशुद्धि समान होकर भी यह प्रथम समयके प्रथम खण्डकी जघन्य  
विशुद्धिसे षट्स्थान पतितक्रमसे अनन्तगुणी है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । जीवकाण्ड ज्ञान-  
मार्गणाके अन्तर्गत श्रुतज्ञान प्ररूपणाके समय पर्यायज्ञानके ऊपर पर्यायसमास ज्ञानके वृद्धि  
क्रमको बतलानेके लिये जो षट्स्थानपतित वृद्धिका निर्वेश किया है उसी प्रकार यहाँ भी  
घटित कर लेना चाहिए ।

\* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त तक जानना चाहिए ।

§ ९६. इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर स्थित हुए प्रथम निर्वर्गणाकाण्डके अन्तिम  
समयके प्राप्त होने तक इस क्रमसे जघन्य विशुद्धिका ही प्रति समय अनन्तगुणितक्रमसे  
कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है जो  
अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर  
प्रथम निर्वर्गणाकाण्डके अन्तिम समय तक प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिसे दूसरे समय-

§ ९७. संपहि एत्तो उवरि किंचि णाणत्तमत्थि त्ति तप्पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

\* तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ९८. किं कारणं ? पुब्बिन्लजहणणविसोही णाम अधापवत्तकरणपढमसमय-  
विसोहिट्ठाणाणं चरिमखंडस्सादिविसोही । एसा वुण तत्थेवुक्कस्सविसोही, तत्तो असंखेज्ज-  
लोगमेत्तपरिणामट्ठाणाणि छट्ठाणवट्ठिदसरूवाणि वोलिय समवट्ठिदा । तदो पुब्बिन्ल-  
जहणणविसोहीदो एसा अणंतगुणा जादा ।

\* जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा तदो उवरिमसमए जहण्णिया  
विसोही अणंतगुणा ।

की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । दूसरे समयकी जघन्य विशुद्धिसे तीसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है तथा तीसरे समयकी जघन्य विशुद्धिसे चौथे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक पूर्व-पूर्वके समयकी जघन्य विशुद्धिसे अगले-अगले समयकी जघन्य विशुद्धि उत्तरोत्तर अनन्तगुणी जाननी चाहिए यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । अंकसंवृष्टिकी अपेक्षा यहाँ निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण ४ है । निर्वर्गणा-  
काण्डकको प्रत्येक समयकी यह जघन्य विशुद्धि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके प्रथमादि खण्डगत जघन्य विशुद्धियोंके सदृश होनेसे निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक इसका जघन्यपना देखा जाता है यह उक्त अंकसंवृष्टिसे भले प्रकार ज्ञात होता है ।

§ ९७. अब इससे ऊपर कुछ नानात्व है उसका कथन करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* उससे प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ९८. क्योंकि इससे समनन्तर पूर्व जो जघन्य विशुद्धि बतला आये हैं वह तो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके विशुद्धिस्थानोंके अन्तिम खण्डकी आदिकी विशुद्धि है और यह ( प्रकृत सूत्र निर्दिष्ट ) वहींपर उत्कृष्ट विशुद्धि है जो उक्त जघन्य विशुद्धिसे छह स्थान क्रमसे वृद्धिरूप असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थानोंको उल्लंघनकर अवस्थित है, इसलिये अनन्तर पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे यह अनन्तगुणी हो गई है ।

विशेषार्थ—प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि और अधः-  
प्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि सदृश है यह समनन्तर पूर्व  
ही बतला आये हैं । यहाँ प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अधः-  
प्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिको जो अनन्तगुणा बतलाया है  
सो इससे उसी खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि लेनी चाहिए, क्योंकि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके  
अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डकी  
उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होना युक्तियुक्त है । अंकसंवृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके  
प्रथम समयका अन्तिम खण्ड ४२ अंक प्रमाण है । चौथे समयके प्रथम खण्डका भी यही  
प्रमाण है । अतः स्पष्ट है कि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे  
प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

\* पूर्वमें जहाँ जघन्य विशुद्धि समाप्त हुई है उससे उपरिम समयमें जघन्य  
विशुद्धि ( प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ) अनन्तगुणी है ।

§ ९९. एत्थ 'जम्हि जहणिया विसोही णिट्ठिदा' त्ति वयणेण पढमणिव्वग्गण-  
कंडयचरिमसमयस्स परामरिसो कओ । तमवहियं कादूण जहणविसोहिट्ठ्ठाणाणमणंत-  
गुणवट्ठिकमेण पुव्वं परूविदत्तादो । उदो उवरिमसमए त्ति वुत्ते विदियणिव्वग्गण-  
कंडयपढमसमयो घेत्तव्वो । एत्थतणजहणविसोही पढमसमयउक्कस्सविसोहीदो  
अणंतगुणा होइ । किं कारणं ? पढमसमयउक्कस्सविसोही णाम विदियसमयदुचरिमखंड-  
चरिमपरिणामेण समाणा होदूण उव्वंकभावेणावट्ठिदा । एसा वुण जहणविसोही  
तत्थतणचरिमखंडजहणपरिणामेण अट्ठंकसरूवेण समाणा । तेणाणंतगुणा जादा ।

\* विदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ १००. किं कारणं ? पुव्विन्लजहणविसोही णाम विदियसमयचरिमखंडस्स  
जहणपरिणामो । एसो वुण तत्तो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठ्ठाणाणि समुन्लंधियूण ट्ठिद-  
विदियसमयचरिमखंडउक्कस्सविसोहि त्ति । तेण कारणेणाणंतगुणा जादा ।

§ ९९. यहाँ अर्थात् उक्त सूत्रमें 'जम्हि जहणिया विसोही णिट्ठिदा' इस वचनसे  
प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयका परामर्श किया गया है। इसे मर्यादा करके  
जघन्य विशुद्धिस्थानोंका अनन्तगुणी वृद्धिके क्रमसे पहले ही कथन कर आये हैं। उससे  
उपरिम समय ऐसा कहने पर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकका प्रथम समय लेना चाहिए। यहाँकी  
जघन्य विशुद्धि प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी होती है, क्योंकि प्रथम समयकी  
उत्कृष्ट विशुद्धि द्वितीय समयके द्विचरम खण्डके अन्तिम परिणामके सदृश होकर ऊर्वकपनेसे  
अवस्थित है और यह जघन्य विशुद्धि वहीं (दूसरे समय) के अन्तिम खण्डके अष्टांक-  
स्वरूप जघन्य परिणामरूपसे अवस्थित है। इसलिये अनन्तगुणी हो गई है।

विशेषार्थ—द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जो जघन्य विशुद्धि है उसके  
समान ही अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि है जो अधः-  
प्रवृत्तिकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। इसका  
कारण यह है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी यह उत्कृष्ट विशुद्धि  
द्वितीय समयके उपान्त्य खण्डके अन्तिम परिणामके सदृश ऊर्वकप्रमाण है और इससे उसी  
समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि अष्टांकस्वरूप होनेसे अनन्तगुणी है।

\* उससे दूसरे समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है।

§ १००. क्योंकि पूर्वकी जघन्य विशुद्धि दूसरे समयके अन्तिम खण्डके जघन्य  
परिणामस्वरूप है, परन्तु यह उससे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर स्थित  
हुए दूसरे समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि है, इसलिये यह उससे अनन्तगुणी ही  
जाती है।

विशेषार्थ—यहाँ पर दूसरे समयसे अधःप्रवृत्तकरणका दूसरा समय लिया गया है।  
इसके अन्तिम खण्डकी जो जघन्य विशुद्धि है उतनी ही द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम  
समयकी जघन्य विशुद्धि है ये दोनों विशुद्धियाँ परस्पर समान हैं, अतः उससे चूर्णिसूत्रमें  
अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिको जो अनन्तगुणा बतलाया  
है वह युक्तियुक्त ही है, क्योंकि पूर्वकी जघन्य विशुद्धि उसी खण्डके प्रथम परिणामस्वरूप

\* एवं णिव्वग्गणकंडयमंतोमुहुत्तद्धमेत्तां अधापवत्तकरणचरिम-  
समयो ति ।

§ १०१. एवमेदीए दिसाए अंतोमुहुत्तद्धमेत्तमेगं णिव्वग्गणकंडयमवट्टिदं  
कादूण जहण्णुकस्सपरिणामाणमुवरिमहेट्टिमाणमप्पाबहुअं कायन्वं जाव सव्वणिव्वग्गण-  
कंडयाणि जहाकममुल्लंधियूण पुणो दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयउक्कस्सविसोहीदो  
अधापवत्तकरणचरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा होदूण जहण्णविसोहीणं  
पज्जवसाणं पत्ते ति । एद्दूरं जाव एगंतरिदजहण्णुकस्सविसोहिट्टाणपडिबद्धाए  
पयदप्पाबहुअपरूवणाए णत्थि णाणत्तमिदि वुत्तं होइ ।

§ १०२. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदत्थस्स किंचि विवरणं कस्सामो । तं जहा—  
पढमणिव्वग्गणकंडयविदियसमए उक्कस्सविसोहीदो उवरि विदियणिव्वग्गणकंडयविदिय-  
समए जहण्णविसोही अणंतगुणा । एदम्हादो उवरि पढमणिव्वग्गणकंडयतदियसमए  
उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एदिस्से उवरि विदियणिव्वग्गणकंडयतदियसमए

है और यह उत्कृष्ट विशुद्धि उसी खण्डके अन्तिम परिणामस्वरूप है जो षट्स्थानपतित  
असंख्यात लोकप्रमाण वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है ।

\* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण एक (प्रत्येक) निर्वर्गणाकाण्डकको अवस्थित  
कर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

§ १०१. इस प्रकार इस पद्धतिसे अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण एक निर्वर्गणाकाण्डकको  
अवस्थित कर उपरिम और अधस्तन जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंका अल्पबहुत्व करना  
चाहिए । और यह सब अल्पबहुत्व सब निर्वर्गणाकाण्डकोंको क्रमसे उल्लंघन कर पुनः  
द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम  
समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होकर जघन्य विशुद्धिका अन्त प्राप्त होने तक करना  
चाहिए । इतने दूर तक जो एक-एक निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तरसे जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धि-  
स्थानोंसे प्रतिबद्ध प्रकृत अल्पबहुत्व कहा है उसमें कोई भेद नहीं है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यह परस्थान अल्पबहुत्व बतलानेका प्रकरण है, इसलिये पूर्वमें ऊपर  
और नीचेके परिणामोंकी विशुद्धिका जो अनुकृष्टि पद्धतिसे अल्पबहुत्व बतलाया गया है  
वह आगेके परिणामोंमें किस प्रकारका है यह बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । इस  
विषयका विशेष स्पष्टीकरण आगे श्री जयधवला जीमें स्वयं किया ही है ।

§ १०२. अब इस सूत्रसे सूचित हुए अर्थका कुछ विवरण करेंगे । यथा—प्रथम  
निर्वर्गणाकाण्डकके दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ऊपर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके दूसरे  
समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे  
समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे समयकी  
जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके चौथे समयकी उत्कृष्ट

जहणणविसोही अणंतगुणा । तत्तो पढमणिव्वगणकंडयचउत्थसमए उक्कसविसोही अणंत-  
गुणा । एवं जाणिऊण णेदव्वं जाव विदियणिव्वग्गणकंडयचरिमसमए जहणणविसोही  
अणंतगुणा जादा त्ति । एवमणंतरोवरिमणिव्वग्गणकंडयजहणणपरिणामाणमणंतरहेट्ठि-  
मणिव्वग्गणकंडयुक्कस्सपरिणामेहिं जहाकममणुसंधाणं कादूण णेदव्वं जाव अधा-  
पवत्तकरणचरिमसमए जहण्णिया विसोही दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयुक्कस्स-  
विसोहीदो अणंतगुणा होदूण जहणणविसोहीणं पज्जवसाणं पत्ता त्ति ।

§ १०३. संपदि एत्तो उवरि चरिमणिव्वग्गणकंडयमेत्ताणयुक्कस्सपरिणामाणं  
चेव अप्पाबहुअं णेदव्वमिदि पदुप्पायणदुत्तरं पबंधमाह—

\* तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिया  
तत्तो उवरिमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार जानकर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी  
जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है इसके प्राप्त होने तक अल्पबहुत्व करते जाना चाहिए । इस  
प्रकार अनन्तर उपरिम निर्वर्गणाकाण्डकके जघन्य परिणामोंका अनन्तर अधस्तन निर्वर्गणा-  
काण्डकके उत्कृष्ट परिणामोंके साथ क्रमसे अनुसन्धान करते हुए अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम  
समयकी जघन्य विशुद्धि द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे  
अनन्तगुणी होकर जघन्य विशुद्धियोंके अन्तको प्राप्त होती है इस स्थानके प्राप्त होने तक ले  
जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिसे प्रथम  
निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है यह बतला आये हैं । यहाँ  
इससे आगे अल्पबहुत्वका क्या क्रम है यह सूचित करते हुए बतलाया है कि प्रथम निर्वर्गणा-  
काण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी  
जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट  
विशुद्धि ऊर्ध्वस्वरूप है और द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि  
अष्टांशस्वरूप है । इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है । तथा इससे आगे अर्थात् द्वितीय  
निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धिसे प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे  
समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि यह उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे  
षट्स्थानपतितक्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण वृद्धिके हो जानेपर प्राप्त होती है । इस प्रकार  
ऊपरके तथा नीचेके निर्वर्गणाकाण्डकोंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिके अल्पबहुत्वका  
विचार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिके प्राप्त होने तक इसी क्रमसे  
करना चाहिए । यह जघन्य विशुद्धि उपान्त्य निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट  
विशुद्धिसे अनन्तगुणी है ।

§ १०३. अब इससे ऊपर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण उत्कृष्ट परिणामोंका ही  
अल्पबहुत्व करते हुए ले जाना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको  
कहते हैं—

\* पुनः अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसे अन्तर्मुहूर्त नीचे आकर जहाँ उत्कृष्ट  
विशुद्धि समाप्त हुई है उससे उपरिम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है ।



§ १०४. एत्थ 'जम्हि उद्देसे उक्कस्सिया विसोही णिद्धिदा' ति णिद्देसेणेदेण दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयो परामरसिओ, तत्थतणुक्कस्सविसोहीदो उवरि अधापवत्तचरिमसमयजहण्णविसोहीए अणंतगुणभावेण पुव्वं परूविदत्तादो । 'तदो उवरिमसमये' ति वुत्ते चरिमणिव्वग्गणकंडयपढमसमयस्स गहणं कायव्वं, तत्थतणुक्कस्स-विसोही पुव्विन्नलजहण्णविसोहिद्धाणादो अणंतगुणा ति वुत्तं होइ । एत्थ कारणं सुगमं ।

\* एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा ज्ञाव अधापवत्तकरणचरिम-समयो ति ।

§ १०५. एवमुक्कस्सिया चेव विसोही अणंतराणं पेक्खियूणाणंतगुणा णेयव्वा । केव्दूरमिदि वुत्ते जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो ति पयदप्पाबहुअपरूवणाए मज्जादा-णिद्देसो कदो । सेसं सुगमं ।

§ १०४. यहाँ 'जिस स्थान पर उत्कृष्ट विशुद्धि समाप्त हुई है' इस प्रकार इस निर्देशसे द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयका परामर्श किया गया है । उस स्थानकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ऊपर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिका अनन्तगुणेरूपसे पहले कथन कर आये हैं । 'उससे ऊपरके समयमें' ऐसा कहने पर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयका ग्रहण करना चाहिए । उस स्थानकी उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वके जघन्य विशुद्धि-स्थानसे अनन्तगुणी होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ पर कारणका कथन सुगम है ।

विशेषार्थ—पहले द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जो जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी बतला आये हैं उससे अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है यह इस सूत्रका भाव है । कारण यह है कि यह जघन्य विशुद्धिसे षट्स्थान पतित असंख्यात लोक-प्रमाण परिणामोंकी वृद्धि होने पर प्राप्त होती है ।

\* इस प्रकार उत्कृष्ट विशुद्धिका यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए ।

§ १०५. इस प्रकार समनन्तर पूर्व समयोंको देखते हुए उत्कृष्ट विशुद्धि ही अनन्तगुणी ले जानी चाहिए । कितनी दूर तक ले जानी चाहिए ऐसा कहने पर 'अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक' इस प्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी मर्यादाका निर्देश किया है । शेष कथन सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ पूर्वमें निर्दिष्ट की गई कल्पित अंक संदृष्टिको ध्यानमें रखकर अनेक जीवोंके आश्रयसे विशुद्धिसम्बन्धी उक्त अल्पबहुत्वको स्पष्ट करते हैं । समझो एक जीव है जो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें विशुद्धिवश १ संख्याक परिणामको प्राप्त हुआ उसकी विशुद्धि सबसे जघन्य होगी । अब एक ऐसा दूसरा जीव है जो दूसरे समयमें ४० संख्याक जघन्य परिणामको प्राप्त हुआ । उसकी विशुद्धि पूर्वकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी होगी । अब एक ऐसा तीसरा जीव है जो ८० संख्याक जघन्य परिणामको तीसरे समयमें प्राप्त हुआ ।



§ १०६. एवमधापवत्तकरणविसोहीणमप्पाबहुअमुहेण परूवणं कादूण संपहि पयदत्थमुवसंहरमाणो सुत्तमिदमाह—

\* एदमधापवत्तकरणस्स लक्खणं ।

§ १०७. एदमणंतरपरूविदमणुकट्टिलक्खणमधापवत्तकरणस्स लक्खणं दट्टव्वमिदि भणिदं होदि । एवमेदमुवसंहरिय संपहि अपुव्वकरणलक्खणपरूवणट्टमिदमाह—

\* अपुव्वकरणस्स पढमसमए ज्जहणिया विसोही थोवा ।

§ १०८. एत्थ ताव अपुव्वकरणद्वमंतोमुहुत्तपमाणं समयभावेण डुविय तत्थ परिणामाणमवट्टाणकमं सुत्तस्सचिदं वत्तइस्सामो । तं जहा—तत्थ तिण्णि अणि-ओगहाराणि—परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च । तत्थ परूवणादाए अत्थि अपुव्वकरण-पढमसमए परिणामट्टाणाणि । एवं णेदव्वं जाव चरिमसमओ त्ति । परूवणा गया । पमाणं—एक्केक्कम्मि समए परिणामट्टाणाणि असंखेज्जा लोगा । पमाणं गदं ।

§ १०९. अप्पाबहुअं दुविहं—विसोहीणं तिक्व-मंदप्पाबहुअं परिणामपंति-

१. यहाँ १ से लेकर १६ तककी संख्या अधःप्रवृत्तकरणके समयोंकी सूचक है ।
२. ब्रेकेटके भीतरकी संख्या निर्वर्गणाकाण्डकोंकी सूचक है । प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डक ४-४ समयोंका है ।
३. १, ४० आदि संख्या उस उस समयके उस उस संख्याक परिणामकी सूचक है ।
४. यहाँ जघन्यसे जघन्य, जघन्यसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टसे जघन्य और उत्कृष्टसे उत्कृष्ट प्रत्येक स्थान अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए है ।

§ १०६. इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंके अल्पबहुत्वद्वारा कथन करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

\* यह अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण है ।

§ १०७. यह अनन्तर पूर्व कहा गया अनुत्कृष्टिका लक्षण अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इसका उपसंहार कर अब अपूर्वकरणके लक्षणका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

\* अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोके है ।

§ १०८. यहाँ पर सर्वप्रथम अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालको समयरूपसे स्थापित कर वहाँ परिणामोंके सूत्र द्वारा सूचित हुए अवस्थानक्रमको बतलावेंगे । यथा—प्रकृतमें तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व । उनमेंसे सर्वप्रथम प्ररूपणा अनुयोगद्वारको बतलाते हैं—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणामस्थान हैं । इसी प्रकार अन्तिम समय तक कथन करते हुए ले जाना चाहिए । प्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ । प्रमाण—एक-एक समयमें परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं । प्रमाण अनुयोद्वार समाप्त हुआ ।

§ १०९. अल्पबहुत्व दो प्रकार है—विशुद्धियोंकी तीव्रता-मन्दतासम्बन्धी अल्पबहुत्व

दीहत्तप्पाबहुअं चेदि । तत्थ ताव पढमसमयप्पहुडि परिणामपंतीणमायामस्स थोव-  
बहुत्तविधिं वत्तइस्सामो । तं जहा—अपुव्वकरणपढमसमए परिणामपंतिआयामो थोवो ।  
विदियसमए विसेसाहिओ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगपरिणामट्ठाणमेत्तो ।  
होतो वि पढमसमयपरिणामपंतिमंतोमुहुत्तमेत्तखंडाणि कादूण तत्थ एयखंडमेत्तो ।  
एवमणंतरोवणिधाए विसेसाहियकमेण णेदव्वं जाव चरिमसमयपरिणामपंतिआयामो  
त्ति । णवरि समए समए अपुव्वाणि चैव परिणामट्ठाणाणि । संपहि विसोहीणं तिव्व-  
मंददाये अप्पावहुअं सुत्ताणुसारेण कस्सामो । तं जहा—‘अपुव्वकरणपढमसमए जहण-  
विसोही थोवा’ एवं भणिदे अपुव्वकरणपढमसमए असंखेज्जलोगमेत्तविसोहिट्ठाणाणं  
मज्झे जा जहणिया विसोही सा सव्वमंदाणुभागा त्ति वुत्तं होइ ।

\* तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ११०. तत्थेवापुव्वकरणपढमसमए जा उक्कस्सिया विसोही असंखेज्जलोगमेत्त-  
छट्ठाणाणि समुल्लंघियूणावट्ठिदा सा पुव्विल्लजहणविसोहीदो अणंतगुणा त्ति वुत्तं होइ ।

\* विदियसमए जहणिया विसोही अणंतगुणा ।

और परिणामसम्बन्धी पंक्तियोंकी दीर्घतासम्बन्धी अल्पबहुत्व । उनमेंसे सर्वप्रथम प्रथम  
समयसे लेकर परिणामोंकी पंक्तियोंके आयामकी अल्पबहुत्वविधिको बतलावेंगे । यथा—  
अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणामोंकी पंक्तिका आयाम सबसे स्तोक है । उससे दूसरे  
समयमें विशेष अधिक है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—असंख्यात लोकप्रमाण जो परिणामस्थान हैं तत्प्रमाण है । इतना होता  
हुआ भी प्रथम समयकी परिणामोंकी पंक्तिके, अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हों उतने खण्ड  
करने पर उनमें एक खण्डप्रमाण है ।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधाका आश्रयकर विशेषाधिक क्रमसे अन्तिम समयके परि-  
णामोंकी पंक्तिके आयामके प्राप्त होनेतक कथन करते हुए ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता  
है कि प्रत्येक समयमें अपूर्व ही परिणामस्थान प्राप्त होते हैं । अब विशुद्धियोंकी तीव्रता-  
मन्दताके अल्पबहुत्वको सूत्रके अनुसार करेंगे । यथा—‘अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य  
विशुद्धि सबसे स्तोक है’ ऐसा कहने पर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें असंख्यात लोकप्रमाण  
विशुद्धिस्थानोंके मध्य जो जघन्य विशुद्धि है वह सबसे मन्द अनुभागवाली है यह उक्त  
कथनका तात्पर्य है ।

\* वहीं पर उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ११०. वहीं पर अर्थात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो उत्कृष्ट विशुद्धि है वह  
असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर अवस्थित है । वह पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे  
अनन्तगुणी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* उससे दूसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ १११. किं कारणं ? असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरिदूणेदिस्से समुप्पत्तिअब्भुवगमादो ।

\* तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ११२. तत्थेवापुव्वकरणविदियसमए जा उक्कस्सिया विसोही सा अणंतर-परुविदजहण्णविसोहीदो अणंतगुणा त्ति भणिदं होइ । एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

\* समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि ।

§ ११३. अपुव्वकरणद्वाए सव्वत्थ समयं पडि असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणाम-ट्ठाणाणि एदेणप्पाबहुअविहिणा अवड्ढिदा त्ति भणिदं होइ ।

\* एवं णिव्वग्गणा च ।

§ ११४. जत्तियमद्धानमुवरि गंतूण णिरुद्धसमयपरिणामाणमणुकट्ठी वोच्छिज्जदि तमेव णिव्वग्गणकंडयं णाम । एत्थ पुण समये समये चेव णिव्वग्गणकंडयं वेत्तव्वं, विवक्खियसमयपरिणामाणमुवरि एग्गिंमि वि समए संभवाणुवलंभादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

\* एदं अपुव्वकरणस्स लक्खणं ।

§ ११५. एदमणंतरपरुविदं समए समए अणुकट्ठिवोच्छेदलक्खणमपुव्वकरण-लक्खणमवहारेयव्वमिदि वुत्तं होइ ।

§ १११. क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंके अन्तरसे इसकी उत्पत्ति स्वीकार की गई है ।

\* वहीं पर उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ११२. वहीं पर अर्थात् अपूर्वकरणके दूसरे समयमें जो उत्कृष्ट विशुद्धि होती है वह अनन्तरपूर्व कही गई जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ पर भी कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए ।

\* प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं ।

§ ११३. अपूर्वकरणके कालमें सर्वत्र प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम-स्थान होते हैं यह बात इस अल्पबहुत्वके द्वारा निश्चित होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* और इसी प्रकार प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा होती है ।

§ ११४. जितने स्थान ऊपर जाकर विवक्षित समयके परिणामोंकी अनुकृष्टिका विच्छेद होता है उसीका नाम निर्वर्गणाकाण्डक है । परन्तु यहाँ अपूर्वकरणके प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा-काण्डकको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विवक्षित समयके परिणाम ऊपरके एक भी समयमें सम्भव नहीं हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

\* यह अपूर्वकरणका लक्षण है ।

§ ११५ अनन्तर पूर्व कहा गया यह प्रत्येक समयमें अनुकृष्टिका विच्छेदस्वरूप अपूर्व-करणका लक्षण जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**विशेषार्थ**—यहाँ अपूर्वकरणके स्वरूपका निर्देश करते हुए बतलाया है कि अपूर्वकरण का काल अन्तर्मुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातर्वे भागप्रमाण है। इस कालमें कुल परिणामोंका प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण होकर भी प्रत्येक समयके परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जो प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक प्रत्येक समयमें सदृश वृद्धिको लिये हुए हैं। प्रथम समयके असंख्यात लोकप्रमाण परिणामोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना प्रत्येक समयमें वृद्धि या चयका प्रमाण है। यहाँ प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं इसकी सिद्धि प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धिके अल्पबहुत्वको ध्यानमें रख कर की गई है, क्योंकि प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है। उससे उसी समयमें प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। उससे दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाली जघन्य विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। तथा उससे उसी समयमें प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक समयमें जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका यह अल्पबहुत्व अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। यहाँ प्रत्येक समयकी जघन्य विशुद्धिसे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिको और उस समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अगले समयकी जघन्य विशुद्धिको उक्त प्रकारसे अनन्तगुणी बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि अपूर्वकरणके प्रत्येक समयमें असंख्यात-लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं। वे सब परिणामस्थान प्रत्येक समयके अपूर्व-अपूर्व ही होते हैं, इसलिये यहाँ भिन्न समयवाले जीवोंकी तद्विन्न समयवाले जीवोंके साथ अनुकृष्टि तो बनती ही नहीं। किन्तु एक समयवाले जीवोंके परिणामोंमें सदृशता-विसदृशता बन जाती है। इसलिये अपूर्वकरणमें एक समयवाली ही निर्वाण स्वीकार की गई है। खुलासा इस प्रकार है कि जो अनेक जीव एक साथ अपूर्वकरणमें प्रवेश करते हैं उनके परिणाम परस्परमें सदृश भी हो सकते हैं और विसदृश भी। किन्तु भिन्न समयवाले जीवोंके परिणाम विसदृश ही होते हैं। अब अपूर्वकरणके उक्त स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ कल्पित अंक-संदृष्टि दी जाती है—

कुल परिणामोंकी संख्या—४०९६; अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ८; चयका प्रमाण १६; नियम यह है कि एक कम पदके आधेको पद और चयसे गुणित करनेपर उत्तरधन प्राप्त होता है।

यथा— $८ - १ = ७ \div २ = \frac{७}{२} \times ८ \times १६ = ४४८$ ; इसे सर्वधन ४०९६ मेंसे कम करने पर

$४०९६ - ४४८ = ३६४८$  शेष रहे। इसमें ८ का भाग देने पर  $३६४८ \div ८ = ४५६$  लब्ध आवे। यह अपूर्वकरणके प्रथम समयके कुल परिणाम हैं। इनमें उत्तरोत्तर एक-एक चय १६ जोड़ने पर दूसरे समयसे लेकर आठवें समय तक प्रत्येक समयका द्रव्य क्रमसे ४७२, ४८८, ५०४, ५२०, ५३६, ५५२, और ५६८ होता है। प्रत्येक समयमें होनेवाले ये परिणाम नाना जीवोंकी अपेक्षा कहे गये हैं, क्योंकि एक समयमें एक जीवका परिणाम एक ही होता है, दूसरे जीवका भी उसी समय यह परिणाम हो सकता है और उससे भिन्न परिणाम भी हो सकता है। इस प्रकार प्रत्येक समयमें नाना जीवोंके परिणाम परस्पर सदृश भी होते हैं और विसदृश भी होते हैं, इसलिये इसका अपूर्वकरण यह नाम सार्थक है। इसमें भिन्न-भिन्न समयवाले जीवोंके परिणामोंमें परस्पर अनुकृष्टि नहीं बनती यह हम पहले ही बतला आये हैं, इसलिये इस करणमें प्रत्येक समयमें पृथक्-पृथक् निर्वाणकाण्डक स्वीकार किया गया है।

§ ११६. संपहि अणियट्टिकरणस्स लक्खणट्टपरूवणट्टमुत्तरसुत्तमाह—

\* अणियट्टिकरणे समए समए एक्केक्कपरिणामट्टाणाणि अणंत-गुणाणि च ।

§ ११७. अणियट्टिकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव एक्केक्कं चेव परिणामट्टाणं होइ । तत्थेगसमयम्मि परिणामभेदाभावेहिं होंतं पि समयं पडि अणंतगुणकमेणेवावट्टिदं दट्टव्वं, तत्थ पयारंतरासंभवादो । तम्हा अणियट्टिकरणम्मि अंतोप्पुहुत्तमेत्ताणि चेव परिणामट्टाणाणि अणंतगुणसरूवेणावट्टिदाणि होंति त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स मावत्थो ।

\* एदमणियट्टिकरणस्स लक्खणं ।

§ ११८. सुगममेदमुवसंहारवक्कं ।

§ ११६. अब अनिवृत्तिकरणके लक्षणके अर्थका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

\* अनिवृत्तिकरणके प्रत्येक समयमें एक-एक परिणामस्थान होता है तथा वे सब परिणामस्थान उत्तरोत्तर अनन्तगुणित होते हैं ।

§ ११७. अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक एक-एक परिणाम-स्थान ही होता है । वहाँ एक समयमें परिणाम भेद नहीं है, फिर भी प्रत्येक समयमें होने-वाला वह परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणित क्रमसे ही अवस्थित है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि वहाँ दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है । इसलिये अनिवृत्तिकरणमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही परिणामस्थान अनन्तगुणितस्वरूपसे अवस्थित हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

\* यह अनिवृत्तिकरणका लक्षण है ।

§ ११८. यह उपसंहारवाक्य सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ अनिवृत्तिकरणके स्वरूपका निर्देश करते हुए बतलाया है कि इस करणका काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है जो अपूर्वकरणके कालके संख्यातर्वे भागप्रमाण है । पहले अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणमें अपने-अपने कालके भीतर होनेवाले सब परिणामोंका योग असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं और प्रत्येक समयमें होनेवाले परिणाम भी उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिरूपसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं । किन्तु वह व्यवस्था अनिवृत्तिकरणमें नहीं है । किन्तु इस करणका जितना काल है उसमें होनेवाले परिणाम भी उतने ही हैं जो उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए हैं । तात्पर्य यह है कि यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भी विवक्षित समयमें वही परिणाम होता है जो दूसरे आदि जीवोंका उस समयमें पहले अतीत कालमें हुआ है, वर्तमान समयमें है या भविष्यमें होगा । इसमें न तो गतिभेद बाधक है, न लेश्याभेद बाधक है, न संस्थानभेद बाधक है और न वेदभेद ही बाधक है । एक समयमें स्थित नाना जीवोंका एक ही परिणाम होता है और भिन्न समयमें स्थित जीवोंका भिन्न ही परिणाम होता है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि इस

§ ११९. एवं तिण्हं करणाणं लक्खणं परूविय संपहि एदेहिं करणेहिं अणादिय-  
मिच्छादिट्ठिस्स दंसणमोहोवसामणाविहाणं परूवेमाणो तन्विसयमेव पइण्णावक्कमाह—

\* अणादियमिच्छादिट्ठिस्स उवसामगस्स परूवणं वत्तइस्सामो ।

§ १२०. दंसणमोहोवसामणाए पडुवगो अणादियमिच्छाइट्ठी वा होज्ज सादिय-  
मिच्छाइट्ठी वा वेदगपाओग्गभावं वोलिय अट्ठावीसं सत्तावीसं छव्वीसाणमण्णदरकम्मं-  
सिओ होदूण पुणो सम्मत्तग्गहणाहिमुहो होज्जं ति । तत्थ ताव अणादियमिच्छादिट्ठि-  
मस्सियूण परूवणं वत्तइस्सामो, सादियमिच्छादिट्ठिउवसामयपरूवणाए तप्परूवणादो  
चेव गयत्थत्तदंसणादो त्ति भणिदं होइ ।

\* तं जहा ।

करणके कालके जितने समय हैं, परिणाम भी उतने ही हैं, न न्यून हैं और न अधिक हैं ।  
ऐसा होते हुए भी ये परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धिरूपसे ही अवस्थित हैं । इसका  
आशय यह है कि जिस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके एक समयमें होनेवाले परि-  
णामों में उत्तरोत्तर अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि आदि बन जाती है । उस प्रकारकी  
व्यवस्था यहाँ एक समयवर्ती परिणामभेद न होनेके कारण इन परिणामोंकी न होकर यहाँ  
प्रथम समयके परिणामसे दूसरे समयका परिणाम तथा द्वितीयादि समयोंके परिणामोंसे  
तृतीयादि समयोंके परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए ही हैं । इस प्रकार यह  
अनिवृत्तिकरणका स्वरूप है ।

§ ११९. इस प्रकार तीनों करणोंके लक्षणोंका कथन कर अब इन करणोंके द्वारा अनादि  
मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शनमोहनीयकर्मकी उपशामनाविधिका कथन करते हुए तद्विषयक ही  
प्रतिज्ञावाक्यको कहते हैं—

\* अब अनादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणा बतलाते हैं ।

§ १२०. दर्शनमोहकी उपशामनाका प्रस्थापक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव भी होता है  
और वेदकसम्यक्त्वके योग्य भावको उल्लंघन कर अट्ठाईस, सत्ताईस तथा छव्वीस इनमेंसे  
अन्यतर प्रकृतियोंकी सत्तावाला होकर सादि मिथ्यादृष्टि भी सम्यक्त्व ग्रहणके अभिमुख होता  
है । उनमें सर्व प्रथम अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके आश्रयसे कथन करेंगे, क्योंकि सादि  
मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणाका ज्ञान अनादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणासे ही होता  
हुआ देखा जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—सभी सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके पात्र नहीं होते ।

किन्तु जिन्होंने कमसे कम वेदकसम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण  
कालको उल्लंघन कर लिया है ऐसे मोहनीयकर्मकी २८, २७ या २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाले  
मिथ्यादृष्टि जीव ही दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेमें समर्थ होते हैं । यहाँ यद्यपि अनादि  
मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीयकी उपशामना किस प्रकार करते हैं यह प्रमुखतासे बतलाया  
जा रहा है, पर उससे सादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके दर्शनमोहनीयकी उपशामना किस प्रकारसे  
होती है इसका भी ज्ञान हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* वह जैसे ।



§ १२१. सुगमं ।

\* अधापवत्तकरणे द्विदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा गुणसेदी वा गुणसंकमो वा णत्थि, केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि ।

§ १२२. किं कारणमेत्थ द्विदिखंडयघादादीणमभावो चे ? ण, अधापवत्तविसोहीणं तहाविहसत्तीए असंभवादो । तम्हा केवलमेसो पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि, ण पुण द्विदिखंडयादिकज्जकरणक्खमो त्ति सिद्धं ।

\* अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्टाणिये अणंतगुणहीणे च, पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते च चउट्टाणिए अणंतगुणे च समये समये ।

§ १२३. जइ वि ऐसो द्विदिखंडयघादादिकज्जविसेसं ण कुणइ तो वि ण एदस्स पडिसमयमणंतगुणविसोहिपरिणामो णिप्फलो, समयं पडि अप्पसत्थ-पसत्थपयडीण-

§ १२१. यह सूत्र सुगम है ।

\* अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम नहीं होता । केवल वह प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता जाता है ।

§ १२२. शंका—इस. करणमें स्थितिकाण्डकघात आदिका अभाव होनेका क्या कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धियोंमें उसप्रकारकी शक्तिका अभाव है, इसलिये वह केवल प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता जाता है । परन्तु वह काण्डकघात आदि कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके प्रत्येक समयके परिणामोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा तो यथासम्भव षट्स्थान पतित वृद्धिस्वरूप विशुद्धि बन जाती है, परन्तु प्रथम समयके विवक्षित परिणामसे दूसरे समयका निवक्षित परिणाम नियमसे अनन्तगुणी विशुद्धिसे युक्त होता है यह सब पहले प्रथमादि समयोंमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धियोंके अल्पबहुत्वके कथनके प्रसंगसे बतला ही आये हैं । फिर भी इन परिणामोंमें स्थितिकाण्डकघात आदिरूप कार्य करनेकी सामर्थ्य नहीं पाई जाती यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* यह जीव जिन अप्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है उन्हें समय समयमें द्विस्थानीय अनन्तगुणी हीन अनुभाग शक्तिसे युक्त बाँधता है । तथा जिन प्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है उन्हें समय समयमें चतुःस्थानीय अनन्तगुणी अनुभागशक्तिसे युक्त बाँधता है ।

§ १२३. यद्यपि यह जीव स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेषको नहीं करता है तो भी इसका प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिस्वरूप होनेवाला परिणाम निष्फल नहीं है, क्योंकि

मणुभागबंधोसरणतदुक्कस्सीकरणलक्खणफलविसेसोवलंभादो त्ति वुत्तं होइ ।

\* द्विदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं द्विदिबंधं पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभाग-  
हीणं बंधदि ।

§ १२४. एतदुक्तं भवति—अधापवत्तकरणपढमसमए चेव तदणंतरहेट्टिमसमयट्टिदि-  
बंधादो तप्पाओगंगंतोकोडाकोडिपमाणादो पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणमण्ण-  
ट्टिदिबंधमाढवेइ । पुणो एदं द्विदिबंधमंतोमुहुत्तकालमवट्टिदसरूवेण बंधमाणो तव्वंधगद्दा  
परिछिज्जदे, तत्तो अण्णं द्विदिबंधं पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणमाढविय तं  
पि अंतोमुहुत्तकालमवट्टिदसरूवेण बंधइ । एवमेदेण कमेण पुण्णे पुण्णे द्विदिबंधे अण्णं  
द्विदिबंधं पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणं कादूण बंधमाणो सगद्दाए संखेज्ज-  
सहस्समेत्ताणि द्विदिबंधोसरणाणि करेदि त्ति ।

उससे अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्धापसरण लक्षण और प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभाग-  
बन्धका उत्कृष्टीकरणलक्षण फलविशेष पाया जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—इस जीवके पहले नरकादि किस गतिमें किन प्रकृतियोंका बन्ध होता है  
यह बतला आये हैं । यहाँ यह बतलाया है कि जिस गतिसम्बन्धी इस अवस्थामें जिन  
प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होकर भी  
प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा हीन होता जाता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्ध चतुः-  
स्थानीय होकर भी प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी वृद्धिरूप होता जाता है ।

\* एक-एक स्थितिबन्धके पूर्ण पूर्ण होनेपर पल्लोपमके संख्यातवें भागसे हीन  
अन्य-अन्य स्थितिबन्धको बाँधनेके लिये आरम्भ करता है ।

§ १२४. उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही उससे  
अनन्तर पूर्व अधस्तन समयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे  
पल्लोपम संख्यातवां भाग हीन अन्य स्थितिबन्धको आरम्भ करता है । पुनः इस स्थिति-  
बन्धको अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थितरूपसे बाँधनेवालेके उसका बन्धकाल क्षीण हो जाता है ।  
पुनः उससे पल्लोपमका संख्यातवां भागप्रमाण न्यून अन्य स्थितिबन्धका आरम्भकर उसे भी  
अन्तर्मुहूर्तकालतक अवस्थितरूपसे बाँधता है । इसप्रकार इस क्रमसे स्थितिबन्धके पुनः पुनः  
पूर्ण होनेपर पल्लोपमका संख्यातवां भागप्रमाण हीन अन्य स्थितिबन्धको प्रारम्भकर बन्ध  
करता हुआ उक्त जीव अधःप्रवृत्तकरण कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण  
करता है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणका जो अन्तर्मुहूर्त काल है उसके एक स्थितिबन्धापसरणके  
कालप्रमाण संख्यात हजार खण्ड करे । उनमेंसे प्रत्येक खंडका प्रमाण भी अन्तर्मुहूर्त होता है ।  
इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कालके जितने खण्ड हुए उतने उस कालमें स्थितिबन्धापसरण  
होते हैं । इनमेंसे प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणमें पूर्व-पूर्वके स्थितिबन्धके प्रमाणमेंसे पल्लोपमके  
संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति कम हो-होकर बन्ध होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

६१२५. एवमधापवत्तकरणे वावारविसेसं परुविय संपहि तमुल्लंघियूणापुव्वकरण-  
विसोहीए परिणदस्स षट्मसमयप्पहुडि वावारविसेसपदुप्पायणट्टमुवरिमसुत्तषबंधमाह—

\* अपुव्वकरणपट्टमसमये द्विदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स  
संखेज्जदिभागो, उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं ।

§ १२६. अणंतरपरुविदेण विधिणा अधापवत्तकरणद्धं वोलाविय पुणो अपुव्व-  
करणं पविट्टस्स पट्टमसमए चेव द्विदि-अणुभागखंडयघादा दो वि कादुमाहत्ता, अपुव्वकरण-  
विसोहिपरिणामस्स तदुभयघादणिवंधणत्तादो । तत्थ ताव पट्टमद्विदिखंडयमेत्तवियप्प-  
माहो अत्थि जहण्णुकस्सवियप्पसंभवो त्ति एवंविहाए पुच्छाए णिरारेगीकरणट्टमिदं  
सुत्तमोइण्णं । तं जहा—जहण्णेण ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागायामं द्विदिखंडय-  
मागाएदि, दंसणमोहोवसामगपाओग्गसव्वजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तद्विदिसंतकम्मेणा-  
गदम्मि तदुवलंभादो । उक्कस्सेण पुण सागरोवमपुधत्तमेत्तायामं पट्टमद्विदिखंडयमाहवेइ,  
पुव्विल्लजहण्णद्विदिसंतकम्मादो संखेज्जगुणद्विदिसंतकम्मेण सहागंतूण अपुव्वकरणं  
पविट्टस्स पट्टमसमये तदुवलंभादो । किं पुण कारणं दोण्हं पि विसोहिपरिणामेसु समाणेसु  
संतसु घादिदसेसाणं द्विदिसंतकम्माणं एवं विसरिसभावो त्ति णासंकणिज्जं, संसार-

§ १२५. इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणमें व्यापारविशेषका कथनकर अब उसको उल्लंघन-  
कर अपूर्वकरणकी विशुद्धिरूपसे परिणत हुए जीवके प्रथम समयसे लेकर व्यापारविशेषका  
कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

\* अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमका संख्यातवाँ  
भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है ।

§ १२६. अनन्तर पूर्व कही गई विधिसे अधःप्रवृत्तकरणके कालको बिताकर अपूर्व-  
करणमें प्रविष्ट हुआ जीव प्रथम समयमें ही स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात  
इन दोनोंको करनेके लिये आरम्भ करता है, क्योंकि अपूर्वकरणके विशुद्धिसे युक्त परिणाममें  
इन दोनोंके घात करनेकी हेतुता है । वहाँ प्रथम स्थितिकाण्डक प्रमाण ही एक प्रकार है या  
उसमें जघन्य और उत्कृष्ट भेद भी सम्भव है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिये यह  
सूत्र आया है । यथा—जघन्यरूपसे तो पल्योपमके संख्यातवाँ भागप्रमाण आयामवाले  
स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी उपशामनाके योग्य सबसे जघन्य  
अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ आये हुए जीवमें स्थितिकाण्डकका आयाम उक्त  
प्रमाण पाया जाता है । परन्तु उत्कृष्टरूपसे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण आयामवाले प्रथम  
स्थितिकाण्डकको आरम्भ करता है, क्योंकि पूर्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणे  
स्थितिसत्कर्मके साथ आकर अपूर्वकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके प्रथम समयमें उसकी उपलब्धि  
होती है ।

शंका—दोनों जीवोंके ही विशुद्धिरूप परिणामोंके समान होनेपर घात करनेसे शेष रहे  
स्थितिसत्कर्मोंमें इस प्रकारकी विसदृशता होती है इसका क्या कारण है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि संसार अवस्थाके योग्य अध-

पाओग्गाणं हेट्टिमविसोहीणं सव्वेसु समाणत्ते णियमाणुवलंभादो ।

§ १२७. एवमपुव्वकरणपढमसमए पारद्वस्स ट्टिदिखंडयस्स पमाणविणिण्णयं कादूण संपहि तत्थेव ट्टिदिबंधपमाणावहारणदुमिदमाह—

\* ट्टिदिबंधो अपुव्वो ।

§ १२८. अधापवत्तकरणचरिमसमयट्टिदिबंधादो अपुव्वो अण्णो ट्टिदिबंधो पल्लिदो-वमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो एण्हिमाट्ठो त्ति भणिदं होइ । संपहि एत्थेवापुव्वकरण-पढमसमए अणुभागखंडयं पि घादेदुमाट्ठवेइ । तं पुण केसिं कम्माणं किं पमाणं वा होइ त्ति जाणावणदुमुत्तरं पबंधमाह—

\* अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाणमणंता भागा ।

§ १२९. अणुभागखंडयमप्पसत्थाणं चेव कम्माणं होइ पसत्थकम्माणं विसोहीए अणुभागवट्ठिं मोत्तूण तग्घादाणुववत्तीदो । तस्स पमाणं तक्कालभाविट्ठिणाणुभाग-संतकम्मस्साणंता भागा, अणुभागखंडयस्स करणपरिणामेहिं घादिज्जमाणस्स सेसवियप्पा-

स्तन विशुद्धियाँ सभी जीवोंमें समान होती हैं ऐसा कोई नियम नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँपर अपूर्वकरणमें प्राप्त विशुद्धियोंसे पूर्वकी सभी विशुद्धियोंको संसार अवस्थाके योग्य कहा है । इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके जो अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धि होती है वह भी संसार अवस्थाके योग्य है । किन्तु इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जातिकी अपेक्षा जिस लक्षणवाले परिणाम अधःप्रवृत्तकरणमें होते हैं उस लक्षणवाले परिणाम अन्य संसारी जीवोंके भी हो सकते हैं । इसलिए उनके तारतम्यसे कर्मकी स्थितियोंमें भी विभिन्नता बनी रहती है और इसी कारण अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डक अनेक प्रकारकी स्थितियोंवाले बन जाते हैं ।

§ १२७. इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रारम्भ किये गये स्थितिकाण्डकके प्रमाणका निर्णयकर अब वहीँपर स्थितिवन्धके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* स्थितिवन्ध अपूर्व होता है ।

§ १२८. अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके स्थितिवन्धसे पत्योपमका संख्यातवां भाग हीन अपूर्व अर्थात् अन्य स्थितिवन्धको यहाँ आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब यहीँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अनुभागकाण्डकका भी घात करनेके लिये आरम्भ करता है । वह किन कर्मोंका होता है और उसका क्या प्रमाण है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* अनुभागकाण्डक अप्रशस्त कर्मोंका अनन्त बहुभागप्रमाण होता है ।

§ १२९. अनुभागकाण्डक अप्रशस्त कर्मोंका ही होता है, क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्त कर्मोंकी अनुभागवृद्धिको छोड़कर उसका घात नहीं बन सकता । उस अनुभागकाण्डकका प्रमाण तत्कालभावी द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण है, क्योंकि करण-

संभवादो । संपहि एदस्स अपुव्वकरणपढमाणुभागकंडयस्स माहप्पजाणावणहुमुत्तर-  
पबंधमाह—

\* तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफहयाणि थोवाणि ।

§ १३०. तस्से त्ति वुत्ते अहियारवसेण अणुभागस्स गहणं कायच्चं, तदो अणु-  
भागविसयएगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अब्भंतरे जाणि फहयाणि ताणि अभवसिद्धिए-  
हितो अणंतगुणाणि सिद्धाणमणंतभागमेत्ताणि होदूण उवरि वुच्चमाणपदावेक्खाए  
थोवाणि त्ति वुत्तं होइ ।

\* अइच्छावणाफहयाणि अणंतगुणाणि ।

§ १३१. उवरिमअणुभागफहयाणि ओकड्डेमाणो जत्तियाणि अणुभागफहयाणि  
जहण्णेणाइच्छाविय हेट्ठिमफहयसरूवेणोकड्डइ ताणि जहण्णाइच्छावणाविसयाणि अणंत-  
गुणाणि त्ति जह वुत्तं होइ । किं कारणमेदेसिमणंतगुणत्तं जादमिदि चे ? ण, जहण्णा-  
इच्छावणव्भंतरे अणंताणं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणमत्थितोवएसादो ।

\* णिव्वेवफहयाणि अणंतगुणाणि ।

§ १३२. एवं भणिदे कंडयस्स हेट्ठा जहण्णाइच्छावणमेत्तफहयाणि मोत्तूण सेस-  
हेट्ठिमसव्वफहयाणं गहणं कायच्चं । एदाणि जहण्णाइच्छावणाफहएहितो अणंतगुणाणि  
त्ति भणिदं होइ ।

परिणामोंके द्वारा घाते जानेवाले अनुभागकाण्डकके शेष विकल्पोंका होना असम्भव है । अब इस  
अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डककी दीर्घताका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धकी कहते हैं—

\* उसके एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धक सबसे स्तोक हैं ।

§ १३०. सूत्रमें 'तस्स' ऐसा कहनेपर अधिकारवश अनुभागका ग्रहण करना चाहिए,  
अतः अनुभागविषयक एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके भीतर जो स्पर्धक हैं वे अभव्योंसे  
अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होकर आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा  
स्तोक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* उनसे अतिस्थापनारूप स्पर्धक अनन्तगुणे हैं ।

§ १३१. उपरिम अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंका अपकर्षण करते हुए जितने अनुभाग-  
स्पर्धकोंको जघन्यरूपसे अतिस्थापितकर उनसे नीचेके स्पर्धकरूपसे अपकर्षित करता है वे  
जघन्य अतिस्थापनाविषयक स्पर्धक एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते  
हैं यह पूर्वोक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ये अनन्तगुणे किस कारणसे हो जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य अतिस्थापनाके भीतर अनन्त प्रदेशगुणहानिस्थाना-  
न्तरोंके अस्तित्वका उपदेश पाया जाता है ।

\* उनसे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं ।

§ १३२. ऐसा कहनेपर अनुभागकाण्डकके नीचे जघन्य अतिस्थापनाप्रमाण स्पर्धकोंको

### \* आगाइदफहयाणि अणंतगुणाणि ।

§ १३३. तस्सेव दंसणमोहोवसामणस्स अपुव्वकरणपढमाणुभागखंडए वड्डमाणस्स खंडयसरूवेणागाइदाणि जाणि फहयाणि ताणि पुव्वुत्तणिवस्सेवफहएहिंतो अणंतगुणाणि । किं कारणं ? एत्थतणाणुभागसंतकम्मस्स विट्ठाणियस्साणंतिमभागं मोत्तूण सेसाण-मणंतारणं भागारणं कंडयसरूवेणागाइदत्तादो ।

§ १३४. एवमपुव्वकरणपढमसमए द्विदि-अणुभागखंडयतव्वंधोसरणाणमकमेण

छोड़कर नीचेके शेष सब स्पर्धकोंका ग्रहण करना चाहिए । ये अघन्य अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* उनसे काण्डकरूपसे ग्रहण किये गये स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं ।

§ १३३. अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकमें विद्यमान दर्शनमोहका उपशम करने-वाले उसी जीवके काण्डकस्वरूपसे जो स्पर्धक ग्रहण किये गये वे पूर्वोक्त निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्तवें भागको छोड़कर शेष अनन्त बहुभागको काण्डकरूपसे ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अनुभागकाण्डकका प्रमाण कितना है तथा किन कर्मोंका अनुभागकाण्डक घात होता है यह सब स्पष्ट किया गया है । यह तो अपूर्वकरणके लक्षणको स्पष्ट करते हुए ही बतला आये हैं कि इस करणमें नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होकर भी प्रत्येक समयके वे परिणाम अपूर्व-अपूर्व ही होते हैं और यह भी पहले बतला आये हैं कि करण परिणाम भाङ्गनेके अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग द्विस्थानीय हो जाता है तथा उन परिणामोंको निमित्तकर प्रशस्त कर्मोंका अनुभाग चतुःस्थानीय हो जाता है । अब यहाँ यह बतलाया गया है कि अपूर्वकरणके प्रारम्भ होनेके पहले समयमें ही अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका काण्डकघात होने लगता है । किन्तु प्रशस्त प्रकृतियोंमें ऐसा नहीं होता, किन्तु वहाँ प्राप्त हुई विशुद्धिके कारण उनके अनुभागमें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है । अब यह देखना है कि यहाँ एक अनुभागकाण्डकका क्या प्रमाण है ? इसी तथ्यको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ अनुभागविषयक एक गुणहानि, अतिस्थापना, निक्षेप और अणुभागकाण्डक इन चारोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है । अनुभागविषयक एक गुणहानिमें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते हैं । उनसे अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं । ऊपरके जिन अनुभागस्पर्धकोंका अपकर्षण होता है उनसे नीचेके और निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धकोंसे ऊपरके जिन बीचके स्पर्धकोंमें निक्षेप नहीं होता उनकी अतिस्थापना संज्ञा है । इस अतिस्थापना सम्बन्धी स्पर्धकोंसे नीचेके सब स्पर्धकोंकी निक्षेप संज्ञा है । ये अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं । तथा अतिस्थापनासे ऊपरके जिन स्पर्धकोंका अपकर्षण होता है वे काण्डकगत स्पर्धक कहलाते हैं । वे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धकोंसे भी अनन्तगुणे होते हैं । इस अल्पबहुत्वसे स्पष्ट है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त कर्मोंका जो अनुभागकाण्डक उत्कीरणके लिये ग्रहण किया जाता है उसका प्रमाण अनन्त बहुभागस्वरूप होता है ।

§ १३४. इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डकघात अनुभागकाण्डकघात

पारंभं परुविय संपहि एत्थेवाउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेट्ठिणिकखेवो वि आढत्तो त्ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तमोड्ढणं—

\* अपुव्वकरणस्स चैव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेट्ठिणिकखेवो अणियट्ठिअद्दादो अपुव्वकरणद्दादो च विसेसाहिओ ।

§ १३५. तम्मि चैवापुव्वकरणस्स पढमसमए आउगवज्जाणं गुणसेट्ठिणिकखेवो वि आढत्तो त्ति भणिदं होइ । किमट्टमाउगस्स गुणसेट्ठिणिकखेवो णत्थि त्ति चे ? ण, सहावदो चैव । तत्थ गुणसेट्ठिणिकखेवपवुत्तीए असंभवादो । सो गुण' गुणसेट्ठिणिकखेवो केत्तिओ होइ त्ति पुच्छाए अणियट्ठिकरणद्दादो अपुव्वकरणद्दादो च विसेसाहियो त्ति णिट्ठिं । एत्थतणअपुव्वाणियट्ठिकरणद्दाणं समुदिदाणं पमाणमंतोमुहुत्तमेत्तं होइ । तत्तो विसेसाहिओ एदस्स गुणसेट्ठिणिकखेवस्सायामो त्ति वुत्तं होइ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणियट्ठिअद्दाए संखेज्जदिभागमेत्तो ? कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? उवरि भणमाणअप्पाबहुअसुत्तादो ।

स्थितिवन्धापसरण और अनुभागबन्धापसरणका युगपत् प्रारम्भकर अब यहीपर आयुकर्मके अतिरिक्त कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप भी प्रारम्भ करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र अबतीर्ण हुआ है—

\* अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप होता है जो अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक होता है ।

§ १३५. वह जीव अपूर्वकरणके उसी प्रथम समयमें आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप भी प्रारम्भ कर देता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—आयुकर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप किसलिये नहीं करता है ?

समाधान—नहीं, इसका गुणश्रेणिनिक्षेप स्वभावसे ही नहीं करता है, क्योंकि आयु-कर्ममें गुणश्रेणिनिक्षेपकी प्रवृत्ति असम्भव है ।

परन्तु उस गुणश्रेणिनिक्षेपका प्रमाण कितना है ऐसी पृच्छा होनेपर वह अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है ऐसा निर्देश किया है । यहाँ अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके समुदित कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । उससे विशेष अधिक इस गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातर्वे भागप्रमाण है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—ऊपर कहे जानेवाले अल्पबहुत्वविषयक सूत्रसे जाना जाता है ।

§ १३६. संपहि एत्थ गुणसेट्ठिविण्णासकमो वुच्चदे । तं जहा—अपुव्वकरणपढम-समए दिवड्डुगुणहाणिमेत्तसमयपवद्धे ओकड्डुकड्डुणभागहारेण खंडेयुण तत्थेयखंडमेत्तदव्व-मोकड्डिय तत्थासंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वमुदयावलियव्वमंतरे गोवुच्छायारेण णिसिंचिय पुणो सेसवहुभागदव्वमुदयावलियवाहिरे णिक्खिस्वमाणो उदयावलियवाहिराणंतरद्विदीए असंखेज्जसमयपवद्धमेत्तदव्वं णिसिंचदे । तत्तो उवरिमद्विदीए असंखेज्जगुणं देदि । एव-मसंखेज्जगुणाए सेटीए णिसिंचदि जाव अपुव्व्वाणियट्टिकरणद्वाहितो विसेसाहियगुणसेट्ठि-सीसयं ति । पुणो उवरिमाणंतरद्विदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि । तत्तो परं विसेसहीणं णिक्खिस्वदि जाव चरिमद्विदिमधिच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो सि । एवमपुव्वकरण विदियादिसमएसु वि गुणसेट्ठिणक्खेवकमो परूवेयव्वो । णवरि गल्लिदसेसायामेण णिसिंचदि ति वत्तव्वं ।

§ १३६. अब यहाँपर गुणश्रेणिकी रचनाके क्रमको बतलाते हैं । यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें डेढ़ गुणहानिप्रमाण समयप्रवद्धोंको अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजितकर वहाँ लब्धरूपसे प्राप्त एक खण्डप्रमाण द्रव्यका अपकर्षणकर उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भाग द्रव्य प्राप्त हो उसे उदयावलिके भीतर गोपुच्छाकाररूपसे निक्षिप्तकर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थितिमें असंख्यात समयप्रवद्धप्रमाण द्रव्यको निक्षिप्त करता है । तथा उससे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है । इसप्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है । पुनः गुणश्रेणिशीर्षकी उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है । उसके बाद अतिस्थापनावलिको प्राप्त न होता हुआ उससे पूर्वकी अन्तिम स्थितितक क्रमसे विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है । इसीप्रकार अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयोंमें भी गुणश्रेणिके निक्षेपका कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि गलित होनेसे जो काल शेष रहे उसके आयामके अनुसार निक्षिप्त करता है ।

विशेषार्थ—गुणश्रेणिका स्वरूप निर्देश हम पहले कर आये हैं । यहाँ गुणश्रेणिप्रमाण निषेकोंमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस प्रकार होता है इसका क्रम बतलाया गया है । यहाँ आयुर्कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी जिन प्रकृतियोंका वर्तमानमें उदय होता है उनकी उदय समयसे लेकर गुणश्रेणि रचना होती है और जिन कर्मप्रकृतियोंका उदय नहीं होता है उनकी उदयावलिके उपरिम समयसे लेकर गुणश्रेणि रचना होती है । ऐसा होते हुए भी गुणश्रेणि रचनाका प्रमाण अवस्थित होनेसे उसमें प्रत्येक समयमें एक-एक समयकी हानि होती जाती है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे गुणश्रेणिरचनाके प्रारम्भ होनेपर जैसे-जैसे एक-एक समय अतीत होता जाता है वैसे-वैसे गुणश्रेणिका आयाम भी घटता जाता है, ऊपर गुणश्रेणि शीर्षमें वृद्धि नहीं होती । इसलिये इसकी अवस्थित गुणश्रेणि संज्ञा है । गुणश्रेणिरचनाके कालमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस क्रमसे होता है इसका विचार मूलमें किया ही है । यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि उदयावलिसे ऊपर प्रथम स्थितिसे लेकर अन्तिम स्थितितक प्रत्येक स्थितिमेंसे द्रव्यका अपकर्षण होकर गुणश्रेणिमें निक्षेप होता है । क्रम यह है कि उदयावलिसे उपरिम प्रथम स्थितिमेंसे अपकर्षित द्रव्यका एक समय कम आवलिके एक समय अधिक



§ १३७. संपहि अपुव्वकरणपढमसमए जुगवमाढत्ताणं ठिदि-अणुभागखंडय-ट्टिदि-बंधाणं परिसमत्ती किमकमेण होइ, आहो कमेणे त्ति आसंकाए णिणणयविहाणट्टमिदमाह—

\* तम्हि ट्टिदिखंडयद्धा ठिदिवंधगद्धा च तुल्ला ।

§ १३८. अपुव्वकरणे पढमट्टिदिखंडयद्धा पढमट्टिदिवंधगद्धा च अंतोमुहुत्तमेत्ती होदूण अणुणोण्णेण तुल्ला भवदि । एवं विदियादिट्टिदिखंडय-ट्टिदिवंधगद्धाणमणोण्णं समाणत्तं वत्तव्वं । णवरि पढमट्टिदिखंडयतव्वंधगद्धाहितो विदियादीणं जहाकमं विसेसहीणत्तमव-गंतव्वं । सुत्तेणाणुवइड्ढं कथमेदमवगम्मदि त्ति णासंकणिज्जं, उवरिमअप्पावहुअसुत्तबलेण तण्णिणणयादो । तदो ट्टिदिखंडय-ट्टिदिवंधाणं पारंभो पज्जवसाणं च जुगवं होदि त्ति सुत्तस्स भावत्थो । संपहि ट्टिदिखंडयद्धाए संखेज्जदिभागमेत्ती चेव अणुभागखंडय-

त्रिभागमें उदय समयसे लेकर निक्षेप होता है तथा एक समयकम उदयावलिका दो त्रिभाग अतिस्थापनारूप रहता है । इससे उपरिम द्वितीय स्थितिके कर्मपुंजका अपकर्षण होनेपर निक्षेपका प्रमाण वही रहता है, मात्र अतिस्थापनामें एक समयकी वृद्धि हो जाती है । पुनः इससे उपरिम तृतीय स्थितिके कर्मपुंजका अपकर्षण होनेपर निक्षेप ती वही रहता है, मात्र अतिस्थापनामें एक समयकी और वृद्धि हो जाती है । इसप्रकार उत्तरोत्तर अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होनेतक उसमें वृद्धि होती जाती है, निक्षेपका प्रमाण वही रहता है । पुनः इससे ऊपर सर्वत्र अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है, मात्र निक्षेपमें प्रति समय वृद्धि होती जाती है । यहाँ जघन्य निक्षेपका प्रमाण एक समय कम एक आवलिका एक समय अधिक त्रिभागप्रमाण है और उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलि कम यहाँ गुणश्रेणि रचनाके कालके प्रत्येक समयमें प्राप्त कर्मस्थितिप्रमाण है ।

§ १३७. अब अपूर्वकरणके प्रथम समयमें युगपत् प्राप्त हुए स्थितिकाण्डक, अनुभाग-काण्डक और स्थितिवन्धकी परिसमाप्ति अक्रमसे अर्थात् युगपत् होती है या क्रमसे होती है ऐसी आशंका होनेपर निर्णयका विधान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* वहाँ स्थितिकाण्डकका काल और स्थितिवन्धका काल तुल्य है ।

§ १३८. अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डकका उत्कीरण काल और प्रथम स्थितिवन्धका काल अन्तर्मुहूर्त होकर परस्पर तुल्य होता है । इसीप्रकार द्वितीयादि स्थितिकाण्डक और स्थितिवन्धका काल परस्पर समान है ऐसा कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालसे और प्रथम स्थितिवन्धके कालसे द्वितीयादिको यथाक्रम विशेष हीन विशेष हीन जानना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें इस विशेषताका उपदेश नहीं दिया है, फिर यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आगे कहे जानेवाले अल्प-बहुत्वके प्रतिपादक सूत्रोंके बलसे इस विशेषताका निर्णय होता है ।

इसलिए स्थितिकाण्डक और स्थितिवन्धका प्रारम्भ और समाप्ति एकसाथ होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब स्थितिकाण्डकघातके कालके संख्यातवै भागप्रमाण ही अनु-

उक्कीरणद्वा होदि त्ति जाणावणद्धमुत्तरसुत्तावयारो—

\* एकम्मिह द्विदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि ।

§ १३९. किं कारणं ? द्विदिखंडयउक्कीरणद्वादो अणुभागखंडयउक्कीरणद्वाए संखेजगुणहीणत्तादो । संपहि एदस्सेवत्थस्स परिष्फुडीकरणद्धमिमं परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एगाणुभागखंडयउक्कीरणकालेण एगद्धिदिखंडयउक्कीरणकालम्मि भागे हिदे संखेजसहस्समेत्ताणि रूवाणि आगच्छंति । पुणो एदाणि विरलिय पढमद्धिदिखंडयउक्कीरणद्धं समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ एक्केकस्स रूवस्स अणुभागखंडयउक्कीरणकालपमाणं पावेइ । पुणो एत्थ एगरूवधरिदं विरलिय पुध द्दवेयव्वं । संपहि एवंविहपुधविरलणाए पढमसमयम्मि पलिदोवमस्स संखेजदिभागायामपढमद्धिदिखंडयस्स पढमफालिभागाएदूण णासेइ । अणुभागखंडयस्स वि जहण्णफदयप्पहुडि जायुक्कस्सफदये त्ति ताव विरचिद-फदयाणमणंताभागमेत्तपढमफालिं घेत्तूण तत्थेव णासेइ । तिस्से चेव पुधद्धिदिदविरलणाए विदियसमयम्मि तेणेव विधिणा ठिदिखंडयविदियफालिमणुभागखंडयविदियफालिं च समयं घेत्तूण घादेदि । एवं पुणो पुणो गेण्हमाणेण पुव्वुत्तेगरूवधरिदसमयमेत्तफालीसु घादिदासु पढमाणुभागखंडयं समप्पइ । णवरि पढमद्धिदिखंडयमज्ज वि ण समप्पइ, तदुक्कीरणद्वाए संखेजदिभागस्सेव गयत्तादो । पुणो एदेणेव विधिणा सेसविरलिदसंखेज-

भागकाण्डकका उत्कीरणकाल होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

\* एक स्थितिकाण्डकमें हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात करता है ।

§ १३९. क्योंकि स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालसे अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल संख्यातगुणा हीन होता है । अब इसी अर्थको सुस्पष्ट करनेके लिये इस प्ररूपणाको बतलाते हैं । यथा—एक अनुभागकाण्डककालके उत्कीरणकालका एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालमें भाग देनेपर संख्यात हजारप्रमाण संख्या प्राप्त होती है । पुनः इनका विरलनकर प्रथम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालके समान खंड करके प्रत्येक विरलन अंकके प्रति देयरूपसे देनेपर वहाँ एक-एक अंकके प्रति अनुभागकाण्डकके उत्कीरणकालका प्रमाण प्राप्त होता है । पुनः यहाँपर एक अंकके प्रति जो प्राप्त हुआ उसका विरलनकर पृथक् स्थापित करना चाहिए । अब इस-प्रकारका जो पृथक् विरलन स्थापित किया उसके प्रथम समयमें पल्योपमके संख्यातवें भाग-प्रमाण आयामवाले प्रथम स्थितिकाण्डककी प्रथम फालिको ग्रहणकर उसका नाश करता है । अनुभागकाण्डककी भी जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धकतक विरचित स्पर्धकोंकी अनन्त बहुभागप्रमाण प्रथम फालिको ग्रहणकर उसका वहींपर नाश करता है । पृथक् स्थापित हुए उसी विरलनके दूसरे समयमें उसी विधिसे स्थितिकाण्डककी दूसरी फालिको तथा अनुभाग-काण्डककी दूसरी फालिको उसी समय ग्रहणकर उनका घात करता है । इसप्रकार पुनः पुनः उन दोनोंको ग्रहण करनेसे पूर्वोक्त विरलनके एक अंकके प्रति समयका जितना प्रमाण प्राप्त हुआ था तत्रमाण फालियोंका घात करनेपर प्रथम अनुभागकाण्डक समाप्त होता है । इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डक अभी भी समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि उसके उत्कीरणकालका

सहस्सरूपमेत्ताणुभागखंडएसु घादिदेसु तदो अपुव्वकरणपढमट्टिदिखंडो पढमट्टिदिखंडयं संखेजसहस्समेत्ताणमेत्थतणाणुभागखंडयाणं परिमाणखंडयं' च एदाणि तिण्णि वि जुगवं परिसमप्पंति । एवं होदि त्ति कट्टु एकम्मिह ट्टिदिखंडए अणुभागसहस्साणि घादेदि त्ति सिद्धं । संपहि एदस्सेवत्थस्स उवसंहारमुहेण परिप्फुडीकरणट्टुमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

\* ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्टिदिखंडगद्धा च समत्ताणि भवंति ।

§ १४०. सुगमं चेदं, अणंतरादीदपबंधेणैव गयत्थत्तादो । संपहि एवंविहेसु ट्टिदिखंडयसहस्सेसु पादेकमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु तदो अपुव्वकरणद्धा समप्पदि त्ति पदुप्पायणट्टुमुत्तरसुत्तं भणइ—

\* एवं ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि ।

§ १४१. गयत्थमिदं सुत्तं । णवरि पढमट्टिदिखंडयादो विदियट्टिदिखंडयं विसेसहीणं संखेजदिभागेण । एवमणंतराणंतरादो विसेसहीणं णेदव्वं जाव चरिमट्टिदिखंडये त्ति ।

संख्यातवाँ भाग ही व्यतीत हुआ है । पुनः इसी विधिसे शेष विरलनोंके प्रति प्राप्त संख्यात हजार संख्याप्रमाण अनुभागकाण्डकोंका घात करनेपर उस समय अपूर्वकरणसम्बन्धी प्रथम स्थितिबन्ध, प्रथम स्थितिकाण्डक और यहाँ सम्बन्धी संख्यात हजार अनुभागकाण्डकोंके परिमाणसे युक्त अनुभागकाण्डक ये तीनों ही एकसाथ समाप्त होते हैं । इसप्रकार होता है ऐसा करके एक स्थितिकाण्डकके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात करता है यह सिद्ध हुआ । अब इसी उपसंहारद्वारा अर्थको सुस्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धकाल समाप्त होते हैं ।

§ १४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तर पूर्व कहे गये प्रबन्धसे ही इसका ज्ञान हो जाता है । अब इस प्रकार जो प्रत्येक स्थितिकाण्डक हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है ऐसे हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर तब अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है इस बातका कथन करनेकेलिये आगेके सूत्रको कहते कहते हैं—

\* इस प्रकार बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ।

§ १४१. यह सूत्र गतार्थ है । इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डकसे दूसरा स्थितिकाण्डक संख्यातवाँ भाग हीन है । इसप्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक पूर्व-पूर्वके स्थितिकाण्डकसे आगे-आगेका स्थितिकाण्डक विशेष हीन जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक आयुर्कर्मके

§ १४२. संपहि अपुव्वकरणचरिमसमए धादिदसेसट्टिदिसंतकम्मपमाणावहारणट्टु-  
मिदमाह—

\* अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्टिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्टिदिसंत-  
कम्मं संखेज्जगुणाहीणं ।

§ १४३. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वणिरुद्धंतोकोडाकोडिमत्तसाग-

अतिरिक्त शेष कर्मोंकी स्थितिमें उत्तरोत्तर हानि किसप्रकार होती है, अप्रशस्त कर्मोंके द्विस्था-  
नीय अनुभागकी हानि भी किस विधिसे होती है और प्रत्येक स्थितिवन्धका काल कितना है  
इसका स्पष्टीकरण किया गया है। यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि गुणश्रेणिरचनाके  
समान ये तीनों ही कार्य अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमेंसे प्रत्येक  
स्थितिकाण्डकका उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्त है। ऐसे हजारों स्थितिकाण्डक अपूर्वकरणके काल-  
के भीतर होते हैं। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितनी स्थिति होती है उसमेंसे पल्योपमके  
संख्यातवें भागप्रमाण उपरितन स्थितिको ग्रहणकर उसका फालिरूपसे प्रत्येक समयमें अपवर्तन  
करते हुए अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उसका अभाव करना एक स्थितिकाण्डकघात है। जैसे  
लकड़ीके एक कुन्देके कुछ भागके बराबर लम्बे अनेक फलक चीर लिये जाते हैं उसी प्रकार पल्यो-  
पमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिके तत्प्रमाण आयामवाली उत्कीरणकालके जितने समय हों  
उतनी फालियाँ करके एक-एक समयमें उनका अपवर्तन करते हुए अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय-  
में पूरी काण्डकप्रमाण स्थितिका अपवर्तन करना स्थितिकाण्डकघात है। पुनः दूसरे अन्तर्मुहूर्त-  
में दूसरे स्थितिकाण्डकका उक्त विधिसे अपवर्तन करना दूसरा स्थितिकाण्डकघात है। इसी  
प्रकार अन्तिम समय तक हजारों स्थितिकाण्डकोंका अपवर्तनविधिसे घात होता है। यह तो  
स्थितिकाण्डकघातकी प्रक्रिया है। अनुभागकाण्डकघातकी प्रक्रिया भी इसी प्रकार है। इतनी  
विशेषता है कि एक-एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालमें हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं।  
इनमेंसे प्रत्येक अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इसी प्रकार स्थिति-  
बन्धापसरणके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एक स्थितिकाण्डकके  
उत्कीरणका जो काल है उतना ही एक स्थितिवन्धका काल है। अर्थात् इतने काल तक प्रति  
समय सदृश स्थितिका बन्ध होता है। स्थितिकाण्डकके बदलते ही दूसरा स्थितिवन्ध प्रारम्भ  
होता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जितने स्थितिकाण्डकघात होते हैं उतने ही  
स्थितिवन्धापसरण होते हैं। इसके अतिरिक्त स्थितिकाण्डकोंके विषयमें विशेष खुलासा मूलमें  
किया ही है। अर्थात् प्रथम स्थितिकाण्डकसे दूसरा स्थितिकाण्डक विशेष हीन होता है, दूसरे-  
से तीसरा, तीसरेसे चौथा इस प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डक तक पूर्व-पूर्व स्थितिकाण्डकसे  
आगे-आगेका स्थितिकाण्डक विशेष हीन होता है।

§ १४२. अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें घात करनेसे शेष स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका निश्चय  
करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिम समयमें स्थितिसत्कर्म  
संख्यातगुणा हीन है ।

§ १४३. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो पहलेकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम-

रोवमाणं संखेज्जे भागे अपुव्वकरणविसोहिणिवंधणट्टिदिखंडयसहस्सेहिं घादिय संखेज्जदि-  
भागमेत्तस्सेव ट्टिदिसंतकम्मस्स परिसेसिदत्तादो । संपहि अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि  
जाव चरिमसमयो त्ति ताव एदन्मि अंतरे घादिदासेससागरोवमाणमागमणमिच्छामो त्ति  
तेरासियं कादूण जोइज्जदे । तं कथं ? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ताणं ठिदिखंडयाणं जइ एगं  
पलिदोवमं लब्भइ तो एत्तो संखेज्जसहस्सकोडिगुणट्टिदिकंडएसु केत्तियाणि पलिदोवमाणि  
लहामो त्ति तेरासियं कादूण ट्टिदिखंडयस्स ट्टिदिखंडयं सरिसमवणिय हेट्टिमसंखेज्जरूवेहिं  
उवरिमसंखेज्जरूवाणि ओवट्टिय लद्धेण पलिदोवमे गुणिदे संखेज्जकोडाकोडिमेत्तपलिदो-  
वमाणि आगच्छंति ट्टिदिखंडयगुणगारमाहप्पादो । पुणो एदाणि संखेज्जकोडाकोडिमेत्त-  
पलिदोवमाणि तेरासियकमेण सागरोवमपमाणेण कीरमाणाणि संखेज्जकोडिमेत्तसारोवमाणि  
होति त्ति । होताणि वि पुव्वणिरुद्धं तोकोडाकोडीए संखेज्जाभागमेत्ताणि त्ति वेत्तव्वाणि ।  
अण्णहा अपुव्वकरणपढमसमयट्टिदिसंतकम्मादो चरिमसमयट्टिदिसंतकम्मस्स संखेज्ज-  
गुणहीणत्ताणुववत्तीदो । ठिदिबंधोसरणस्स वि एसो चेव अत्थो जोजेयव्वो ।

प्रमाण स्थिति है उसके संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका अपूर्वकरणसम्बन्धी विशुद्धिनिमित्तक  
हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा घातकर उसके अन्तिम समयमें संख्यातवें भागमात्र ही स्थिति-  
सत्कर्म शेष रहता है । अब अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक इस कालके  
भीतर जितने सागरोपमप्रमाण स्थितियोंका घात हुआ है उन सबको प्राप्त करना चाहते हैं इस-  
लिये त्रैराशिक करके योजना करते हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संख्यात संख्याप्रमाण स्थितिकाण्डकोंका यदि एक पल्योपम  
प्राप्त होता है तो इनसे संख्यात हजार कोटिगुणे स्थितिकाण्डकोंमें कितने पल्योपम प्राप्त होंगे  
इस प्रकार त्रैराशिककर स्थितिकाण्डक स्थितिकाण्डकके सदृश है अतः उनका अपनयनकर तथा  
अधस्तान संख्यात संख्यासे उपरिम संख्यात संख्याको भाजितकर जो लब्ध आवे उससे पल्यो-  
पमके गुणित करनेपर स्थितिकाण्डकसम्बन्धी गुणकारके माहात्म्यसे संख्यात कोडाकोड़ीप्रमाण  
पल्योपम प्राप्त होते हैं । पुनः इन संख्यात कोडाकोड़ीप्रमाण पल्योपमोंको त्रैराशिकविधिसे  
सागरोपमके प्रमाणसे करनेपर संख्यात कोटिप्रमाण सागरोपम होते हैं । इतने होते हुए भी  
अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विवक्षित अन्तःकोडाकोड़ीके संख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं ऐसा  
यहाँ ग्रहण करना चाहिए । अन्यथा अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिम  
समयका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन नहीं बन सकता । स्थितिवन्धापसरणके विषयमें भी  
इसी अर्थकी योजना करनी चाहिए ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विवक्षित कर्मोंका जितना स्थितिसत्त्व रहता  
है उसके अन्तिम समयमें वह संख्यातगुणा हीन कैसे हो जाता है इसी बातको यहाँ त्रैराशिक  
विधिसे स्पष्ट किया गया है । कारण यह है कि चूणिसूत्रमें एक स्थितिकाण्डकका आयाम

§ १४४. एवमेत्तिण वावारविसेसेणापुव्वकरणद्धं समाणिय तदो अणियट्टिकरणं पविट्टस्स किरियाविसेसपदुप्पायणद्धमुत्तरमुत्तमाह—

\* अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्टिदिखंडयं अण्णो ट्टिदिबंधो अण्णमणुभागखंडयं ।

§ १४५. अणियट्टिकरणपविट्टपढमसमए चेव अण्णमपुव्वकरणचरिमट्टिदिखंडयादो विसेसहीणट्टिदिखंडयमाढत्तं । ट्टिदिबंधो वि पुव्विल्लादो ट्टिदिबंधादो पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो तत्थेवाढत्तो । अणुभागखंडयं पि घादिदसेसाणुभागस्साणंतभागमेत्तं तत्थेवागाइदं । गुणसेट्ठिणिक्खेवो पुण पुव्विल्लो<sup>१</sup> चेव गल्लिदसेसो पडिसमयम संखेज्जगुणपदेसविण्णासविसेसिदो इवइ । सेसो वि विही पुव्वुत्तो चेव दट्टुव्वो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

पल्योपमके संख्यातर्वे भागप्रमाण है और अपूर्वकरणके कालमें ऐसे स्थितिकाण्डक संख्यात हजार होते हैं मात्र इतना ही बतलाया गया है, इसलिए स्थितिकाण्डकोंका प्रमाण कितना होना चाहिए ताकि उसके आधारसे अपूर्वकरणके कालमें घटनेवाली विवक्षित स्थितिका प्रमाण प्राप्त किया जा सके। इसी तथ्यको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ एक पल्योपममें जितने स्थितिकाण्डक हों उनसे संख्यात हजार कोटिगुणे कुल स्थितिकाण्डक होते हैं यह स्वीकारकर अपूर्वकरणके कालमें घटनेवाली विवक्षित स्थितिका प्रमाण त्रैशिक विधिसे प्राप्तकर वह संख्यात कोटि सागरोपमप्रमाण बतलाया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्त्व होता है उसके अन्तमें वह संख्यातगुणा हीन हो जाता है। इसी प्रकार स्थितिबन्धके विषयमें भी आगमानुसार समझ लेना चाहिए।

§ १४४. इस प्रकार इतने व्यापारविशेषके द्वारा अपूर्वकरणके कालको समाप्तकर उसके बाद अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके क्रियाविशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

\* अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिकाण्डक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकाण्डक होता है ।

§ १४५. अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयसे ही अपूर्वकरणके अन्तिम स्थितिकाण्डकसे विशेष हीन अन्य स्थितिकाण्डकका आरम्भ करता है। पूर्वके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातर्वे भागप्रमाण हीन स्थितिबन्ध भी वहींपर आरम्भ करता है। तथा घात करनेसे शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकको भी वहींपर ग्रहण करता है। परन्तु गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्वका ही रहता है, जो अधःस्तन स्थितियोंके गलनेपर जितना शेष रहे उतना होता है तथा प्रतिसमय असंख्यातगुणे प्रदेशोंके विन्याससे विशेषताको लिये हुए होता है। शेष विधि भी पूर्वोक्त ही जाननी चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—यहाँ अनिवृत्तिकरणमें स्थितिकाण्डक आदिकी क्या व्यवस्था रहती है यह

१. ता० प्रती पुव्विल्लादो इति पाठः ।

§ १४६. एवमेदीए परूवणाए बहूहिं द्विदिखंडयसदस्सेहिं गदेहिं तदो कीरमाण-  
कज्जविसेसपदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्त माह—

\* एवं द्विदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्दाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु  
अंतरं करेदि ।

§ १४७. एवमणंतरपरूविदविहाणेण बहूहिं द्विदिखंडयसहस्सेहिं पादेकमणुभाग-  
खण्डयसहस्साविणाभावीहि अणियट्टिअद्दाए संखेज्जे भागे गमिय तदद्दाए संखेज्ज-  
भागमेत्तावसेसे अंतरकरणमाढवेदि चि भणिदं होइ । किमंतरकरणं णाम ? विवक्खिय-  
कम्माणं हेट्टिमोवरिमट्टिदीओ मोत्तूण मज्जे अंतोमुहुचामेत्तीणं द्विदीणं परिणामविसेसेण  
णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे । संपहि एवं लक्खणमंतरकरणमाढविय  
पुणो केचियमेत्तेण कालेण केचियाओ द्विदीओ घेत्तूणंतरं करेदि, केचियमेत्तिं वा मिच्छ-  
चस्स पढमट्टिदिं परिसेसेदि चि एवंविहस्स अत्थविसेसस्स परूवणट्टमुत्तरसुत्तामोइण्णं—

स्पष्टरूपसे बतलाया गया है । विशेष बात इतनी ही है कि दर्शनमोहनीयकी उपशमना करने-  
वाले जीवके अवस्थित गुणश्रेणिरचना न होकर गलितावशेष गुणश्रेणि रचना होती है । इसलिए  
अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लेकर आगे भी गुणश्रेणिविन्यासके अन्तिम समय तक जो  
गुणश्रेणिका आयाम शेष रहता जाता है मात्र उतने प्रमाणमें ही प्रति समय असंख्यात  
गुणित प्रवेश विन्यासरूपसे उसकी रचना होती रहती है ।

§ १४६. इसप्रकार इस परूवणाके अनुसार बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके हो जानेपर  
उसके आगे किये जानेवाले कार्यविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इस प्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहु-  
भागके व्यतीत होनेपर अन्तर करता है ।

§ १४७. इसप्रकार अनन्तरपूर्व कही गई विधिके अनुसार जो प्रत्येक स्थितिकाण्डक  
हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है ऐसे बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनि-  
वृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागको वित्ताकर उसके कालके संख्यातवें भागप्रमाण शेष  
रहनेपर अन्तरकरणका आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—अन्तरकरण किसे कहते हैं ?

समाधान—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी  
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके कारण अभाव करनेको अन्तरकरण  
कहते हैं ।

अब इसप्रकारके लक्षणवाले अन्तरकरणका आरम्भकर पुनः कितने कालके द्वारा कितनी  
स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है तथा मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको कितना शेष रहने  
देता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* जा तम्हि द्विदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेट्ठिणिकखेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि ।

§ १४८. एदेण सुत्तेण अंतरकरणं करेमाणस्स कालपमाणमंतरद्वुमागाइदठिदीणं पमाणवहारणं पढमट्ठिदिदीहत्तं च परूविदं होइ । तं जहा—अंतरं करेमाणो केत्तियमेत्तेण कालेणंतरं करेदि त्ति पुच्छिदे 'जा तम्हि द्विदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण करेदि' त्ति णिदिट्ठं । एदेण वयणेणेगसमएण दोहि तीहि वा समएहि एवं जाव संखेज्जासंखेजेहि वा समएहि अंतरकरणसमत्ती ण होइ । किंतु अंतोमुहुत्तेणेव होइ त्ति जाणाविदं ।

§ १४९. संपहि एदेण कालेणंतरं करेमाणो केत्तियमेत्तीओ द्विदीओ धेत्तूण केत्तियमेत्ति वा पढमट्ठिदिं ठविय अंतरं करेदि त्ति पुच्छाए णिण्णयं करिस्सामो । तं जहा—'गुणसेट्ठिणिकखेवस्स अग्गग्गादो' एत्थ गुणसेट्ठिणिकखेवो त्ति वुत्ते जो अपुव्वकरणस्स पढमसमए अणियट्ठिकरणद्वाहिंतो विसेसाहियायामेण णिक्वित्तो गल्लिदसेस-सरूवेणेत्तियकालमागदो तस्स गहणं कायव्वं । तस्स अग्गग्गमिदि भणिदे गुणसेट्ठि-सीसयस्स गहणं कायव्वं । तन्नो प्पहुडि हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि त्ति भणिदे सयलस्स-गुणसेट्ठिआयामस्स त्कालं दीसमाणस्स संखेज्जदिभागभूदो जो अणियट्ठिअद्वादो अच्छिदो

\* उस समय जितना स्थितिबन्धककाल है उतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे अर्थात् गुणश्रेणिशीर्षसे लेकर ( नीचे ) गुणश्रेणि आयामके संख्यातर्वे भागप्रमाण स्थितिनिषेकोका खण्डन करता है ।

§ १४८. इस सूत्रद्वारा अन्तरकरण करनेवाले जीवके कालका प्रमाण, अन्तर करनेके लिये ग्रहण की गई स्थितियोंके प्रमाणका अवधारण तथा प्रथम स्थितिकी दीर्घता इन तीनका कथन किया गया है । यथा—अन्तर करनेवाला कितने कालके द्वारा अन्तर करता है ऐसी पृच्छा होनेपर 'जो उस समय स्थितिबन्धका काल है उतने कालके द्वारा करता है' यह निर्दिष्ट किया है । इस वचनसे यह जताया गया है कि एक समयद्वारा अथवा दो या तीन समयों-द्वारा इसप्रकार संख्यात और असंख्यात समयोंद्वारा अन्तरकरणविधि समाप्त नहीं होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा ही यह विधि समाप्त होती है ।

§ १४९. अब इतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ मात्र कितनी स्थितियोंको ग्रहण-कर तथा कितनी प्रथम स्थितिको स्थापितकर अन्तर करता है ऐसी पृच्छा होनेपर निर्णय करते हैं । यथा—'गुणसेट्ठिणिकखेवस्स अग्गग्गादो' इस वचनमें 'गुणश्रेणिनिक्षेप' ऐसा कहने पर जो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक आयामरूपसे निक्षिप्त द्रव्य गलित शेषरूपसे इतने काल तक आया है उसका ग्रहण करना चाहिए । उसका अग्राग्र ऐसा कहने पर गुणश्रेणिशीर्षका ग्रहण करना चाहिए । 'उससे लेकर नीचे संख्यातर्वे भागका खण्डन करता है' ऐसा कहने पर जो उस समय दिखाई देता है ऐसे समस्त गुणश्रेणि आयामका संख्यातर्वाँ भागरूप जो अनिवृत्तिकरणके कालसे उपरिम विशेष अधिक निक्षेप है



उवरिमो विसेसाहियणिकखेवो तं सच्चमंतरट्टमागाएदि चि भणिदं होइ । क्रिमेचियं चैव अंतरदीहत्तं ? ण, गुणसेट्ठिसीसयादो उवरि अण्णाओ वि संखेज्जगुणाओ ट्टिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि । सुत्तेणाणुवइट्टमेदं कथमवगम्मदे चे ? ण, पुरदो भणिस्समाणप्पाबहुअवलेण तदवगमादो । अथवा गुणसेट्ठिअग्गादो हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि चि भणतेण उवरि संखेज्जगुणाणं ट्टिदीणं खंडणं भणिदमेव । कुदो ? उवरि खंडिज्जमाणाणं ट्टिदीणं संखेज्जदिभागमेणं गुणसेट्ठिअग्गादो हेट्ठा खंडेदि चि सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । तदो अणियट्टिअद्दासेस्स संखेज्जभागमेणेण कालेण अंतरं करेमाणो अंतरकरणद्वादो संखेज्जगुणं मिच्छत्तस्स पढमट्टिदिं परिसेसिय पुणो अणियट्टिकरणद्वादो उवरिमविसेसाहियगुणसेट्ठिणिकखेवेण सह ततो संखेज्जगुणाओ अण्णाओ वि ट्टिदीओ घेत्तूणंतरमेसो करेदि चि सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो । एत्थ अंतफालीओ पडिसमयमसंखेज्जगुणसरूवेण घेत्तूण पढमविदियट्टिदीसु समयाविरोहेण णिक्खवमाणो अंतोमुहुचामेणेण कालेणंतरं समाणेदि चि वचाव्वं ।

उस सबको अन्तरके लिए ग्रहण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**शंका**—क्या अन्तरकी दीर्घता इतनी ही है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि गुणश्रेणिशीर्षसे ऊपर अन्य भी संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है ।

**शंका**—सूत्रमें निर्देश नहीं की गई यह विशेषता किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वके बलसे इसका ज्ञान होता है ।

अथवा गुणश्रेणिके अग्रप्रसे नीचे संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति निषेकोंका खण्डन करता है ऐसा कथन करनेवाले आचार्यदेवने ऊपर संख्यातगुणी स्थितियोंका खण्डन करता है यह कह ही दिया है, क्योंकि ऊपर खण्डित होनेवाली स्थितियोंके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंका गुणश्रेणिके अग्रप्रसे नीचे खण्डन करता है इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया है । इसलिये अनिवृत्तिकरणका जितना काल शेष है उसके संख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ अन्तरकरणके कालसे संख्यातगुणी मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको शेष रखकर पुनः अनिवृत्तिकरणके कालसे उपरिम विशेष अधिक गुणश्रेणि-निक्षेपके साथ उससे संख्यातगुणी अन्य स्थितियोंको भी ग्रहण कर यह जीव अन्तर करता है इस प्रकार सूत्रका समुदाय रूप अर्थ सिद्ध हुआ । यहाँ पर अन्तर फालियोंको प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे रूपसे ग्रहण कर प्रथम और द्वितीय स्थितियोंमें आगमानुसार निक्षेप करता हुआ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके द्वारा अन्तरकरणको समाप्त करता है ऐसा कहना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—यहाँ अन्तरकरणके करनेमें कितना काल लगता है, अन्तरके लिये ग्रहण की गई स्थितियोंका प्रमाण कितना है और अन्तरके पूर्वकी प्रथम स्थितिका प्रमाण कितना है इन तीन बातोंका मुख्यरूपसे निर्णय किया गया है । विवक्षित कर्मकी अधस्तन और उपरितन

\* तदो अंतरं कीरमाणं कदं ।

§ १५० अंतरकरणपारंभसमकालभाविद्विदिवंधगद्वामेनेण कालेण समयं पडि अंतर-  
द्विदीओ फालिसरूवेणुकीरंतेण कमेण कीरमाणमंतरमतरकरणद्वाचरिमसमये अंतर-  
चरिमफालीए पादिदाए कदं णिद्विदमिदि वुचं होइ । एदं च मिच्छनास्सेव अंतरकरणं,  
दंसणमोहोवसामणाए अण्णेसिं कम्माणमंतरकरणाभावादो । णवरि सम्मत्त-सम्मा-  
मिच्छनासंतकम्मिओ जदि उवसमसम्मत्तं पडिवज्जइ तो तेसिं पि अंतरकरणमेदेणेव  
विहाणेण करेदि । णवरि तेसिभावलियवाहिरिणुवरि मिच्छनांतरेण सरिसमंतरं करेदि  
णि वेचव्वं ।

स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके द्वारा  
अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं । अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अनिवृत्तिकरणके कालके बहु-  
भागके व्यतीत होने पर जो एक भाग प्रमाणकाल शेष रहता है उसके एक स्थितिबन्धके योग्य  
संख्यातवें भागप्रमाण कालमें मिथ्यात्वके निषेकोंका अन्तरकरण करता है । इससे अन्तरकरण  
करनेमें कितना काल लगता है इसका ज्ञान हो जाता है । यह जीव जिस समय अन्तरकरण-  
का प्रारम्भ करता है उस समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणका जितना काल शेष रहता है तत्काल  
प्रमाण मिथ्यात्वकी अधस्तन स्थितियोंकी प्रथम स्थिति होती है, क्योंकि अनिवृत्तिकरणके  
इतने कालके मिथ्यात्वरूपसे व्यतीत होने पर यह जीव अन्तरमें प्रवेश कर नियमसे सम्यग्दृष्टि  
हो जाता है । अब अन्तरके लिये कितनी स्थितियोंको ग्रहण करता है इसका विचार करते हैं ।  
गुणश्रेणिशीर्षके अग्रभागसे नीचे गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंका और उससे  
ऊपर संख्यातगुणी स्थितियोंका यह जीव अन्तर करता है । इस अन्तरके ऊपर मिथ्यात्वकी  
जो स्थिति शेष रहती है वह सब उपरितन स्थिति कहलाती है । यहाँ मिथ्यात्वकी जिन  
स्थितियोंके निषेकोंका अन्तर करता है उनका फालिक्रमसे उत्कीरणकर अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रथम  
और आबाधाकालसे हीन द्वितीय स्थितिमें निक्षेपण करता है । निक्षेपणकी पूरी विधि आगमसे  
ज्ञान लेनी चाहिए यह उक्त सूत्र और उसकी टीकाका आशय है ।

\* इस प्रकार इस विधिसे किया जानेवाला अन्तरका कार्य किया ।

§ १५०. अन्तरकरणके प्रारम्भके समकालभावी स्थितिबन्धके कालप्रमाण काल द्वारा  
प्रत्येक समयमें अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंका फालिरूपसे उत्कीरण करनेवाले जीवने क्रमसे  
किया जानेवाला अन्तर अन्तरकरणके कालके अन्तिम समयमें अन्तरसम्बन्धी अन्तिम  
फालिका पात करने पर किया अर्थात् सम्पन्न किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । और यह  
मिथ्यात्वकर्मका ही अन्तरकरण है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी उपशमनामें अन्य कर्मोंके  
अन्तरकरणका अभाव है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्कर्म  
वाला जीव यदि उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो उन कर्मोंका भी अन्तरकरण इसी  
विधिसे करता है । इतनी विशेषता है उनका नोचेकी एक आवलिप्रमाण ( उदयावलिप्रमाण )  
स्थितियोंके सिवाय स्थितिसे लेकर ऊपर मिथ्यात्वके अन्तरके सदृश अन्तर करता है ऐसा  
ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशमको उत्पन्न करते समय अनिवृत्तिकरण-

\* तदो प्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णह् ।

§ १५१ जइ वि एसो पुव्वं पि अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि उवसामगो चैव तो वि एत्तो पाए विसेसदो चैव उवसामगो होइ नि भणिदं होइ । एदेण 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' ति एदिस्से पुच्छाए अत्थणिण्णओ कओ दट्टुव्वो, अणियट्ठि-अट्टाए संखेज्जेसु भागेषु गदेषु संखेज्जदिभागसेसे अंतरं कादूण तदो दंसणमोहणीयस्स पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुवसामगो होइ ति परूवणावलंबणादो । एवमंतर-करणणंतरमुवसामगववएसं लद्धू ण मिच्छन्तमुवसामेमाणस्स मिच्छन्तपढमट्ठिदिवेदगा-वत्थाए हेट्ठिमपरूवणादो णत्थि णाणनं । णवरि पढमट्ठिदीए समयूणादिकमेणोहट्टमाणोए जाघे आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ ताघे को विसेसो अत्थि ति पदुप्पायणट्टमुव-रिमो सुत्तपबंधो—

\* पढमट्ठिदीदो वि विदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगालो ताव जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति ।

के बहुभागको बिता कर एक भागके शेष रहने पर स्थितिवन्धके कालप्रमाण काल द्वारा मात्र मिथ्यात्वका अन्तरकरण करता हुआ प्रारम्भमें अन्तरके नीचे प्रथम स्थितिको अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है । किन्तु यदि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है तो वह नीचे एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको स्थापित कर ऊपर मिथ्यात्वकी जहाँ तककी स्थितिका अन्तरकरण करता है वहाँ तककी इन दोनों कर्मोंकी स्थितिका भी अन्तरकरण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* वहाँसे लेकर यह जीव उपशामक कहलाता है ।

§ १५१. यद्यपि यह जीव पहले ही अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर उपशामक ही है तो भी यहाँसे लेकर यह विशेषरूपसे ही उपशामक होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इतने कथन द्वारा 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' इस पृच्छाके अर्थका निर्णय किया हुआ जानना चाहिए, क्योंकि प्रकृतमें अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागोंके जाने पर तथा संख्यातवें भागके शेष रहने पर अन्तरको करके वहाँसे लेकर दर्शन मोहनीयकी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका उपशामक होता है इस प्रकारकी प्ररूपणाका अवलम्बन लिया है । इस प्रकार अन्तरकरणके अनन्तर उपशामक संज्ञाको प्राप्त कर मिथ्यात्वकी उपशामना करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके वेदन करनेरूप अवस्थामें अधस्तन प्ररूपणासे कोई भेद नहीं है । इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिके एक समय कम आदिके क्रमसे गलित होती जाने पर जब आवलि-प्रतिआवलि शेष रहती हैं तब क्या विशेषता है इसका कथन करनेके लिये उपरिमसूत्र प्रबन्ध है—

\* प्रथम स्थितिसे भी और द्वितीय स्थितिसे भी तब तक आगाल-प्रत्यागाल होते रहते हैं जब तक आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती हैं ।

§ १५२. आगालणमागालो, विदियद्विदिपदेसाणं पढमद्विदीए ओकडुणावसेणा-  
गमणमिदि वुत्तं होइ । प्रत्यागालनं प्रत्यागालः, पढमद्विदिपदेसाणं विदियद्विदीए  
उकडुणावसेण गमणमिदि भणिदं होइ । तदो पढम-विदियद्विदिपदेसाणमुकडुणोकडुणा-  
वसेण परोप्परविसयसंकमो आगाल-पडिआगालो ति घेत्तव्वो । एवंलक्खणो आगाल-  
पडिआगालो ताव ण पडिहम्मदे जाव पढमद्विदीए आवलिय-पडिआवलियाओ  
समयुत्तराओ सेसाओ ति आवलिय-पडिआवलियाणं तस्स मज्जादाभावेण मुत्ते णिद्विद्वत्तादो ।  
तत्थावलियात्ति वुत्ते उदयावलिया घेत्तव्वा । पडिआवलियात्ति एदेण वि उदयावलियादो  
उवरिमविदियावलिया गहेयव्वा । किं पुण कारणमावलिय-पडिआवलियमेत्तसेसाए  
पढमद्विदीए आगाल-पडिआगालवोच्छेदणियमो ? ण, सहावदो चेव तदवत्थाए तप्पडि-  
घादन्धुवगमादो । तदो चेव एत्तो प्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेट्ठिणिवखेवो णत्थि ति  
जाणावणट्टमिदमाह—

\* आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु तदो प्पहुडि मिच्छत्तस्स  
गुणसेट्ठी णत्थि ।

§ १५२. आगालकी व्युत्पत्ति है—आगालनं आगालः, अर्थात् द्वितीय स्थितिके कर्मपर-  
माणुओंका प्रथम स्थितिमें अपकर्षणवश आना आगाल है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । प्रत्या-  
गालकी व्युत्पत्ति है—प्रत्यागालनं प्रत्यागालः । प्रथम स्थितिके कर्मपरमाणुओंका द्वितीय स्थिति-  
में उत्कर्षणवश जाना प्रत्यागाल है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अतः प्रथम और द्वितीय  
स्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण और अपकर्षणवश परस्पर विषयसंक्रमका नाम आगाल-  
प्रत्यागाल है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकारके लक्षणवाले आगाल-प्रत्यागाल तब  
तक नहीं व्युच्छिन्न होते हैं जब तक प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवलि-प्रत्यावलि शेष  
रहती हैं, अतएव आवलि प्रत्यावलिको उसकी मर्यादारूपसे सूत्रमें निर्दिष्ट किया है । उनमेंसे  
आवलि ऐसा रहनेपर उदयावलिको ग्रहण करना चाहिए । प्रत्यावलि इससे भी उदयावलिसे  
उपरिम दूसरी आवलिको ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—प्रथम स्थितिके आवलि-प्रत्यावलिमात्र शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालके  
विच्छेदका नियम है इसका क्या कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्वभावसे ही उस अवस्थामें उनका विच्छेद स्वीकार किया  
गया है ?

और इसीलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वका गुणश्रणिनिक्षेप नहीं होता इस बातका ज्ञान  
करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

\* आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर वहाँसे लेकर मिथ्यात्वकी गुणश्रेणि  
नहीं होती ।

§ १५३. किं कारणं ? विदियद्विदीदो पढमद्विदीए तदवस्थाए पदेसागमणस्सा-  
णंतरमेव पडिसिद्धतादो । ण च पढमद्विदीए पडिआवलियपदेसगमोकाड्डियुण गुणसेट्टि-  
णिकखेवो कीरदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, उदयावलियभंतरे गुणसेट्टिणिकखेवस्स एदम्मि विसए  
असंभवादो । ण च पडिआवलियादो ओकाड्डिपदेसगं तत्थेव गुणसेटीए णिकखेवदि  
त्ति संभवो अत्थि, अप्पणो अइच्छावणाविसए णिकखेवविरोहादो ।

§ १५३. क्योंकि दूसरी स्थितिसे प्रथम स्थितिमें उस अवस्थामें कर्मपरमाणुओंके आने-  
का अनन्तर पूर्व ही निषेध कर आये हैं। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलिके कर्मपरमाणुओंका  
प्रथम स्थितिमें अपकर्षण करके गुणश्रेणिनिक्षेप किया जाता है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं  
है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें उदयावलिके भीतर गुणश्रेणिनिक्षेपका होना असंभव है। और  
प्रत्यावलिमेंसे अपकर्षित प्रवेशपुञ्जका वही गुणश्रेणिमें निक्षेप होता है यह भी सम्भव नहीं है,  
क्योंकि अपनी अतिस्थापनामें अपकर्षित द्रव्यके निक्षेपका निरोध है।

**विशेषार्थ**—यहाँ यह बतलाया गया है कि अन्तरकरणके बाद जब मिथ्यात्वकी प्रथम  
स्थिति आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रह जाती है तब वहाँसे लेकर द्वितीय स्थितिमेंसे अप-  
कर्षित होकर मिथ्यात्वका द्रव्य प्रथम स्थितिमें निक्षेप नहीं होता और प्रथम स्थितिके द्रव्यका  
उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षेप नहीं होता और इसीलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वके  
द्रव्यका गुणश्रेणिनिक्षेप भी रुक जाता है। इसपर शंकाकारका कहना है कि ऐसी स्थितिमें भले  
ही प्रथम स्थितिके द्रव्यका द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण होकर निक्षेप मत होओ और द्वितीय  
स्थितिके द्रव्यका भले ही प्रथम स्थितिमें अपकर्षण होकर निक्षेप मत होओ, क्योंकि मिथ्यात्व-  
की प्रथम स्थितिमें आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण स्थितिके शेष रहनेपर आगाल-प्रत्यागालका सूत्रमें  
निषेध किया है। किन्तु जब तक प्रत्यावलिका द्रव्य सत्त्वरूपसे अवस्थित है तब तक प्रत्यावलि  
के द्रव्यका अपकर्षण होकर उसका गुणश्रेणिमें निक्षेप होना सम्भव है। यह एक शंका है।  
इसका समाधान यह है कि जब प्रथम स्थितिमें आवलि और प्रत्यावलिमात्र स्थिति शेष रहती  
है तबसे लेकर उदयावलिमें गुणश्रेणिनिक्षेपका होना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि जब  
द्वितीय स्थितिमेंसे द्रव्यका अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमें निक्षेप ही नहीं होता ऐसी अवस्था-  
में केवल प्रत्यावलिके आधारसे मिथ्यात्वके द्रव्यकी गुणश्रेणिरचनाका होते रहना सम्भव नहीं  
है। कदाचित् शंकाकार यह कहे कि प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोंका अपकर्षण होकर अध-  
स्तन स्थितियोंमें निक्षेप होना बन जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि उपरितन स्थितियोंका  
अपकर्षण होकर अधस्तन स्थितियोंमें निक्षेप मध्यमें अतिस्थापनाको छोड़कर ही होता है ऐसी  
व्यवस्था है। यतः प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोंके लिये उसीकी अधस्तन स्थितियाँ अति-  
स्थापनारूप हैं, अतः प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोंका भी वही गुणश्रेणिमें निक्षेप नहीं हो  
सकता। इसलिये यही निश्चित हुआ कि मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण  
शेष रहनेपर मिथ्यात्वकी द्वितीय स्थितिका प्रथम स्थितिमें और प्रथम स्थितिका द्वितीय स्थितिमें  
क्रमसे अपकर्षण-उत्कर्षण नहीं होता। साथ ही प्रत्यावलिके निषेधोंका उदयावलिमें और प्रत्या-  
वलिकी उपरितन स्थितियोंका उसीकी अधस्तन स्थितियोंमें अपकर्षण होकर निक्षेप नहीं होता।  
इसलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वके कर्मपुञ्जका गुणश्रेणिनिक्षेप भी नहीं होता।

§ १५४. सेसाणं पुण कम्माणमाउगवजाणं सा चेव पोराणिया गुणसेढी गलिद-  
सेसा तथा चेव हवइ, ण तत्थ पडिसेहो अत्थि त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

\* सेसाणं कम्माणं गुणसेढी अत्थि ।

§ १५५. गयत्थमेदं सुत्तं । एयमेदम्मि अवस्थाविसेसे मिच्छत्तस्स गुणसेढिणक्खेवा-  
संभवं सेसकम्माणं च गुणसेढिणक्खेवसंभवं पदुप्पाइय संपहि आवालय-पांडआवलिय-  
मेत्तसेसपढमाडुदियस्स मिच्छत्तस्स तम्मि अवस्थाविसेसे पडिआवलियादो उदीरणासंभव-  
पदुप्पायणडुमिदमाह—

\* पडिआवलियादो चेव उदीरणा ।

§ १५६. तदवत्थस्स मिच्छत्तस्स पडिआवलियादो चेव पदेसग्गमसंखेज्जलोग-  
पडिभागेणोकड्डिय उदयावलियब्भंतरे समयविरोहेण णिक्खवादि त्ति वुत्तं होइ । एत्तो  
समयाहियावलियमेत्तसेसाए पढमडुदीए मिच्छत्तस्स जहणिया ठिदिउदीरणा होदि,  
उदयावलियवाहिरेयडुदिमोकड्डिय असंखेज्जलोगपडिभागेण आवलिय-वे-तिभागे  
अइच्छाविय तत्तिभागे उदयप्पहुडि समयविरोहेण णिक्खेवदंसणादो ।

\* आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि ।

§ १५४. परन्तु आयुर्कर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंकी वही पुरानी गलितावशेष गुणश्रेणि  
उसी प्रकार होती है, उसके होनेमें प्रतिषेध नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

\* शेष कर्मोंकी गुणश्रेणि होती है ।

§ १५५ यह सूत्र गतार्थ है । इस प्रकार इस अवस्थाविशेषमें मिथ्यात्वप्रकृतिका गुण-  
श्रेणिनिक्षेप असंभव है और शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप सम्भव है इसका कथन करके अब  
जिसकी आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष है ऐसे मिथ्यात्वकर्मकी उस अवस्था-  
विशेषमें प्रत्यावलिमेंसे उदीरणा होना सम्भव है इसका कथन करनेके लिये इस सूत्रको  
कहते हैं—

\* प्रत्यावलिमेंसे ही उदीरणा होती है ।

§ १५६. तदवस्थ मिथ्यात्वकर्मकी जो प्रत्यावलि है उसके द्रव्यमें असंख्यात लोकका  
भाग देनेपर जो एक भागप्रमाण कर्मपुण्ड्र लब्ध आवे उसका अपकर्षणकर उसे आगममें  
बतलाई गई विधिके अनुसार उदयावलिमें निक्षिप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।  
इस प्रत्यावलिमेंसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिकी जघन्य स्थिति उदी-  
रणा होती है, क्योंकि उदयावलिके बाहर एक स्थितिके द्रव्यमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर  
जो एक भाग लब्ध आवे उसका अपकर्षणकर एक समय कम आवलिके दो त्रिभागकी अति-  
स्थापितकर एक समय अधिक उसके त्रिभागमें उदय समयसे लेकर आगमविधिसे निक्षेप  
देखा जाता है ।

\* आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिके शेष रहनेपर मिथ्यात्व कर्मका घात नहीं होता ।

§ १५७. आवलियमेत्तसेसाए पढमट्टिदीए मिच्छत्तस्स ट्टिदि-अणुभागाणमुदीरणा-सरूवेण घादो णत्थि त्ति भणिदं होइ । ट्टिदि-अणुभागकंडयघादो पुण जाव पढमट्टिदि-चरिमसमयो ताव मिच्छत्तस्स संभवदि, चरिमट्टिदिवंधेण सह तत्थ तेसिं परिसमत्ति-दंसणादो । तदो उदीरणाघादस्सेव एसो पडिसेहो त्ति सहहेयव्वं ।

§ १५८. एवमेदेण विहाणेण मिच्छत्तपढमट्टिदिमावलियपविट्ठं कमेण वेदयमाणो चरिमसमयमिच्छादिट्ठी जादो । तदणंतरसमए च मिच्छत्तपढमट्टिदिं सव्वं गालिय पढमसम्मत्तमुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

\* चरिमसमयमिच्छाट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ ।

§ १५९. पढमसम्मत्तमुप्पाएदि त्ति वक्कविसेसो एत्थ कायव्वो । को एत्थ दंसणमोहणीयउवसमो णाम ? वुच्चदे—करणपरिणामेहिं णिसत्तीकयस्स दंसणमोह-

§ १५७. प्रथम स्थितिके आवलिप्रमाण शेष रहनेपर मिथ्यात्वकर्मके स्थिति-अनुभागका उदीरणारूपसे घात नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है । परन्तु प्रथम स्थितिके अन्तिम समयतक मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात सम्भव है, क्योंकि वहाँपर अन्तिम स्थितिबन्धके साथ उनकी परिसमाप्ति देखी जाती है । इसलिये उदीरणाघातका ही यह निषेध है ऐसा श्रद्धान करना चाहिए ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वप्रकृतिका बन्ध अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयतक होता है, अतः उसका अविनाभावी स्थितिकाण्डकघात भी तथा एक स्थितिकाण्डकघातके कालमें हजारों अनुभागकाण्डकघात भी वहींतक समझने चाहिए । यह स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातकी क्रिया और उनका निक्षेप आवलि-प्रत्यावलिके शेष रहनेपर वहाँसे लेकर अन्तरसे उपरितन स्थिति और अनुभागमें ही जानना चाहिए, प्रथम स्थिति और उसके अनुभागमें नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ १५८. इसप्रकार इस विधिसे उद्यावलिके प्रविष्ट हुई मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिका क्रमसे वेदन करता हुआ अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि हो जाता है । और मिथ्यात्वकी सम्पूर्ण प्रथम स्थितिको गलाकर तदनन्तर समयमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला होता है इस बातको बतलानेवाले आगेके सूत्रको कहते हैं—

\* पुनः वह अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव तदनन्तर समयमें उपशामन्त दर्शनमोहनीय होकर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ।

§ १५९. प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है इतने वाक्यविशेषकी यहाँ योजना करनी चाहिए ।

शंका—यहाँपर दर्शनमोहनोयका उपशम किसे कहते हैं ?

समाधान—करणपरिणामोंके द्वारा निःशक्त किये गये दर्शनमोहनीयके उदयरूप पर्यायके बिना अवस्थित रहनेको उपशम कहते हैं ।

णीयस्स उदयपञ्जाएण विणा अवट्टाणमुवसमो त्ति भण्णदे । ण सच्चोवसमो एत्थ संभवह, उवसंतस्स वि दंसणमोहणीयस्स संकमोकड्डणाकरणामुवल्लभदे । तम्हा अंतरपवेसपढमसमए चेव दंसणमोहणीयमुवसामिय उवसमसम्माइड्ढी जादो त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुच्चयत्थो । संपहि तम्हि चेव पढमसमए कीरमाणकजभेदपदुप्पायणवृत्तुत्तर-सुत्तावयारो—

\* ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा ।

§ १६०. तम्हि चेव उवसंतदंसणमोहणीयपढमसमए तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा । के ते ? मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदा । कुदो एवमेदेसिमुप्पत्ती चे ? ण, अणियट्ठिकरणपरिणामेहिं पेलिज्जमाणस्स दंसणमोहणीयस्स जंतेण दलिज्जमाणकोइव-रासिस्सेव तिण्हं भेदाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो ।

§ १६१. संपहि उवसमसम्माइड्ढिपढमसमयप्पहुडि मिच्छत्तपदेसाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंक्रमेण परिणमणकममप्पावहुअमुहेण परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

यहाँपर सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशमपनेको प्राप्त होनेपर भी दर्शनमोहनीयके संक्रमकरण और अपकर्षणकरण पाये जाते हैं । इसलिए अन्तरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें ही दर्शनमोहनीयको उपशमाकर उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया इसप्रकार सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ सिद्ध हुआ । अब उसी प्रथम समयमें किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

\* उसी समय वह मिथ्यात्वकर्मके तीन खण्ड उत्पन्न करता है ।

§ १६०. उसी उपशान्त-दर्शनमोहनीयके प्रथम समयमें तीन कर्मभेद उत्पन्न करता है ।

शंका—वे कौनसे ?

समाधान—सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व संज्ञावाले ।

शंका—इनकी इसप्रकार उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जैसे यन्त्रसे कोदोंके दलनेपर उनके तीन भाग हो जाते हैं वैसे ही अनिवृत्तिकरणपरिणामोंके द्वारा दलित किये गये दर्शनमोहनीयके तीन भेदोंकी उत्पत्ति होनेमें विरोधका अभाव है ।

विशेषार्थ—चक्की आदि यन्त्रसे कोदोंके दलनेपर उनके चावल, कण और तुष ऐसे तीन भाग हो जाते हैं वैसे ही अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंसे मिथ्यात्वकर्मको निःशक्त करके जिस समय यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसी समय मिथ्यात्वकर्मके तीन टुकड़े हो जाते हैं—सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व ।

§ १६१. अब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वकर्मके प्रदेशोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें गुणसंक्रमद्वारा परिणमनके क्रमको अल्पबहुत्वद्वारा कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—



\* पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसगं देदि । समत्ते असंखेज्जगुणहीणं देदि ।

§ १६२. पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीयो णाम पढमसमयउवसमसम्माइट्ठी । सो मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुअं पदेसगं देदि । सम्मत्ते पुण ततो असंखेज्जगुणहीणं पदेसगं देदि । दोणहमेदेसिं दव्वाणमागमणहं मिच्छत्तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणो गुणसंकमभागहारो । णवरि सम्मामिच्छत्तपदेसागमणिमित्तगुणसंकमभागहारादो सम्मत्तपदेसागमणिवंधणगुणसंकमभागहारो असंखेज्जगुणोत्ति वेत्तव्वो । एवमेदेणप्पाबहुअविहिजा अंतोमुहुत्तमेत्तकालं मिच्छत्तादो सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि पूरदि । णवरि समये० असंखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं मिच्छत्तादो पदेसगं संकामेमाणो पढमसमए सम्मामिच्छत्तम्मि संकतदव्वादो विदियसमये सम्मत्तम्मि असंखेज्जगुणं दव्वं संकामेदि । तत्थेव सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं पदेसगं संकामेदि । एवं जाव गुणसंकमचरिमसमयो त्ति । संपहि एवंविहस्स अत्थविसेसस्स जाणावणडुमुत्तरसुत्तप्यबंधमाह—

\* प्रथम समयवर्ती उपशान्त-दर्शनमोहनीय जीव मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वमें बहुत प्रदेशपुञ्जको देता है । उससे सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है ।

§ १६२. प्रथम समयवर्ती उपशान्त-दर्शनमोहनीय जीव प्रथम समयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि कहलाता है । वह मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वमें बहुत प्रदेशपुञ्जको देता है । परन्तु सम्यक्त्वमें उससे असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है ।

शंका—इन दोनोंके द्रव्योंके आनेके लिये मिथ्यात्वका क्या प्रतिभाग है ?

समाधान—गुणसंक्रम भागहार प्रतिभाग है, जो पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशोंके आनेके निमित्तरूप गुणसंक्रम भागहारसे सम्यक्त्वके प्रदेशोंके आनेका निमित्तरूप गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

इसप्रकार इस अल्पबहुत्वविधिसे अन्तर्मुहूर्त कालतक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको पूरित करता है । इतनी विशेषता है कि प्रत्येक समयमें मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका संक्रम करता हुआ प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त हुए द्रव्यसे दूसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे द्रव्यका संक्रम करता है । तथा उसी समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका संक्रम करता है । इसप्रकार गुण संक्रमके अन्तिम समयतक जानना चाहिए । अब इसप्रकारके अर्थविशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

- \* विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।
- \* सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।
- \* तदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।
- \* सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।
- \* एवमंतोसुहुत्तद्धं गुणसंकमो णाम ।

§ १६३. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । एदेहिं सुत्तेहिं परत्थाणप्पावहुअं भणिदं । संपदि सत्थाणप्पावहुए भण्णमाणे पढमसमए सम्मामिच्छत्ते संकमिदपदेसग्गं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव गुणसंकमचरिमसमओ त्ति । एवं सम्मचास्स वि सत्थाणप्पावहुअं णेदव्वं । एत्थ उवसमसमाहट्ठिविदियसमयप्पहुडि जाव मिच्छास्स गुणसंकमो अत्थि ताव सम्मामिच्छत्तस्स वि गुणसंकमो भवदि, अंगुलस्सासंखेज्जभाग-पडिभागियविज्झादगुणसंकमेण सम्मामिच्छत्तदव्वस्स सम्मत्ते तदवत्थाए संकमणोव-लंभादो । सुत्तेणाणुवइट्ठमेदं कुदो लब्भदि त्ति णासंकणिज्जं; सुत्तेस्सेदस्स देसामासयभावेण तहाविहत्थविसेससंखचणे वावारब्भुवग्गमादो ।

- \* उससे दूसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।
- \* उससे सम्यग्मिध्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है ।
- \* उससे तीसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यतागुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।
- \* उससे सम्यग्मिध्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।
- \* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक गुणसंक्रम होता है ।

§ १६३. ये सूत्र सुगम हैं । इन सूत्रोंद्वारा परस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया । अब स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेपर प्रथम समयमें सम्यग्मिध्यात्वमें संक्रमित हुआ प्रदेश-पुंज स्तोक है । दूसरे समयमें संक्रमित हुआ प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा है । इसप्रकार गुण-संक्रमके अन्तिम समयतक जानना चाहिए । इसीप्रकार सम्यक्त्वका भी स्वस्थान अल्पबहुत्व ले जाना चाहिए । यहाँपर उपशमसम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर जहाँतक मिध्यात्वका गुणसंक्रम होता है वहाँतक सम्यग्मिध्यात्वका भी गुणसंक्रम होता है, क्योंकि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके प्रतिभागीरूप विध्यातगुणसंक्रमद्वारा सम्यग्मिध्यात्वके द्रव्यका सम्यक्त्वमें उस अवस्थामें संक्रमण उपलब्ध होता है ।

शंका—सूत्रमें इसका उपदेश नहीं दिया, फिर यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस सूत्रका देशामर्षकरूपसे उस प्रकारकी अवस्थाविशेषके सूचन करनेमें व्यापार स्वीकार किया गया है ।

विशेषार्थ—यहाँ उपशमसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक मिध्यात्वके द्रव्यका सम्यग्मिध्यात्व और सम्यक्त्वमें गुणसंक्रम भागहारद्वारा किस प्रकार

§ १६४. एवमेदेण विधिणा अंतोमुहुत्तकालं गुणसंकमणुपालिय तदो गुणसंकम-  
कालपरिसमत्तीए मिच्छत्तस्स विज्झादसंकममाढवेदि त्ति पदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्तारंभो—

\* तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण संकमेदि सो  
विज्झादसंकमो णाम ।

§ १६५. पुब्बिन्लो उवसमसम्माइट्ठी पढमसमयप्पहुडि एगंताणुवट्ठीए वड्डमाणस्स  
अंतोमुहुत्तकालभाविओ गुणसंकमो णाम । एत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभाविओ  
विज्झादसण्णिदो संकमविसेसो गुणसंकमपरिसमत्तिसमकालपारंभो होदूण जाव उवसम-  
सम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी च ताव णिप्पडिबंधं पयदृदि त्ति भणिदं होदि । कुदो वुण  
एदस्स विज्झादसण्णा त्ति चे ? विज्झादविसेद्वियस्स जीवस्स ट्ठिदि-अणुभागखंडय-  
गुणसेट्ठिआदिपरिणामेसु थक्केसु पयदृमाणत्तादो विज्झादसंकमो त्ति एसो भण्णदे । एवं  
सम्मामिच्छत्तस्स वि एदम्मि विसए विज्झादसंकमपवुत्ती वक्खाणेयच्चा ।

उत्तरोत्तर गुणित क्रमसे असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप होता है यह बतलानेके साथ यह भी  
बतलाया है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर सम्यग्मिध्यात्वके द्रव्यका भी गुण-  
संक्रम होता है, क्योंकि सूच्यगुलके असंख्यातवें भागका सम्यग्मिध्यात्वके द्रव्यमें भाग देनेपर  
जो लब्ध आवे उतने द्रव्यका विध्यात-गुणसंक्रम द्वारा सम्यग्मिध्यात्वके द्रव्यका सम्यक्त्वमें  
उस अवस्थामें संक्रमण होता रहता है । यह द्रव्य सम्यक्त्वमें प्रति समय गुणितक्रमसे प्राप्त  
होता है, इसलिए यहाँ ऐसे संक्रमका नाम विध्यात संक्रम होते हुए भी उसे टीकाकारने गुण-  
संक्रम कहा है ऐसा प्रतीत होता है । श्री धवलाजीके इसी स्थलपर इसका कोई उल्लेख उप-  
लब्ध नहीं होता ।

§ १६४. इस प्रकार इस विधिसे अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणसंक्रमका पालनकर इसके  
आगे गुणसंक्रमका काल समाप्त होनेपर मिध्यात्वकर्मका विध्यातसंक्रम आरम्भ करता है  
इसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

\* उससे आगे सूच्यगुलके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा संक्रमण करता  
है वह विध्यातसंक्रम है ।

§ १६५. जो पहलेका उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रथम समयसे लेकर एकान्तानुवृत्तिसे  
वृद्धिके प्राप्त हो रहा है उसके अन्तर्मुहूर्त कालतक होनेवाला संक्रम गुणसंक्रम कहलाता है ।  
इससे आगे सूच्यगुलके असंख्यातवें भागरूप भागहारस्वरूप विध्यातसंज्ञावाला संक्रमविशेष  
गुणसंक्रमकी समाप्तिके समकालमें प्रारम्भ होकर जबतक उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्य-  
ग्दृष्टि है तब तक बिना किसी प्रतिबन्धके प्रवृत्त रहता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इस संक्रमकी विध्यात संज्ञा किस कारणसे है ?

समाधान—विध्यात हुई है विशुद्धि जिसकी ऐसे जीवके स्थितिकाण्डक, अनुभाग-  
काण्डक और गुणश्रेणि आदि परिणामोंके रुक जानेपर प्रवृत्त होनेके कारण इसे विध्यातसंक्रम  
कहते हैं ।

\* जाव गुणसंकमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणु-  
भागघादो गुणसेदी च ।

§ १६६. एत्थ मिच्छत्तवज्जाणमिदि णिद्दिसो मिच्छत्तस्स उवसंतावत्थस्स तद-  
वत्थाए द्विदिखंडयादीणमभावपदुप्पायणफलो । तम्हा जाव गुणसंकमो ताव एयंताणु-  
वट्ठिपरिणामेहिं दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं ठिदि-अणुभागघाद-गुणसेदिणिक्खेव-  
लक्खणं कज्जसिसेसमेसो करेदि, णो परदो, तत्थ विज्झादविसोहियत्तादो त्ति सुत्तत्थ-  
णिच्छओ । कुदो वुण मिच्छाइट्ठिचरिमसमए चेवाणियट्ठिकरणपरिणामेसु णिदिट्ठेसु  
गुणसंकमकालभंतरे द्विदि-अणुभागघादादीणं संभवो ? ण एस दोसो, पुव्वपओगवसेण  
तदुवरमे वि केत्तियं पि कालं तप्पवुत्तीए बाहाणुवलंभादो ।

इस प्रकार इस स्थलपर सम्यग्मिथ्यात्वके भी विध्यातसंक्रमकी प्रवृत्तिका व्याख्यान करना चाहिए ।

\* जब तक गुणसंक्रम होता रहता है तब तक इस जीवके मिथ्यात्वको छोड़कर  
शेष कर्मोंके स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणिरूप कार्य होते रहते हैं ।

§ १६६. यहाँपर 'मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मों' इस पदके निर्देशका फल उपशान्त  
अवस्थाको प्राप्त मिथ्यात्वप्रकृतिके उस अवस्थामें स्थितिकाण्डकघात आदिके अभावका कथन  
करना है । इसलिये जबतक गुणसंक्रम होता है तबतक यह जीव एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामों-  
के द्वारा दर्शनमोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और  
गुणश्रेणिनिक्षेप लक्षणवाले कार्यविशेषको करता है, इससे आगे नहीं, क्योंकि आगे उसकी  
विशुद्धि विध्यात हो जाती है यह इस सूत्रके अर्थका निश्चय है ।

शंका—परन्तु मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें ही अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके समाप्त  
हो जानेपर गुणसंक्रम कालके भीतर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात आदि कैसे  
सम्भव हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पूर्वप्रयोगवश अनिवृत्तिकरणरूप परि-  
णामोंके उपरम हो जानेपर भी कितने ही कालतक उक्त कार्योंकी प्रवृत्तिमें बाधा नहीं उपलब्ध  
होती ।

विशेषार्थ—जो जीव अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके रुकते ही अन्तरमें प्रवेशकर उप-  
शमसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके कितने कालतक किन कर्मोंके स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य  
होते रहते हैं, मिथ्यात्वप्रकृतिका गुणसंक्रम होकर क्या कार्य होता है, और इस कालमें किस  
प्रकारकी विशुद्धि होती है और उपशमसम्यग्दृष्टिके स्थितिकाण्डकघात आदि होनेका कारण  
क्या है इन सब बातोंका यहाँ निर्णय किया गया है । साथमें यह भी बतलाया है कि उपशम-  
सम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका सम्यक्त्वप्रकृतिमें विध्यातसंक्रमके  
द्वारा प्रदेशनिक्षेप भी होता रहता है । इसप्रकार जबतक गुणसंक्रमकी प्रवृत्ति होती है तबके  
कार्यविशेषोंका सूचनकर उसके बाद विध्यातसंक्रमकी प्रवृत्ति होनेसे स्थितिकाण्डकघात आदि  
कार्य रुक जाते हैं इस बातका सकारण निर्देश किया गया है ।

§ १६७. एवमेत्तिण संबंधेण दंसणमोहउवसामणाए परूवणं कादूण संपहि एत्थेव कालसंबंधियाणं पदाणं अप्पाबहुअपरूवणण्डुमुवरिमं पबंभमाह—

\* एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो ।

§ १६८. एदिस्से अणंतरपरूविदाए दंसणमोहोवसामगपरूवणाए समत्ताए संपहि एत्तो 'दंसण-चरित्तमोहे' त्ति पदपडिपूरणं बीजपदमवलंबिय इमो पणुवीसपडिओ अप्पाबहुअदंडओ कादव्वो होइ। एदेण विणा जहणुक्कसट्ठिदि-अणुभागखंडणुकीरणद्धादि-पदाणं पमाणविसयणिणयाणुप्पत्तोदो त्ति भणिदं होइ। एवमेदेण सुत्तेण कयाव-सरस्स पणुवीसपदियस्स अप्पाबहुअदंडयस्स जहाकममेसो णिद्वेसो—

\* सव्वत्थोवा उवसामगस्स जं चरिमअणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा ।

§ १६९. एत्थ उवसामगो त्ति वुत्ते दंसणमोहउवसामगो धेतत्वो। तस्स चरिमाणु-भागखंडयमिदि वुत्ते मिच्छत्तस्स पढमट्ठिदीए समप्पंतीए तत्थतणचरिमंतोमुहुत्त-कालभावियस्स अणुभागखंडयस्स गहणं कायव्वं । सेसकम्माणं पुण गुणसंकमकाल-चरिमावत्थाभाविणो अणुभागखंडयस्स गहणं कायव्वं, तदुक्कीरणद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ती होदूण सव्वत्थोवा त्ति णिदिट्ठा । १ ।

\* अपुव्वकरणरस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ ।

§ १६७, इसप्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा दर्शनमोहनीयकी उपशामनाका कथनकर अव यहीपर कालसम्बन्धी पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

\* इस प्ररूपणाके समाप्त होनेपर यह पच्चीसपदिक दण्डक करने योग्य है ।

§ १६८. अनन्तरपूर्व कही गई दर्शनमोहके उपशामककी इस प्ररूपणाके समाप्त होनेपर अब 'दंसण-चरित्तमोहे' इस पदकी पूर्तिस्वरूप बीजपदका अवलम्बन लेकर यह पच्चीसपदिक अल्पबहुत्वदंडक करने योग्य है, क्योंकि इसके बिना जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति और अनु-भागसम्बन्धी उत्कीरणकाल आदि पदोंके प्रमाणका निर्णय नहीं हो सकता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसप्रकार इस सूत्रद्वारा अवसरप्राप्त पच्चीसपदिक अल्पबहुत्वदण्डकका क्रमसे यह निर्देश है—

\* उपशामकका जो अन्तिम अनुभागकाण्डक है उसका उत्कीरणकाल सबसे स्तोक है ।

§ १६९. यहाँ सूत्रमें 'उपशामक' ऐसा कहनेपर दर्शनमोहके उपशामकको ग्रहण करना चाहिए। 'उसके अन्तिम अनुभागकाण्डक' ऐसा कहनेपर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके समाप्त होते समय वहाँ अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होनेवाले अनुभागकाण्डकका ग्रहण करना चाहिए। परन्तु शेष कर्मोंका गुणसंकम कालकी अन्तिम अवस्थामें होनेवाले अनुभागकाण्डकका ग्रहण करना चाहिए, उनका उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होकर सबसे स्तोक है ऐसा निर्देश किया है। १।

\* उससे अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है।

§ १७०. किं कारणं ? चरिमाणुभागकंडयुकीरणद्वादो विसेसाहियकमेण संखेज-सहस्समेत्तीसु अणुभागखण्डयउकीरणद्वासु हेड्डा ओदिण्णासु एदस्स समुप्पत्तीदो। एत्थ विसेसपमाणं हेट्ठिमरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदूण संखेजावलयपमाणमिदि वेत्तव्वं। २।

\* चरिमट्टिदिखंडयउकीरणकालो तम्मिह च्चेव ट्टिदिबंधकालो च दो वि तुह्ला संखेज्जगुणा ।

§ १७१. एवं भणिदे मिच्छत्तस्स पढमट्टिदीए समप्पमाणाए त्कालियचरिमट्टिदि-खंडयउकीरणकालो तत्थतणचरिमट्टिदिबंधकालो च गहेयव्वो । सेसकम्माणं पुण गुण-संकमकालचरिमट्टिदिबंध-ट्टिदिखंडयकालाणं गहणं कायव्वं । एदे च दो वि सरिसपरि-माणा होदूण पुव्विन्लादो अपुव्वकरणपढमसमयविसयाणुभागकंडयुकीरणद्वादो संखेज-गुणा त्ति णिदिट्ठा । किं कारणं ? एकम्मि ट्टिदिखंडयकालन्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्ताणि अणुभागखंडयाणि होति त्ति परमगुरूवएसादो । ३-४ ।

\* अंतरकरणद्वा तम्मिह च्चेव ट्टिदिबंधगद्वा च दो वि तुह्लाओ विसेसा-हियाओ ।

§ १७२. किं कारणं ? पुव्विन्लदोकालेहिंतो हेड्डा अंतोमुहुत्तकालमोसरियूण दोण्ह-मेदासिमद्वाणं पवुत्तिदंसणादो । ५-६ ।

§ १७०. क्योंकि अन्तिम अनुभागकाण्डकके उत्कीरणकालसे विशेष अधिकके क्रमसे संख्यात हजार अनुभागकाण्डकसम्बन्धी उत्कीरणकालोंके नीचे उतरने पर इसकी उत्पत्ति होती है। यहाँपर विशेषका प्रमाण अधस्तन राशिका संख्यातवा भागमात्र होकर संख्यात आबलि-प्रमाण है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। २।

\* उससे अन्तिम स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल और वहीपर स्थितिबन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं।

§ १७१. ऐसा कहनेपर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके समाप्त होते समय उस कालमें होने-वाले अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालको और वहाँके अन्तिम स्थितिबन्धकालको ग्रहण करना चाहिए। तथा शेष कर्मोंके गुणसंकमकालके अन्तिम स्थितिबन्धकालको और स्थितिकाण्डककालको ग्रहण करना चाहिए। ये दोनों सदृश परिमाणवाले होकर पूर्वोक्त अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभागकाण्डकके उत्कीरणकालसे संख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँ निर्देश किया है, क्योंकि एक स्थितिकाण्डकके कालके भीतर संख्यात हजार अनुभाग काण्डक होते हैं ऐसा परम गुरुका उपदेश है। ३-४।

\* उन दोनोंसे अन्तरकरणका काल और वही पर स्थितिबन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं।

§ १७२. क्योंकि पूर्वोक्त दो कालोंसे नीचे अन्तर्मुहूर्त काल पीछे जाकर इन दोनों कालोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। ५-६।

\* अगुव्वकरणे द्विदिखंडयउत्कीरणद्धा द्विदिबंधगद्धा च दो वि तुण्लाओ विसेसाहियाओ ।

§ १७३. किं कारणं ? पुव्विन्लदोकालेदितो ततो हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोसरिय अगुव्वकरणषट्मद्विदिखंडयविसए एदासिं पव्वुत्तिदंसणादो । ८ ।

\* उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो ।

§ १७४. किं कारणं ? तकालम्भंतरे संखेजाणं द्विदिखण्डयाणं द्विदिबंधाणं च संभवादो ।

\* पढमसमयउवसामगस्स गुणसेट्ठिसीसयं संखेज्जगुणं ।

§ १७५. एत्थ पढमसमयउवसामगो त्ति भणिदे भाविनि भूतवदुपचारं कृत्वा पढम-समयउवसामगभाविस्स पढमसमयअंतरकारयस्स गहणं कायव्वं । तस्स गुणसेट्ठिसीसग-मिदि वुत्ते अंतरचरिमफालीए पदमाणियाए गुणसेट्ठिणिकखेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदि-भागं खंडेयूण जं फालीए सह णिल्लेविज्जमाणं गुणसेट्ठिसीसयं तस्स गहणं कायव्वं । तं पुण पुव्विन्लदो गुणसंकमकालादो संखेज्जगुणं, गुणसेट्ठिसीसयस्स संखेज्जदिभागो वेव गुणसंकमकालस्स पज्जवसाणदंसणादो । अधवा पढमसमयउवसामगस्स गुणसेट्ठि-

\* उनसे अपूर्वकरणमें स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल और स्थितिवन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं ।

§ १७३. क्योंकि पूर्वोक्त दो कालोंसे उनसे नीचे अन्तर्मुहूर्त काल पीछे जाकर अपूर्व-करणके प्रथम स्थितिकाण्डकके समय इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है । ७-८ ।

\* उन दोनोंसे उपशामक जीव जब तक गुणसंक्रमके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतियोंको पूरता है वह काल संख्यातगुणा है ।

§ १७४. क्योंकि उस कालके भीतर संख्यात स्थितिकाण्डक और स्थितिवन्ध सम्भव हैं । ९ ।

\* उससे प्रथम समयवर्ती उपशामकका गुणश्रेणिशीर्ष संख्यातगुणा है ।

§ १७५. यहाँ पर 'प्रथम समयवर्ती उपशामक' ऐसा कहने पर भावोंमें भूतके समान उपचार करके प्रथम समयवर्ती उपशामक होनेवालेका अर्थात् प्रथम समयवर्ती अन्तर करने-वालेका ग्रहण करना चाहिए । उसका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा कहनेपर अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिका पतन होते समय गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे संख्यातवें भागका खण्डन कर जो फालि-के साथ निर्जीर्ण होनेवाला गुणश्रेणिशीर्ष है उसका ग्रहण करना चाहिए । वह पूर्वके गुण-संक्रमसम्बन्धी कालसे संख्यातगुणा है, क्योंकि गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागमें ही गुण-संक्रमकालका अन्त देखा जाता है । अथवा सूत्रोंमें प्रथम समयवर्ती उपशामकसम्बन्धी मिध्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा विशेषण लगा कर नहीं कहा, किन्तु सामान्यरूपसे कहा है,

सीसयं मिच्छत्तस्से त्ति विसेसियुण सुत्ते ण परूविदं, किंतु सामण्णेणोवइड्डं, तेण सेस-  
कम्माणं पढमसमयउवसामगस्स गुणसेट्ठिसीसयं गहेयव्वं, तेसिमंतरकरणाभावेण पढम-  
समयउवसामगम्मि तस्संभवे विरोहाणुवलंभादो । १० ।

\* पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा ।

§ १७६. किं कारणं ? पढमट्ठिदीए संखेज्जदिभागमेत्तस्सेव गुणसेट्ठिसीसयस्स  
अंतरट्ठमामाइदत्तादो । ११ ।

\* उवसामगद्धा विसेसाहिया ।

§ १७७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? समयूणदोआवलियमेत्तो । किं कारणं ? चरिम-

इसलिये प्रथम समयवर्ती उपशामकके जो शेष कर्म हैं उनका गुणश्रेणिशीर्ष लेना चाहिए, क्योंकि उन कर्मोंका अन्तरकरण न होनेसे प्रथम समयवर्ती उपशामकके उसके सम्भव होनेमें विरोध नहीं पाया जाता । १० ।

विशेषार्थ—यहाँ चूर्णिसूत्रमें 'पढमसमयउवसामगस्स गुणसेट्ठिसीसयं' ऐसा कहा है ।

इसलिये प्रश्न होता है कि यहाँ पर किस गुणश्रेणिशीर्षका ग्रहण किया है ? क्या मिथ्यात्वकर्म-  
के गुणश्रेणिशीर्षका या शेष कर्मोंके गुणश्रेणिशीर्षका ? यदि मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष लिया  
जाता है तो जिस समय यह जीव उपशामसम्यग्दृष्टि होता है उसके प्रथम समयमें तो मिथ्यात्व-  
का गुणश्रेणिशीर्ष बनता नहीं, क्योंकि उसका पतन अन्तरकरणके समय अन्तर सम्बन्धी  
अन्तिम फलिके पतनके साथ हो जाता है । इसलिये मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष यदि लेना ही  
है तो भावीमें भूतका उपचार करके जो प्रथम समय अन्तर करनेवाला है उसे यहाँ प्रथम  
समयवर्ती उपशामकरूपसे ग्रहण करना चाहिए । ऐसे जीवके मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष पाया  
जाता है और वह उपशामसम्यग्दृष्टिके गुणसंक्रमकालसे संख्यातगुणा है । किन्तु यहाँ सूत्रमें  
मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा नहीं कहा है । ऐसी अवस्थामें जो प्रथम समयवर्ती उपशामक  
है उसके शेष कर्मोंका गुणश्रेणिशीर्ष लिया जा सकता है । इसप्रकार सूत्रोक्त पदोंके ये दोनों  
अर्थ करनेमें संगति बैठ जाती है, क्योंकि अन्तरकरणके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके गुणश्रेणि-  
शीर्षका जो प्रमाण है वही प्रमाण प्रथम समयवर्ती उपशामकके शेष कर्मोंके गुणश्रेणिशीर्षका है,  
क्योंकि यहाँ गळितावशेष गुणश्रेणि होती है, इसलिये उक्त दोनों स्थलोंमें दोनों गुणश्रेणिशीर्षों-  
के समान होनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

\* उससे प्रथम स्थिति संख्यातगुणी है ।

§ १७६. क्योंकि प्रथम स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण ही गुणश्रेणिशीर्षको अन्तरके  
लिये ग्रहण किया गया है । ११ ।

\* उससे उपशामकका काल विशेष अधिक है ।

§ १७७. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक समय कम दो आवलिकाल विशेषका प्रमाण है ।

शंका—इसका क्या कारण है ?



समयमिच्छादृष्टिणा बद्धमिच्छतणवकबंधस्स एगसमयो पढमद्विदीए चैव गलदि । पुणो इमं पढमद्विदिचरिमसमयं मोत्तूण उवसमसम्माइद्विकालभंतरे समयूणदोआवलियमेत्तद्वाण-  
मुवरिगंतूण तस्स उवसामणा समप्पइ, तेण कारणेण पढमद्विदीए उवरिमाओ समयूणदो-  
आवलियाओ पवेसियुण विसेसाहिया जादा । १२ । संपहि एदस्सेव विसेसाहियपमाणस्स  
णिण्णयकरणदुमुत्तरो सुत्तावयवो—

\* वे आवलियाओ समयूणाओ ।

§ १७८. गयत्थमेदं सुत्तं ।

\* अणियद्विअद्वा संखेज्जगुणा ।

§ १७९. किं कारणं ? अणियद्विअद्वाए संखेज्जदिभागे चैव पढमद्विदीए सरूवोव-  
लद्दीदो । १३ ।

\* अपुव्वकरणद्वा संखेज्जगुणा ।

§ १८०. सबद्धमणियद्विकरणद्वादो अपुव्वकरणद्वाए तहाभावेणावट्टाणदंस-  
णादो । १४ ।

**समाधान—**क्योंकि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके द्वारा बाँधे गये मिथ्यात्वसम्बन्धी नवकबन्धका एक समय प्रथम स्थितिमें ही गल जाता है । पुनः इस प्रथम स्थितिसम्बन्धी अन्तिम समयको छोड़कर उपशमसम्यग्दृष्टिके कालके भीतर एक समय कम दो आवलिप्रमाण काल ऊपर जाकर उसकी उपशामना समाप्त होती है, इसलिए प्रथम स्थितिमें एक समय कम दो आवलिका प्रवेश कराकर वह विशेष अधिक हो जाता है । १२ ।

अब इसी विशेष-अधिक प्रमाणका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्रवचन है—

\* वह विशेष एक समय कम दो आवलिप्रमाण है ।

§ १७८. यह सूत्र गतार्थ है ।

\* उससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है ।

§ १७९. क्योंकि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागमें ही प्रथम स्थितिके स्वरूपकी उपलब्धि होती है । १३ ।

**विशेषार्थ—**अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरणके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तकका जितना काल है वही मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिका काल है जो कि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है । यही कारण है कि यहाँ टीकामें यह निर्देश किया है कि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागमें ही प्रथम स्थितिकी उपलब्धि होती है ।

\* उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है ।

§ १८०. क्योंकि सर्वदा अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणके कालका उसी प्रकारसे अवस्थान देखा जाता है । १४ ।

\* गुणसेटिणिकखेवो विसेसाहिओ ।

§ १८१. अपुव्वकरणपढमसमये आढत्तो जो गुणसेटिणिकखेवो सो अपुव्वकरण-  
द्वादो विसेसाहिओ त्ति भणिदं होइ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? विसेसाहियअणियट्टिअद्दा-  
मेत्तो । १५ ।

\* उवसंतद्धा संखेज्जगुणा ।

§ १८२. जम्मि काले मिच्छत्तमुवसंतभावेणच्छदि सो उवसमसम्मत्तकालो उव-  
संतद्धा त्ति भण्णदे । एसा गुणसेटिणिकखेवादो संखेज्जगुणा । कुदो एदं णव्वदे ?  
एदम्हादो वेव सुत्तादो । १६ ।

\* अंतरं संखेज्जगुणं ।

§ १८३. अंतरदीहत्तमुवसमसम्मत्तद्वादो संखेज्जगुणमिदि भणिदं होदि । किं  
कारणं ? अंतरस्स संखेज्जदिभागे वेव उवसमसम्मत्तद्वं गालिय तदो तिण्हं कम्माण-

\* उससे गुणश्रेणिका निक्षेप विशेष अधिक है ।

§ १८१. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणिनिक्षेप उपलब्ध होता है वह  
अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालको विशेष अधिक करनेपर जो लब्ध आवे  
तत्प्रमाण है । १५ ।

विशेषार्थ—प्रारम्भमें गुणश्रेणिनिक्षेपका काल अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके काल-  
से कुछ अधिक बतला आये हैं । इसीलिये यहाँपर विशेषको उक्तप्रमाण बतलाया है ।

\* उससे उपशान्ताद्धा संख्यातगुणा है ।

§ १८२. जिस कालमें मिथ्यात्व उपशान्तरूपसे रहता है वह उपशमसम्यक्त्वका काल  
उपशान्ताद्धा कहलाता है । यह गुणश्रेणिनिक्षेपसे संख्यातगुणा है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है । १६ ।

\* उससे अन्तर संख्यातगुणा है ।

§ १८३. क्योंकि अन्तरका आयाम उपशमसम्यक्त्वके कालसे संख्यातगुणा है यह उक्त  
कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—क्योंकि अन्तरके संख्यातवर्षों भागमें ही उपशमसम्यक्त्वके कालको गलाकर

मण्णदरमोकड्डियुण वेदेमाणो अंतरं विणासेदि त्ति परमगुरुवएसादो । १७ ।

\* जहणिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

§ १८४. एसा जहणिया आबाहा कत्थ गहेयव्वा ? मिच्छत्तस्स ताव चरिम-समयमिच्छादिट्ठिणा णवकबंधविसए गहेयव्वा । तत्तो अण्णत्थ मिच्छत्तस्स सव्व-जहण्णाबाहाणुवलंभादो । सेसकम्माणं पुण गुणसंकमचरिमसमयणवकबंधजहण्णाबाहा वेत्तव्वा । उवरिं किण्ण वेप्पदे ? ण, गुणसंकमकालं वोलिय विज्झादे पदिदस्स मंद-विसोहीए ट्ठिदिबंधो वड्ढइ त्ति तत्त्विसयाबाहाए सव्वजहण्णत्ताणुववत्तीदो । एसा च अंतरायामादो संखेज्जगुणा । कुदो एवं णव्वदे ? एदम्हादो चेव परमागमवक्कादो । १८ ।

उससे आगे तीनों कर्मोंमेंसे किसी एकका अपकर्षणकर उसका वेदन करता हुआ अन्तरको समाप्त करता है ऐसा परम गुरुका उपदेश है । १७ ।

विशेषार्थ—अन्तरकरणके समय प्रथम स्थिति और उपरितन स्थितिके मध्यकी जितनी स्थितिको उक्त दोनों स्थितियोंमें निक्षेपकर अन्तर करता है उस अन्तरके कालमें यह जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्तकर अन्तरके संख्यातवर्गे भागप्रमाण कालतक ही यह जीव उपशम-सम्यग्दृष्टि रहता है, इसलिये उपशान्ताद्वासे अन्तरके कालको संख्यातगुणा कहा है ऐसा परम्परासे गुरुका उपदेश चला आ रहा है ।

\* उससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है ।

§ १८४. शंका—यह जघन्य आबाधा कहाँकी लेनी चाहिए ?

समाधान—अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जो नवकबन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि उस स्थलके सिवाय अन्यत्र मिथ्यात्वकी जघन्य आबाधा नहीं उपलब्ध होती । परन्तु शेष कर्मोंका गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें जो नवक बन्ध होता है उसकी जघन्य आबाधा लेनी चाहिए ।

शंका—इससे और आगेके कालकी क्यों नहीं ली जाती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि गुणसंक्रमके कालको उल्लंघनकर विध्यात संक्रमको प्राप्त हुए जीवके मन्द विशुद्धिवश स्थितिवन्ध वृद्धिगत होता है, इसलिये वहाँकी आबाधा सबसे जघन्य नहीं हो सकती । और यह अन्तरायामसे संख्यातगुणी है ।

शंका—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी परमागमके वाक्यसे जाना जाता है । १८ ।

विशेषार्थ—यहाँपर अन्तरायामसे जिस जघन्य आबाधाको संख्यातगुणा बतलाया गया है वह यदि मिथ्यात्वकर्मके बन्धकी ली जाती है तो प्रकृतमें अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वकर्मका जो सबसे जघन्य बन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि प्रकृतमें मिथ्यात्वकर्मका इससे जघन्य बन्ध अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयको छोड़ अन्यत्र तीनों

**\* उत्कृष्टिस्या आबाधा संखेज्जगुणा ।**

§ १८५. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमयट्टिदिबंधविसए सव्वकम्माणमुक्कस्सा-  
बाहाए विवक्खियत्तादो । पुव्विन्लविसयजहण्णट्टिदिबंधादो एत्थतण्ठिदिबंधो संखेज्ज-  
गुणो, तेण तदाबाहा वि ततो संखेज्जगुणा त्ति वुत्तं होइ । १९ ।

**\* जहण्णयं ट्टिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।**

§ १८६. मिच्छत्तस्स ताव पढमट्टिदीए थोवावसेसे आढत्तस्स चरिमट्टिदिखंड-  
यस्स गहणं कायव्वं । सेसकम्माणं च गुणसंकमकालस्स थोवावसेसे आढत्तस्स चरिम-  
ट्टिदिखंडयस्य जहण्णभावेण संगहो कायव्वो । एदं च पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभाग-  
पमाणत्तणेण<sup>१</sup> पुव्विन्लादो असंखेज्जगुणमिदि घेत्तव्वं । २० ।

करणोंमें कहीं भी नहीं पाया जाता । और यदि प्रकृतमें ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंके जघन्य बन्धकी जघन्य आबाधा लेनी है तो वह इस जीवके गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें इन कर्मोंका जो अपने पूर्व कालकी अपेक्षा जघन्य विवक्षित बन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि इससे कम प्रमाणवाला बन्ध अन्यत्र सम्भव नहीं है । यद्यपि गुणसंक्रमके समाप्त होनेके बाद भी यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि बना रहता है, किन्तु इसके मन्दविशुद्धिके कारण स्थितिवन्ध अधिक होने लगता है, इसलिये प्रकृतमें गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें होनेवाले जघन्य स्थितिवन्धकी जघन्य आबाधा ही लेनी चाहिए । अतः उक्त दोनों स्थलोंकी जघन्य आबाधा अन्तरके कालसे संख्यातगुणी होती है यही आशय प्रकृतमें लेना चाहिए ।

**\* उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है ।**

§ १८५ क्योंकि सब कर्मोंकी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाली स्थितिवन्धविषयक उत्कृष्ट आबाधा यहाँ विवक्षित है, क्योंकि पूर्वमें कहे गये जघन्य स्थितिवन्धसे इस स्थलका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा होता है, इसलिये उसकी आबाधा भी पूर्वमें कही गई जघन्य आबाधासे संख्यातगुणी होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । १९ ।

**विशेषार्थ**—स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेष अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही प्रारम्भ होते हैं । तदनुसार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला स्थितिवन्ध ही यहाँपर लिया गया है । वह आगे होनेवाले सब कर्मोंके स्थितिवन्धोंकी अपेक्षा सबसे अधिक होता है, इसलिये उसकी आबाधा भी आगे होनेवाले स्थितिवन्धोंकी आबाधाओंकी अपेक्षा सबसे अधिक होगी यह स्पष्ट ही है । वही यहाँ उत्कृष्ट आबाधारूपसे विवक्षित है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**\* उससे जघन्य स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।**

§ १८६. मिथ्यात्वके तो प्रथम स्थितिके स्तोक शेष रहनेपर प्राप्त हुए अन्तिम स्थिति-  
कण्डकका ग्रहण करना चाहिए और शेष कर्मोंके गुणसंक्रमकालके स्तोक शेष रहनेपर प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डकका जघन्यरूपसे संग्रह करना चाहिए । और यह पत्योपमके संख्यातव

१. आदर्शप्रलौ पल्लिदोवमासंखेज्जदिभागपमाणत्तणेण इति पाठः ।

\* उक्तस्सयं द्विविखंडथं संखेज्जगुणं ।

§ १८७. किं कारणं ? सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणत्वात् । २१ ।

\* जहण्णगो द्विविबन्धो संखेज्जगुणो ।

§ १८८. किं कारणं ? मिच्छत्तस्स चरिमसमयमिच्छाद्द्विजहण्णद्विविबन्धस्स अंतो-  
कोडाकोडिप्रमाणस्स सेसकम्माणं पि गुणसंकमचरिमसमयजहण्णद्विविबन्धस्स गह-  
णात् । २२ ।

\* उक्तस्सगो द्विविबन्धो संखेज्जगुणो ।

§ १८९. किं कारणं ? सव्वकम्माणं पि अपुव्वकरणपटमसमयद्विविबन्धस्स पुव्विच्छ-  
जहण्णद्विविबन्धात् संखेज्जगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुव्वर्त्तभात् । २३ ।

भागप्रमाण होनेसे पूर्वमें कही गई उत्कृष्ट आबाधासे असंख्यातगुणा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । २० ।

विशेषार्थ—पूर्वमें जो उत्कृष्ट आबाधा बतला आये हैं वह संख्यात काल प्रमाण होती है और जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातत्वे भागप्रमाण होता है, इसलिये ही प्रकृतमें उत्कृष्ट आबाधासे जघन्य स्थितिकाण्डकको असंख्यातगुणा बतलाया है ।

\* उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १८७. क्योंकि यह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है । २१ ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किन्हीं जीवोंके सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थितिकाण्डक होता है यह पहले ही बतला आये हैं । उसीको यहाँ प्रहण किया है । यह पूर्वके पल्योपमके संख्यातत्वे भागप्रमाण स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणा होता है यह स्पष्ट ही है ।

\* उससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

§ १८८. क्योंकि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडीप्रमाण और शेष कर्मोंका भी गुणसंकमके अन्तिम समयका जघन्य स्थितिबन्ध लिया है । २२ ।

विशेषार्थ—पूर्वमें उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण बतला आये हैं और यहाँ जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडीप्रमाण बतलाया है, इसलिये यह उससे संख्यातगुणा ही होगा यह स्पष्ट है ।

\* उससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

§ १८९. क्योंकि सभी कर्मोंका अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिबन्ध होता है वह पूर्वमें कहे गये जघन्य स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा होता है इसकी सिद्धि निर्बाध पाई जाती है । २३ ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें सब कर्मोंका जो स्थितिबन्ध होता है वहाँसे

### \* जहणायं द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ १९०. किं कारणं ? मिच्छत्तस्स मिच्छाद्द्विचरिमसमयजहणद्विदिसंतकम्मस्स सेसकम्माणं पि गुणसंकमकालचरिमसमयजहणद्विदिसंतकम्मस्स बंधादो संखेज्जगुणत्ते विरोहाणुवलंभादो । २४ ।

लेकर संख्यात हजारों स्थितिबन्धभेदोंका अपसरण होकर अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें मिध्यात्वका और गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें शेष छह कर्मोंका प्राप्त होनेवाला स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन हो जाता है। यही कारण है कि यहाँपर उक्त दोनों स्थलोंपर होनेवाले मिध्यात्व और शेष छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धसे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला उक्त सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा बतलाया है।

### \* उससे जघन्य स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ १९०. क्योंकि मिध्यादृष्टिके अन्तिम समयमें मिध्यात्वका जो जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है और शेष कर्मोंका भी गुणसंक्रमकालके अन्तिम समयमें जो जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है उनके वहाँके बन्धकी अपेक्षा संख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता । २४ ।

विशेषार्थ—यद्यपि सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थोंमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके योग्य कौन जीव होता है इस प्रसंगसे किसी शिष्यने यह प्रश्न किया है कि अनादि मिध्यादृष्टि भव्य जीवके कर्मोंके उदयसे प्राप्त कलुषताके रहते हुए दर्शनमोहनीयका और चार अनन्तानुबन्धीका उपशम कैसे होता है ? इसी प्रश्नका उत्तर देते हुए आचार्यदेवने बतलाया है कि काललब्धि आदिके कारण उनका उपशम होता है। वहाँ प्रथम काललब्धिका निरूपण करते हुए बतलाया है कि कर्मयुक्त भव्य आत्मा अर्धपुद्गलपरिवर्तन नामवाले कालके अवशिष्ट रहनेपर प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है, इससे अधिक कालके शेष रहनेपर नहीं। इससे संसारमें रहनेका अधिकसे अधिक कितना काल शेष रहनेपर भव्य जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके लिये पात्र होता है इसका नियम किया गया है। यह एक काललब्धि है। दूसरी कर्मस्थितिक काललब्धि है। न तो ज्ञानावरणादि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेकी पात्रता होती है और न ही जघन्य स्थितिके रहते हुए प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेकी पात्रता होती है। किन्तु जिसके परिणामोंकी विशुद्धिवश उस समय बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ा-कोड़ी सागरोपम हो रहा हो और जिसने सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति उससे संख्यात हजार सागरोपमोंसे न्यून अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थापित कर ली हो वह जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। इस प्रकार यद्यपि यहाँपर बन्ध-स्थितिकी अपेक्षा सत्कर्मोंकी स्थिति न्यून बतलाई गई है, परन्तु यह काललब्धि उस जीवकी अपेक्षा बतलाई गई है जो क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे सम्पन्न होकर प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके सन्मुख होता है। किन्तु यहाँ पर जो उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे जघन्य स्थिति सत्कर्म संख्यातगुणा बतलाया जा रहा है वह मिध्यात्वकर्मकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयको लक्ष्यमें लेकर तथा ज्ञानावरणादि छह कर्मोंकी अपेक्षा गुणसंक्रमके अन्तिम समयको लक्ष्यमें लेकर बतलाया जा रहा है, इसलिये सर्वार्थसिद्धि आदिके उक्त कथनसे इस कथनमें कोई बाधा नहीं आती। शेष कथन सुगम है।

\* उक्कस्सयं द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ १९१. सव्वकम्माणं पि अपुव्वकरणपढमसमयविसयस्स उक्कस्सद्विदिसंतकम्मस्से-  
हावलांबियत्तादो । २५ ।

\* एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो समत्तो ।

§ १९२. एवं पणुवीसदिपडिगमप्पावहुअदंडयं समाणिय एत्तो अदीदासेसपबंधेण  
विहासिदत्थाणं गाहासुत्ताणं सरूवणिहेसं कुणमाणो विहासासुत्तयारो इदमाह—

\* एत्तो सुत्तफासो कायव्वो भवदि ।

§ १९३. पुव्वं परिभासिदत्थाणं गाहसुत्ताणमेण्हि समुक्कित्ताणा जहाकमं कायव्वा  
त्ति भणिदं होइ ।

(४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।

पंचिदिओ य सण्णी णियमा' सो होइ पज्जत्तो ॥ ९५ ॥

\* उससे उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ १९१. क्योंकि सभी कर्मोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मका प्रकृतमें अवलम्बन लिया गया है । २५ ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात नहीं होता । परन्तु संख्यात हजार  
स्थितिबन्धापसरण अवश्य होते हैं । इसलिए अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थिति-  
बन्धसे उसके अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन स्थितिबन्ध होने लगता है । इसलिये अपूर्व-  
करणके प्रथम समयमें वहाँ प्राप्त स्थितिबन्धसे स्थितिसत्कर्मका संख्यातगुणा होना न्याय प्राप्त  
है । ऐसी अवस्थामें यह उत्कृष्ट स्थितिकत्कर्म अपने जघन्यसे संख्यातगुणा होता है ऐसा भी  
निर्णय करना उचित ही है ।

\* इसप्रकार पच्चीस पदवाला दण्डक समाप्त हुआ ।

§ १९२. इसप्रकार पच्चीस पदवाले अल्पबहुत्वदण्डकको समाप्तकर आगे अतीत समस्त  
प्रबन्धके द्वारा जिनके अर्थका विशेष व्याख्यान किया गया है ऐसे गाथासूत्रोंका स्वरूपनिर्देश  
करते हुए विभाषासूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

\* अब आगे गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करने योग्य है ।

§ १९३. जिनके अर्थका पहले स्पष्टीकरण कर आये हैं उन गाथासूत्रोंकी क्रमसे इस  
समय समुत्कीर्तना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना  
चाहिए । वह नियमसे पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है ॥ ९५ ॥

§ १९२. एसा पढमगाहा दंसणमोहोवसामणपट्टवणाए को सामिओ होइ किमविसेसेण चदुसु वि गदीसु वट्टमाणो, आहो अत्थि को विसेसो ति पुच्छाए णिण्णयविहाणट्टमवइण्णा । एदिस्से किंचि अवयवत्थपरामसं कस्सामो । तं जहा— दंसणमोहस्स उवसामगो अविसेसेण चदुसु वि गदीसु होदि ति बोद्धव्वो । एवं चदुगदिविस- यत्तसामण्णेणावहारिदस्स पाओग्गलद्धिमुहेण विसेसपट्टुप्पायणफलो गाहापच्छट्टणिहेसो । तं कथं ? ‘पंचिदियसण्णी’ इच्चादि । एत्थ पंचिदियणिहेसेण तिरिक्खगदीए एइदिय- वियलिंदियाणं पडिसेहो कओ दट्टव्वो । तत्थ वि सण्णिपंचिदिओ चैव सम्मत्तुप्पत्तीए पाओग्गो होदि, णासण्णिपंचिदिओ ति जाणावणट्टं सण्णिविसेसणं कदं । एवं चदुगदिविसयत्तेण सण्णिपंचिदियविसयत्तेण अवहारिदस्सेदस्स पज्जत्तावत्थाए चैव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गभावो, णापज्जत्तावत्थाए ति जाणावणट्टं ‘णियमा सो होइ पज्जत्तो’ ति णिदिट्टं । लद्धिअपज्जत्त-णिव्वत्तिअपज्जत्तए मोत्तूण णियमा णिव्वत्तिपज्जत्तो चैव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गो होदि ति एसो एदस्स भावत्थो ।

§ १९२. यह प्रथम गाथा दर्शनमोहनीयकर्मकी उपशमना प्रस्थापनाका कौन जीव स्वामी है, क्या अविशेषरूपसे चारों ही गतियोंमें विद्यमान जीव स्वामी है या कोई विशेषता है ऐसी पृच्छा होनेपर निर्णयका विधान करनेके लिये आई है । अब इसके पदोंके अर्थका कुछ परामर्श करेंगे । यथा—दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाला जीव सामान्यरूपसे चारों ही गतियोंमें होता है ऐसा जानना चाहिए । इस प्रकार चारों गतियाँ दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशमनाका विषय हैं इस बातका सामान्य रूपसे निश्चय होने पर प्रायोग्य लब्धिद्वारा विशेषका कथन करनेके लिये गाथाके उत्तरार्धका निर्देश है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—‘पंचिदियसण्णी’ इत्यादि ।

इस पदमें ‘पञ्चेन्द्रिय’ पदके निर्देश द्वारा तिर्यञ्चगतिसम्बन्धी एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंका प्रतिषेध किया हुआ जानना चाहिए । उसमें भी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव नहीं इस बातका ज्ञान करानेके लिये उसका ‘संज्ञी’ विशेषण दिया है । इस प्रकार चारों गतियाँ इसका विषय है और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव इसका विषय हैं इस रूपसे निश्चय किये गये इसके पर्याप्त अवस्थामें ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यता होती है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं इस बातका ज्ञान कराने के लिये ‘णियमा सो होइ पज्जत्तो’ इस वचनका निर्देश किया है । लब्ध्यपर्याप्त और निवृत्त्य-पर्याप्त अवस्थाको छोड़कर नियमसे निवृत्ति पर्याप्त जीव ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य होता है यह इसका भावार्थ है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके लिये कौन जीव योग्य होता है इसका निर्देश किया गया है । जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके सन्मुख होता है वह चारों गतियोंका होकर भी संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्त होना चाहिए । इसका यह तात्पर्य है कि यदि वह नारकी या देवगतिका जीव है तो उसके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी निवृत्त्यपर्याप्त



(४३) सव्वणिरय-भवणेषु दीव-समुद्धे गह-जोदिसि-विमाणे ।

अभिजोगमणभिजोग्गे उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥९६॥

§ १९३. एसा विदियसुत्तगाहा पुव्वसुत्तुद्धिट्थविसेसपरूवणाए पडिबद्धा । तं जहा—णिरयगदीए ताव सव्वासु णिरयपुट्ठीसु सव्वेसु णिरइंदएसु सव्वसेठीवद्ध-पइणएसु च वट्टमाणा णेरइया जहावुत्तसामग्गीए परिणदा वेयणाभिभवादीहिं कारणेहिं सम्मत्तमुप्पाएत्ति त्ति जाणावणद्धं सव्वणिरयग्गहणं । तहा सव्वभवणेषु त्ति वुत्ते जत्तिया नही होना चाहिए । किन्तु लहाँ पर्याप्तियोंकी पूर्णता होनेपर अन्तसु हूतके बाद ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है । यदि मनुष्यगतिका जीव है तो उसके भी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी वह लब्ध्यपर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त नहीं होना चाहिए । वह पर्याप्त ही होना चाहिए । उसमें भी यदि कर्मभूमिज मनुष्य है तो पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्षका होना चाहिए और यदि भोगभूमिज है तो उनचास दिनका होना चाहिए । ऐसा होनेपर ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है । यदि तिर्यञ्चगतिका जीव है तो वह एकेन्द्रिय, विकलत्रय और असंज्ञी न होकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय ही होना चाहिए । उसमें भी ऐसा जीव यदि लब्ध्यपर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त है तो वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य नहीं होता । वह लहाँ पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होना चाहिए । उसमें तिर्यञ्च दो प्रकारके होते हैं—भोगभूमिज और कर्मभूमिज । कर्मभूमिज भी दो प्रकारके होते हैं—गर्भज और सम्मूर्च्छन । सो इनमेंसे गर्भज ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर सकते हैं सम्मूर्च्छन नहीं । उसमें भी दिवसप्रयुक्त अवस्थाके होनेपर ही वे प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होते हैं । विशेष आगमसे जान लेना चाहिए । यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य जो अन्य विशेषताएँ बतलाई हैं, जैसे संसारमें रहनेका इस जीवका अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल-परितर्तन नामवाला काल शेष रहे तब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है । यदि सावि मिथ्यादृष्टि जीव है तो वेदक कालके समाप्त होनेपर ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है । तथा वह क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे सम्पन्न होना चाहिए इत्यादि सर्व साधारण विशेषताओंके साथ ही चारों गतियोंका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है यह उक्त गाथासूत्रका तात्पर्य है ।

सब नरकोंमें रहनेवाले नारकियोंमें सब भवनोंमें रहनेवाले भवनवासी देवोंमें, सब द्वीपों और समुद्रोंमें विद्यमान संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें, ढाई द्वीप-समुद्रोंमें रहनेवाले पर्याप्त मनुष्योंमें, सब व्यन्तरावासोंमें रहनेवाले व्यन्तर देवोंमें, सब ज्योतिष्क देवोंमें, विमानोंमें रहनेवाले नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें तथा अभियोग्य और अनभियोग्य देवोंमें दर्शनमोहनीयका उपश्रम होता है ऐसा जानना चाहिए ।

§ १९३. यह दूसरी सूत्रगाथा पूर्व गाथा सूत्रमें कहे गये अर्थविशेषके कथनमें प्रति-बद्ध है । यथा—नरकगतिके सब नरक पृथिवी सम्बन्धी सब इन्द्रकबिलोंमें, सब श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंमें विद्यमान नारकी जीव यथोक्त सामग्रीसे परिणत होकर वेदना अभिभव आदि कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये, गाथासूत्रमें 'सव्वणिरय' पदका ग्रहण किया है तथा 'सव्वभवणेषु' ऐसा कहनेपर

दसविहाणं भवणवासियाणमावासा तेसु सन्वेसु चैव समुप्पण्णा जीवा जिणबिंब-देविद्धि-  
दंसणादीहि कारणेहिं सम्मत्तमुप्पाएंति, ण तत्थ विसेसणियमो अत्थि त्ति भणिदं होइ ।  
तद्दा दीव-समुद्दे त्ति वुत्ते सन्वेसु दीवसमुद्देसु वट्टमाणा जे सण्णिपंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता  
जे च अट्टाइजेसु दीव-समुद्देसु मणुसा संखेज्जवस्साउआ गन्भोवकंतिया असंखेज्जवस्साउआ  
च ते सन्वे वि जाइंभरत्त-धम्मसवणादिपच्चएहिं अप्पप्पणो विसए सव्वत्थ सम्मत्त-  
मुप्पाएंति । ण तत्थ देसविसेसणियमो अत्थि त्ति घेत्तव्वं । तसजीवविरहिएसु असंखेजेसु  
समुद्देसु कथं ? ण, तत्थ वि पुव्ववेरियदेवपओगेण णीदानं तिरिक्खाणं सम्मत्तुप्पत्तीए  
पयट्टंताणमुवलंभादो । गहसदो जेण वेंतरदेवाणं वाचओ तेणासंखेज्जेसु दीव-समुद्देसु  
जे वेंतरावासा तेसु सन्वेसु वट्टमाणा वाणवेंतरा जिणमहिमादंसणादीहिं कारणेहिं  
सम्मत्तमुप्पाएंति, ण तत्थ विसेसणियमो अत्थि त्ति गहेयव्वं । तद्दा 'जोदिसिय' त्ति  
जोदिसियदेवाणं चंदाइच्च-गह-णक्खत्त-ताराभेयभिण्णाणं गहणं कायव्वं । तेसु  
वि जिणबिंबिद्धिदंसणादीहिं कारणेहिं सम्मत्तुप्पत्ती सव्वत्थ ण विरुद्धा त्ति घेत्तव्वं ।  
'विमाणे' त्ति वुत्ते विमाणवासियदेवाणं गहणं कायव्वं । तेसु वि सोहम्मादि जाव  
उवरिमगेवज्जा त्ति सव्वत्थ वट्टमाणा सगजाइपडिबद्धसम्मत्तुप्पत्तिकारणेहि परिणदा

दस प्रकारके भवनवासियोंके जितने आवास हैं उन सबमें ही उत्पन्न हुए जीव जिनबिम्ब-  
दर्शन और देवधिदर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, वहाँ विशेष नियम  
नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । तथा 'दीव-समुद्दे' ऐसा कहने पर सब द्वीप-  
समुद्रोंमें वर्तमान जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त हैं और ढाई द्वीप-समुद्रोंमें जो संख्यात  
वर्षकी आयुवाले गर्भज और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य हैं वे सभी जातिस्मरण  
और धर्मश्रवण आदि निमित्तोंसे अपने-अपने लिये सर्वत्र सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ।  
वहाँ देशविशेषका नियम नहीं है ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—त्रस जीवोंसे रहित असंख्यात समुद्रोंमें तिर्यञ्चोंका प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न  
करना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर भी पूर्वके बैरी देवोंके प्रयोगसे ले जाये गये  
तिर्यञ्च सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें प्रवृत्त हुए पाये जाते हैं ।

'गह' शब्द यतः व्यन्तर देवोंका वाचक है अतः असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें जो व्यन्तरा-  
वास हैं । उन सबमें वर्तमान वानव्यन्तर देव जिनमहिमादर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वको  
उत्पन्न करते हैं वहाँ विशेष नियम नहीं है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । तथा 'जोदिसिय'  
इससे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओंके भेदसे अनेक प्रकारके ज्योतिषी देवोंको ग्रहण  
करना चाहिए । उनमें भी जिनबिम्बदर्शन और देवधिदर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वकी  
उत्पत्ति सर्वत्र विरुद्ध नहीं है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । 'विमाणे' ऐसा कहनेपर विमान-  
वासी देवोंका ग्रहण करना चाहिए । उनमें भी सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तक  
सर्वत्र विद्यमान और अपनी-अपनी जातिसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्यक्त्वोत्पत्तिके कारणोंसे

सम्मत्तं उप्पाएंति त्ति धेत्तव्वं । तत्तो उवरिमअणुदिसाणुत्तरविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तु-  
प्पत्ती किण्ण होदि त्ति चे ? ण, तत्थ सम्माइड्डीणं चैव उप्पादणियमदंसणादो ।  
एत्थेवावंतरविसेसपहुप्पायणड्डुमाह—‘अभिजोग्गमणभिजोग्गे’ इदि । अभियुज्यंत  
इत्यभियोग्याः, वाहनादौ कुत्सिते कर्मणि नियुज्यमाणा वाहनदेवा इत्यर्थः । तेभ्योऽन्ये  
किन्विषिकादयोऽनुत्तमदेवाः, उत्तमाश्च पारिषदादयोऽनभियोग्याः । तेषु सर्वेषु यथोक्त-  
हेतुसन्निधाने सम्यक्त्वोत्पत्तिरविरुद्धेति यावत् । ‘उवसामो होइ बोद्धव्वो’ एवं भणिदे  
एदेसु सव्वेसु दंसणमोहस्स उवसामगो होइ त्ति णायव्वो, विरोहाभावादो त्ति  
मणिदं होइ ।

परिणत हुए देव सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—उनसे उपरिम अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देवोंमें सम्यक्त्वकी  
उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टि जीवोंके ही उत्पन्न होनेका नियम देखा  
जाता है ।

अब यहीं पर अबान्तर भेदोंका कथन करनेके लिये कहते हैं—‘अभिजोग्गमणभि-  
जोग्गे’—‘अभियुज्यन्ते इत्यभियोग्याः’ इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो वाहनदेव वाहन आदि  
कुत्सित कर्ममें नियोजित हैं वे अभियोग्य देव हैं यह इस पदका अर्थ है । उनसे अन्य  
किन्विषिक आदि अनुत्तम देव और पारिषद आदि उत्तम देव अनभियोग्य देव हैं । उन  
सबमें यथोक्त हेतुओंका सन्निधान होने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति अविरुद्ध है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है । ‘उवसामो होइ बोद्धव्वो’ ऐसा कहने पर इन सबमें दर्शनमोहका उपशामक होता  
है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—पूर्व गाथासूत्रमें सामान्यसे इतना ही कहा गया था कि चारों गतियोंके  
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव दर्शनमोहके उपशामक होते हैं । इस गाथासूत्रमें उन जीवोंका  
नाम निर्देश पूर्वक स्पष्ट रूपसे खुलासा किया गया है । किसी भी गतिका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय  
पर्याप्त कोई भी जीव क्यों न हो यदि वह प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके उस उस गतिसे सम्बन्ध  
रखनेवाले अपने-अपने कारणोंसे सम्पन्न है तो वह दर्शनमोहका उपशामक होता है यह इस  
गाथासूत्रके कथनका सार है । यहाँ टोकामें सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधनोंसे कतिपय  
कारणोंका संकेत किया गया है, अतएव यहाँ उन सब साधनोंका खुलासा किया जाता है ।  
प्रारम्भके तीन नरकोंमें जातिस्मरण, धर्मश्रवण और वेदनाभिभव ये तीन प्रथम सम्यक्त्वकी  
उत्पत्तिके बाह्य साधन हैं । यद्यपि नारकियोंके विभंगज्ञान होनेसे उन सबको यथासम्भव पूर्व-  
भवोंका स्मरण होता है । किन्तु यहाँ पर पूर्वभवोंका स्मरणमात्र प्रथम सम्यक्त्वकी  
उत्पत्तिका साधन नहीं है । किन्तु पूर्व भवमें धार्मिक बुद्धिसे जो अनुष्ठान किये थे वे विफल  
क्यों हुए इसे जानकर जो आत्म-निरीक्षण कर जीवादि नौ पदार्थोंके मननपूर्वक अपने उपयोगको  
आत्मामें युक्त करते हैं उनके जातिस्मरण सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें बाह्य साधन है । धर्मश्रवण  
पूर्वभवके स्नेही सम्यग्दृष्टि देवोंके निमित्तसे होता है, क्योंकि वहाँ ऋषियोंका जाना सम्भव  
नहीं है । यहाँ पर वेदनाभिभवको प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका तीसरा बाह्य साधन  
कहा है । सो उससे ऐसा समझना चाहिए कि वेदनासामान्य प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका

बाह्य साधन नहीं है। किन्तु जिनका ऐसा उपयोग होता है कि यह वेदना इस मिथ्यात्व तथा असंयमके सेवनसे उत्पन्न हुई है उनके वह वेदना सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन होता है। अन्तके चार नरकोंमें मात्र जाति-स्मरण और वेदनाभिभव ये दो ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधन हैं। यहाँ सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन धर्मश्रवण सम्भव नहीं, क्योंकि इन नरकोंमें एक तो देवोंका गमनागमन नहीं होता। दूसरे वहाँके नारकियोंमें भवके सम्बन्धवश या पूर्वके वैरवश परस्परमें अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव नहीं पाया जाता। अतः वहाँ उक्त दो ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्त हैं।<sup>१</sup>

तिर्यञ्चोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधन तीन हैं—जातिस्मरण, धर्म-श्रवण और जिनबिम्बदर्शन। ये ही तीन मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधन हैं। किन्हीं मनुष्योंको जिन महिमा देखकर प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। पर इसे अलगसे चौथा साधन माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका जिनबिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। कदाचित् किन्हीं मनुष्योंको लब्धिसम्पन्न ऋषियोंके देखनेसे भी प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। पर इसे भी अलगसे साधन माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका भी जिन बिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। सम्मेदाचल, गिरनार, चम्पापुर औह पावापुर आदिका दर्शन भी जिनबिम्बदर्शनमें ही गर्भित है, क्योंकि वहाँ भी जिनबिम्बदर्शन तथा मुक्तिगमनसम्बन्धी कथाका सुनना या कहना आदिके बिना प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती।

देवोंमें भी भवनवासी, वानव्यन्तर, उयोतिषी और बारहवें कल्पतकके कल्पवासी देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके चार मुख्य साधन हैं—जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनमहिमा दर्शन और देवधिदर्शन। जिनमहिमादर्शन जिनबिम्बदर्शनके बिना बन नहीं सकता, इसलिए जिनमहिमादर्शनमें ही वह गर्भित है। यद्यपि जिनमहिमादर्शनमें स्वर्गावतरण और जन्माभिषेक आदि गर्भित हैं, पर इनमें जिनबिम्बदर्शन नहीं होता, इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिनमहिमादर्शनके साथ जिनबिम्बदर्शनका अविनाभाव नहीं है सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि वहाँ भी ये आगामी कालमें साक्षात् जिन होनेवाले हैं ऐसा बुद्धिमें स्वीकार करके ही उक्त कल्याणक किये जाते हैं, अतः इन कल्याणकोंमें भी जिनबिम्बदर्शन बन जाता है। अथवा ऐसे कल्याणकोंको निमित्तकर जो प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है उसे जिनगुणश्रवणनिमित्तक समझना चाहिए। देवधिदर्शन जातिस्मरणसे भिन्न साधन है, क्योंकि अपनी-अपनी अणिमादि ऋद्धियोंको देखकर ऐसा विचार होना कि ये ऋद्धियाँ जिनदेवद्वारा उपदिष्ट धार्मिक अनुष्ठानके फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं, जातिस्मरणस्वरूप होनेसे इसको निमित्तकर उत्पन्न हुआ प्रथम सम्यक्त्व जातिस्मरणनिमित्तक है और ऊपरके देवोंकी महा ऋद्धियोंको देखकर जो ऐसा विचार करता है कि इन देवोंके ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शनसे युक्त संयमधारणके फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं और मैं सम्यग्दर्शनसे रहित द्रव्यसंयम पालकर वाहन आदि नीच देवोंमें उत्पन्न हुआ हूँ उस जीवके ऊपरके देवोंकी ऋद्धिको देखकर उत्पन्न हुए प्रतिबोधसे जो प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है वह देवधिदर्शननिमित्तक प्रथम सम्यक्त्व है। इसप्रकार जातिस्मरण और देवधिदर्शन इन दोनोंमें अन्तर है। दूसरे जातिस्मरण देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही होता है और देवधिदर्शन कालान्तरमें होता है, इसलिये भी इन दोनोंमें अन्तर है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें देवधिदर्शनको छोड़कर प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पूर्वोक्त तीन साधन हैं। एक तो इन देवोंमें ऊपरके महर्धिक देवोंका आगमन नहीं होता। दूसरे वहीके देवोंकी

(४४) उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तथा णिरासाणो ।

उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥१७॥

§ १९४. एसा तदियगाहा दंसणमोहोवसामगस्स तीहिं करणेहिं वावदावत्थाए णिव्वाघादत्तं णिरासाणभावं च पदुप्पाएदि । तं जहा—सव्वो चेव उवसामगो णिव्वाघादो होइ, दंसणमोहोवसामणं पारभिय उवसामेमाणस्स जइ वि चउव्विहोव-सग्गवग्गो जुगवम्भुवइह्हाइंतो वि णिच्छएण दंसणमोहोवसामणमेत्तो पडिबधेण विणा समाणेदि त्ति वुत्तं होइ । एदेण दंसणमोहोवसामगस्स तदवत्थाए मरणाभावो वि

महर्षिको बार-बार देखनेसे उन्हें आश्चर्य नहीं होता तथा तीसरे वहाँ शुक्ललेख्या होनेसे उनके संकलेशरूप परिणाम नहीं होते, इसलिये वहाँ देवर्षिदर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति का साधन नहीं स्वीकार किया गया है । नौ प्रवेयकवासी देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दो साधन हैं—जातिस्मरण और धर्मश्रवण । यहाँ ऊपरके देवोंका आगमन नहीं होता, इसलिए देवर्षिदर्शन साधन नहीं है । नन्दीश्वर द्वीप आदिमें इनका गमन नहीं होता, इसलिए वहाँ जिनबिम्बदर्शन साधन भी नहीं है । वहाँ रहते हुए वे अवधिज्ञानके द्वारा जिन महिमाको जानते हैं, इसलिए भी उनके जिन महिमादर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे विस्मयको उत्पन्न करनेवाले रागसे मुक्त होते हैं, इसलिये उन्हें जिन महिमा देखकर विस्मय नहीं होता । उनके अहमिन्द्र होते हुए भी उनमें परस्पर अनुप्राह्य-अनुग्राहक भाव होनेसे उनमें धर्मश्रवण प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन स्वीकार किया गया है । इससे आगे अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं, इसलिये वहाँ प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसे होती है यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । यहाँ प्रत्येक गतिमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके जो साधन बतलाये हैं उनमेंसे किसीके कोई एक प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन है और किसीके कोई दूसरा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन है ऐसा यहाँ समझना चाहिए । प्रत्येक गतिमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके जितने साधन बतलाये हैं वे सब उस-उस गतिमें प्रत्येकके होने चाहिए ऐसा नहीं है । शेष कथन सुगम है ।

दर्शनमोहका उपशम करनेवाले सब जीव व्याघातसे रहित होते हैं और उस कालके भीतर सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होते । दर्शनमोहके उपशान्त होने पर सासादनगुणस्थानकी प्राप्ति भजितव्य है । किन्तु क्षीण होने पर सासादनगुणस्थानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३-९७ ॥

§ १९४. यह तीसरी गाथा दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके तीन करणोंके द्वारा व्यापृत अवस्थारूप होनेपर निर्व्याघातपने और निरासानपनेका कथन करती है । यथा—सभी उपशामक जीव व्याघातसे रहित होते हैं, क्योंकि दर्शनमोहके उपशमको प्रारम्भ करके उसका उपशम करनेवाले जीवके ऊपर यद्यपि चारों प्रकारके उपसर्ग एक साथ उपस्थित हों तो भी वह निश्चयसे प्रारम्भसे लेकर दर्शनमोहकी उपशमनविधिकी प्रतिबन्धके बिना समाप्त करवा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस कथन द्वारा दर्शनमोहके उपशामकका उस अवस्थामें मरण भी नहीं होता यह कहा हुआ जानना चाहिए, क्योंकि मरण भी

पदुप्पाइदो दड्डुव्वो, तस्स वि वाघादभेदत्तादो । 'तहा गिरासाणो' त्ति भणिदे दंसण-  
मोहणीयसुवसामेतो तदवत्थाए सासणगुणं पि ण एसो पडिवज्जदि त्ति भणिदं होइ ।  
'उवसंते भजियव्वो' उपशान्ते दर्शनमोहनीये भाज्यो विकल्प्यः, सासादनपरिणामं  
कदाचिद् गच्छेन्न वेति । किं कारणं ? उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियावसेसाए तदो-  
प्पहुडि सासणगुणपडिवत्तीए केसु वि जीवेषु संभवदंसणादो । 'णीरासाणो य खीणम्मि'  
उवसमसम्मत्तद्वाए खीणाए सासादनगुणं णियमा ण पडिवज्जदि त्ति भणिदं होइ ।  
कुदो एवं चे ? उवसमसम्मत्तद्वाए जहण्णेण्यसमयमेत्तसेसाए उक्कस्सेण छावलियमेत्ता-  
वसेसाए सासणगुणपरिणामो होइ, ण परदो त्ति णियमदंसणादो । अथवा 'णीरासाणो  
य खीणम्मि' एवं भणिदे दंसणमोहणीयम्मि खीणम्मि णिरासाणो वेव, ण तत्थ  
सासणगुणपरिणामो संभवइ त्ति वेत्तव्वं, स्वइयस्स सम्मत्तसापडिवादिसरूवत्तादो,  
सासणपरिणामस्स उवसमसम्मत्तपुरंगमत्तणियमदंसणादो च ।

व्याघातका एक भेद है । 'तहा गिरासाणो' ऐसा कहने पर दर्शनमोहका उपशम करनेवाला  
जीव उस अवस्थामें सासादन गुणस्थानको भी नहीं प्राप्त होता है यह उक्त कथनका  
तात्पर्य है । 'उवसंते भजियव्वो' अर्थात् दर्शनमोहके उपशान्त होने पर भाज्य है—विकल्प्य  
है अर्थात् वह जीव कदाचित् सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है और कदाचित् प्राप्त नहीं  
होता, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर वहाँसे लेकर सासादन  
गुणस्थानकी प्राप्ति किन्हीं भी जीवोंमें सम्भव देखी जाती है । 'णीरासाणो य खीणम्मि'  
अर्थात् उपशम सम्यक्त्वका काल क्षीण होने पर यह जीव सासादन गुणस्थानको नियमसे  
नहीं प्राप्त होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें जघन्यरूपसे एक समय शेष रहने  
पर और उत्कृष्टरूपसे छह आवलि काल शेष रहने पर सासादनगुणस्थान परिणाम होता है,  
इसके बाद नहीं ऐसा नियम देखा जाता है । अथवा 'णीरासाणो य खीणम्मि' ऐसा कहनेपर  
दर्शनमोहनीयका क्षय होनेपर यह जीव निरासान ही है, क्योंकि उसके सासादन गुण-  
स्थानरूप परिणाम सम्भव नहीं है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । कारण कि क्षायिक  
सम्यक्त्व अप्रतिपातस्वरूप होता है और सासादन परिणामके उपशम सम्यक्त्वपूर्वक होनेका  
नियम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ दर्शनमोहके उपशामन विधिके प्रारम्भ होनेके समयसे लेकर  
उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर तथा उसके बाद किन कार्य विशेषोंका होना सम्भव है  
और कौन कार्यविशेष होते ही नहीं इन सब बातोंका इस गाथामें निर्देश किया गया है ।  
यह जीव दर्शनमोहकी उपशामन विधिका प्रारम्भ अघःकरणके प्रथम समयसे करके अनि-  
वृत्तिकरणके अन्तिम समयमें उसको पूर्ण करता है । इस कालके भीतर एक तो यह जीव  
देव, मनुष्य, तिर्यञ्चोद्भवा और अन्य कारणोंसे उपस्थित हुए उपसर्गोंके युगपत् या किसी एकके  
उपस्थित होनेपर उस ( उपशामन विधि ) से च्युत नहीं होता । यहाँ तक कि ऐसे जीवका

(४५) सागारे पट्टवगो णिट्टवगो मज्झिमो य भजियव्वो ।

जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥८८॥

§ १९५. एदेण चउत्थगाहासुत्तेण दंसणमोहोवसामगस्स उवजोग-जोग-लेस्सापरिणामगओ विसेसो पट्टुप्पाइदो दट्टव्वो । तं जहा—‘सागारे पट्टवगो’ एवं भणिदे दंसणमोहोवसामणमादव्वेतो अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तमेत्त-कालं पट्टवगो णाम भवदि । सो वुण तदवत्थाए णाणोवजोगे चव उवजुत्तो होइ, तत्थ दंसणोवजोगस्सावीचारप्पयस्स पवुत्तिविरोहादो । तदो मदि-सुद-विभंगणाणाण-

मरण भी नहीं होता । बिना व्याघातके यह जीव उसे सम्पन्न करता है । इस काल में ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो जाय यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि इस जीवके इस कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एकके उदयके साथ सदा काल मिथ्यात्वका उदय बना रहता है ऐसा नियम है । जब कि सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति उपशम सम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवलि कालके शेष रहनेपर मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदय-उदीरणा होनेपर होती है । वहाँ दर्शनमोहनीयकी किसी भी प्रकृतिका उदय न होनेसे दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव होता है । इसी प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर भी ये सब विशेषताएँ जाननी चाहिए । मात्र ऐसा जीव अपने कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवलि काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है । किन्तु उपशम सम्यक्त्वका उक्त काल निकल जानेपर वह सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर वह या तो मिथ्यात्वके उदय-उदीरणाके होनेसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है या सम्यग्मिथ्यात्वका उदय-उदीरणा होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो जाता है या सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय-उदीरणा होनेसे वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है । यहाँ गाथामें ‘खीणम्मि’ पद आया है । उससे यह अभिप्राय भी फलित होता है कि दर्शनमोहनीयका क्षय होनेपर भी यह जीव सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षय होनेके पूर्व ही यह जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है, और ऐसे जीवके पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ताका प्राप्त होना सम्भव नहीं है ।

दर्शनमोहके उपशमनका प्रस्थापक जीव साकार उपयोगमें विद्यमान होता है । किन्तु उसका निष्ठापक और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजितव्य है । तीनों योगों मेंसे किसी एक योगमें विद्यमान तथा तेजोलेश्याके जघन्य अंशको प्राप्त वह जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है ॥ ४-९८ ॥

§ १९५. इस चौथे गाथा सूत्र द्वारा दर्शनमोहके उपशामकके उपयोग, योग और लेश्या परिणामगत विशेषका कथन जानना चाहिए । यथा—‘सागारे पट्टवगो’ ऐसा कहने पर दर्शनमोहकी उपशमविधिका आरम्भ करनेवाला जीव अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रस्थापक कहलाता है । परन्तु वह जीव उस अवस्थामें ज्ञानोपयोगमें ही उपयुक्त होता है, क्योंकि उस अवस्थामें अवीचारस्वरूप दर्शनोपयोगकी प्रवृत्तिका विरोध

मण्णदरो सागारोवजोगो चैव एदस्स होइ, णाणागारोवजोगो त्ति घेत्तव्वं । एदेण जागरावत्थापरिणदो चैव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गो होदि, णाण्णो त्ति एदं पि जाणाविदं, णिहापरिणामस्स सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गविसोहिपरिणामेहिं विरुद्धसहावत्तादो । एवं पट्टवगस्स सागारोवजोगत्तं णियामिय संपहि णिट्टवग-मज्झिमावत्थासु सागराणागाराणमण्णदरोवजोगेण भयणिज्जत्तपदुप्पायणट्टमिदमाह—‘णिट्टवगो मज्झिमो य भजिदव्वो ।’ एत्थ णिट्टवगो त्ति भणिदे दंसणमोहोवसामणाकरणस्स समाणगो घेत्तव्वो । सो वुण कम्हि उहेसे होदि त्ति पुच्छिदे पढमट्टिदिं सव्वं कमेण गालिय अंतरपवेसाहिमुहावत्थाए होइ । सो च सागारोवजुत्तो वा अणागारोवजुत्तो वा होदि त्ति भजियव्वो, दोण्हमण्णदरोवजोगपरिणामेण णिट्टवगत्ते विरोहाभावादो । एवं मज्झिमस्स वि वत्तव्वं । को मज्झिमो णाम ? पट्टवग-णिट्टवगपज्जायाणमंतरालकाले पयट्टमाणो मज्झिमो त्ति भण्णदे, तत्थ दोण्हं पि उवजोगाणं कमपरिणामस्स विरोहाभावादो भयणिज्जत्तमेदमवगंतव्वं ।

§ १९६. संपहि एदस्स चैव जोगविसेसावहारणट्टमिदमाह—‘जोगे अण्णदरम्हि

है, इसलिए मति, श्रुत और विभंगज्ञानमेंसे कोई एक साकार उपयोग ही इसके होता है, अनाकार उपयोग नहीं होता ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस वचन द्वारा जागृत अवस्थासे परिणत जीव ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य होता है, अन्य नहीं इस बातका भी ज्ञान करा दिया है, क्योंकि निद्रारूप परिणाम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य विशुद्धिरूप परिणामोंसे विरुद्ध स्वभाववाला है। इस प्रकार प्रस्थापकके साकारोपयोगपनेका नियम करके अब निष्ठापकरूप और मध्यम (बीचकी) अवस्थामें साकार उपयोग और अनाकार उपयोग मेंसे अन्यतर उपयोगके साथ भजनीयपनेका कथन करनेके लिये यह वचन कहा है—‘णिट्टवगो मज्झिमो य भजिदव्वो’। इस वचनमें निष्ठापक ऐसा कहने पर दर्शनमोहके उपशमनाकरणको समाप्त करनेवाला जीव लेना चाहिए। परन्तु वह किस अवस्थामें होता है ऐसा पूरर समस्त प्रथम स्थितिको क्रमसे गलाकर अन्तर प्रवेशकी अभिमुख अवस्थाके होनेपर होता है। और वह साकार उपयोगमें उपयुक्त होता है या अनाकार उपयोगमें उपयुक्त होता है, इसलिए भजनीय है, क्योंकि इन दोनोंमेंसे किसी एक परिणामके साथ निष्ठापकपनेके होनेमें विरोधका अभाव है। इसी प्रकार मध्यम अवस्थावालेके भी कहना चाहिए।

शंका—मध्यम कौन है ?

समाधान—प्रस्थापक और निष्ठापकरूप पर्यायोंके अन्तराल कालमें प्रवर्तमान जीव मध्यम कहलाता है।

वहाँ पर दोनों ही उपयोगोंका क्रमसे परिणाम होनेमें विरोधका अभाव होनेसे यह भजनीयपना जानना चाहिए।

§ १९६. अब इसीके योग विशेषका निश्चय करनेके लिये यह कहते हैं—‘जोगे



य मणजोग-वच्चिजोग-कायजोगाणमण्णदरे जोगे वड्डमाणो दंसणमोहोवसामणाए पड्डवगो होइ । एवं णिड्डवगो मज्झिमो य वचव्वो, तत्थ तदण्णदरणिणयमाणुवलद्वीदो । चट्ठण्हमण्णदरमणजोगेण वा, चट्ठण्हमण्णदरवच्चिजोगेण वा, ओरालिय-वेउच्चिवियाण-मण्णदरकायजोगेण वा, परिणदो संतो दंसणमोहोसामणमाढवेदि त्ति एसो एदस्स सावत्थो ।

§ १९७. संपहि तस्सेव लेस्सामेदुप्पायणद्वसुत्तरो सुत्तावयवो—‘जहण्णगो तेउलेस्साए’ । जइ वि सुट्ठु मंदविसोहीए परिणमिय दंसणमोहणीयमुवसामेदुमाढवेइ तो वि तस्स तेउलेस्साए परिणामो चेव तप्पाओग्गो होइ णो हेट्ठिमलेस्सापरिणामो तस्स सम्मत्तुप्पत्तिकारणकरणपरिणामेहिं विरुद्धस्वरूपत्तादो त्ति भणिदं होइ । एदेण तिरिक्ख-मणुस्सेसु किण्ह-णील-काउलेस्साणं सम्मत्तुप्पत्तिकाले पडिसेदो कदो, विसोहिकाले असुह-तिलेस्सापरिणामस्स संभवाणुववत्तीदो । देवेषु पुण जहारिहं सुहतिल्लेस्सापरिणामो चेव, [ण] तेण तत्थ वियहिचारो । णेरइएसु वि अवड्ढिदकिण्ह-णील-काउलेस्सापरिणामेषु सुहतिलेस्साणमसंभवो चेवे त्ति ण तत्थेदं सुत्तं पयड्ढे । तदो तिरिक्ख-मणुसविसयमेवेदं सुत्तमिदि गहेयव्वं ।

अण्णदरस्मि य ।’ मनोयोग, वचनयोग और काययोग इनमेंसे किसी एक योगमें वर्तमान जीव दर्शनमोहकी उपशमविधिका प्रस्थापक होता है । इसी प्रकार निष्ठापक और मध्यम अवस्थावाले जीवके भी कहना चाहिए, क्योंकि इन दोनों अवस्थाओंमें प्रस्थापकसे भिन्न नियमकी उपलब्धि नहीं होती । चार प्रकारके मनोयोगोंमेंसे अन्यतर मनोयोगसे, चार प्रकारके वचनयोगोंमेंसे अन्यतर वचनयोगसे तथा औदारिक काययोग और वैक्रियिक काययोग इनमेंसे अन्यतर काययोगसे परिणत हुआ जीव दर्शनमोहकी उपशमविधिका आरम्भ करता है यह इसका भावार्थ है ।

§ १९७. अब उसीके लेइयाभेदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्रवचन आया है—‘जहण्णगो तेउलेस्साए’ यद्यपि अत्यन्त मन्द विशुद्धिसे परिणमकर दर्शनमोहकी उपशमन-विधिका प्रारम्भ करता है तो भी उसके तेजोलेइयाका परिणाम ही उसके योग्य होता है, उससे नीचेका लेइयापरिणाम नहीं, क्योंकि वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारणरूप कारणपरिणामोंसे विरुद्ध स्वरूप है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इससे तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें कृष्ण, नील और कापोत लेइयाओंका सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय प्रतिषेध कर दिया है, क्योंकि विशुद्धिके समय अशुभ तीन लेइयारूप परिणाम सम्भव नहीं है । देवोंमें तो यथायोग्य शुभ तीन लेइयारूप परिणाम ही होता है, इसलिए उक्त कथनका वहाँ पर कोई व्यभिचार नहीं आता । नारकियोंमें भी अवस्थितस्वरूप कृष्ण, नील और कापोतलेइयापरिणाम होते हैं, वहाँ शुभ तीन लेइयारूप परिणाम असम्भव ही हैं, इसलिए उनमें यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता । अतः तिर्यञ्चों और मनुष्योंको विषय करनेवाला ही यह सूत्र है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहका उपशम करते समय इस जीवके प्रथम समयसे लेकर

(४७) मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।

उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१९॥

§ १९८. एदेण गाहासुत्तेण दंसणमोहोवसामगस्स जाव अंतरपवेसो ण होइ ताव णियमा मिच्छत्तकम्मोदओ होइ । ततो परमुवसमसम्मत्तकालव्वंतरे तद्दुदओ णत्थि चैव । उवसमसम्मत्तकाले णिद्धिदे पुण मिच्छत्तोदयस्स भयणिञ्जत्तमिदि । एदेण तिण्णि अत्थविसेसा परूविदा । तं जहा—‘मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं’ एवं भणिदे मिच्छत्त वेदिञ्जदि जेण कम्मेण तं मिच्छत्तवेदणीयं कम्ममुदयावत्थाविसेसिदमुवसामगस्स णियमा होदि त्ति णायव्वमिदि गाहापुव्वद्धे पदसंबंधो, तेण मिच्छत्तकम्मोदयो दंसण-

अन्तिम समय तक इस कालमें कौन उपयोग होता है, योग कौन होता है और लेश्या कौन होती है इन तथ्योंका इस गाथामें विचार करते हुए बतलाया है कि दर्शनमोहके उपशमन-विधिके प्रस्थापकका प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक साकार उपयोग होता है, क्योंकि दर्शनोपयोग अविचारस्वरूप होनेसे उसके प्रारम्भमें इसकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती । उसके बाद मध्यकी और अन्तकी अवस्थामें यह यथासम्भव दर्शनोपयोगी भी हो जाता है । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि दर्शनमोहके उपशमनाके कालसे मति-श्रुतज्ञानका काल अल्प है, अतएव बीचमें अनाकार उपयोग हो जाता है । परन्तु ऐसा होनेपर भी उपयोगका आलम्बन जीव पदार्थ ही रहता है, क्योंकि इसकी सन्मुखतामें ही दर्शनमोहका उपशम होकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनमोहका उपशामक जीव नियमसे जागृत होता है, क्योंकि सुप्त अवस्थामें इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । योगकी अपेक्षा विचार करने पर इसके दस पर्याप्त योगोंमेंसे यथासम्भव कोई भी योग होता है । लेश्या कम से कम मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके पीत लेश्याका जघन्य अंश होता है । इससे नीचे की अन्य अशुभ लेश्याएँ नहीं होतीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । देवों और नारकियोंमें अवस्थित लेश्याके रहते हुए भी दर्शनमोहका उपशम होकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है इसलिए पूर्वोक्त लेश्याका नियम तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा यहाँ किया गया है ऐस यहाँ उचित चाहिए ।

दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकर्मका उदय जानना चाहिए । किन्तु दर्शनमोहकी उपशान्त अवस्थामें मिथ्यात्व कर्मका उदय नहीं होता, तदन्तर उसका उदय भजनीय है ॥ ५-१९ ॥

§ १९८. इस गाथासूत्रद्वारा यह बतलाया गया है कि दर्शनमोहके उपशामक जीवका जन्मतक अन्तर प्रवेश नहीं होता है तबतक उसके मिथ्यात्वका उदय नियमसे होता है । उसके बाद उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर मिथ्यात्वका उदय नहीं ही होता । परन्तु उपशमसम्यक्त्वके कालके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है । इसप्रकार इस गाथासूत्र द्वारा तीन अर्थविशेष कहे गये हैं । यथा—‘मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं’ ऐसा कहने पर जिस कर्मके द्वारा मिथ्यात्व वेदा जाता है वह मिथ्यात्व वेदनीय कर्म उदय अवस्थासे युक्त उपशामकके नियमसे होता है ऐसा जानना चाहिए, इसप्रकार गाथाके पूर्वार्धका पदसम्बन्ध है,

मोहोवसामगस्स णियमा होइ त्ति सुत्तथो गहेयव्वो । उदयविसेसणं सुत्तेणाणुवइड्ढं कथमुवलब्भदि त्ति णासंकाणिज्जं, अत्थवसेणेव तहाविहविसेमणस्सत्थसमुवलद्धीदो । अथवा वेद्यत इति वेदनीयं मिथ्यात्वमेव वेदनीयं मिथ्यात्ववेदनीयं उदयावस्थापरिणतं मिथ्यात्वकर्मेति यावत् । तदुपशमकस्य भवतीति सूत्रोपात्तमेव तद्विशेषणमवगंतव्यम् । 'उवसंते आसाणे' एवं भणिदे दंसणमोहणीये उवसंते उवसमसम्मादिट्ठित्तमुवगयस्स मिच्छत्तवेदणीयकम्मोदयस्स आसाणमेव विणासो चैव । किं कारणं ? अंतरपवेसावत्थाए तदुदयस्स अच्चंताभावेण णिसिद्धत्तादो तदणुदयस्सेव उवसंतभावेणेत्य विवक्खियत्तादो च । अथवा उवसंते उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे आसाणे सासणकालब्भंतरे च मिच्छत्तकम्मोदयो णत्थि चैवे त्ति वक्कसेसवसेण सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । 'तेण परं होइ भजियव्वो' एवं भणिदे उवसमसम्मत्तद्वाए समत्ताए तत्तो परं मिच्छत्तकम्मोदएण एसो भजियव्वो, मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरोदयस्स तत्थाविरोहादो ।

इसलिये मिथ्यात्व कर्मका उदय दर्शनमोहके उपशमकके नियमसे होता है इसप्रकार सूत्रका अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

**शंका**—सूत्रद्वारा अनुपदिष्ट उदय विशेषण कैसे उपलब्ध होता है ?

**समाधान**—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अर्थके सम्बन्धसे ही उस प्रकारके विशेषणकी यहाँ पर उपलब्धि होती है । अथवा जो वेदा जाय वह वेदनीय है । मिथ्यात्व ही वेदनीय मिथ्यात्व वेदनीय है । उदय अवस्थासे परिणत मिथ्यात्व कर्म यह इसका तात्पर्य है । वह उपशम करनेवाले जीवके होता है इसप्रकार उक्त विशेषण सूत्रोक्त ही जानना चाहिए । 'उवसंते आसाणे' ऐसा कहनेपर दर्शनमोहनीयके उपशान्त अवस्थामें उपशमसम्यग्दृष्टिपनेको प्राप्त हुए जीवके मिथ्यात्व वेदनीयकर्मके उदयका आसान ही अर्थात् विनाश ही रहता है, क्योंकि अन्तर प्रवेशरूप अवस्थामें उसके उदयका अत्यन्ताभाव होनेसे उसका उदय निषिद्ध ही है तथा उसका अनुदयही उपशान्तरूपसे यहाँ पर विवक्षित है । अथवा 'उवसंते' अर्थात् उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर तथा 'आसाणे' अर्थात् सासादन कालके भीतर मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं ही है इसप्रकार वाक्य शेषके वशसे सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । 'तेण परं होइ भजियव्वो' ऐसा कहनेपर उपशम सम्यक्त्वके कालके समाप्त होनेपर तदनन्तर मिथ्यात्व कर्मके उदयसे यह भजनीय है, क्योंकि मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें से अन्यतरके उदयका वहाँ विरोध नहीं पाया जाता ।

**विशेषार्थ**—इस गाथासूत्रद्वारा तीन अर्थ स्पष्ट किये गये हैं । प्रथम अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि जो मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहका उपशम करता है उसके मिथ्यात्वका उदय नियमसे होता है । दूसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि उपशम-सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं होता । यहाँ गाथामें 'उवसंते आसाणे' पाठ है । तदनुसार 'आसाण' अवसान पाठका पर्यायरूप होनेसे विनाश अर्थ करके उक्त अर्थ फलित किया गया है । अथवा 'उवसंते आसाणे' इसका अर्थ उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादन करने पर

(४८) सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा ।

एकम्मिह य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा ॥१००॥

§ १९९. एत्थ 'तिण्णि कम्मंसा' त्ति भणिदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ग्रहणं कायव्वं, दंसणमोहोवसामणाए पयट्ठत्तादो । एदे तिण्णि कम्मंसा सव्वेहिं चैव ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता बोद्धव्वा । ण तेसिमेक्का वि ट्ठिदी अणुवसंता अत्थि त्ति भावत्थो । तदो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णट्ठिदिप्पहुडिं जावुक्कस्सट्ठिदि त्ति एदेसु सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ट्ठिदसव्वपरमाणू उवसंता त्ति सिद्धं । एवमुवसंताणं तेसिं ट्ठिदिविसेसाणं सव्वेसिमणुभागो किमेयवियप्पो चैव आहो णाणावियप्पो त्ति भणिदे एय-वियप्पो चैवे त्ति जाणावणट्ठमुवरिमो गाहासुत्तावयवो—'एकम्मिह य अणुभागे' एकम्मिह चैवाणुभागविसेसे' तिण्हमेदेसिं कम्मंसाणं सव्वे ट्ठिदिविसेसा दट्ठव्वा । अंतर-बाहिरा-णंतरजहण्णट्ठिदिविसेसे जो अणुभागो सो चैव तत्तो उवरिमासेसट्ठिदिविसेसेसु उक्कस्स-

'नहीं' इतने वाक्यशेषके योगसे यह अर्थ फलित किया है कि उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादन गुणस्थानवालेके मिथ्यात्वका उदय नहीं होता । यहाँ 'नहीं' इस वाक्य शेषकी योजना 'तेण परं होइ भजियन्वो' पदको ध्यानमें रखकर की गई है । तीसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि उपशमसम्यक्त्वका काल पूरा होने पर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है । अर्थात् यदि ऐसा जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उसके मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है । यदि सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है और यदि वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहता है । इस प्रकार इस गाथासूत्र द्वारा तीन अर्थोंको स्पष्ट किया गया है ।

दर्शनमोहनीयकी तीनों कर्म प्रकृतियाँ सभी स्थिति विशेषोंके साथ उपशान्त ( उदयके अयोग्य ) रहती हैं तथा सभी स्थितिविशेष नियमसे एक अनुभागमें अवस्थित रहते हैं ॥ ६-१०० ॥

§ १९९. इस गाथासूत्रमें 'तिण्णि कम्मंसा' ऐसा कहनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि दर्शनमोहकी उपशमनाका प्रकरण है । ये तीनों ही कर्म प्रकृतियाँ सभी स्थिति विशेषोंके साथ उपशान्त जाननी चाहिए । उनकी एक भी स्थिति अनुपशान्त नहीं होती यह उक्त कथनका भावार्थ है । अतः मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक इन सब स्थिति विशेषोंमें स्थित सब परमाणु उपशान्त होते हैं यह सिद्ध हुआ । इसप्रकार उपशान्त हुए उन सब स्थिति-विशेषोंका अनुभाग क्या एक प्रकारका ही है या नाना भेदोंको लिये हुए है ऐसा कहनेपर एक प्रकारका ही है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका गाथासूत्रका अवयव आया है—'एकम्मिह य अणुभागे' एक ही अनुभागविशेषमें इन तीनों कर्मप्रकृतियोंके सब स्थितिविशेष जानने चाहिए । अन्तरायामके बाहर अनन्तरवर्ती जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग है

द्विदिपज्जंतेसु होइ, णाण्णस्सो' त्ति भणिदं होदि । मिच्छत्तस्स ताव सव्वघादिविद्वाणिओ घादिदसेसो अणुभागो सव्वेसु द्विदिविसेसेसु अविंसिद्धसरूवेणावड्ढिदो दड्ढुव्वो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि णवरि मिच्छत्ताणुभागादो अणंतगुणहीणो । सम्मत्तस्स पुण तत्तो वि अणंतगुणहीणो देसघादिविद्वाणसरूवो दारुअसमाणाणंतभागावड्ढाणो उक्कसाणुभागो एयवियप्पो सव्वत्थ होदि त्ति घेत्तव्वं ।

§ २००. संपहि दंसणमोहणीयमुवसामेमाणस्स तदवत्थाए किंपच्चएण णाणावरणादिकम्मबंधो होदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स णिद्वारणट्टमुवरिमगाहासुत्तमोइण्णं—

वही उससे उपरिम उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त समस्त स्थितिविशेषोंमें होता है वह अन्य नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मिथ्यात्वका तो घात करनेसे शेष रहा सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग सब स्थिति विशेषोंमें अवस्थितरूपसे अवस्थित जानना चाहिए। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अनुभागसे यह अनन्तगुणा हीन होता है। सम्यक्त्वका अनुभाग तो उससे भी अनन्तगुणा हीन होता है, जो देशघाति द्विस्थानीय स्वरूप होकर दारुसमान अनुभागके अनन्तर्वे भागरूपसे अवस्थित उत्कृष्ट स्वरूप एक प्रकारका सर्वत्र होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

**विशेषार्थ—**इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीनों कर्म प्रकृतियोंकी उपशान्त अवस्थामें क्या व्यवस्था रहती है यह स्पष्ट किया गया है। अकेले मिथ्यात्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व या तीनों कर्म प्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिके गल जानेके अनन्तर समयमें जीवके अन्तरायाममें प्रवेश करनेपर उक्त तीनों प्रकृतियोंकी अन्तरायामके ऊपर द्वितीय स्थितिमें अपने-अपने स्थितिविशेषोंके साथ जितनी स्थिति प्राप्त होती है वह सब उपशान्त रहती है अर्थात् प्रथमोपशमके कालके अन्तिम समय तक उद्यके अयोग्य रहती है। यहाँ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण तो होता है पर उन स्थितिविशेषोंकी अपकर्षणपूर्वक उद्दीरणा नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अनुभाग उन तीनों प्रकृतियोंके अपने-अपने स्थितिविशेषोंमें अपने-अपने योग्य द्विस्थानीय एक प्रकारका होता है। अर्थात् मिथ्यात्वका घात करनेसे शेष बचा सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग सब स्थितिविशेषोंमें समान होता है। अन्तरायामके ऊपर प्रथम जघन्य स्थितिमें जो सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग होता है वही उससे ऊपरकी मिथ्यात्वसम्बन्धी अन्य सब स्थितियोंमें होता है। सम्यग्मिथ्यात्वके सब स्थितिविशेषोंमें भी इसीप्रकार एक प्रकारका द्विस्थानीय सर्वघाति अनुभाग होता है। किन्तु वह मिथ्यात्वके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। सम्यक्त्व प्रकृति देशघाति है, इसलिये उसके सब स्थितिविशेषोंमें देशघाति द्विस्थानीय एक प्रकारका अनुभाग होकर भी वह सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। साथ ही यह उत्कृष्ट होता है। यह सब उक्त गाथाका तात्पर्य है।

§ २००. अब दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके उस अवस्थामें ज्ञानावरणादि कर्मोंका बन्ध किंनिमित्तक होता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका निर्धारण करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

(४८) मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धवो ।

उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१०१॥

§ २०१. मिच्छत्तं पच्चओ कारणं जस्स सो मिच्छत्तपच्चओ खलु परिप्फुडं बंधो दंसणमोहोवसामगस्स जाव षट्मट्टिदिचरिमसमयो त्ति ताव बोद्धव्वो । केसिं कम्माणं बंधो ? मिच्छत्तस्स णाणावरणादिसेसकम्माणं च । जइ वि एत्थ सेसाणं असंजम-कसाय-जोगाणं पच्चयत्तमत्थि तो वि मिच्छत्तस्सेव पहाणभावविवक्खाए एवं परूविदमिदि घेत्तव्वं, उवरि मिच्छत्तपच्चयस्साभावपदुप्पायणपरत्तादो । 'उवसंते आसाणे' दंसणमोहणीए उवसंते अंतरं पविट्टुपट्टमसमयप्पहुडि मिच्छत्तपच्चयस्स आसाण-मेव विणासो चेव, ण तत्थ मिच्छत्तपच्चओ अत्थि त्ति वुत्तं होइ । अधवा 'उवसंते' उवसंतदंसणमोहणीये सम्माइट्टिमि आसाणे' सासणसम्माइट्टिमि य मिच्छत्तपच्चओ णत्थि त्ति वक्कसेसं कादूण सुत्तत्थो समत्थेयव्वो । 'तेण परं होइ भजियव्वो' तत्तो परमुवसंतद्वाए णिट्टिदाए मिच्छत्तपच्चओ भजियव्वो । किं कारणं ? उवसमसम्मत्तद्वाए खीणाए तिण्ह-

दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके नियमसे मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध जानना चाहिए । किन्तु उसके उपशान्त रहते हुए मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता तथा उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है ॥ ७-१०१ ॥

§ २०१ मिथ्यात्व है प्रत्यय अर्थात् कारण जिसका वह मिथ्यात्वप्रत्यय बन्ध 'खलु' अर्थात् स्पष्टरूपसे दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके प्रथम स्थितिके अन्तम समय तक जानना चाहिए ।

शंका—किन कर्मोंका बन्ध ?

समाधान—मिथ्यात्व और ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंका ।

यद्यपि यहाँपर ( मिथ्यात्व गुणस्थानमें ) शेष असंयम, कषाय और योगका प्रत्यय-पना है तो भी मिथ्यात्वकी ही प्रधानताकी विवक्षामें इस प्रकार कहा है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ऊपरके गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धके अभावका कथन परक यह वचन है । 'उवसंते आसाणे' दर्शनमोहनीयके उपशान्त होने पर अन्तरायाममें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धका आसान अर्थात् विनाश ही है । वहाँ मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा 'उवसंते' दर्शनमोहनीयके उपशान्त होनेपर सम्यग्दृष्टि जीवके और 'आसाणे' अर्थात् सासा-दन सम्यग्दृष्टि जीवके 'मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता' इतना वाक्यशेषका योग करके सूत्रार्थका समर्थन करना चाहिए । 'तेण परं होइ भजियव्वो' अर्थात् उसके बाद उपशम सम्य-क्त्वके कालके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके

मण्णदरस्स कम्मस्स उदयसंभवे सिया मिच्छत्तपच्चओ, सिया अण्णपच्चओ त्ति तत्थ भयणिज्जत्ते विरोहाणुवलंभादो ।

§ २०२. एवमुधसामगस्स पच्चयपरूवणं कादूण संपहि मिच्छत्तपच्चएणेव

कालके क्षीण होनेपर दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंमेंसे किसी एक कर्मका उदय सम्भव होनेपर कदाचित् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है, कदाचित् अन्यनिमित्तक बन्ध होता है, इसलिये उस अवस्थामें भजनीय होनेमें विरोध नहीं उपलब्ध होता ।

**विशेषार्थ**—कर्मबन्धके कारण चार हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग । तत्त्वार्थसूत्र आदिमें बन्धके प्रमादसहित पाँच कारण बतलाये हैं । किन्तु यहाँ पर टीकामें प्रमादका कषायमें अन्तर्भाव करके चार कारण परिगणित किये गये हैं । इनमेंसे पूर्व-पूर्वके कारणके रहनेपर आगे-आगेके कारण होते ही हैं । जैसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध होनेपर वह अविरति, कषाय और योगनिमित्तक भी होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिए । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है, आगेके गुणस्थानोंमें नहीं । इसी प्रकार पाँचवें गुणस्थान तक अविरति निमित्तक बन्ध होनेपर वहाँ कषाय और योगकी निमित्तता है ही ऐसा समझना चाहिए । आगेके गुणस्थानोंमें अविरतिनिमित्तक बन्धका अभाव है । तथा दसवें गुणस्थान तक कषाय-निमित्तक बन्ध होनेपर वहाँपर योगकी निमित्तता है ही, क्योंकि इससे आगेके गुणस्थानोंमें कषायनिमित्तक बन्धका अभाव है । आगे तेरहवें गुणस्थान तक एक मात्र योगनिमित्तक बन्ध होता है । वहाँ बन्धके अन्य कारणोंका अभाव है । इसप्रकार कर्मबन्धके कहाँ कितने कारण हैं इसे समझ कर मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धकी मुख्यता है यह बतलानेके लिये उक्त गाथासूत्रकी रचना हुई है । वहाँ मिथ्यात्व और ज्ञानावरणादि जितने कर्मोंका बन्ध होता है वह गाथासूत्रमें मिथ्यात्वनिमित्तक इसी अभिप्रायसे कहा है । इससे आगेके गुणस्थानोंमें मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध नहीं होता यह बतलानेके लिये गाथासूत्रमें 'उवसंते आसाणे' इस तृतीय चरणकी रचना हुई है । इसके दो अर्थ हैं, जिनका स्पष्टीकरण टीकामें किया ही है । तथा उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद इस जीवके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे जिस प्रकृतिका उदय होता है उसके अनुसार वहाँ यथासम्भव बन्धकारणकी मुख्यता होती है । यदि वह जीव मिथ्यात्वके उदयके साथ मिथ्यादृष्टि हो जाता है तो मिथ्यात्व निमित्तक बन्धकी मुख्यता रहती है और यदि सम्यग्मिथ्यात्वके उदयके साथ सम्यग्मिथ्यादृष्टि या सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयके साथ वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो अविरतिनिमित्तक बन्धकी मुख्यता रहती है । यही कारण है कि उक्त गाथासूत्रके चौथे चरणमें उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धको भजनीय कहा है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि वेदक सम्यक्त्व सातवें गुणस्थान तक होता है, अतः जहाँ जिस कारणकी मुख्यता बने उसके अनुसार वहाँ उसकी मुख्यतासे बन्ध समझना चाहिए । यथा—चौथे-पाँचवें गुण-स्थानमें अविरतिकी मुख्यतासे बन्ध होता है तथा छठे-सातवें गुण-स्थानमें अविरतिका अभाव होकर कषायकी मुख्यतासे बन्ध होता है ।

§ २०२. इस प्रकार उपशमकके बन्धके कारणका कथन करके अब दर्शनमोहनीयका

दंसणमोहणीयस्स बंधो होइ, तेण विणा सेसपच्चएहिं तब्बंधो णत्थि ति जाणावण्डु-  
मुत्तरगाहासुत्तावयारो<sup>१</sup>—

(४९) सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ ।

वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥

§ २०३. मिच्छाइट्ठी चेव<sup>३</sup> दंसणमोहणीयस्स मिच्छत्तपच्चएण बंधगो होइ, जाण्णो । तेण सम्मामिच्छाइट्ठी वा वेदयसम्माइट्ठी वा खइयसम्माइट्ठी वा, अविसेण उवसमसम्माइट्ठी वा सासणसम्माइट्ठी वा णियमा दंसणमोहस्स अबंधगो होदि ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चयो वेत्तव्वो । अधवा जहा मिच्छाइट्ठी मिच्छत्तोदएण मिच्छत्तस्सेव बंधगो होदि ति भणिदो, किमेवं सम्मामिच्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी च सम्मामिच्छत्त-वेदग-सम्मत्ताणमुदएण ताणि चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि जहारिहं बंधइ आहो ण बंधदि ति भणिदे ताणि ण बंधदि ति जाणावण्डुमेदं गाहासुत्तमवइण्णमिदि वक्खाणेयव्वं, सम्मामिच्छाइट्ठी-वेदगसम्माइट्ठीसु दंसणमोहणीयबंधाभावस्स मुत्तकंठमिहोवइट्ठादो । णवरि 'खीणो वि अबंधगो होदि' ति एदं पदं खइयसम्माइट्ठिमि दंसणमोहणीयबंधा-

बन्ध मिथ्यात्वके निमित्तसे ही होता है, उसके बिना शेष कारणोंसे दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं होता इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके गाथासूत्रका अवतार हुआ है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका अबन्धक होता है । तथा वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'अपि' शब्द द्वारा परिगृहीत उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहनीयका अबन्धक होता है । ८-१०२ ।

§ २०३. मिथ्यादृष्टि जीव ही दर्शनमोहनीयका मिथ्यात्वके निमित्तसे बन्धक होता है, अन्य नहीं । इससे सम्यग्मिथ्यादृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'अपि' शब्दसे उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि दर्शनमोहका नियमसे अबन्धक होता है इस प्रकार यह सूत्रार्थका समुच्चय ग्रहण करना चाहिए । अथवा जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्वका ही बन्धक होता है ऐसा कहा है उसी प्रकार क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व और वेदकसम्यक्त्वके उदयसे उन्हीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको यथायोग्य बाँधता है या नहीं बाँधता ऐसा प्रश्न करने पर नहीं बाँधता इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र अवतीर्ण हुआ है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दर्शनमोहनीयके बन्धके अभावका मुक्तकण्ठ होकर इस गाथासूत्रमें उपदेश दिया गया है । इतनी विशेषता है कि 'खीणो वि अबंधगो होदि' इस प्रकार इस पदका प्रयोजन क्षायिकसम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीय-

१. ता०प्रत्तं बंधो होइ इतोऽपि 'मिच्छाइट्ठी चेव दंसणमोहणीयस्स मिच्छत्तपच्चयेण बंधगो होइ' अयं पाठः समुपलभ्यते । २. ता०प्रत्तं—णट्टगाहासुत्तावयारो इति पाठः ।

२. ता०प्रती 'चेव' इति पाठो नास्ति ।



भावपदुप्पायणफलमणुत्तसिद्धं पि मन्दबुद्धिसिस्सजणाणुग्गहणदुमुवइडुमिदि गहेयव्वं ।

(५०) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।

तत्तो परमुदयो खल्लु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥

§ २०४. एसा गाहा दंसणमोहणीयस्स सव्वोवसमेणावट्टाणकालपमाणावहारणदुमागया । तं जहा—एत्थंतोमुहुत्तमद्धमिदि वुत्ते अंतरदीहत्तस्स संखेज्जदिभागमेत्तो कालो गहेयव्वो । कुदो एदमवगम्मदे ? पुव्वपरूविदप्पावहुआदो । सव्वोवसमेणे ति

के बन्धके अभावका कथन करना है जो अनुत्तसिद्ध है, फिर भी मन्दबुद्धि शिष्यजनोंका अनुग्रह करनेके लिये इसका उपदेश दिया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—उक्त गाथासूत्रमें किन जीवोंके दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं होता इसका निर्देश करते हुए बतलाया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं करता । तथा गाथासूत्रमें आये हुए 'अपि' शब्द द्वारा यह भी सूचित किया है कि उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भी दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं करता । टीकामें इस सूत्रकी रचनाका एक प्रयोजन यह भी बतलाया है कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वका बन्धक होता है उसीप्रकार क्या सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका और वेदकसम्यक्त्वके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वका बन्धक होता है या नहीं होता ऐसा प्रश्न होने पर उक्त गाथासूत्र इसका निषेध करनेके लिये आया है । तात्पर्य यह है उपशमसम्यक्त्वके कालमें ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी संक्रमद्वारा सत्ता प्राप्त होती है, अन्य भावके कालमें नहीं । अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वका बन्धक होता है उस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व के उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका या सम्यक्त्वके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वका संक्रामक ( कर्मबन्धक ) होता है क्या ? तो इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये उक्त गाथासूत्रमें यह कहा गया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहरूप सम्यग्मिथ्यात्वका अबन्धक है । उसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहरूप सम्यक्त्वका अबन्धक है । क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त तीनों प्रकृतियोंका क्षय कर चुका है, इसलिए वह इनका अबन्धक होता ही है । फिर भी मन्दबुद्धि शिष्योंको ज्ञान करानेके लिये गाथासूत्रमें इस विषयका अलगसे विधान किया है ।

सभी दर्शनमोहनीय कर्मोंका उदयाभावरूप उपशम होनेसे वे अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्त रहते हैं । उसके बाद तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका नियमसे उदय होता है ॥ ९-१०३ ॥

§ २०४. यह गाथा दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वोपशमसे अवस्थान कालके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आई है । यथा—यहाँ गाथासूत्रमें 'अंतोमुहुत्तमद्धं' ऐसा कहने पर अन्तरायामका संख्यातवाँ भागप्रमाण काल लेना चाहिए ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

बुत्ते सव्वेसिं दंसणमोहणीयकम्माणमुवसमेणे त्ति घेत्तव्वं, मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभिच्छ-त्ताणं तिण्णं पि कम्माणं पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसविहत्ताणमेत्थुवसंतभावेणावट्ठाण-दंसणादो । 'तत्तो परमुदयो खलु' ततः परं दर्शनमोहभेदानां त्रयाणां कर्मणामन्यतमस्य नियमेनोदयपरिप्राप्तिरित्युक्तं भवति । तदो उवसंतद्वाए खीणाए तिण्हं कम्माणमण्णदरं जं वेदेदि तमोकड्डियूणुदयावलियं पवेसेदि, असंखेज्जलोगपडिभागेण उदयावलियवाहिरे च एगगोवुच्छसेटीए णिक्खेवं करेइ । सेसाणं च दोण्हं कम्माणमुदयावलियवाहिरे एगगोवुच्छायारेण णिक्खेवं करेइ । एवं तिण्हमण्णदरस्स कम्मस्स उदयपरिणामेण मिच्छाइट्ठी सम्माभिच्छाइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी वा होदि त्ति एसो गाहापच्छद्वे सुत्तत्थ-समुच्चओ ।

§ २०५. संपहि अणादियमिच्छाइट्ठी सम्मत्तमुप्पाएमाणो णियमा तिण्णि वि करणाणि कादूण सव्वोवसमेणेव परिणदो सम्मत्तमुप्पाएदि । सादियमिच्छाइट्ठी वि जो

समाधान—पूर्वमें कहे गये अल्पबहुत्वसे जाना जाता है ।

गाथासूत्रमें 'सव्वोवसमेण' ऐसा कहने पर सभी दर्शनमोहनीय कर्मोंके उपशमसे ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूपसे विभक्त मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनों ही कर्मोंका यहाँ पर उपशान्तरूपसे अवस्थान देखा जाता है । 'तत्तो परमुदयो खलु' अर्थात् उसके बाद दर्शनमोहके भेदरूप तीनों कर्मोंमेंसे किसी एकके नियमसे उदयकी प्राप्ति होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसके बाद उपशान्त कालके क्षीण होने पर तीनों कर्मोंमेंसे अन्यतर जिस कर्मका वेदन करता है उसको अपकर्षण कर उदयावलिमें प्रविष्ट करता है तथा असंख्यात लोकके प्रतिभागरूपसे उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकार पंक्तिरूपसे निक्षेप करता है । तथा शेष दोनों कर्मोंका उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकाररूपसे निक्षेप करता है । इस प्रकार तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका उदयपरिणाम होनेसे मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि होता है इस प्रकार यह गाथाका उत्तरार्धसम्बन्धी सूत्रके अर्थका समुच्चय है ।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियाँ कितने काल तक उपशान्त रहती हैं और उसके बाद इन तीनों प्रकृतियोंका क्या होता है इस बातका विचार करते हुए बतलाया गया है कि ये तीनों प्रकृतियाँ अन्तरायामके संख्यातवें भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशम होनेसे उपशान्त रहती हैं । गाथामें सर्वोपशम पाठ आया है । उसका इतना ही तात्पर्य है कि उपशम सम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका उदयाभावरूप उपशम होता है । दर्शनमोहनीयकी सब प्रकृतियोंसम्बन्धी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चारों ही अन्तर्मुहूर्त काल तक उदयके अयोग्य हो जाते हैं यही यहाँ सर्वोपशम है । उसके बाद तीनोंमेंसे किसी एक प्रकृतिका नियमसे उदय होता है । जिसका उदय होता है उसका उदय समयसे अपकर्षण होकर निक्षेप होता है और जिन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता उनका उदयावलिके बाहर अपकर्षण होकर निक्षेप होता है ।

§ २०५. अब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ नियमसे तीनों ही करणोंको करके सर्वोपशमरूपसे ही परिणत होकर सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है तथा सादि

विप्पकिट्टंतरेण सम्मत्तमुप्पाएइ सो वि सव्वोवसमेणेव सम्मत्तं समुप्पाएदि । तदण्णो पुण देस-सव्वोवसमेहिं भजियव्वो त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स णिण्णयविहाणट्टुमुत्तरं गाहासुत्तमुवइट्टं—

(५१) सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह विद्यट्टेण ।

भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥

§ २०५ जो सम्मत्तपढमलंभो अणादियमिच्छाइट्टिविसओ सो सव्वोवसमेणेव होइ, तत्थ पयारंतरासंभवादो । 'तह विद्यट्टेण' मिच्छत्तं गंतूण जो बहुअं कालमंतरिदूण सम्मत्तं पडिवज्जइ सो वि सव्वोवसमेणेव पडिवज्जइ । एदस्स भावत्थो—सम्मत्तं घेत्तूण पुणो मिच्छत्तं पडिवज्जिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेन्ल्लिदूण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण वा अद्वपोग्गलपरियद्वमेत्तकालेण वा जो सम्मत्तं पडिवज्जइ, सो वि सव्वोवसमेणेव पडिवज्जइ त्ति भणिदं होइ । 'भजियव्वो य अभिक्खं' जो पुण सम्मत्तादो परिवडिदो संतो लहुमेव पुणो पुणो सम्मत्तग्गहण्णाभिमुहो होइ सो सव्वोवसमेण वा देसोवसमेण वा सम्मत्तं पडिवज्जइ । किं कारणं ? जइ वेदगपाओग्गकाल-मंतरे चैव सम्मत्तं पडिवज्जइ तो देसोवसमेण अण्णहा वुण सव्वोवसमेण पडिवज्जइ

मिथ्यादृष्टि जीव भी विप्रकृष्ट अन्तरसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है वह भी सर्वोपशमद्वारा ही सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है । उससे अन्य जीव तो देशोपशम और सर्वोपशमरूपसे भजनीय है इस तरह इस प्रकारके अर्थविशेषका निर्णय करनेके लिए आगेके गाथासूत्रका उपदेश दिया है—

सम्यक्त्वका प्रथम लाभ सर्वोपशमसे ही होता है तथा विप्रकृष्ट जीवके द्वारा भी सम्यक्त्वका लाभ सर्वोपशमसे ही होता है । किन्तु शीघ्र ही पुनः पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव सर्वोपशम और देशोपशमसे भजनीय है ॥ १०-१०४ ॥

§ २०५. जो अनादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका प्रथम लाभ होता है वह सर्वोपशमसे ही होता है, क्योंकि उसके अन्य प्रकारसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । 'तह विद्यट्टेण' अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त कर जो बहुत कालका अन्तर देकर सम्यक्त्वको प्राप्त करता है वह भी सर्वोपशमसे ही प्राप्त करता है । इसका भावार्थ—सम्यक्त्वको ग्रहण कर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालद्वारा या अर्थ पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालद्वारा जो सम्यक्त्वको प्राप्त करता है वह भी सर्वोपशमसे ही प्राप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । 'भजियव्वो य अभिक्खं' अर्थात् जो सम्यक्त्वसे पतित होता हुआ शीघ्र ही पुनः पुनः सम्यक्त्वके ग्रहणके अभिसुख होता है वह सर्वोपशमसे अथवा देशोपशमसे सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, क्योंकि यदि वह वेदक प्रायोग्य कालके भीतर ही सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो देशोपशमसे अन्यथा सर्वोपशमसे

त्ति तत्थ भयणिज्जत्तदंसणादो । तत्थ सच्चोवसमो णाम तिण्हं कम्माणमुदयाभावो सम्मत्तदेसघादिफहयाणमुदओ देसोवसमो त्ति भण्णदे ।

(५२) सम्मत्तपढमलंभस्साणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।

लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

§ २०६. एसा गाहा सम्मत्तं गेण्हमाणस्साणंतरं पच्छदो मिच्छत्तोदयणियमो किमत्थि आहो णत्थि त्ति पुच्छाए णिण्णयकरणट्टुमागया । एदिस्से अत्थो उच्चदे । तं जहा—सम्मत्तस्स जो पढमलंभो अणादियमिच्छाइट्टिविसओ तस्साणंतरं पच्छदो अणंतर-पच्छिमावत्थाए मिच्छत्तमेव होइ, तत्थ जाव पढमट्टिदिचरिमसमओ त्ति ताव मिच्छत्तोदयं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो । 'लंभस्स अपढमस्स दु' जो खलु अपढमो सम्मत्त-पडिलंभो तस्स पच्छदो मिच्छत्तोदयो भजियव्वो होइ । सिया मिच्छाइट्टी होदूण वेदयसम्मत्तमुवसमसम्मत्तं वा पडिवज्जइ, सिया सम्मामिच्छाइट्टी होदूण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जइ त्ति भावत्थो ।

प्राप्त करता है इस प्रकार वहाँ भजनीयपना देखा जाता है । उनमेंसे तीनों कर्मोंके उदयाभावका नाम सर्वोपशम है और सम्यक्त्व देशघाति प्रकृतिके स्पर्धकोंका उदय देशोपशम कहलाता है ।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें किसीके कौन सम्यक्त्व होता है इसका विधान किया गया है । अनादि मिथ्यादृष्टिके और जिसका वेदककाल व्यतीत हो गया है ऐसे किसी भी सादि मिथ्यादृष्टिके सर्वोपशमसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी ही प्राप्ति होती है । किन्तु जो सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक कालके भीतर अवस्थित है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव देशोपशमसे वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त करता है । शेष कथन सुगम है ।

सम्यक्त्वके प्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व ही होता है । अप्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व भजनीय है ॥ ११-१०५ ॥

§ २०६. यह गाथा सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें क्या मिथ्यात्वका उदय है अथवा नहीं है ऐसी पृच्छा होने पर उसका निर्णय करनेके लिए आई है । अब इसका अर्थ कहते हैं । यथा—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका जो प्रथम लाभ होता है उसके 'अणंतरं पच्छदो' अर्थात् अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें मिथ्यात्व ही होता है, क्योंकि उसके प्रथम स्थितिका अन्तिम समय प्राप्त होने तक मिथ्यात्वके उदयको छोड़ कर प्रकारान्तर सम्भव नहीं है । 'लंभस्स अपढमस्स दु' अर्थात् जो नियमसे अप्रथम अर्थात् द्वितीयादि बार सम्यक्त्वका लाभ है उसके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें मिथ्यात्वका उदय भजनीय है । कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्व या उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है यह उक्त गाथासूत्रका भावार्थ है ।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव पहली बार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें कौनसा भाव होता

§ २०७. संपहि दंसणमोहोवसामणासंबंधेण दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स कदमम्मि अवस्थाविसेसे कधं संकमो होइ ण होइ ति एत्थ एवंविहस्स अत्थविसेसस्स फुडीकरणडु-  
मुवरिमगाहासुत्तमुवइण्णं—

(५३) कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो ।  
एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥

हैं तथा जो सादि मिथ्यादृष्टि द्वितीयादि बार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तर पूर्व पिछली अवस्थामें कौनसा भाव होता है इसका विधान किया गया है । गाथाके पूर्वार्धमें 'अणंतरं पच्छदो' पाठ आया है तथा उत्तरार्धमें मात्र 'पच्छदो' शब्द आया है । इनमेंसे 'अणंतरं' पाठ तो ऐसा है जिसे अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे आगेके भावको सूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है और अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे पिछले भावको सूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है । जैसे 'अनन्तर पिछला' कहनेसे अव्यवहित पूर्व पिछले भावका ग्रहण होता है और 'अनन्तर उत्तर' कहनेसे अव्यवहित उत्तर भावका ग्रहण होता है । 'अनन्तर' पद स्वयं न तो पिछले भावको सूचित करता है और न ही उत्तर भावको । अतः प्रकृतमें 'पच्छदो' पाठका क्या अर्थ है इसका आगममें प्रयुक्त हुए 'पच्छ' तथा 'पच्छिम' शब्दोंका वहाँ जो अर्थ लिया गया है उसे ध्यानमें रख कर विचार होना चाहिए । इसके लिये सर्व प्रथम हम तीन आनुपूर्वियोंको लेते हैं । इनमें एक 'पच्छाणुपुव्वी' भी है । इस द्वारा गणना करनेपर अन्तिम भावसे गणनाक्रमसे पिछले भाव लिये जाते हैं । यहाँ 'पच्छ' शब्द गणनाक्रमसे आगेके भावोंकी अपेक्षा पिछले भावोंको सूचित करता है । उसी प्रकार प्रकृतमें भी 'अणंतरं पच्छदो' का अर्थ करने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे अव्यवहितपूर्व पिछले भावका ही ग्रहण होगा । इससे यह अर्थ सुतरां फलित हो जाता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे अव्यवहित पूर्व पिछले समयमें एकमात्र मिथ्यात्व भाव ही होता है । प्रथमोपशमके बाद कौन भाव होता है इसका सूचन करना इस गाथाका तात्पर्य नहीं है । इसका सूचन गाथा क्रमांक १०३ में पहले ही सूत्रकार कर आये हैं । तथा 'पच्छिम' शब्दको ध्यानमें रख कर विचार करने पर भी यही अर्थ फलित होता है । उदाहरणार्थ जयधवला पु० ६ पृ० १६७ और २८३ के चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि उन सूत्रोंमें 'अन्तिम' अर्थको सूचित करनेके लिये 'अपच्छिम' शब्दका प्रयोग हुआ है, 'पच्छिम' शब्दका नहीं । स्पष्ट है कि 'पच्छिम' शब्द विवक्षित भावसे पिछले भावको ही सूचित करता है । उक्त गाथामें आये हुए 'पच्छदो' शब्दका भी यही आशय लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

§ २०७. अब दर्शनमोहकी उपशमनाके सम्बन्धसे दर्शनमोहनीय कर्मका किस अवस्था-विशेषमें किस प्रकार संक्रम होता है अथवा नहीं होता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका स्पष्टीकरण करनेके लिए आगेका गाथासूत्र आया है—

जिस जीवके दर्शनमोहके तीन या दो कर्म सत्तामें होते हैं वह नियमसे संक्रमकी अपेक्षा भजनीय है । किन्तु जिस जीवके एक ही कर्म सत्तामें होता है वह संक्रमकी अपेक्षा भजनीय नहीं है ॥ १२-१०६ ॥

§ २०८. अस्य गाथासूत्रस्यार्थ उच्यते—जस्स जीवस्स तिण्णि कम्माणि मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदाणि, 'दु' सहेण दोण्णि वा मिच्छत्त-सम्मत्ताण-मण्णदरेण विणा जस्सत्थि सो णियमा णिच्छएण संकमेण भजियव्वो, सिया दंसण-मोहस्स संकामओ होइ, सिया च ण होइ त्ति तत्थ भयणाए फुड्ढुवलंभादो । तं जहा—मिच्छाइड्ढि-सम्माइड्ढीसु तिण्णि संतकम्माणि होदूण दोण्हं संकमो भवदि, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं च जहाकमं तत्थ संकंतिदंसणादो । पुणो सासणसम्माइड्ढि-सम्मामिच्छाइड्ढीसु तिण्णि संतकम्माणि होदूण तत्थेमस्स वि दंसण-मोहकम्मस्स संकमो णत्थि, तत्थ तस्संकमणसत्तीए अचंताभावेण पडिसिद्धत्तादो । तहा सम्मत्तमुव्वेल्लेमाणस्स जाघे आवलियपविड्ढं ताघे मिच्छाइड्ढिस्स तिण्णि संतकम्माणि होदूणेगस्सेव संकमो होइ । मिच्छत्तं वा खविज्जमाणं जाघे उदयावलियवाहिरं सव्वं खविदं ताघे सम्मादिट्ठिम्मि तिण्हं संतकम्मं होदूणेकस्सेव संकमो होइ । एदेण कारणेण दंसणमोहणीयस्स तिविहसंतकम्मिओ सिया दोण्हं एकस्से वा संकामओ होइ, सिया ण कस्स वि संकामओ त्ति भयणीयत्तं सिड्ढं ।

§ २०९. संपहि दुविहसंतकम्मियस्स संकमावेक्खाए भयणिज्जत्तं वुच्चदे, खविद-मिच्छत्त-वेदगसम्माइड्ढिम्मि सम्मत्तं वा उव्वेल्लेयूण ट्ठिदमिच्छाइड्ढिम्मि दोण्णि संत-कम्माणि होदूणेकस्स संकमो भवदि जाव सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणमुव्वेल्लिज्जमाणं

§ २०८. अब इस गाथासूत्रका अर्थ कहते हैं—जिस जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञावाले तीन कर्म तथा गाथामें पठित 'दु' शब्द द्वारा सूचित जिस जीवके मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इनमेंसे किसी एकके बिना दो कर्म हैं वह 'णियमा' अर्थात् निश्चय-से संक्रमकी अपेक्षा भजितव्य है, कदाचित् दर्शनमोहका संक्रामक होता है और कदाचित् नहीं होता है इसप्रकार वहाँ भजितव्यपनेकी स्पष्टरूपसे उपलब्धि होती है । यथा—मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीन सत्कर्म होकर दोका संक्रम होता है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका तथा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका वहाँ क्रमसे संक्रम देखा जाता है । किन्तु सासादनं सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें तीनों कर्मोंकी सत्ता होकर वहाँ एक भी दर्शनमोहनीय कर्मका संक्रम नहीं होता, क्योंकि इन दोनों गुणस्थानोंमें संक्रमण शक्तिका अत्यन्त अभाव होनेसे वहाँ उनका संक्रमण प्रतिषिद्ध है । तथा उद्वेलना करनेवाले जीवके जब सम्यक्त्व उदयावलिमें प्रविष्ट होता है तब मिथ्यादृष्टि जीवके तीन सत्कर्म होते हुए भी एकका ही संक्रम होता है । अथवा क्षयको प्राप्त होता हुआ उदयावलिके बाहर का सब मिथ्यात्व कर्म जब क्षयको प्राप्त हो जाता है तब सम्यग्दृष्टि जीवके तीन कर्मोंकी सत्ता होते हुए एकका ही संक्रम होता है । इस कारणसे दर्शन-मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव कदाचित् दोका और कदाचित् एकका संक्रामक होता है तथा कदाचित् एकका भी संक्रामक नहीं होता, इसलिये भजनीयपना सिद्ध होता है ।

§ २०९. अब दोकी सत्तावालेके संक्रमकी अपेक्षा भजनीयपनेका कथन करते हैं—जिसने मिथ्यात्वका क्षय किया है ऐसे वेदक सम्यग्दृष्टि जीवके अथवा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके स्थित हुए मिथ्यादृष्टि जीवके दो कर्मोंकी सत्ता होकर एकका संक्रम तबतक होता है

वा अणावलियपविट्ठं' ति आवलियपविट्ठसम्माभिच्छत्तस्स वुण सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा दुविहसंतकम्मियस्स एक्कस्स वि संकमो णत्थि । तदो एत्थ वि संकमेण भयणिज्जत्तं सिद्धं । 'एयं जस्स दु कम्मं' एवं भणिदे जस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा खवणुव्वेन्लणावसेण सम्मत्तं वा मिच्छत्तं वा एक्कमेव संतकम्मवसिट्ठं ण सो संकमेण भयणिज्जो, संकमभंगस्स तत्थ अच्चंताभावेण असंक्रामगो चैव सो होइ ति भणिदं होइ ।

जबतक क्षयको प्राप्त होता हुआ या उद्वेलनाको प्राप्त होता हुआ सम्यग्मिध्यात्व कर्म उदयावलिमें प्रविष्ट नहीं हुआ है । किन्तु जिसके सम्यग्मिध्यात्व कर्म उदयावलिमें प्रविष्ट हो जाता है ऐसे दो प्रकारके कर्मोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि या मिध्यावृष्टि जीवके एकका भी संक्रम नहीं होता, इसलिये यहाँ पर भी संक्रमकी अपेक्षा भजनीयपना सिद्ध हुआ । 'एयं जस्स दु कम्मं' ऐसा कहने पर जिस सम्यग्दृष्टि या मिध्यावृष्टि जीवके क्षपणावश और उद्वेलनावश क्रमसे सम्यक्त्व और मिध्यात्व एक ही सत्कर्म शेष रहता है वह संक्रमकी अपेक्षा भजनीय नहीं है, क्योंकि उसके संक्रमरूप विकल्पका अत्यन्त अभाव होने से वह असंक्रामक ही होता है यह एक कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीन, दो या एक कर्मकी सत्तावाले जीवके कहीं कितनेका संक्रम होता है या नहीं होता है इसका विचार किया गया है । यहाँ टीका में यह सब विस्तारसे स्पष्ट किया ही है, इसलिये यहाँ मात्र कोष्ठक दे देना चाहते हैं । यथा—

स्वामी	सत्ता	संक्रम या असंक्रम
१ मिध्यावृष्टि	३ की सत्ता	२ का—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका संक्रम
२ "	" (सम्यक्त्व उदयावलिप्रविष्ट	१ का—सम्यग्मिध्यात्वका संक्रम
३ "	सम्यक्त्व विना २ की सत्ता	"
४ "	" (सम्यग्मिध्यात्व उ. आ. प्र.)	संक्रम नहीं
५ "	१ मिध्यात्वकी सत्ता	"
६ सासादन	३ की सत्ता	"
७ सम्यग्मिध्यावृ०	"	"
८ सम्यग्दृष्टि	"	"
९ "	" (मिध्यात्व आवलि प्र०)	२ का—मिध्यात्व और सम्यग्मिध्यात्वका सं०
१० "	मिध्यात्व विना दो की सत्ता	१ का—सम्यग्मिध्यात्वका संक्रम
११ "	२ की सत्ता (सम्यग्मिध्यात्व आ.प्र.)	"
१२ "	१ सम्यक्त्वकी सत्ता	संक्रम नहीं
		"

(५४) सम्माइट्टी सहहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्टं ।

सहहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥

§ २१०. एदस्स सम्माइट्टिलक्खणविहाणडुमवइण्णस्स गाहासुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—सम्माइट्टी जो जीवो सो णियमसा दु णिच्छएणेव पवयणमुवइट्टं सहहदि ति गाहापुव्वद्वे पदाहिसंबंधो । तत्थ पवयणमिदि वुत्ते पयरिसजुत्तं वयणं पवयणं सव्वण्होवएसो परमागमो ति सिद्धंतो ति एयट्टो, तत्तो अण्णदरस्स पयरिस-जुत्तस्स वयणस्साणुवलंभादो । तदो एवंविहं पवयणमुवइट्टं सम्माइट्टी जीवो णिच्छएण सहहइ ति सुत्तत्थसमुच्चओ । 'सहहइ असब्भावं' एवं भणिदे असब्भूदं पि अत्थं सम्माइट्टी जीवो गुरुवयणमेव पमाणं कादूण सयमजाणमाणो संतो सहहदि ति भणिदं होदि । एदेण आणासम्मत्तस्स लक्खणं परूविदमिदि वेत्तव्वं । कथं पुनरसद्भूतमर्थ-मज्ञानात् प्रतिपद्यमानः सम्यग्दृष्टिरिति चेत् ? न, परमागमोपदेश एवायमित्यध्यव-सायेन तथा प्रतिपद्यमानस्यानवबुद्धपरमार्थस्यापि तस्य सम्यग्दृष्टिवाप्रच्युतेः । यदि पुनः सूत्रान्तरेणाविसंवादिना समयविद्धिर्याथात्म्येन प्रज्ञाप्यमानमपि तमर्थमसद्ग्रहाण

सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान करता है । तथा स्वयं न जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान करता है ॥ १०७ ॥

§ २१०. सम्यग्दृष्टिके लक्षणका कथन करनेके लिये आये हुए इस गाथासूत्रके अर्थका कथन करेंगे । यथा—जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह 'णियमसा' निश्चयसे ही उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान करता है इसप्रकार गाथाके पूर्वार्धमें पदोंका सम्बन्ध है । उनमेंसे 'पवयणं' ऐसा कहने पर उसका अर्थ है—प्रकर्ष युक्त वचन । प्रवचन अर्थात् सर्वज्ञका उपदेश, परमागम और सिद्धान्त यह एकार्थवाची शब्द हैं, क्योंकि उससे अन्यतर प्रकर्षयुक्त वचन उपलब्ध नहीं होता । अतः इस प्रकारके उपदिष्ट प्रवचनका सम्यग्दृष्टि जीव निश्चयसे श्रद्धान करता है इस प्रकार सूत्रार्थका समुच्चय है । 'सहहइ असब्भावं' ऐसा कहने पर असद्भूत अर्थका भी सम्यग्दृष्टि जीव गुरुवचनको ही प्रमाण करके स्वयं नहीं जानता हुआ श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस गाथासूत्र वचन द्वारा आज्ञा सम्यक्त्वका लक्षण कहा गया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—अज्ञानवश असद्भूत अर्थको स्वीकार करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह परमागमका ही उपदेश है ऐसा निश्चय होनेसे उस प्रकार स्वीकार करनेवाले उस जीवकी परमार्थका ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्दृष्टिपनेसे च्युति नहीं होती ।

यदि पुनः कोई परमागमके ज्ञाता विसंवाद रहित दूसरे सूत्र द्वारा उस अर्थको यथार्थ-

१ ता०प्रती पयरिसं जुत्तं इति पाः ।

४१



प्रतिपद्यते तदा प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिपदवीमवगाहते, प्रवचनविरुद्धबुद्धित्वा-  
दित्येष समयनिश्चयः । तथा चेत्—

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिञ्जत्तं जदा ण सद्दहदि ।

सो चेव ह्वइ मिच्छाइड्ढि त्ति तदो पहुडि जीवो ॥ १ ॥ इति ।

ततः सूक्तमाज्ञाधिगमाभ्यां प्रवचनोपदिष्टार्थाऽवैपरीत्यश्रद्धानं सम्यग्दृष्टि-  
लक्षणमिति ।

(५५) मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।

सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥

§ २११. एदस्स मिच्छाइड्ढिलक्खणपरूवणड्ढुमागयस्स गाहासुत्तस्स अत्थो वुष्णदे ।  
तं जहा—जो खलु मिच्छाइट्ठी जीवो सो णियमा णिच्छएण पवयणमुवइट्ठं ण सद्दहदि ।

रूपसे बतलावें फिर भी वह जीव असत् आग्रहवश उसे स्वीकार करता है तो उस समयसे लेकर वह जीव मिथ्यादृष्टि पदका भागी हो जाता है, क्योंकि वह प्रवचन विरुद्ध बुद्धिवाला है यह परमागमका निश्चय है । कहा भी है—

सूत्रसे समीचीनरूपसे दिखलाये गये उस अर्थका जब यह जीव श्रद्धान नहीं करता है उस समयसे लेकर वही जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है ॥ १ ॥

इसलिये यह ठीक कहा है कि प्रवचनमें उपदिष्ट हुए अर्थका आज्ञा और अधिगमसे विपरीतताके बिना श्रद्धान करना सम्यग्दृष्टिका लक्षण है ।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें जो यह बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो नियमसे श्रद्धान करता है । किन्तु कदाचित् स्वयं न जानता हुआ गुरुके निमित्तसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान करता है । सो उसका यह अर्थ नहीं है कि सम्यग्दृष्टि जीवको जीवादि नौ पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको छोड़कर गुरुके निमित्तसे विपरीतरूपसे भी उनकी श्रद्धा हो जाती है । किन्तु उक्त कथनका इतना ही तात्पर्य है कि जिनागममें जिन सूक्ष्म अर्थोंका विवेचन हुआ है, कदाचित् गुरुके निमित्तसे उनमेंसे किसी एकका विपरीत ज्ञान हो जाय और अविश्ववादी शास्त्रान्तरसे जब तक सम्यक् अर्थकी प्रति-  
पत्तिका योग न मिले तब तक वह वैसी श्रद्धा करता हुआ भी सम्यग्दृष्टि ही है । हाँ यदि समयज्ञ कोई विशेष ज्ञानी अविश्ववादी दूसरे शास्त्रसे उसे उक्त विषयका सम्यक् परिज्ञान करा दे, फिर भी वह असत् आग्रह वश अपनी हट न छोड़े तो उस समयसे लेकर वह नियम-  
से मिथ्यादृष्टि हो जाता है ऐसा यहाँ स्पष्टरूपसे समझना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान नहीं करता है तथा उप-  
दिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भूत अर्थका श्रद्धान करता है ॥ १०८ ॥

§ २११. मिथ्यादृष्टिके लक्षणका कथन करनेके लिये आये हुए इस गाथासूत्रके अर्थका कथन करते हैं । यथा—जो नियमसे मिथ्यादृष्टि जीव है वह 'णियमा' निश्चयसे उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान नहीं करता है ।

किं कारणमिदि चे ? दंसणमोहणीयोदयजणिदविवरीयाहिणिवेसत्तादो । तदो चेव 'सइहइ असब्भाव', असद्भूतमेवार्थमपरमार्थरूपमयं श्रद्धाति मिथ्यात्वोदयादित्यर्थः । 'उवइट्टं वा अणुवइट्टं' उपदिष्टमनुपदिष्टं वा दुर्मागमेष दर्शनमोहोदयाच्छ्रद्धातीति यावत् । एतेन व्युद्ग्राहितेतरभेदेण मिथ्यादृशो द्वैविध्यं प्रतिपादितमिति द्रष्टव्यं । उक्तं च—

मिच्छत्तं वेदतो जीवो विवरीयदंसणो होइ ।  
ण य धम्मं रोचेदि हु मधुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ २ ॥  
तं मिच्छत्तं जमसइहणं तच्चाण होइ अत्थाणं ।  
संसइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं ति तं तिबिहं ॥ ३ ॥ इति ।

**शंका—**इसका क्या कारण है ?

**समाधान—**क्योंकि वह दर्शनमोहनीयके उदयसे विपरीत अभिनिवेशवाला होता है ।

और इसीलिये 'सइहइ असब्भाव' अपरमार्थस्वरूप असद्भूत अर्थका ही मिथ्यात्वके उदयवश यह श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । 'उवइट्टं वा अणुवइट्टं' अर्थात् उपदिष्ट या अनुपदिष्ट दुर्मागका ही दर्शनमोहके उदयसे यह श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस गाथासूत्र वचन द्वारा व्युद्ग्राहित और इतरके भेदसे मिथ्यादृष्टि के दो भेदोंका प्रतिपादन किया गया जानना चाहिए । कहा भी है—

मिथ्यात्वका अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धानवाला होता है । जैसे ज्वरसे पीड़ित मनुष्यको मधुर रस नहीं रुचता है वैसे ही उसे रत्नत्रय धर्म नहीं रुचता है ॥ २ ॥

जो जीवादि नौ तत्त्वार्थोंका अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व है । संशयिक, अभिग्रहीत और अनभिग्रहीत इस प्रकार वह तीन प्रकारका है ॥ ३ ॥

**प्रमाणार्थ—**इस गाथासूत्रमें मिथ्यादृष्टि जीवके स्वरूपका निरूपण किया गया है । पहले 'प्रवचन शब्दके अर्थका स्पष्टीकरण कर आये हैं । जो सर्वज्ञदेवका उपदेश है वही प्रवचन कहलानेका अधिकारी है, अन्य नहीं । यतः मिथ्यादृष्टि जीव परमार्थके ज्ञानसे रहित होता है, अतः उसके प्रवचनका श्रद्धान किसी भी अवस्थामें नहीं बन सकता । वह कुमार्गियोंके द्वारा उपदिष्ट हो या अनुपदिष्ट हो, मिथ्या मार्गका अवश्य ही श्रद्धान करता रहता है, इसलिये उसे मिथ्या मार्ग ही रुचता है, सम्यग्मार्ग नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके तीन भेद किये गये हैं—संशयिक मिथ्यादृष्टि, अभिग्रहीत मिथ्यादृष्टि और अनभिग्रहीत मिथ्यादृष्टि । जीवादि नौ पदार्थ हैं या नहीं हैं इत्यादि रूपसे जिसका श्रद्धान दोलायमान हो रहा है वह संशयिक मिथ्यादृष्टि जीव है । जो कुमार्गियोंके द्वारा उपदेशे गये पदार्थोंको यथार्थ मान कर उनकी उस रूपमें श्रद्धा करता है वह अभिग्रहीत मिथ्यादृष्टि जीव है और जो उपदेशके बिना ही विपरीत अर्थकी श्रद्धा करता आ रहा है वह अनभिग्रहीत मिथ्यादृष्टि जीव है ।

(५६) सम्मामिच्छादृष्टी सागारो वा तथा अणागारो ।

अथ वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो ॥१५-१०९॥

§ २१२. सम्यग्मिध्यादृष्टेर्लक्षणविधानं सुबोधमिति न तस्येह प्ररूपणं क्रियते, किंतु तदुपयोगविशेषप्ररूपणार्थमेतत्सूत्रमारब्धं । तद्यथा—जो सम्मामिच्छादृष्टी जीवो सागारोवजुत्तो वा होइ, अणागारोवजुत्तो वा, दोहिं मि उवजोगेहि तग्गुणपडिवचीए विरोहाभावादो । एदेण दंसणमोहोवसामणाए पयद्वमाणस्स पढमदाए जहा सागारोवजोगणियमो एवमेत्थ णत्थि त्ति णियमो, किंतु दोहिं मि उवजोगेहिं सम्मामिच्छत्तगुणं पडिवज्जइ त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो । अधवा पडिवण्णसम्मामिच्छत्तगुणो सगकालम्भंतरे सागारोवजुत्तो वा होइ, अणागारोवजुत्तो वा त्ति सुत्तत्थो गहेयव्वो, णाण-दंसणोवजोगाणं दोण्हं पि तग्गुणकालम्भंतरे कमेण परावत्तणे विरोहाणुवलंभादो । एदेण णाण-दंसणोवजोगकालादो सम्मामिच्छादृष्टिगुणकालस्स बहुत्तं सूचिदमिदि दद्वव्वं । 'अथ वंजणोग्गहम्मि दु' इच्चादि । अथेति पादपूरणार्थो निपातः वंजणो-ग्गहम्मि दु, विचारपूर्वकार्थग्रहणावस्थायामित्यर्थः । व्यंजनशब्दस्यार्थविचारवाचिनो

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव साकारोपयोगवाला भी होता है तथा अनाकारोपयोग-वाला भी होता है । किन्तु व्यञ्जनावग्रहमें अर्थात् विचारपूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें वह साकारोपयोगवाला ही होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिए ॥ १०९-१५ ॥

§ २१२. सम्यग्मिध्यादृष्टिके लक्षणका कथन सुबोध है, इसलिये उसका यहाँ पर कथन नहीं करते हैं, किन्तु उसके उपयोग विशेषोंका कथन करनेके लिये इस सूत्रका प्रारम्भ किया है । यथा—जो सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव है वह या तो साकार उपयोगवाला होता है या अनाकार उपयोगवाला होता है, क्योंकि दोनों ही उपयोगोंके साथ सम्यग्मिध्यात्व गुणकी प्राप्ति होनेमें विरोधका अभाव है । इस वचन द्वारा दर्शनमोहकी उपशमनामें प्रवृत्त हुए जीवके प्रथम अवस्थामें जिस प्रकार साकारोपयोगका नियम है उस प्रकार यहाँ पर नियम नहीं है । किन्तु दोनों ही उपयोगोंके साथ सम्यग्मिध्यात्वगुणको प्राप्त होता है इस प्रकार इस अर्थ विशेषका ज्ञान कराया गया है । अथवा जिसने सम्यग्मिध्यात्व गुणको प्राप्त किया है वह अपने कालके भीतर साकार उपयोगसे उपयुक्त होता है या अनाकार उपयोगसे उपयुक्त होता है इस प्रकार सूत्रार्थको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग इन दोनोंके ही उस गुणके कालके भीतर क्रमसे परिवर्तन होनेमें कोई विरोध नहीं उपलब्ध होता । इससे ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके कालसे सम्यग्मिध्यात्व गुणका काल बहुत सूचित किया गया है ऐसा जानना चाहिए । 'अथ वंजणोग्गहम्मि दु' । यहाँ 'अथ' यह पादपूर्तिके लिये निपात है । 'वंजणोग्गहम्मि दु' अर्थात् विचारपूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि प्रकृतमें व्यञ्जन शब्द अर्थविचारवाची ग्रहण किया

ग्रहणात् । 'सागारो होइ बोद्धव्वो' तदवस्थायां ज्ञानोपयोगपरिणत एव भवति न दर्शनोपयोगपरिणत इति यावत् । कुतोऽयं नियम इति चेत् ? न, अनाकारोपयोगेन सामान्यमात्रावग्राहिणा पूर्वापरपरामर्शशून्येनार्थविचारानुपपत्तितस्तत्र तथाविधनियमोपपत्तेः । एत्थ सुत्तपरिसमत्तीए पण्णारसण्हमंकविण्णासो किमट्ठं कदो ? दंसणमोहोवसामणाए पडिबद्धाओ एदाओ पण्णारस चैव गाहाओ, णादिरित्ताओ त्ति जाणावणट्ठं ।

\* एसो सुत्तप्फासो विहासिदो ।

§ २१३. एवमेसो सुत्तप्फासो गाहासुत्ताणं' सरूवणिहेसो विहासिदो परूविदो त्ति भणिदं होदि । संपहि एत्थुहेसे पुव्वमविहासिदो अण्णो अत्थो दंसणमोहोवसामणा-संबंधिओ एदेहि चैव गाहासुत्तेहि स्रचिदो अत्थि त्ति तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

गया है । 'सागारो होइ बोद्धव्वो' अर्थात् उस अवस्थामें ज्ञानापयोगसे परिणत ही होता है, दर्शनोपयोगसे परिणत नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह नियम किस कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सामान्यमात्राग्राही अनाकारोपयोग पूर्वापरपरामर्शसे शून्य है, अतः उस द्वारा अर्थविचारकी उत्पत्ति न हो सकनेके कारण अर्थविचारके समय उस प्रकारका नियम बन जाता है ।

शंका—यहाँ पर सूत्रकी परिसमाप्ति होने पर '१५' अंकका विन्यास किसलिये किया है ?

समाधान—क्योंकि दर्शनमोहकी उपशमनामें प्रतिबद्ध ये पन्द्रह ही गाथाएँ हैं, अधिक नहीं इसे बातका ज्ञान करानेके लिये यहाँ सूत्रकी परिसमाप्ति होने पर '१५' अंकका विन्यास किया है ।

विशेषार्थ—यह दर्शनमोहकी उपशमनासे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तिम गाथा है । इस द्वारा तीन अर्थोंको स्पष्ट किया गया है । १—सम्यग्मिध्यात्व गुणकी प्राप्ति साकारोपयोगके कालमें भी सम्भव है और अनाकारोपयोगके कालमें भी सम्भव है । २—सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानमें क्रमसे साकार और अनाकार दोनों उपयोगोंकी प्राप्ति सम्भव है । इससे प्रतीत होता है कि इन दोनों उपयोगोंके कालसे सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानका काल अधिक है । ३—यहाँ अर्थविचारके समय ज्ञानोपयोग ही होता है, दर्शनोपयोग नहीं । शेष कथन सुगम है ।

\* इस प्रकार गाथासूत्रोंके स्वरूपका कथन किया ।

§ २१३ इस प्रकार यह सूत्रस्पर्श है अर्थात् गाथासूत्रोंका स्वरूपनिर्देश 'विहासिदो' अर्थात् कहा गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब प्रकृतमें जिसका पहले व्याख्यान नहीं किया तथा जिसका इन गाथासूत्रोंके द्वारा सूचन होता है ऐसा जो दर्शनमोहका उपशमना-सम्बन्धी अन्य अर्थ है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

\* तदो उवसमसम्माइट्टि-वेदयसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टीहिं एय-जीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो अंतरं अप्पाबहुअं चेदि ।

§ २१४. तदो सुत्तफासादो अणंतरमिदाणि एयजीवेण सामित्तादीणि अप्पाबहुअ-पञ्जवसाणाणि अणियोगद्वाराणि जहागममेत्थ णेदव्वाणि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । ताणि पुण अणियोगद्वाराणि किंविसयाणि त्ति भणिदे सम्मत्तमग्गणावयवभूदउवसमसम्मा-इट्टिआदिविसयाणि त्ति जाणावणट्टुपुवसमसम्माइट्टि-वेदगसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टीहिं त्ति णिहिट्टुं । एदेसिं सम्माइट्टिभेदेहिं विसेसियाणि एदाणि अणियोगद्वाराणि णेदव्वाणि त्ति भणिदं होदि । एत्थ खइयसम्मादिट्टीणं पि णिहेसो किमट्टुं ण कीरदे ? ण, खइय-सम्माइट्टीणमट्टुहिं अणियोगद्वारेहिं पुरदो दंसणमोहक्खवणाए भणिस्समाणत्तादो । तम्हा उवसमसम्माइट्टि-वेदयसम्माइट्टि-सम्मामिच्छादिट्टीणमेदेहिं अणियोगद्वारेहिं देसामासय-भावेण सूचिदभागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणसहिदेहिं सवित्थरमेत्थ परूवणा कायव्वा, तप्परूवणाए विणा पयदत्थविसयणिण्णयाणुववत्तीदो । एदेसिं च परूवणा सुगमात्ति ण एत्थ तप्पवंचो कीरदे ।

उसके बाद उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका आलम्बन लेकर एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर और अल्पबहुत्व जानने चाहिए ।

§ २१४. 'तथा' अर्थात् सूत्रस्पर्शके अनन्तर इस समय एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व पर्यन्त अनुयोगद्वार आगमके अनुसार यहाँ कथन करने योग्य हैं यह सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । उन अनुयोगद्वारोंका विषय क्या है ऐसा पूछने पर सम्यक्त्व मार्गणा के अवयवरूप उपशमसम्यग्दृष्टि आदि विषय हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'उवसमसम्माइट्टि-वेदगसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टीहिं' यह वचन कहा है । सम्यग्दृष्टिके इन भेदोंसे युक्त ये अनुयोगद्वार कहने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका— यहाँ पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका भी निर्देश किसलिए नहीं करते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि आठ अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका व्याख्यान आगे दर्शनमोहकी क्षपणा अनुयोगद्वारमें करेंगे ।

इसलिए उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंकी देश-मर्षकरूपसे सूचित हुए भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन सहित इन अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे विस्तारके साथ यहाँ प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि यह प्ररूपणा किये बिना प्रकृत अर्थविषयक निर्णय नहीं बन सकता । इनकी प्ररूपणा सुगम है, इसलिये यहाँ पर उसका विस्तार नहीं करते हैं ।

### § २१५. संपहि पयदत्थोवसंहारकरणड्डमुत्तरं सुत्तमाह—

विशेषार्थ—यहाँ पर जिन अनुयोगद्वारोंका संकेत किया है उनके आलम्बनसे उपशम-सम्यग्दृष्टि आदि जीवोंका कुछ व्याख्यान करते हैं। इतना विशेष जानना कि उपशमसम्यक्त्वसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वका ही ग्रहण किया है। १ स्वामित्व—अपने-अपने भावसे युक्त जीव उपशमसम्यक्त्व आदिके स्वामी हैं। २ एक जीवकी अपेक्षा काल—उपशम सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छथासठ सागरोपमप्रमाण है। ३ अन्तर—( प्रथमोपशमकी अपेक्षा ) उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, वेदक सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण है। आगेके अनुयोगद्वार नाना जीवोंकी अपेक्षा हैं। ४ भंगविचय—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं है, क्योंकि ये सान्तर मार्गणाएँ हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सदा काल नियमसे हैं, क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है। ५ संख्या—उक्त तीनों मार्गणावाले जीव प्रत्येक पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। ६ क्षेत्र—( प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा ) उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानकी अपेक्षा वेदक सम्यग्दृष्टियोंका स्वस्थान, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा तथा सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका स्वस्थानकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके कालमें मरण नहीं होता, इसलिए इनका क्षेत्र मात्र स्वस्थानकी अपेक्षा कहा है। ७ स्पर्शन—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण है। वेदक सम्यग्दृष्टियों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण है। तथा उपपादपदकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण है। ८ काल—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंका काल सर्वदा है। ९ अन्तर—उपशमसम्यग्दृष्टियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन-रात है। सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल नहीं है। १० भागा-भाग—उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव सब संसारी जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। ११ अल्पबहुत्व—उक्त तीनों राशियोंमें सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। तथा उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ २१५. अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* एदेसु अणियोगहारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहउवसामणे त्ति समत्त-  
मणियोगहारं ।

§ २१६. गयत्थमेदं सुत्तं ।

तदो दंसणमोहउवसामणाए पण्णारसण्हं  
गाहासुत्ताणमत्थविहासा समत्ता होइ ।

इन अनुयोगद्वारोंका कथन करने पर दर्शनमोह उपशामना नामक अनुयोगद्वार  
समाप्त हुआ ।

§ २१६ यह सूत्र गतार्थ है ।

इसके बाद दर्शनमोहउपशामनासम्बन्धी पन्द्रह गाथासूत्रोंके अर्थका  
विशेष व्याख्यान समाप्त होता है ।

## परिसिद्धाणि

### १. उवजोग-अत्थाहियार-चुण्णिसुत्ताणि

<sup>१</sup>उवजोगे त्ति अणियोगहारस्स सुत्तं । <sup>२</sup>तं जहा—

- (१०) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि को व केणहियो ।  
को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥६३॥
- (११) <sup>३</sup>एक्कम्मिह भवग्गहणे एक्ककसायम्मिह कदि च उवजोगा ।  
एक्कम्मिह य उवजोगे एक्ककसाए कदि भवा च ॥६४॥
- (१२) <sup>४</sup>उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया होंति ।  
कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति ॥६५॥
- (१३) <sup>५</sup>एक्कम्मिह य अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण ।  
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥६६॥
- (१४) <sup>६</sup>केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु ।  
केवडिया च कसाए के के च विसिस्सदे केण ॥६७॥
- (१५) <sup>७</sup>जे जे जम्मिह कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते ।  
होहिंति च उवजुत्ता एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा ॥६८॥
- (१६) <sup>८</sup>उवजोग वग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहिदं चावि ।  
पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा ॥७-६८॥

<sup>१</sup>एदाओ सत्त गाहाओ । एदासिं विहासा कायव्वा । 'केवचिरं उवजोगो कम्मिह कसायम्मि' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्दापरिमाणं । तं जहा—<sup>१०</sup> कोधद्दा माणद्दा मायद्दा लोहद्दा जहणियाओ वि उक्कस्सियाओ वि अंतोमुहुत्तं । <sup>१</sup>गदीसु णिक्खमण-पवेसेण एगसमयो होज ।

'को व केणहियो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्दाणमप्पावहुअं । <sup>२</sup>तं जहा—  
ओषेण माणद्दा जहणिया थोवा । कोधद्दा जहणिया विसेसाहिया । मायद्दा

(१) पृ. १ । (२) पृ. २ । (३) पृ. ३ । (४) पृ. ६ । (५) पृ. ७ । (६) पृ. ९ । (७) पृ. १० ।  
(८) पृ. ११ । (९) पृ. १४ । (१०) पृ. १५ । (११) पृ. १६ । (१२) पृ. १७ ।



जहणिया विसेसाहिया । लोभद्वा जहणिया विसेसाहिया । माणद्वा उक्कस्सिया संखेज्जगुणा । कोधद्वा उक्कस्सिया विसेसाहिया । मायद्वा उक्कस्सिया विसेसाहिया । लोभद्वा उक्कस्सिया विसेसाहिया ।

पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्टाणं विसेसो अंतोमुहुत्तं । तेणेव उवदेसेण चउगह-समासेण अप्पाबहुअं भणिहिदि । चट्टुगदिसमासेण जहण्णुक्कस्सपदेसेण गिरयगदीए जहणिया<sup>१</sup> लोभद्वा थोवा । देवगदीए जहणिया कोधद्वा विसेसाहिया । देवगदीए जहणिया माणद्वा संखेज्जगुणा । गिरयगदीए जहणिया मायद्वा विसेसाहिया । गिरयगदीए जहणिया माणद्वा संखेज्जगुणा । देवगदीए जहणिया मायद्वा विसेसाहिया । मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया माणद्वा संखेज्जगुणा । मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया कोधद्वा विसेसाहिया । मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया मायद्वा विसेसाहिया । मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहणिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

गिरयगदीए जहणिया कोधद्वा संखेज्जगुणा । देवगदीए जहणिया लोभद्वा विसेसाहिया । गिरयगदीए उक्कस्सिया लोभद्वा संखेज्जगुणा । देवगदीए उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । देवगदीए उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । गिरयगदीए उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । गिरयगदीए उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । देवगदीए उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया ।

मणुस-तिरिक्खजोणियाणमुक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । तेसिं चैव उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । तेसिं चैव उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । तेसिं चैव उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया । गिरयगदीए उक्कस्सिया कोधद्वा संखेज्जगुणा । देवगदीए उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

तेसिं चैव उवदेसेण चोइसजीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि । चोइसण्हं जीवसमासाणं देव-णेइयवज्जाणं जहणिया माणद्वा तुल्ला थोवा । जहणिया कोधद्वा विसेसाहिया । जहणिया मायद्वा विसेसाहिया । जहणिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

वादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

(१) पृ. १८ । (२) पृ. १९ । (३) पृ. २० । (४) पृ. २१ । (५) पृ. २२ । (६) पृ. २३ ।  
(७) पृ. २४ । (८) पृ. २५ ।



कोधद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

असण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

सण्णिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

सण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्वा संखेज्जगुणा । तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्वा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्वा विसेसाहिया ।

‘को वा कम्हि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो’ त्ति एत्थ अभिक्खमुवजोग-परूवणा कायच्चा । <sup>१</sup>ओघेण ताव लोभो माया कोधो माणो त्ति असंखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु सइं लोभागरिसां अदिरेगा भवदि । <sup>२</sup>असंखेज्जेसु लोभागरिसेसु अदिरेगेसु गदेसु कोधागरिसेहिं मायागरिसा अदिरेगा होइ । <sup>३</sup>असंखेज्जेहिं मायागरिसेहिं अदिरेगेहिं गदेहिं माणागरिसेहिं कोधागरिसा अदिरेगा होदि । <sup>४</sup>एवमोघेण । एवं तिरिक्खजोगिगदीए मणुसगदीए च ।

णिरयगदीए कोहो माणो कोहो माणो त्ति वारसहस्साणि परियत्तिदूण सइं माया परिवत्तदि । <sup>५</sup>मायापरिवत्तेहिं संखेज्जेहिं गदेहिं सइं लोहो परिवत्तदि । <sup>६</sup>देवगदीए लोभो माया लोभो माया त्ति वारसहस्साणि गंतूण तदो सइं माणो परिवत्तदि । <sup>७</sup>माणस्स संखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु तदो सइं कोधो परिवत्तदि ।

एदीए परूवणाए एकम्हि भवग्गहणे णिरयगदीए संखेज्जवासिगे वा असंखेज्ज-वासिगे वा भवे लोभागरिसा थोवा । <sup>८</sup>मायागरिसा संखेज्जगुणा । माणागरिसा संखेज्ज-गुणा । कोहागरिसा विसेसाहिया । <sup>९</sup>देवगदीए कोहागरिसा थोवा । माणागरिसा संखेज्जगुणा । मायागरिसा संखेज्जगुणा । <sup>१०</sup>लोभागरिसा विसेसाहिया । तिरिक्ख-मणुसगदीए असंखेज्जवस्सिगे भवग्गहणे माणागरिसा थोवा । कोहागरिसा विसेसाहिया । <sup>११</sup>मायागरिसा विसेसाहिया । लोभागरिसा विसेसाहिया ।

<sup>१२</sup>एत्तो विदियगाहाए विभासा । तं जहा—एकम्भि भवग्गहणे एककसायम्भि

(१) पृ. २८ । (२) पृ. २९ । (३) पृ. ३१ । (४) पृ. ३२ । (५) पृ. ३४ । (६) पृ. ३५ ।  
(७) पृ. ३७ । (८) पृ. ३८ । (९) पृ. ३९ । (१०) पृ. ४० । (११) पृ. ४१ । (१२) पृ. ४२ ।  
(१३) पृ. ४३ ।

कदि च उवजोगा त्ति । एकम्मि णेरइयभवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा । <sup>१</sup>माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा । एव सेसाणं पि । <sup>२</sup>एवं सेसासु वि गदीसु ।

णिरयगदीए जम्मि कोहोवजोगा संखेज्जा तम्मि माणोवजोगा णियमा संखेज्जा । एवं माया-लोभोवजोगा । <sup>३</sup>जम्मि माणोवजोगा संखेज्जा तम्मि कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा । मायोवजोगा लोहोवजोगा णियमा संखेज्जा । जम्मि मायोवजोगा संखेज्जा तम्मि कोहोवजोगा माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा । <sup>४</sup>लोभोवजोगा णियमा संखेज्जा । जत्थ लोभोवजोगा संखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा मायोवजोगा भजियच्चा । जत्थ णिरयभवग्गहणे कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसा <sup>५</sup>सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा । जत्थ माणोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा णियमा असंखेज्जा । सेसा भजियच्चा । जत्थ मायोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा णियमा असंखेज्जा । <sup>६</sup>लोभोवजोगा भजियच्चा । जत्थ लोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोह-माण-मायोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।

जहा णेरइयाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा । जहा णेरइयाणं माणोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं मायोवजोगाणं वियप्पा । <sup>७</sup>जहा णेरइयाणं मायोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं माणोवजोगाणं वियप्पा । जहा णेरइयाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा ।

जेसु णेरइयभवेसु असंखेज्जा कोहोवजोगा माण-माया-लोभोवजोगा वां जेसु वा संखेज्जा एदेसिमट्टण्हं पदाणमप्पावहुअं । तत्थ उवसंदरिसणाए करणं । एकम्मि वस्से जत्तियाओ कोहोवजोगद्वाओ तत्तिएण जहण्णासंखेज्जयस्स भागो जं भागलद्धमेत्तियाणि वस्साणि जो भवो तम्मि <sup>८</sup>असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्वाओ ।

<sup>९</sup>एवं माण-माया-लोभोवजोगाणं । <sup>१०</sup>एदेण कारणेण जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा । <sup>११</sup>जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । <sup>१२</sup>जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । <sup>१३</sup>जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया ।

(१) पृ. ४४ । (२) पृ. ४५ । (३) पृ. ४६ । (४) पृ. ४७ । (५) पृ. ४८ । (६) पृ. ४९ । (७) पृ. ५० । (८) पृ. ५१ । (९) पृ. ५२ । (१०) पृ. ५३ । (११) पृ. ५५ । (१२) पृ. ५६ । (१३) पृ. ५८ । (१४) पृ. ५९ ।

जहा णेरुएसु तहा देवेसु । णवरि कोहादो आढवेयव्वो । तं जहा—जे असंखेज्ज-कोहोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा । जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्ज-लोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते विसेसाहिया । जे संखेज्ज-माणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । विदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

‘उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति’ त्ति एसा सन्वा वि गाहा पुच्छासुत्तं । <sup>१</sup>तस्स विहासा । तं जहा—उवजोगवग्गणाओ दुविहाओ—कालोवजोग-वग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ य । <sup>२</sup>कालोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोवजोगद्व-ट्टाणाणि । भावोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोदयट्टाणाणि । <sup>३</sup>एदासिं दुविहाणं पि वग्ग-णाणं परूवणा एमाणमप्पाबहुअं च वत्तव्वं । <sup>४</sup>तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता ।

चउत्थीए गाहाए विहासा । ‘एकम्हि दु अणुभागे एक्ककसायम्भि एक्ककालेण । उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ।’ त्ति एदं सव्वं पुच्छासुत्तं । एत्थ विहासाए दोण्णि उवएसा । एक्केण उवएसेण जो कसायो सो अणुभागो । <sup>५</sup>कोधो कोधाणुभागो । एवं माण-माया-लोभाणं । तदो का च गदी एगसमएण एगकसायोव-जुत्ता वा दुकसायोवजुत्ता वा तिकसायोवजुत्ता वा चदुकसायोवजुत्ता वा त्ति एदं पुच्छा-सुत्तं । <sup>६</sup>तदो णिदरिसणं । तं जहा—णिरय-देवगदीणमेदे वियप्पा अत्थि । सेसाओ गदीओ णियमा चदुकसायोवजुत्ताओ ।

<sup>७</sup>णिरयगईए जइ एक्को कसायो, णियमा कोहो । जदि दुकसायो, कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो । <sup>८</sup>जदि तिकायो, कोहेण सह अण्णदरो तिसंजोगो । जदि चदु-कसायो, सव्वे चैव कसाया । <sup>९</sup>जहा णिरयगदीए कोहेण तहा देवगदीए लोभेण कायव्वा । एक्केण उवदेसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि ।

पवाइज्जंतेण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा । <sup>१०</sup>‘एक्कम्मि दु अणुभागे’ त्ति जं कसाय-उदयट्टाणं सो अणुभागो णाम । एगकालेणे त्ति कसायोवजोगद्वट्टाणे त्ति भणिदं होदि । <sup>११</sup>एसा सण्णा । तदो पुच्छा । का च गदी एक्कम्हि कसाय-उदयट्टाणे एक्कम्हि वा कसायुवजोगद्वट्टाणे भवे । <sup>१२</sup>अथवा अणेगेसु कसाय-उदयट्टाणेसु अणेगेसु

(१) पृ. ६० । (२) पृ. ६१ । (३) पृ. ६२ । (४) पृ. ६३ । (५) पृ. ६५ । (६) पृ. ६६ ।  
(७) पृ. ६७ । (८) पृ. ६८ । (९) पृ. ६९ । (१०) पृ. ७० । (११) पृ. ७१ । (१२) पृ. ७२ ।  
(१३) पृ. ७३ । (१४) पृ. ७४ ।

वा कसाय-उवजोगद्वट्टाणेसु । एसा पुच्छ । अयं णिहेसो । तसा एककेक्कम्मि कसायु-  
दयट्टाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो । 'कसाय-उवजोगद्वट्टाणेसु पुण उक्कस्सेण  
असंखेज्जाओ सेटीओ । 'एवं भणिदं होइ सव्वाओ गदीओ णियमा अणेगेसु कसायु-  
दयट्टाणेसु अणेगेसु च कसायउवजोगद्वट्टाणेसु त्ति ।

तदो एवं परूवणं कादूण णवहिं पदेहिं अप्पावहुअं । <sup>३</sup>तं जहा—उक्कस्सए  
कसायुदयट्टाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्वाए जीवा थोवा । <sup>४</sup>जहणियाए माणोवजोग-  
द्वाए जीवा असंखेज्जगुणा । <sup>५</sup>अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्वासु जीवा असंखेज्ज-  
गुणा । <sup>६</sup>जहणए कसायुदयट्टाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्वाए जीवा असंखेज्जगुणा ।  
जहणियाए माणोवजोगद्वाए जीवा असंखेज्जगुणा । <sup>७</sup>अणुक्कस्समजहण्णासु माणोव-  
जोगद्वासु जीवा असंखेज्जगुणा । <sup>८</sup>अणुक्कस्समजहण्णेसु अणुभागट्टाणेसु उक्कस्सि-  
याए माणोवजोगद्वाए जीवा असंखेज्जगुणा । जहणियाए माणोवजोगद्वाए जीवा  
असंखेज्जगुण । <sup>९</sup>अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्वासु जीवा असंखेज्जगुणा । एवं  
सेसाणं कसायाणं । <sup>१०</sup>एत्तो छत्तीसपदेहि अप्पावहुअं कायव्वं । एवं चउत्थीए गाहाए  
विहासा समत्ता ।

'केवडिगा उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसायेसु' चेति एदिस्से गाहाए  
अत्थविहासा । एसा गाहा सूचणासुत्तं । एदीए सूचिदाणि अट्ट अणिओगहाराणि ।  
<sup>१०</sup>तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तपमाणं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पा-  
वहुअं च । 'केवडिगा उवजुत्ता त्ति दव्वपमाणानुगमो । 'सरिसीसु च वग्गणा-कसा-  
एसु' त्ति कालानुगमो । <sup>११</sup>'केवडिगा च कसाए' त्ति भागाभागो । 'के के च विसिस्सदे  
केणे' त्ति अप्पावहुअं । एवमेदाणि चत्तारि अणिओगहाराणि सुत्तणिवद्दाणि । सेसाणि  
सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

<sup>१२</sup>कसायोवजुत्ते अट्टहिं अणिओगहारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-  
दंसण-लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण ।  
<sup>१३</sup>महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा ।

<sup>१४</sup>'जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते' त्ति एदिस्से छट्ठीए गाहाए  
कालजोणी कायव्वा । <sup>१५</sup>तं जहा—जे अस्सिं समए माणोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माण-  
कालो णोमाणकालो मिस्सयकालो इदि एवं तिविहो कालो । 'कोहे च तिविहो कालो ।

(१) पृ. ७५ । (२) पृ. ७६ । (३) पृ. ७७ । (४) पृ. ७८ । (५) पृ. ७९ । (६) पृ. ८० । (७) पृ.  
८१ । (८) पृ. ८२ । (९) पृ. ८५ । (१०) पृ. ८६ । (११) पृ. ८७ । (१२) पृ. ८८ । (१३) पृ. ९० ।  
(१४) पृ. ९१ । (१५) पृ. ९३ । (१६) पृ. ९४ ।

<sup>१</sup>मायाए तिविहो कालो । लोमे तिविहो कालो । एवमेसो कालो माणोवजुत्ताणं वारसविहो ।

<sup>२</sup>अस्सिं समए कोहोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णत्थि णोमाणकालो मिस्सयकालो य । <sup>३</sup>अवसेसाणं णवविहो कालो । <sup>४</sup>एवं कोहोवजुत्ताणमेक्कारसविहो कालो विदिव्वंतो ।

जे अस्सिं समए मायोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो कोहकालो दुविहो मायाकालो तिविहो लोमकालो तिविहो । <sup>५</sup>एवं मायोवजुत्ताणं दसविहो कालो ।

जे अस्सिं समये लोभोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो कोहकालो दुविहो मायाकालो दुविहो लोभकालो तिविहो । एवमेसो कालो लोहोवजुत्ताणं णवविहो । एवमेदाणि सच्चाणि पदाणि वादालीसं भवन्ति ।

<sup>६</sup>एत्तो वारस सत्थाणपदाणि गहियाणि । कथं सत्थाणपदाणि भवन्ति ? माणोवजुत्ताणं माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो । कोहोवजुत्ताणं कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो । <sup>७</sup>एवं मायोवजुत्त-लोहोवजुत्ताणं पि ।

एदेसिं वारसण्हं पदाणमप्पावहुअं । <sup>८</sup>त जहा—लोभोवजुत्ताणं लोभकालो थोवो । <sup>९</sup>मायोवजुत्ताणं मायकालो अणंतगुणो । कोहोवजुत्ताणं कोहकालो अणंतगुणो । माणोवजुत्ताणं माणकालो अणंतगुणो । लोभोवजुत्ताणं णोलोभकालो अणंतगुणो । <sup>१०</sup>मायोवजुत्ताणं णोमायकालो अणंतगुणो । कोहोवजुत्ताणं णोकोहकालो अणंतगुणो । <sup>११</sup>माणोवजुत्ताणं णोमाणकालो अणंतगुणो । माणोवजुत्ताणं मिस्सयकालो अणंतगुणो । कोहोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहो । <sup>१२</sup>मायोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहो । <sup>१३</sup>लोभोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहो ।

एत्तो वादालीसपदप्पावहुअं कायच्चं । <sup>१४</sup>तदो छट्ठी गाहा समत्ता भवदि ।

‘उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहियं वा वि’ त्ति एदम्मि अट्ठे एक्को अत्थो विदिये अट्ठे एक्को अत्थो एवं दो अत्था ।

<sup>१५</sup>पुरिमद्धस्स च विहासा । एत्थ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ—कसायउदय-ट्ठणाणि च उवजोगद्धट्ठणाणि च । <sup>१६</sup>एदाणि दुविहाणि वि ट्ठणाणि उवजोगवग्गणाओ त्ति वुच्चन्ति ।

(१) पृ. ९५ । (२) पृ. ९६ । (३) पृ. ९७ । (४) पृ. ९८ । (५) पृ. ९९ । (६) पृ. १०० । (७) पृ. १०१ । (८) पृ. १०२ । (९) पृ. १०३ । (१०) पृ. १०४ । (११) पृ. १०५ । (१२) पृ. १०६ । (१३) पृ. १०७ । (१४) पृ. १०८ । (१५) पृ. १०९ । (१६) पृ. ११० ।

उवजोगद्वद्वाणेहि ताव केत्तिएहिं विरहिदं केहिं कम्हि अविरहिदं ? एत्थ मग्गणा ।  
<sup>१</sup>णिरयमदीए एगस्स जीवस्स कोहोवजोगद्वद्वाणेषु णाणाजीवाणं जवमज्झं । <sup>२</sup>तं  
जहा—ठाणाणं संखेज्जदिभागो । <sup>३</sup>एगगुणवद्धि—हाणिट्ठाणंतरभावलियवग्गमूलस्स  
असंखेज्जदिभागो ।

हेट्ठा जवमज्झस्स सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि सदा । <sup>४</sup>सव्व-  
अद्वद्वाणाणं पुण असंखेज्जभागा आवुण्णा । उवरिमजवमज्झस्स जहण्णेण गुणहाणि-  
ट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो । उक्कस्सेण सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि  
आवुण्णाणि । <sup>५</sup>जहण्णेण अद्वद्वाणाणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो । उक्कस्सेण अद्व-  
द्वाणाणमसंखेज्जा भागा आवुण्णा । <sup>६</sup>एसो उवएसो पवाइज्जह । अण्णो उवदेसो  
सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि अविरहियाणि जीवेहिं उवजोगद्वद्वाणाणमसंखेज्जा भागा  
अविरहिदा । <sup>७</sup>एदेहिं दोहिं उवदेसेहिं कसायुदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि तसाणं । <sup>८</sup>तं  
जहा—कसायुदयट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा । तेसु जत्तिया तसा तत्तियमेत्ताणि  
आवुण्णाणि ।

<sup>९</sup>कसायुदयट्ठाणेषु जवमज्झेण जीवा रांति । <sup>१०</sup>जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा  
थोवा । विदिए वि तत्तिया चेव । <sup>११</sup>एवमसंखेज्जेसु लोगट्ठाणेषु तत्तिया चेव । तदो  
पुणो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ । तदो पुण असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणे  
तत्तिया चेव । <sup>१२</sup>तदो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ । एवं गंतूण उक्कस्सेण  
जीवा एक्कम्हि ट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

<sup>१३</sup>जत्तिया एक्कम्मि ट्ठाणे उक्कस्सेण जीवा तत्तिया चेव अण्णम्हि ट्ठाणे । एव-  
मसंखेज्जलोगट्ठाणाणि । एदेसु असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणेषु जवमज्झं । तदो अण्णं  
ट्ठाणमेक्केण जीवेण हीणं । एवमसंखेज्जलोगट्ठाणाणि तुज्जलीवाणि । एवं सेसेसु वि  
ट्ठाणेषु <sup>१४</sup>जाती णेदव्वा ।

<sup>१५</sup>जहण्णए कसायुदयट्ठाणे चत्तारि जीवा, उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा ।  
<sup>१६</sup>जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो । <sup>१७</sup>जवमज्झजीवाणं जत्तियाणि अद्वच्छेद-  
णाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि । तेसिमसंखेज्ज-  
भागमेत्ताणि उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि । <sup>१८</sup>एवं पटुप्पण्णं तसाणं जव-  
मज्झं ।

(१) पृ. १११ । (२) पृ. ११२ । (३) पृ. ११३ । (४) पृ. ११४ । (५) पृ. ११५ । (६) पृ. ११६ ।  
(७) पृ. ११९ । (८) पृ. १२० । (९) पृ. १२१ । (१०) पृ. १२२ । (११) पृ. १२३ । (१२)  
पृ. १२४ । (१३) पृ. १२५ । (१४) पृ. १२६ । (१५) पृ. १२७ । (१६) पृ. १३३ । (१७) पृ. १३८ ।



१'एसा सुत्तविहासा । सत्तमीए गाहाए पढमस्स अद्दस्स अत्थविहासा समत्ता भवदि ।

एत्तो विदियद्वस्स अत्थविहासा कायव्वा । २'तं जहा—'पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा' ति एत्थ तिण्णिण सेठीओ । ३'तं जहा—विदियादिया पढमा-दिया चरिमादिया ३ ।

४'विदियादियाए साहणं । माणोवजुत्ताणं पवेसणयं थोवं । ५'कोहोवजुत्ताणं पवेसणयं विसेसाहियं । एवं माया-लोभोवजुत्ताणं । ६'एसो विसेसो एककेण उवदेसेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो । ७'पवाहजंतेण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

एवमुवजोगो ति समरामणिओगहारं ।

#### ८. चउट्टाणअत्थाहियारो

८'चउट्टाणे ति अणियोगहारे पुब्बं गमणिज्जं सुत्तं । ९'तं जहा—

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे ।

माया चउव्विहा वुत्ता लोहो वि य चउव्विहो ॥७०॥

(१८) १०'णग-पुढवि-वालुगोदयरार्इसरिसो चउव्विहो कोहो ।

सेलघण-अट्टि-दारुअ-खदासमाणो हवदि माणो ॥७१॥

(१९) ११'वंसीजण्हुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती ।

अवलेहणोसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥७२॥

(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो ।

हालिद्ववत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥७३॥

(२१) १२'एदेसिं ट्ठाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि ।

कं केण होइ अहियं ट्टिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥७४॥

(२२) १३'माणे लदासमाणे उक्कस्सा वग्गणा जहण्णादो ।

हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥७५॥

( १ ) पृ. १४० । ( २ ) पृ. १४१ । ( ३ ) १४२ । ( ४ ) १४३ । ( ५ ) पृ. १४४ । ( ६ ) पृ. १४५ ।  
 ( ७ ) पृ. १४६ । ( ८ ) पृ. १५० । ( ९ ) पृ. १५१ । ( १० ) पृ. १५२ । ( ११ ) पृ. १५५ ।  
 ( १२ ) पृ. १५७ । ( १३ ) पृ. १५८ ।

- (२३) 'णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो ।  
सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७६॥
- (२४) 'णियमा लदासमादो अणुभागगेण वग्गणगेण ।  
सेसा कमेण अहिया गुणेण णियमा अणंतेण ॥७७॥
- (२५) 'संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे ।  
हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥
- (२६) 'सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे ।  
हेट्टा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥७९॥
- (२७) 'एसो कम्मो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि ।  
सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेषु बोद्धव्वं ॥८०॥
- (२८) 'एदेसिं ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से ।  
बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥
- (२९) 'सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते ।  
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥
- (३०) विरदीय अविरेदीए विरेदाविरेदे तहा अणागारे ।  
सागारे जोगग्ग्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥
- (३१) 'कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होइ ।  
कं ठाणमवेदंतो अबंधगा कस्स ट्ठाणस्स ॥८४॥
- (३२) 'असण्णी खल्लु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च ।  
अण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं (१६) ॥८५॥

°एदं सुत्तं । एत्थ अत्थविहासा । चउट्ठाणे त्ति एककगणिकखेवो च ट्ठाण-  
णिकखेवो च । °एककगं पुव्वणिकित्तं पुव्वपरूविदं च ।

ट्ठाणं णिकित्तविदव्वं । °तं जहा—णामट्ठाणं द्वुवणट्ठाणं दव्वट्ठाणं खेत्तट्ठाणं  
अद्धट्ठाणं पल्लिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं संजमट्ठाणं भावट्ठाणं च । °णेगमो सव्व्याणि  
ट्ठाणाणि इच्छइ । संगह-ववहारा पल्लिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणंति । उजुसुदो

( १ ) पृ. १६० । ( २ ) १६१ । ( ३ ) पृ. १६३ । ( ४ ) पृ. १६४ । ( ५ ) पृ. १६५ ।  
( ६ ) पृ. १६६ । ( ७ ) १६७ । ( ८ ) १६८ । ( ९ ) पृ. १६९ । ( १० ) पृ. १७२ । ( ११ ) पृ. १७३ ।  
( १२ ) पृ. १७४ । ( १३ ) पृ. १७५ ।

एदाणि च ठवणं च अद्धट्टाणं च अवणेइ । <sup>१</sup>सदणयो णामट्टाणं संजमट्टाणं खेतट्टाणं भावट्टाणं च इच्छदि । <sup>२</sup>एत्थ भावट्टाणे पयदं ।

<sup>३</sup>एत्तो सुत्तविहासा । तं जहा—आदीदो चत्तारि सुत्तगाहाओ एदेसिं सोलसण्हं ट्टाणाणं णिदरिसणउवणये । <sup>४</sup>कोहट्टाणाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणउवणओ कओ । सेसाणं कसायाणं बारसण्हं ट्टाणाणं भावदो णिदरिसणउवणओ कओ ।

<sup>५</sup>जो अंतोमुहुत्तिगं णिधाय कोहं वेदयदि सो उदयराइसमाणं कोहं वेदयदि ! जो अंतोमुहुत्तादीदमंतो अद्धमासस्स कोधं वेदयदि सो वालुवराइसमाणं कोहं वेदयदि । जो अद्धमासादीदमंतो छण्हं मासाणं कोधं वेदयदि सो पुढविराइसमाणं कोहं वेदयदि । <sup>६</sup>जो सव्वेसिं भवेहिं उवसमं ण गच्छइ सो पव्वदराइसमाणं कोहं वेदयदि । <sup>७</sup>एदाणु-माणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं । एवं चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिदाओ भवंति ।

एवं चउट्टाणे त्ति समत्तमणिओगहारं ।

## ९ वंजण-आत्थाहियारो

<sup>१</sup>वंजणे त्ति अणिओगहारस्स सुत्तं । <sup>२</sup>तं जहा—

(३३) कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलह वड्ढी य ।

झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्टिया होंति ॥८६॥

(३४) <sup>३</sup>माण मद् दप्प थंभो उक्कास पगास तध समुक्कासो ।

अत्तुकरिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो ॥८७॥

(३५) <sup>४</sup>माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा ।

गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहण च्छण्णो ॥८८॥

<sup>५</sup>कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य ।

णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥८९॥

सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा य ।

लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्टिया भणिदा ॥९०॥

एवं वंजणे त्ति समत्तमणिओगहारं ।

(१) पृ. १७६ । (२) पृ. १७७ । (३) पृ. १७८ । (४) पृ. १७९ । (५) पृ. १८० ।  
(६) पृ. १८१ । (७) पृ. १८२ । (८) पृ. १८३ । (९) पृ. १८५ । (१०) पृ. १८६ । (११) पृ. १८७ ।  
(१२) पृ. १८८ । (१३) पृ. १८९ ।

## १. सम्मत्त-अत्थाहियारो

कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगहारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्त-गाहाओ परूवेयव्वाओ । तं जहा—

(३८) दंसणमोह-उवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे ।  
जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥८१॥

(३८) काणि व पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबन्धदि ।  
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥८२॥

(४०) के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा ।  
अंतरं वा कहिं किञ्चा के के उवसामगो कहिं ॥८३॥

(४१) किं द्विदियाणि कम्माणि अणुभागेषु केषु वा ।  
ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥८४॥

एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदव्वाओ । तं जहा—‘दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे’ त्ति विहासा । तं जहा—परिणामो विसुद्धो । पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुद्धमाणो आगदो ।

जोगे त्ति विहासा । अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवच्चिजोगो वा ओरालिय-कायजोगो वा वेउव्वियकायजोगो वा । कसाये त्ति विहासा । अण्णदरो कसायो । किं सो बड्डमाणो हायमाणो त्ति ? णियमा हायमाणकसायो । उवजोगे त्ति विहासा । णियमा सागारुवजोगो । लेस्सा त्ति विहासा । तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं णियमा बड्डमाणलेस्सा । वेदो य को भवे’ त्ति विहासा । अण्णदरो वेदो ।

काणि वा पुव्वबद्धाणि’ त्ति विहासा । एत्थ पयडिसंतकम्मं द्विदिसंतकम्म-मणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं ।

के वा अंसे णिबन्धदि’ त्ति विहासा । एत्थ पयडिबन्धो द्विदिबन्धो अणुभागबन्धो पदेसबन्धो च मग्गियव्वो ।

(१) पृ. १९४ । (२) पृ. १९५ । (३) पृ. १९६ । (४) पृ. १९७ । (५) पृ. १९८ ।  
(६) पृ. १९९ । (७) पृ. २०० । (८) पृ. २०१ । (९) पृ. २०२ । (१०) पृ. २०३ । (११) पृ. २०४ ।  
(१२) पृ. २०५ । (१३) पृ. २०६ । (१४) पृ. २०७ । (१५) पृ. २१० । (१६) पृ. २११ ।

१'कदि आवलियं पविसंति' त्ति विहासा । मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति । उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति । णवरि जइ परभवियाउअमत्थि तं ण पविसदि ।

३'कदिण्हं वा पवेसगो' त्ति विहासा । मूलपयडीणं सव्वासि पवेसगो । उत्तरपयडीणं पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्त-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघादुस्सास-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो । ५'सादासादाणमण्णदरस्स यवेसगो । चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो । भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो । चउण्हमाउआणमण्णदरस्स पवेसगो । चदुण्हं गइणामाणं दोण्हं सरीराणं छण्हं संठाणाणं दोण्हमंगोवंगाणमण्णदरस्स पवेसगो । ६'छण्हं संघडणाणं अण्णदरस्स सिया । उज्जोवस्स सिया । दोविहायगइ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्तिअण्णदरस्स पवेसगो । ७'उच्चाणीचगोदाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

८'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा । असादावेदणीय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोग-चदुआउ-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-णिरयगइ-पाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-अप्पसत्थविहायगइ-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्तिणामाणि एदाणि बंधेण वोच्छिण्णाणि ।

९'पंचदंसणावरणीय-चदुजादिणामाणि चदुआणुपुव्विणामाणि आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणि एदाणि उदएण वोच्छिण्णाणि ।

१०'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' त्ति विहासा । ण ताव अंतरं उवसामगो वा, पुरदो होहिदि त्ति ।

११'किं द्विदियाणि कम्माणि अणुभागेषु केषु वा । ओवट्ठेयूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि' त्ति विहासा । द्विदिघादो संखेज्जा भागे घादेदूण संखेज्जदिभागं पडिवज्जइ । अणुभागघादो अणंते भागे घादेदूण अणंतभागं पडिवज्जइ । १२'तदो इमस्स चरिमसमय-अधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि द्विदिघादो वा अणुभागघादो वा । से काले दो वि घादा पवत्तीहिंति ।

(१) पृ. २१३ । (२) पृ. २१४ । (३) पृ. २१५ । (४) पृ. २१६ । (५) पृ. २१७ । (६) पृ. २१८ । (७) पृ. २२१ । (८) पृ. २२६ । (९) पृ. २२७ । (१०) पृ. २३० । (११) पृ. २३१ । (१२) पृ. २३२ ।

<sup>१</sup>एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदाओ ।  
दंसणमोहउवसामगस्स त्तिविहं करणं । तं जहा—अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्ठि-  
करणं च । <sup>२</sup>चउत्थी उवसामणद्धा ।

एदेसिं करणाणं लक्खणं । <sup>३</sup>अधापवत्तकरणपढमसमए जहण्णिया विसोही  
थोवा । विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । एवमंतोमुहुत्तं । <sup>४</sup>तदो  
पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा  
तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । <sup>५</sup>विदियसमए उक्कस्सिया  
विसोहीअणंतगुणा । <sup>६</sup>एवं णिव्वग्गणखंडयमंतोमुहुत्तद्वमेत्तं अधापवत्तकरणचरिमसमयो  
त्ति । <sup>७</sup>तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा तत्तो उवरिम-  
समए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । <sup>८</sup>एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव  
अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति । <sup>९</sup>एदमधापवत्तकरणस्स लक्खणं ।

अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा । <sup>१०</sup>तत्थेव उक्कस्सिया  
विसोही अणंतगुणा । विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । <sup>११</sup>तत्थेव उक्कस्सिया  
विसोही अणंतगुणा । समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि । एवं णिव्वग्गणा  
च । एदं अपुव्वकरणस्स लक्खणं ।

<sup>१२</sup>अणियट्ठिकरणे समए समए एक्केपरिणामट्ठाणाणि अणंतगुणाणि च । एद-  
मणियट्ठिकरणस्स लक्खणं ।

<sup>१३</sup>अणादियमिच्छादिट्ठिस्स उवसामगस्स परूवणं बतइस्सामो ! तं जहा—<sup>१४</sup>अधा-  
पवत्तकरणे ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा णत्थि,  
केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि । अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्ठाणिये  
अणंतगुणहीणे च, पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते चउट्ठाणिए अणंतगुणे च समये समये ।  
<sup>१५</sup>ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणं बंधदि ।

<sup>१६</sup>अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो  
उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं । <sup>१७</sup>ट्ठिदिबंधो अपुव्वो । अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाण-  
मणंता भागा । <sup>१८</sup>तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफहयाणि थोवाणि । अइच्छावणाफह-  
याणि अणंतगुणाणि । णिकखेवफहयाणि अणंतगुणाणि । <sup>१९</sup>आगाइदफहयाणि अणंत-

(१) पृ. २३३ । (२) पृ. २३४ । (३) पृ. २४५ । (४) पृ. २४६ । (५) पृ. २४७ ।  
(६) पृ. २४८ । (७) पृ. २४९ । (८) पृ. २५० । (९) पृ. २५२ । (१०) पृ. २५३ । (११) पृ. २५४ ।  
(१२) पृ. २५६ । (१३) पृ. २५७ । (१४) पृ. २५८ । (१५) पृ. २५९ । (१६) पृ. २६० ।  
(१७) पृ. २६१ । (१८) पृ. २६२ । (१९) पृ. २६३ ।

गुणाणि । <sup>१</sup>अपुव्वकरणस्स चैव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेट्ठिणिकखेवो अणियट्ठिअद्दादो अपुव्वकरणद्दादो च विसेसाहिओ । <sup>२</sup>तम्हि ट्ठिदिखंडयद्दा ठिदिबंधगद्दा च तुल्ला । <sup>३</sup>एक्कम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि । <sup>४</sup>ट्ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबंधगद्दा च समत्ताणि भवन्ति । एवं ठिदिखंडय-सहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्दा समत्ता भवदि । <sup>५</sup>अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं ।

<sup>६</sup>अणियट्ठिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णो ट्ठिदिवंधो अण्णमणु-भागखंडयं । <sup>७</sup>एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्ठिअद्दाए संखेज्जेसु भागेषु गदेषु अंतरं करेदि । <sup>८</sup>जा तम्हि ट्ठिदिवंधगद्दा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेट्ठि-णिकखेवस्स अग्गगादो संखेज्जदिभागं खंडेदि । <sup>९</sup>तदो अंतरं कीरमाणं कदं । <sup>१०</sup>तदो प्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ ।

पढमट्ठिदीदो वि विदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगालो ताव जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति । <sup>११</sup>आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु तदो प्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेठी णत्थि । <sup>१२</sup>सेसाणं कम्माणं गुणसेठी अत्थि । पडिआवलियादो चैव उदीरणा । आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि ।

<sup>१३</sup>चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ । <sup>१४</sup>ताघे चैव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा । <sup>१५</sup>पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसगं देदि । सम्मत्ते असंखेज्जगुणहीणं पदेसगं देदि । <sup>१६</sup>विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि । सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि । तदियसमए सम्मत्ते असंखेज्ज-गुणं देदि । सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि । एवमंतोप्पहुत्तदं गुणसंकमो णाम । <sup>१७</sup>तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण संकमेदि । सो विज्झादसंकमो णाम । <sup>१८</sup>जाव गुणसंकमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेठी च ।

<sup>१९</sup>एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो । सव्वत्थोवा उव-सामगस्स जं चरिमअणुभागखंडयं तस्म उक्कीरणद्दा । अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणु-भागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ । <sup>२०</sup>चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो तम्हि चैव ट्ठिदिवंधकालो च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा । अंतरकरणद्दा तम्हि चैव ट्ठिदिवंधगद्दा

(१) पृ. २६४ । (२) पृ. २६६ । (३) पृ. २६७ । (४) पृ. २६८ । (५) पृ. २६९ ।

(६) पृ. २७१ । (७) पृ. २७२ । (८) पृ. २७३ । (९) पृ. २७५ । (१०) पृ. २७६ ।

(११) पृ. २७७ । (१२) पृ. २७९ । (१३) पृ. २८० । (१४) पृ. २८१ । (१५) पृ. २८२ ।

(१६) पृ. २८३ । (१७) पृ. २८४ । (१८) पृ. २८५ । (१९) पृ. २८६ । (२०) पृ. २८७ ।

च दा वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । अपुव्वकरणे द्विदिखंडयउक्कीरणद्धा द्विदिबंधगद्धा  
 च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मा-  
 मिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो । पढमसमयउवसामगस्स गुणसेट्ठिसीसयं  
 संखेज्जगुणं । <sup>१</sup>पढमद्विदी संखेज्जगुणा । उवसामगद्धा विसेसाहिया । <sup>२</sup>वे आवलियाओ  
 समयूणाओ । अणियद्वि-अद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । <sup>३</sup>गुण-  
 सेट्ठिणिकखेवो विसेसाहियो । उवसंतद्धा संखेज्जगुणा । अंतरं संखेज्जगुणं । <sup>४</sup>जहण्णिया  
 आवाहा संखेज्जगुणा । <sup>५</sup>उक्कस्सया आवाहा संखेज्जगुणा । जहण्णयं द्विदिखंडय-  
 मसंखेज्जगुणं । <sup>६</sup>उक्कस्सयं द्विदिखंडयं संखेज्जगुणं । जहण्णगो द्विदिबंधो संखेज्ज-  
 गुणो । उक्कस्सगो द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । <sup>७</sup>जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।  
<sup>८</sup>उक्कस्सयं द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो समत्तो ।

एत्तो सुत्तफासो कायव्वो भवदि ।

- (४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।  
 पंचिदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥८५॥
- (४३) <sup>१</sup>सव्वणिरय-भवणेषु दीव-समुद्दे गह-जोदिसि-विमारो ।  
 अभिजोग्ग-अणभिजोग्गे उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥८६॥
- (४४) <sup>२</sup>उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तद्दा णिरासाणो ।  
 उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥८७॥
- (४५) <sup>३</sup>सागारे पट्टवगो णिट्टवगो मज्झिमो य भजियव्वो ।  
 जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥८८॥
- (४६) <sup>४</sup>मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।  
 उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥८९॥
- (४७) <sup>५</sup>सव्वेहिं द्विदिविसेसोहिं उवसता होंति तिण्णि कम्मंसा ।  
 एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे द्विदिविसेसा ॥९०॥
- (४८) <sup>६</sup>मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो ।  
 उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥९१॥

(१) पृ. २८८ । (२) पृ. २८९ । (३) पृ. २९० । (४) पृ. २९१ । (५) पृ. २९२ ।  
 (६) पृ. २९३ । (७) पृ. २९४ । (८) पृ. २९५ । (९) पृ. २९६ । (१०) पृ. २९८ । (११) पृ. ३०२ ।  
 (१२) पृ. ३०४ । (१३) पृ. ३०७ । (१४) पृ. ३०९ । (१५) पृ. ३११ ।



- (४८) 'सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ ।  
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥
- (५०) 'अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।  
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेगदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥
- (५१) 'सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण ।  
भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥
- (५२) 'सम्मत्तपढमलंभसाणं तरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।  
लंभस्स अपढमरस दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥
- (५३) 'कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो ।  
एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥
- (५४) 'सम्माइट्ठी सदहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।  
सदहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥
- (५५) 'मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सदहदि ।  
सदहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥
- (५६) 'सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।  
अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो ॥१०९॥

एसो सुत्तफासो विहासिदो । तदो उवसमसम्माइट्ठि-वेदयसम्माइट्ठि-सम्मा-  
मिच्छाइट्ठीहिं एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो  
अंतरं अप्पावहुअं चेदि । एदेसु अणियोगदारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहउवसामणे त्ति  
समत्तमणियोगदारं ।

## २. अवतरण-सूची

क्रमांक	पृ.	क्रमांक	पृ.	क्रमांक	पृ.
क १. कामो राग-णिदाणे	१९२	त ५. तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं	३२३	स ९. सुत्तादो तं सम्मं	३२२
२. क्रोधः क्रोपः क्रोषः	१८७	म ६. मायाथ सातियोगो	१८९	१०. स्तम्भ-मद्-मान	१८८
३. क्षणिकाः सर्व- संस्काराः	१७७	७. मिच्छत्तं वेदतो	३२३	११. श्रीमत्परमगम्भीर	१८३
ज ४. जहणपरिस्ता- संखेज्जयं.....	१३४	स ८. साशता प्रार्थना वृष्णा	१९२		

## ३. ऐतिहासिक-नामसूची

	पृ.		पृ.		पृ.
ग गुणहराइरिय	१५२, १९५	भ. भयवंत अज्जमंखु	२३, ७२	स. सुत्तयार	१५८, २००
घ चुणिसुत्तयार	१४, ६३, १७८	” ” नागहत्थि	२३, ७२		

## ४. ग्रन्थनामोल्लेख

	पृ.		पृ.		पृ.
अ अपावइज्जंत उवएस	७, ६६, ७१	च चउट्टाण	१५०	प परियम्म	१३४
अपवाइज्जमाण	७२, ११६, ११९, १४६	चुणिसुत्त	३, ११, १५, १२९, १४३, १७९, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९	पवाइज्जंत उवएस	८, १९, १७, १८, ६६, ७१, ७२, ७३, ८२, ११६, ११९, १४६
उ उवजोगअणि.	१	ज जीवट्टाण	१५		
४ कसायपाहुड	१५०, १९४				

## ५. न्यायोक्ति

	पृ.
ज. जहा उहसो तहा णिहेसो	११९, २३४

## ६. सूत्रगाथा-चूणिगत शब्दसूची

अ. अइच्छावणाफहय	२६२	अपुव्वकरणद्धा	२६४, २६८	उवजोगपरुवणा	२८
अवखम	१८६		२९०	उवजोगवग्गणा	६, ११
अवखमलसम	१५५	अप्पसत्यकम्मंस	२५८	६०, ६१, १०९, ११०	
अग्गग्ग	२७३		२६१	उवदेस	१८, २३, ७१, ११६
अट्टिसमाण	१५२	अप्पाबहुअ	६३, ७६, ८२		११९, १४५
अणभिजोग्ग	२९८		८६	उवरिल्ल	१६४
अणागार	१६७	अबंधक	१६८	उवसम	१८२
अणियट्ठि	२७१	अभिक्ख	२८	उवसाम	२९८
अणियट्ठिअद्धा	२६४	अभिजोग्ग	२९८	उवसामग्ग	१२७, २३०
अणियट्ठिकरण	२३३, २५५	अवलेहणीसमाणी	१५५	२०६, ३०७,	
अणियोगहार	१, ८७	अविरदि	१६७, १८९	उवसामग्गद्धा	२८९
अणुग्गम	८८	अविरहिद	११	उवसामणद्धा	२३४
अणुज्जग्गद	१८८	अवेदंत	१६८	उवसंत	१६६, ३०२, ३०७,
अणुभाग ७, ६५, ६६, ७२,		असण्णी	१६७, १६९	३०९	
१५७, १६१		आ. आगरिस	२९, ३८	उवसंतदंसणमोहणीय	
अणुभागखंडय	२५८, २६१	आगाइदफहय	२६२	२८०, २८२	
२६७		आगाल	२७६	उवसंतद्धा	२९१
अणुभागग्ग	१६१	आबाहा	२९२, २९३	उवसंदरिसणा	५१
अणुभागघाद	२३१, २३२	आबलियवग्गमूल	११३	उस्सिद	१८७
अणुभागट्ठाण	८१	आसा	१८९	ए. एककगणिक्लेव	१७२
अणुभागबंध	२११	आसाण	३०७, ३११	एग्गुणवड्ढिट्ठाणंतर	११३
अणुभागसंतकम्म	२०७	इ. इच्छा	१८९	एग्गुणहाणिट्ठाणंतर	११३
अणुमाणिय	१८३	उ. उक्कास	१८७	एग्गट्ठिय	१८९
अणुराग्ग	१८९	उक्कीरणद्धा	२८८	ओ. ओरालियकायजोग	२०१
अत्तुकरिस	१८७	उच्चट्ठाण	१७५	क. कक्क	१८८
अत्थविहासा	६०, १४०	उजुसुद	१७५	कम्म	१९८, २३१, २७९
२०६		उत्तरपयडि	२१४, २१५	कम्मंस	२८१, ३०९
अद्धच्छेद	१३३	उदय	१९७, २२१	करण	५१, २३३, २३४
अद्धट्ठाण	११४, ११५, १७५	उदयराइसमाण	१८०	कलह	१८६
अद्धा	१८	उदयराइसरिस	१५२	कसाअ	१५७, १९५
अद्धापरिणाम	१४	उदिण्ण	१६६	कसाय	२०२
अधापवत्तकरण	१९४	उवजुत्त	२, ९, १०, २८, ६५	कसायपाहुड	१९४, २०२
१९९, २३२, २३३		उवजोग	२, ३, ४, ५, ४३	कसायोदयट्ठाण	६२, ७२,
अपज्जस	१६७		१९५, २०३	७३, १०९, ११७	
अपुव्व	२६१	उवजोगद्धाण	१०९, ११०	कसायोवजोगद्धाण	६२,
अपुव्वकरण	२३३, २५२		११६	७२, ७३, ७५, ७६, १२१	
२५४				काम	१८९

काल	८६	खं	१८९	गेह	१८९
कालजोनी	९१	ज. जवमञ्ज	११३, ११४	णोकोहकाल	१००, १०४
कालाणुगम	८६		१२१, १२५, १३३	णोभावकाल	१०४
कालोवजोगवग्गणा	६१, ६२	जिब्भा	१८९	णोमाणकाल	९३, ९६, १००
किमिरागरत्तसमग	१५५	जीवसमास	२३, २४	णोलोभकाल	१०३
कुहग	१८८	जोग	१६७, १९५, २०१	त. तण्हा	१८९
कोधद्वा	१५, १७, २०	जोदिसि	२८९	तेउलेस्ता	२०४, ३०४
कोधागरिसा	३१, ३२, ३९	झ. झंझा	१८६	थ. थंभ	१८७
कोधाणुभाग	६७	ट. टाण	११२, १२३, १२४	द. दन्प	१८७
कोव	१८६		१५७, १६४, १६८, २७३	द्ववपमाण	८६
कोह	१५१, १५२, १८६	ट्टाणणिकखेव	१७२	द्ववपमाणाणुगम	८६
कोहकाल	९८, ९९, १००	ट्टिदि	१५२, १५७	दसलक्खण	१८७
कोहेट्टिय	१८६	ट्टिदिखंडय	२५८, २६०,	दारुअसमाण	१५२, १६४
कोहोवजोग	४३, ४५		२६६, २६७		१६९
कोहोवजोगद्धट्टाण	१११	ट्टिदिखंडयद्वा	२६६	दारुसमाण	१६०
कोहोवजोगद्वा	५१	ट्टिदिघाद	२३१, २३२	दीव	२९८
कोहोवजोगिग	५६, ५९	ट्टिदिबंध	२११, २५९, २६१	दुट्टाणिय	२५८
ख. खीण	३०२	ट्टिदिबंधगद्वा	२६६	देसावरण	२६४
खेत्तट्टाण	१७६	ट्टिदिय	१९८, २३१	दोस	१८६, १८९
खेत्तपमाण	८६	ट्टिदिविसेस	३०९	दंडअ	२८६
ग. गह	२९८	ट्टिदिसंतकम्म	२०७, २६९	दंडग	२३, २९६
गहण	१८८		२९५	दंसणमोहस्स	३१३
गाहासुत्त	२०६	ठ. ठवण	१७५	दंसणमोहोवसामग	१९५
गिद्धि	१८९	ठाण	२३१		१९९, २३३
गुणसेट्ठि	२५८, २७७, २७९	ण. णगराइसरिस	१५२	प. पगास	१८७
गुणसेट्ठिणिकखेव	२०३,	णामट्टाण	१७६	पज्जत्त	१६७, २९६
	२६४ २९१	णिकखमण	१६	पट्टवग	३०४
गुणसेट्ठिसीसग	२८८	णिकखेवफहय	२६२	पडिआगाल	२७६
गुणसंकम	२८३, २५८	णिट्टवग	३०४	पडिभाग	१४५
	२८५	णिदरिसण	६८	पट्टमट्टिदि	२७६
गुणहाणिट्टाणंतर	११३	णिदरिसणउवणय	१७८	पट्टमादिया	१४२
	११४, ११५, ११६, १३५	णिदाण	१८९	पणुवीसपडिग	२९६
गूहण	१८८	णियदि	१८८	पणुवीसदिपडिग	२९६
गोमुत्ती	१५५	णिरय	२९८	पत्थण	१८९
घ. घाद	२३२, २७९	णिरासाण	३०२	पदुप्पण	१३८
च. चउट्टाण	१५०, १७०	णिव्वग्गणकंडय	२४८	पदेसगुणहाणि	२६२
चउट्टाणिय	२५८	णिव्वग्गणा	२५४	पदेसग्ग	१५७, १५८, १६३
चरिसादिया	१४२	णिव्वाघाद	३०२		२८२
छ. छण	१८८	णीरासाण	३०२	पदेसबंध	२११
छत्तीसपद	८२	णेगम	१७५	पदेससंतकम्म	२८७

पमाण	६३	महादंडय	९०	लोहोवजोग	३, ४५, ४६
पम्मलेस्सा	२०४	माण १५१, १५२, १५८ १८७		लोहोवजोगिग	५५, ५९
परिभव	१८७	माणकाल	९३, ९६, ९८ ९९, १००	व. वग्गणग्ग	१६१
पयडिबंध	२११			वग्गणा	६, १५८
पयडिसंतकम्म	२०७	माणद्धा	१५, १७, १८, २०	वग्गणाकसाअ	८५, ८६
परभवियाउअ	२१४	माणगरिसा	३२, ३९	वग्गणाकसाय	९
परिणाम १९५, १९९, २००		माणोवजोग	४४, ४५, ४६, ४७	वचिजोग	५
परुवणा	६३	माणोवजोगद्धा	७७, ७८ ७९	वड्डमाण	६
पलिधीचिट्टाण	१७५			वड्डमाणलेस्सा	२०४
पवाइज्जंत १८, ७१, १४६		माणोवजोगिग	५६, ५८, ५९	वड्ढि	१८६
पवेसग १९६, २१५, २१६		मायद्धा	१५, १७, १८, २०	ववहार	१७५
पवेसण	१६	माया	१५१, १५५, १८८	वालुगराइसरिस	१५२
पवेसणय	१४३, १४४	मायाकाल	९८, ९९	वालुवराइसमाण	१८१
पव्वदराइसमाण	१८२	मायागरिसा	३२, ३९	विज्ज	१८९
पसत्थकम्मंस	२५८	मायोवजोग	४५, ४६, ४७	विज्झादसंकम	२७४
पुच्छा	७३, ७४	मायोवजोगिग	५६, ५८, ५९	विदियट्टिदि	२७६
पुच्छासुत्त	६६, ६७	मिच्छत्त	१६७	विदियादिया	१४२
पुढविराइसरिस	१५२	मिच्छत्तपञ्चय	३११	विभज्ज	१६९
पुरिमद्ध	१०९	मिच्छत्तवेदणीय	३०७	विभासा	४३, ६१
पुव्वणिविखत्त	१७३	मिस्सग	१६७	विमाण	२९८
पुव्वपरुविद	१७३	मिस्सयकाल	९३, ९६, १०० १०५	वियट्ट	३१६
पुव्वबद्ध	१९६, २०७	मुच्छा	१८९	विरदि	१६७
पेज्ज	१८९	मूलपयडि	२१४, २१५	विरदाविरद	१६७
पंचिदिय	२९६	भेढविसाणसरिसी	१५५	विरहिद	११
पंसुलेवसम	१५५	र. राग	१८९	विवाद	१८६
फ. फोसण	८६	रोस	१८६	विसुज्झमाण	२००
व. वज्झमाण	१६६	ल. लक्खण	२३४, २५६	विसुद्धि	२००
बद्ध	१६६	लदासम	१६०, १६१	विसोही	२४५, २४६, २४७ २४९, २५२
बंध	१९, २२१, ३११	लदासमाण	१५२, १५८ १६९	विहासा	६१, ६५, ७१, १९८, २०१
बंधग	१६८	लालस	१८९	वेडवियकायजोग	२०१
म. भवग्गहण	३, ३८, ४१	लेस्सा	१६७, १९५, २०४	वेद	१९५, २०५, २०६
भवण	२९८	लोभट्टाण	१२३	वेदयसम्माइट्टि	३१३
भागाभाग	८६, ८७	लोभ	१८९	वेदंत	१६८
भावट्टाण	१७६, १७७	लोभकाल	८९, ९९	बंधणा	१८८
भावोवजोगवग्गणा	६१, ६२	लोभागरिसा	२९, ३१, ३८	बंधण	१८५
भूदपुव्व	१०, ९१	लोह	१५१, १५५	बंधीजणहुगसरिसी	१५५
म. मज्झिम	३०२	लोहद्धा	१५, १८, २०	स. सण्णा	७३
मणजोग	२०१			सण्णी	१६७, १६९, २९६
मणुण्णमग्गण	१८८			सत्थाणपद	१००
मद	१८७				

परिसिद्धाणि

३५१

सहणय	१७६	सासद	१८९	सेलचणसमाण	१५२
समुक्कास	१८७	सुककलेस्सा	२००	संकम	३१८
समुह	२९८	सुत्त	१, १५०, १७२	संकमण	३१८
सम्मत्त	१६७, १९४	सुत्तगाहा	१७८, १८३, १९३	संगह	१७५
सम्मत्तपढमलंभ	३१६, ३१७		१९९, २३३	संजमट्टाण	१७६
सम्मामिच्छाइट्टि	३१३	सुत्तणिबद्ध	८७	संजलण	१८६
सव्वावरणीय	१६४	सुत्तफास	२९६	संतपरुवणा	८६
सव्वोवसम	३१४, ३१६	सुत्तविहासा	१४०, १७८	संधि	१६३
सागरुवजोग	२०४	सुद	१८९	ह. हायमाण	२०३
सागार	१६७, ३०४	सूचनाणुगम	८७	हायमाणकसाय	२०३
सादिजोग	१८८	सूचनासुत्त	८५	हालिहवत्थसम	१५५
		सेट्ठि	१४१		

७. जयधवलागत-पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना--यहाँ मात्र वे पारिभाषिक शब्द लिये गये हैं जिनको मूलमें परिभाषा दी है या जिनका विशेष स्पर्ष्टीकरण किया गया है।

अ. अइच्छावणाफहय	६२	अंस	१९७	करण	२३३
अक्खम	१८७	आ. आगरिस	२८	कलह	१८७
अक्खमलसम	१५६	आगाइदफहय	२६	कसायोदयट्टाण	१०९
अग्ग	१६२	आगाल	२७७	कसायोवजोगद्धा	६२
अणज्जुगद	१८९	आणुपुव्वी	१९४	काम	१८९
अणभियोगा	३००	आवलिया	११३	कायजोग	२०२
अणियट्टिकरण	२३४, २५६	आसा	१९०	कालजोगी	९१
अणुकट्टि	२३५	इ. इच्छा	१९१	कालोवजोगवग्गणा	६२
अणुगम	१९४	उ. उच्चट्टाण	१७४	कुहक	१८९
अणुभाग	७, ८	उदयराइसरिस	१५४	कुमिरागरत्तसमग	१५६
अणुभागग्ग	१६२	उदिण्ण	१६७	कोहकाल	९४
अणुराग	१९०	उवक्कम	१९४	कोहमिस्सयकाल	९४
अत्तुक्करिस	१८८	उवजोग	२०३	ख. खेत्तट्टाण	१७४
अद्धट्टाण	१७४	उवजोगद्धट्टाण	१०९	ग. गह	२९९
अद्धापरिणाम	१४	उवजोगवग्गणा	६१	गहण	१८९
अधापवत्तकरण	२३३, २४५	उपयोग	४, ५	गिद्धि	१९०
अनाकारोपयोग	२०३, २०४	उवसामग	२७६, २८६	गुणसेट्ठिणिक्खेव	२६४
अपवाइज्जंत उवएस	११६	उवसामणद्धा	२३४	गूहण	१८९
अपुव्वकरण	२३४, २५२	उवसंत	१६७	च. चरिमादिया	१४३
अभियोगा	३००	उवसंदरिसणा	५१	छ. छण्ण	१८९
अभीक्ष्णोपयोग	२८	उस्सिद	१८८	छंद	१९०
अवलेहणी	१५५	ए. एककगणिकखेव	१७२	ज. जवमज्झ	१११
अविरदि	१९१	क. कक्क	८९	जिब्भा	१९२
अंतरकरण	२७२				

जोग	२०२	पडिआगाल	२७७	र. राग	१८९
झ. झंझा	१८७	पडिआवलिया	२७७	ल. लालस	१९१
ट. टुवणणिकखेव	१७२	पढमसमय	१४१	व. वग्गणा	६१
ठ. ठवणट्टाण	१७४	पढमादिया	१४२	वच्चिजोग	२०२
ण. णगराइसरिस	१५३	पत्थण	१९१	वड्ढि	१८७
णामट्टाण	१७४	पटुप्पण	१३८	वत्तव्वदा	१९४
णिकखेवफइय	२६२	पयोगट्टाण	१७४	वालुगराइसरिस	१५३
णिदरिसण	६८	परिणाम	१९६	विज्ज	१९१
णिदरिसणोवणय	१७४	परिभव	१८८	विज्जादसंकम	२८४
णिदाण	१९०	पवाइज्जंतउवएस	११६	विदियादिया	१४२
णियदि	१८८	पवेसणय	१४४	विवाद	१८
णिरासाण	३०३	पांसुलेवसम	१५६	विसेसकोह	१५२
णिव्वग्गणकंडय	२३६	पुढविराइसरिस	१५३	विहासा	१४
	२५४	पुण	१६५	वेद	१-६
णिव्वाधाद	३०२	पेज्ज	१९०	वंचणा	१९
णोआगमभावट्टाण	१७५	ब. वज्जमाण	१६६	वंसोजणहुगसरिसी	२५५
णेह	१९०	बद्ध	१६६	स. सव्वोवसम	३१४
णोकोहकाल	९४	म. भावट्टाण	१७५	साकार ( उपयोग )	
णोमाणकाल ९२, ९३, १०५		भावोवजोगवग्गणा	६२	सादिजोग	१८८
त. तण्हा	१९१	म. मणजोग	२०२	सामणणकोह	१५२
थ. थंभ	१८८	मणुण्णमग्गण	१८९	सासद	१९१
द. दप्प	१८८	मद्	१८८	सुद	१९०
दव्वट्टाण	१७४	माण	१८७	सेढि	१४२
देसावरण	१६५	माणकाल	९३	सेलघण	१५४
दोस	१८७, १९०	माया	१८८	संजमट्टाण	१७४
दंसणोवजोग	३०४	मिस्सयकाल	९२, ९४	संजलण	१८७
दंसणमोहणीयउवसम	२८०	मुच्छा	१९१	संतकम्म	१६६
प. पट्टवग	३०४	मैढविसाणसरिसी	१५५	ह. हालिइवत्थसमग	१५७

